रामायणमञ्जरी का साहित्यिक अनुशीलन

डॉ. योगेश चन्द्र दुबे

रामायणमञ्जरी का साहित्यिक अनुशीलन

लेखक

डॉ० योगेश चन्द्र दुबे

एम० ए०, डी० फिल्०, डिप्० (लिङ्ग्विस्टिक्स)

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

अक्षयवट प्रकाशन

इलाहाबाद

रामायणमञ्जरी का साहित्यिक अनुशीलन

लेखक :

डॉ० योगेश चन्द्र दुबे

© लेखकाधीन :

प्रकाशन वर्ष : १९९१

मूल्य : एक सौ पचास रुपये मात्र

प्रकाशक :

अक्षयवट प्रकाशन

२६, बलरामपुर हाउस

इलाहाबाद-२११००२

मुद्रक :

शिवशक्ति मुद्रणालय

बस्की खुर्द, दारागंज

इलाहाबाद-२११००६

समर्पण

'पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ'

जिनके स्नेहसिक्त वात्सल्य ने अध्ययन के प्रति
सदा ममत्त्वपूर्ण प्रेरणाएँ दी हैं,
उन उदारचेता पूज्यपाद पिताजी पं० श्री वंशराज दुबे
एवं परम पूजनीया माँ श्रीमती सावित्री देवी
के
श्रीचरणों में यह प्रथम पुष्प
सादर सविनय
समर्पित

स्वस्तिवाचिक

महाकवि क्षेमेन्द्र काश्मीर की साहित्य परम्परा में एक ऐसे उज्जवल नक्षत्र हैं जिन्हें सच्चे अर्थों में युग-प्रतिनिधि अथवा जनकवि कहा जा सकता है। उनका रचना-संसार जितना विस्तृत था ज्ञान की परिधि भी उतनी ही सायाम थी। वह एक ही साथ नाट्य कवि, काव्यकवि, शास्त्रकवि, पुराणकवि तथा उद्भट काव्यशास्त्री—सब कुछ थे। यह उनके सौभाग्य की पराकाष्ठा थी कि उन्हें महामाहेश्वर अभिनवगुप्तपाद जैसा चतुरस्र प्रतिभा का धनी आचार्य, साहित्य-गुरु के रूप में प्राप्त हुआ था। यही कारण था कि आचार्य क्षेमेन्द्र की कविता में शास्त्र और लोक का मञ्जुल समन्वय मिलता है।

क्षेमेन्द्र की विशालकलेवरा कृतियों को देखकर जहाँ मन उस महान् सरस्वती पुत्र की कारयित्री प्रतिभा के प्रति नतमस्तक हो उठता है, वहीं उनका वैपुल्य देखकर असीम आश्चर्य भी होता है। लगता है, अक्षर-ब्रह्म का उपासक यह परन्तप साधक नक्तन्दिव अपनी सारस्वत साधना में हो लीन रहता था। तभी तो उसने रामायणमञ्जरी, भारत मञ्जरी तथा वृहत्कथामञ्जरी जैसी दीर्घवपुष कृतियाँ सिरजी ! सचमुच क्षेमेन्द्र, वाणी-मन्दिर की नीराजना के समान थे जिसकी ज्योति कभी क्षीण ही नहीं हुई।

क्षेमेन्द्र जहाँ एक ओर साहित्यशास्त्र के अन्तिम औचित्य सम्प्रदाय के पुरोधा आचार्य हैं, नूतन प्रस्थान के प्रवर्तक महामहिम लक्षणकार हैं वहीं दूसरी ओर विशुद्ध जनवादी कविता 'कलाविलास' के सहृदय स्रष्टा भी हैं। कलाविलास दशम-एकादश ई० शती का एक ऐसा पारदर्शी काव्य दर्पण है जिसमें इस युग का काश्मीरक-समाज अद्भुत ईमानदारी के साथ प्रतिबिम्बित किया गया है। जनवादी कविता का एक अनन्यत्रोपलब्ध निदर्शन इस कालजयी कृति में मिलता है।

कवि किसी का सगा नहीं होता है। वह अकुतोभय, निरंकुश तथा सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होता है। अपनी सृष्टि का वह स्वयं वेधा है, फलतः मनचाही काव्य-सृष्टि करने में उसे न राजभय होता है, न ही जनभय ! उसका यही फक्कड़ स्वभाव उसे 'लोकसाक्षी' के रूप में प्रतिष्ठित करता है। महाकवि क्षेमेन्द्र इसी प्रकार के निर्विशंक साहित्यकार थे। वह राजद्वार के चारणकवि नहीं थे, प्रतिहार भूमि के प्रतीक्षारत कवि नहीं थे, राजसभा के वैतालिक कवि नहीं थे—बल्कि शारदा मन्दिर के औघड़ पुजारी मात्र थे। अपने इसी अनभिभवनीय निसर्ग के कारण संभवतः वह 'मुखस्फुट' (मुँहफट) एवं असंयतमुख भी हो चले थे। कलाविलास उनकी इस दुर्वाह प्रकृति का जीवन्त प्रमाण है। कलाविलास में

उन्होंने किसी को बख्शा नहीं। कुलाभिमान की झूठी ऐंठ में अकड़े अभिजात वर्ग से लेकर कायस्थों और वेश्याओं तक—उनके व्यङ्ग्य का कशाघात परिव्याप्त था। उन्होंने समाज की नब्ज भलीभाँति पहचानी थी। वह उसका औषधोपचार भी जानते थे। फलतः दुष्प्रवृत्तियों को लोक-प्रख्यापित कर, रहस्यों का पर्दाफाश कर, मुखौटों को लेखनी की नोक से छीन कर उन्होंने दुहरी जिन्दगी जीने वाले समाज को नंगा कर दिया था। सच्चा जनकवि यही करता है। क्षेमेन्द्र ने किसी लाभ के लिये जनता की रहनुमाई नहीं की थी। वस्तुतः वह व्यक्ति एवं समाज की पीड़ा-प्रवञ्चना तथा राजधानी के कृपापात्रों द्वारा की जा रही उनकी अवमानना से व्यथित थे।

क्षेमेन्द्र के अनुभवों की कोई सीमा नहीं थी। उनके अनुभव दो प्रकार के थे—शास्त्राभ्यास जन्य तथा व्यक्तिगत परिचय जन्य! शास्त्राभ्यास का हाल तो यह था कि क्या गज शिक्षा, क्या हय शिक्षा! क्या धनुर्वेद, क्या गान्धर्ववेद! प्रत्येक शास्त्र का उन्हें तलस्पर्शी ज्ञान था। कविकण्ठाभरण में उन्होंने स्वयं (सम्प्रति अप्राप्त) स्वोपज्ञ नाटक कनकजानकी से उपर्युक्त सन्दर्भों के उद्धरण दिये हैं। गजलक्षण के सन्दर्भ में वह लिखते हैं—गजलक्षणपरिचयो यथा मम कनकजानक्याम्,

कर्णाभ्यर्णविकीर्णचामरमरुद्विस्तीर्णनिःश्वासवान्
शङ्खच्छत्रविराजिराज्यविभवद्वेषी विलीनेक्षणः।
स्मृत्वा राघव! कुञ्जरः प्रियतमामेकाकिनीं कानने
सन्त्यक्तां चिरमुक्तभोगकवलः क्लेशोष्मणा शुष्यति॥

यह शास्त्र परिचय क्षेमेन्द्र के सततानुशीलन का एक ध्रुव है। उसका दूसरा ध्रुव है कवि का लोकवृत्तनैपुण्य! कवि को मानव-मन की अद्भुत पहचान थी। उसने समाज के विविध वर्गों को बड़ी डूबी आँखों से बिसूरा था। जंगल, नदी, कछार, लहलहाते खेत, सघन वन पंक्तियाँ और पक्कण-ग्रामटिका—क्षेमेन्द्र का सबसे परिचय था। वन में रहने वाले फूहड़ और लण्ठ कोल-किरातों से भी संभवतः क्षेमेन्द्र की 'पैलगी-असीस' बरकरार थी। यदि ऐसा न होता तो कवि इतना सटीक लिखता कैसे?

वनेचरपरिचयो यथा मम कनकजानक्याम्—
वामस्कन्धनिषण्णशार्ङ्गकुटिल प्रान्तार्पिताऽधोमुख—
स्यन्दच्छोणितलम्बमानशशकान् पाणिस्खलच्चामरान्।
ज्यान्तप्रोतकपोतपोतनिपतद्रक्ताक्ततूणीरकान्
साऽपश्यत्करिकुम्भभेदजनिताक्रन्दान् पुलिन्दान् पुरः॥

आचार्य क्षेमेन्द्र का देश परिचय भी कुछ कम नहीं था। यद्यपि उनके, राजशेखर और बिल्हण जैसे यायावर-वृत्तों के प्रमाण कम ही मिलते हैं, फिर भी अपनी रचनाओं की पृष्ठ भूमि में, उन्होंने भारत के विविध जनपदों की प्रकृति, परम्परा एवं

लोक प्रवृत्तियों को बड़ी निपुणता से उकेरा था। औचित्यविचारचर्चा तथा कविकण्ठाभरण में क्षेमेन्द्र की जिस अनुपलब्ध काव्यकोटिक उपरूपक कृत्ति का संकेत मिलता है उसमें केरल देश के नरेश की प्रणय कथा ही चित्रित थी। कश्मीर जन्मा कवि केरल का वृत्त लिखे, कितने विस्मय की बात है? केरल देश की रमणी के 'सीत्कार' को रूपायित करते हुए क्षेमेन्द्र लिखते हैं —यथावा मम लावण्यवत्यामेव,

मार्गे केतकसूचिभिन्नचरणा सीत्कारिणी केरली,
रम्यंरम्यमहो पुनः कुरु दिटेनेत्यर्थिता सस्मिता।
कान्ता दन्तचतुष्कबिम्बितशशिज्योत्स्नापटेन क्षणं,
धूर्तालोकनलज्जितेव तनुते मन्ये मुखाच्छादनम्॥

संस्कृत कवि-परम्परा में क्षेमेन्द्र जैसे बहुश्रुत, बहुज्ञ तथा बहुमत साहिती-सूत्रधार बिरले ही हैं। लोग दो-चार रचना लिखकर ही या तो विश्रान्त हो जाते हैं या फिर रिक्त प्रतिभा प्रकर्ष! परन्तु आचार्य क्षेमेन्द्र न ही विश्रान्त हुए, और नही उनकी प्रतिभा का अंकुरण अनुदग्र हुआ। सुयोग्य उपाध्याय का ऐसा सुयोग्य शिष्य मिलना कठिन है, जैसा हम आचार्य अभिनवगुप्त एवं क्षेमेन्द्र के सन्दर्भ में पाते हैं।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की अध्यापनावधि में सन् १९७५ से १९९० के बीच मेरे निर्देशन में जिन २५ विद्यार्थियों ने डॉक्टरेट उपाधि (डी० फिल्०) प्राप्त की उनमें चि० डॉ० योगेशचन्द्र दुबे ने महाकवि क्षेमेन्द्र प्रणीत रामायणमञ्जरी को तथा डॉ० सत्य प्रकाश मिश्र ने भारतमञ्जरी को अपने शोधाध्ययन का लक्ष्य बनाया। वस्तुतः वृहत्कथा मञ्जरी पर भी शोधकार्य सम्पन्न करा कर मैं क्षेमेन्द्र की काव्य त्रिवेणी में स्वयं को स्नानपूत बनाना चाहता था, परन्तु सरस्वती की तरह तीसरी शोधतटिनी लुप्त ही रही। जिसे वह विषय सौंपा था, वह पूर्ण नहीं कर सका।

परन्तु इन दो शोध-अध्ययनों में भी आयु० योगेश ने जिस अभिनिवेश एवं समग्रता के साथ क्षेमेन्द्रीय रामकथा का, परावर-सन्दर्भों की तुलनात्मक समीक्षा के साथ, सांगोपांग सूक्ष्म विवेचन किया इसकी सराहना प्रख्यात विपश्चित् डॉ० अरुणोदय नटवर लाल जानी ने भी की, जो इस महनीय शोधकार्य के परीक्षक भी थे। मेरे लिये भी यह सारस्वत-सौभाग्य का क्षण है कि मेरे निर्देशन में सम्पन्न वह प्रशस्त शोधकार्य 'रामायणमञ्जरी का साहित्यिक अनुशीलन' एक नयनाभिराम ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित होकर विद्वज्जगत् के समक्ष, उनका आशीष पाने के लिये प्रस्तुत हो रहा है। छः अध्यायों में पर्यवसित डॉ० योगेश का प्रकृत विचार-मन्थन निश्चय ही अपने नये कलेवर में सर्वथा नया है। प्रतिपाद्य-विभाजन, अध्यायों के शीर्षक तथा विचार सरणि में प्रबुद्ध अनुसन्धाता ने यथेष्ट परिवर्तन किये हैं जिनकी अपेक्षा भी थी—तथापि मूल रसायन अप्रतिहत तथा अक्षुण्ण है।

इस शोध प्रबन्ध का निर्देशक होने के कारण आर्जव एवं समुदाचार मुझे प्रबन्ध को गुणवत्ता स्थापित करने के सन्दर्भ में मुखर होने से रोक रहे हैं। फिर भी स्वयं चिराश्वस्त मैं, संस्कृत के प्रज्ञाविशारदों को आश्वस्त करना चाहूँगा कि क्षेमेन्द्र के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व की इस शिशु-समीक्षा को वे पूर्णता के निकष पर अवश्य परीक्षित करें तथा वात्सल्य-परिस्नुत होने पर इस युवा अनुसन्धाता को अपना अमोघ आशीष भी दें—

क्व क्षेमेन्द्रकविः कवीश्वरततिप्राथम्यभाग्भास्वरः,
गाथाऽसौ क्व च पावनी रघुवृढाभ्युत्थानसंस्थापिनी।
एवं सत्यपि यल्लघूडुपबलश्शोधोदधिं स्नातको,
निर्विघ्नं प्रततार तद् दिविषदां स्निग्धेक्षणं केवलम् ।।

विद्वद्वशंवद

१८ अक्टूबर १९९१ ई०
संस्कृत विभाग
हिमांचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला।

प्राक्कथन

जिस प्रकार एक नदी अपने उद्‌गम स्थल में अत्यन्त संकीर्ण होती है और बाद में चलकर अपना मार्ग प्रशस्त कर लेती है, ठीक उसी प्रकार छान्दस वाङ्मय से निःसृत होने वाली रामकाव्य की धारा पहली बार बाल्मीकि रामायण में आकर अपना सुव्यवस्थित एवं प्राञ्जल रूप धारण कर सकी है। वस्तुतः भारतीय किसी ऐसे आदर्श चरित्र को सुनने के लिए लालायित थे, जो उन्हें सन्मार्ग पर चलने को शिक्षा दे सकता, उनके जीवन में रस का संचार करता तथा उनके अँधेरे जीवन में प्रकाश की ज्योति विकीर्णकर सकता। आदि कवि ने अपने महाकाव्य में भारतीयों की इस लालसा की पूर्ति बड़े सुन्दर एवं समुचित ढंग से की है।

वास्तव में यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाय तो भारतीय हिन्दू जाति के धार्मिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक जीवन पर जो प्रभाव राम के चरित्र का है, वह किसी दूसरे का नहीं। हिन्दू परिवारों में बालकों के जन्म के समय प्रायः ऐसे गीत गाये जाते हैं, मानों स्वयं राम ही उत्पन्न हुये हों। विवाह के समय भी ऐसे मांगलिक गान होते हैं, मानों राम एवं सीता का विवाह हो तथा मनुष्य-शरीर की अन्तिम यात्रा 'राम नाम सत्य है' की ध्वनि के साथ ही समाप्त होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण भारतवर्ष राम नाम की मधुर ध्वनि के द्वारा प्राचीनकाल से आज तक निनादित ही है, साथ ही अब जो अनुसन्धान हुए हैं, वे भारत से बाहर भी दूर-दूर देशों में पहुँचे हुए इस राम नाम के तेजस्विता की उद्‌घोषणा कर रहे हैं।

इस प्रकार जो राम नाम (रामकथा) भारत तथा उससे बाहर विदेशों में भी व्यापक रूप से प्रसृत हो तथा जिसने हिन्दू जाति के रंग-रंग में रमते हुए उसे राममय बना दिया हो, उसके प्रति भारतीय, हिन्दू जाति तथा आस्तिक परिवार से सम्बद्ध होने कारण लेखक की आसक्ति भक्ति एवं श्रद्धा होना नितान्त स्वाभाविक है। यही कारण है कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल् उपाधि हेतु विषय चयन करते समय पूज्यपाद गुरुवर्य एवं निर्देशक अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्रजी ने मेरी रामकथा विषयक रुचि को ध्यान में रखते हुए ही 'रामायणमञ्जरी' के साहित्यिक अनुशीलन का कार्य सौंपा।

सर्वविदित है कि प्राचीन काल से ही लोकनायक राम का जीवन जनसामान्य के लिये अत्यन्त आकर्षण की वस्तु रहा है। यही कारण है कि रामकथा साहित्य अनेक विधाओं में प्रादुर्भूत हुआ है। संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध राम साहित्य पुराण, संहिता महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, चम्पू तथा स्तोत्र आदि विविध विधाओं में वर्णित है। इसमें भी प्रत्येक विधा के अन्तर्गत समय-समय पर कवियों ने विपुल रामकथा साहित्य की सर्जना करके अपनी लेखनी को अमर एवं पवित्र बनाया है।

संस्कृत रामकाव्य की इसी परम्परा के अन्तर्गत ११ वी शता० में सरस्वती पुत्रों की जन्मस्थली काश्मीर देश में उत्पन्न क्षेमेन्द्र नामक एक सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न कवि ने 'रामायणमञ्जरी' नामक रामकथा काव्य की रचना करके अपनी लेखनी को अमर एवं पवित्र बनाया। संस्कृत रामकथा ग्रंथों में रामायणमञ्जरी का महत्वपूर्ण स्थान है। महर्षि बाल्मीकि के पद-चिन्हों पर चलते हुए महाकवि क्षेमेन्द्र ने रामायण-मञ्जरी के ६४०० श्लोकों के अन्तगर्त आदि काव्य के २४००० श्लोकों का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करने का श्लाघनीय प्रयास किया है।

बाल्मीकि रामायण की ही भाँति कवि ने रामायणमञ्जरी को भी बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यपर्व, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड प्रभृति सात काण्डों में प्रमुख रूप से विभक्त किया है। परन्तु कवि के इस कथानक विभाजन में किञ्चित् मौलिकता दृष्टिगोचर होती है, जो अन्य रामकथा ग्रन्थों में सुलभ नहीं है। यथा-ग्रन्थ के प्रारम्भ में बालकाण्ड का उल्लेख करके ग्रन्थकार ने कथानक का शुभारम्भ किया है, पुनः आगे ८८७ श्लोक संख्या तक पहुँचने पर अयोध्याकाण्ड की समाप्ति का उल्लेख है। इस प्रकार कवि ने बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड को संयुक्त रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जिसमें न तो कहीं बालकाण्ड की समाप्ति का उल्लेख है और न ही अयोध्याकाण्ड के प्रारम्भ का ही। इसी प्रकार जहाँ अन्य रामकथा ग्रंथों में अरण्य से संबंधित घटनाओं को अरण्यकाण्ड के नाम से सम्बोधित किया गया है, वहीं रामायण-मञ्जरी में इससे संबंधित ११५८ श्लोकों में वर्णित कथावस्तु को अरण्यपर्व से संबोधित किया गया है। तदनन्तर २१४ श्लोकों में किष्किन्धा पर्व तथा ५७३ श्लोकों में किष्किन्धाकाण्ड की कथावस्तु वर्णित है। पुनः सुन्दरकाण्ड ७०५ श्लोक, युद्धकाण्ड १२८८ श्लोक तथा उत्तरकाण्ड १२६३ श्लोकों में सम्पूर्ण कथावस्तु का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। यहाँ ध्यातव्य है कि युद्धकाण्ड की समाप्ति के बाद तथा उत्तरकाण्ड के प्रारम्भ के पूर्व अन्तःपुर प्रलापः, रावणसत्क्रिया, विभीषणाभिषेकः, वह्निप्रवेशः, महापुरुषस्तवः लोकपालदर्शनम्, पुनराख्यायिकम्, भरतानन्दः, भरतसमागमः एवं रामाभिषेकः शीर्षकों के अन्तर्गत इन घटनाओं का उल्लेख है किया गया है। इन्हें किसी काण्ड के अन्तर्गत नहीं रखा गया है, जैसा कि अन्य रामकथा ग्रन्थों में यह युद्धकाण्ड अथवा उत्तरकाण्ड में ही पाया जाता है। अन्त में उत्तरकाण्ड की समाप्ति के पश्चात् ग्रन्थकार ने ८ श्लोकों के अन्तर्गत राम एवं बाल्मीकि की वन्दना तथा स्ववंशादि परिचय के साथ महाकाव्य की परिसमाप्ति किया है।

इसी ६४०० श्लोकों में संगुम्फित रामायणमञ्जरी का साहित्यिक अनुशीलन प्रस्तुत ग्रंथ में यथासाध्य किया गया है। प्रारम्भ में स्वस्तिवाचिक, प्राक्कथन एवं विषयानुक्रमाणिका आदि सामान्य परिचय के पश्चात् सम्पूर्ण ग्रन्थ को छः अध्यायों में विभक्त किया गया है, जिसका सविस्तार विवरण ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है। इसमें भी विषय-प्रवेश सम्बन्धी प्रथम अध्याय में रामकथा की प्राचीनता एवं व्यापकता (उद्भव

एवं विकास) पर एक विहङ्गम दृष्टि डाली गयी है। कवि-परिचय से संबंधित क्षेमेन्द्र का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व नामक द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत रामायणमञ्जरी के कर्ता महाकवि क्षेमेन्द्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का सम्यक् परिचय प्रस्तुत किया गया है। रामायणमञ्जरी: प्रतिपाद्य समीक्षा नामक तृतीय अध्याय के अन्तर्गत रामायण मञ्जरी की कथावस्तु के विभिन्न पक्षों पर विचार किया गया है। पुनः रामायणमञ्जरी के पूर्ववर्ती रामकथा साहित्य अथवा मूलस्रोतों से उसका तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। पात्र समीक्षा नामक चतुर्थ अध्याय में रामायणमञ्जरी के विभिन्न पुरुष एवं स्त्री पात्रों का समीक्षात्मक परिचय प्रस्तुत किया गया है। काव्यशास्त्रीय विवेचन नामक पञ्चम अध्याय के अन्तर्गत रामायणमञ्जरी में रस, छन्द, अलङ्कार एवं प्रकृति का वर्णन है। लोक चित्रण नामक छठें एवं अन्तिम अध्याय के अन्तर्गत रामायणमञ्जरी में वर्णित विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, एवं राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण है तथा अंत में उपसंहार है।

विश्वविद्यालयीय शिक्षा के प्रारंभ में ही प्रारब्धवशात् सरस्वती के वरदपुत्र, पूज्यपाद गुरुवर्य अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्र जी का सान्निध्य प्राप्त हो गया। तब से निरन्तर उनके ज्ञानपुञ्ज से निःसृत रश्मियों से अपनी मेधा को परिष्कृत करता हुआ, उनके ही पवित्र ज्ञानदान से संस्कृत भाषा में थोड़ी बहुत योग्यता अर्जित कर सका। अंततः उसी स्नेहिल छाया में पल्लवित एवं पुष्पित होता हुआ, महनीय गुरुकृपा से ही देवभाषा संस्कृत का शोधस्तरीय गहन अध्ययन भी कर सका। आज जबकि यह शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो रहा है, उन महामना के प्रति किन शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापित करूँ, किन भावों में श्रद्धासुमन अर्पित करूँ? भावातिरेक में शब्दों एवं भावों की अभिव्यक्ति अवरुद्ध-सी प्रतीत होती है। तथापि उनके आशीर्वाद एवं असीम स्नेह का स्मरण कर धन्य हूँ।

जिन महामहिम के पवित्र ज्ञानदान एवं पुत्रवत् वात्सल्य ने मेरे इस कार्य के निर्बाध सम्पादन में उत्प्रेरक का कार्य किया तथा जिनके वचनामृत एवं सद्गुणों के परिपाक का यत्किञ्चिद् आस्वाद करते हुए मैंने जीवन के विविध क्षेत्रों में थोड़ी बहुत योग्यता अर्जित की, उन पूज्यपाद गुरुवर्य प्रो० सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव जी (अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद) के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के सम्मान्य प्रो० सुरेश चन्द्र पाण्डेय जी, अन्य गुरुजन, तथा शुभेच्छुओं एवं सहयोगियों के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिनको सद्भावना एवं सत्प्रेरणा से यह गुरुतर कार्य सम्पन्न हो सका।

इस लोक में मातृऋण एवं पितृऋण से कोई भी मुक्त न हो सका तो मैं अधम इससे किस प्रकार से मुक्त होने के विषय में सोच सकता हूँ? क्योंकि जिस स्वर्गादपि

गरीयसी ममतामयी मां श्रीमती सावित्री देवी तथा जिस महनीय पितृचरण पं० श्री वंशराज दुबे के स्नेहसिक्त वात्सल्य में जन्म से लेकर अद्यावधि मैं पालित-पोषित हुआ तथा जिन्होंने अपने सम्पूर्ण सुखों का परित्याग करके मेरी ही खुशी में अपनी सारी खुशियों का स्वप्न सँजोए हुए अध्ययन के प्रति सदा ममत्त्वपूर्ण प्रेरणाएँ दी हैं, 'मैं इनके प्रति आभारी अथवा कृतज्ञ हूँ' ऐसा कहना उनके महिमामय सम्मान को अल्पीकृत करना होगा। किंवा, जिस पूजनीया मां तथा पूज्यपाद पिताजी ने अत्यन्त परेशानियों के बावजूद भी मेरे इस ज्ञानयज्ञ के निर्विघ्न सम्पादन हेतु अहर्निश मनसा वाचा कर्मणा तत्पर रहे तथा यथावसर संबल एवं साहस का ही संचार करते रहे, उनसे इस जन्म क्या ! किसी भी जन्म में ऋणमुक्त नहीं हो सकता।

माता, पिता एवं आचार्य के अतिरिक्त संस्कृत जगत के कतिपय उन मूर्धन्य विद्वानों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करना भला मैं कैसे भूल सकता हूँ जिनकी सतत् प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से यह ग्रंथ प्रकाशित होकर सुधी समाज के समक्ष प्रस्तुत हो रहा है। इन लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों में सर्व श्री प्रो० आद्या प्रासाद मिश्र, भू० पू० कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद, प्रो० अमरनाथ पाण्डेय, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, काशी विद्यापीठ वाराणसी, प्रो० वाचस्पति उपाध्याय, दिल्लो विश्वविद्यालय दिल्ली, प्रो० राममूर्ति शर्मा चण्डीगढ़ विश्वविद्यालय, प्रो० अरुणोदय नटवर लाल जानी, बड़ौदा विश्वविद्यालय, प्रो० हरिनारायण दीक्षित, कुमायूँ विश्वविद्यालय नैनीताल, एवं प्रो० श्री नारायण मिश्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी आदि हैं, जिनके सौहार्द्रपूर्ण योगदान की इस कार्य में अहं भूमिका है। प्रस्तुत कृति में आचार्य क्षेमेन्द्र के अतिरिक्त भी अनेक विद्वानों के ग्रन्थों का यथेष्ट अनुशीलन एवं अनुसरण किया गया है। इन परोक्ष-अपरोक्ष मनीषियों के प्रति भी मैं ऋणी एवं कृतज्ञ हूँ। प्रकाशन के क्षेत्र में प्रथम अनुभव होने के कारण ग्रन्थ में कुछ त्रुटियाँ एवं कमियाँ होना स्वाभाविक है जिसका परिमार्जन अगले संस्करण में करने का प्रयास किया जायेगा।

रामकथा की व्यापकता, विपुलता एवं बहुरूपता को देखते हुई मेरा यह ग्रन्थ अत्यल्प एवं अत्यन्त न्यून प्रतीत होता है तथापि मेरी इस सारस्वत समर्चना से संस्कृत जगत् को यदि कुछ भी परितोष मिलता है तो इसे मैं अपने जीवन की सबसे बड़ी सफलता मानूंगा। अंत में 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये' के अनुसार जिन कृपालु राम की कृपाकटाक्ष से यह कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हुआ, उनसे सम्बन्धित यह कृति उन्हीं को समर्पित। इसमें जो कुछ भी बन पड़ा वह उनकी कृपा का प्रसाद है तथा जो कमियाँ हैं वह मेरी बालकोचित बुद्धि का फल मानकर विद्वत्समुदाय क्षमा करने का प्रयास करेगा।

विनयावनत

कार्तिक पूर्णिमा, १९९१

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

योगेश चन्द्र दुबे

विषयानुक्रमणिका

स्वस्तिवाचिक १–४

प्राक्कथन ५–८

विषयानुक्रमणिका ६–११

प्रथम अध्याय—रामकथा का उद्भव एवं विकास १–४५

रामकथा का भारतीय वाङ्मय में स्थान एवं प्राचीनता।

वैदिक वाङ्मय में रामकथा का उल्लेख।

बौद्ध एवं जैन वाङ्मय में रामकथा का विकृत स्वरूप।

संस्कृत धार्मिक साहित्य में रामकथा—पुराण एवं रामायण ग्रन्थों में रामकथा का उल्लेख।

संस्कृत ललित साहित्य में रामकथा—महाकाव्य, नाटक, चम्पू एवं कथा साहित्य में रामकथा का उल्लेख।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा—तमिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़, उड़िया, काश्मीरी, असमीया, बंगला, हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू एवं फारसी साहित्य में रामकथा का उल्लेख।

रामकथा की व्यापकता एवं विदेशों में रामकथा।

आचार्य क्षेमेन्द्र एवं तत्प्रणीत रामायणमञ्जरी का रामकथा वाङ्मय में स्थान।

द्वितीय अध्याय—क्षेमेन्द्र का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व ४६–७७

आचार्य क्षेमेन्द्र की जन्म भूमि।

अन्तः एवं बहिः साक्ष्यों के आधार पर क्षेमेन्द्र का काल निर्णय।

क्षेमेन्द्र का वंश-वृक्ष—प्रारंभिक जीवन एवं शिक्षा।

क्षेमेन्द्र का कर्तृत्व—महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का क्रमिक परिचय।

क्षेमेन्द्र का व्यक्तित्व—वैयक्तिक सद्गुणों एवं सहृदयता का परिचय।

तृतीय अध्याय—रामायणमञ्जरी : प्रतिपाद्य समीक्षा ७८–१४९

रामायणमञ्जरी की कथानक व्यवस्था—काण्ड संख्या, नाम एवं श्लोक संख्या ।

रामकथा का आदि विन्दु एवं समाप्ति विन्दु ।

कथानक व्यवस्था सम्बन्धी क्षेमेन्द्र की मौलिकता ।

रामायणमञ्जरी की आधिकारिक, पताका एवं प्रकरी कथाएँ ।

रामायणमञ्जरी के मूलस्रोतों का संक्षिप्त परिचय—मूलस्रोतों से रामायणमञ्जरी के कथानक का तुलनात्मक अध्ययन, साम्य एवं वैषम्य ।

रामकथा विषयक क्षेमेन्द्र की मौलिकताओं का विवेचन ।

चतुर्थ अध्याय—पात्र समीक्षा १५०–२२९

रामायणमञ्जरी का नायक—नायक के गुणों की समीक्षा, राम का चरित्र-चित्रण ।

भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न का चरित्र-चित्रण ।

सहनायक सुग्रीव, खलनायक रावण, हनुमान, विभीषण, अंगद, दशरथ एवं जनक आदि पुरुष पात्रों का चरित्र-चित्रण ।

रामायणमञ्जरी की नायिका—नायिका का स्वरूप, नायिकालङ्कारों का विवेचन, नायिका सीता का चरित्र-चित्रण ।

सहनायिका तारा, कौशल्या, कैकेयी, शबरी, मन्थरा, शूर्पणखा तथा मन्दोदरी आदि विविध नारी पात्रों की चरित्र समीक्षा ।

पञ्चम अध्याय—काव्यशास्त्रीय विवेचन २३०–२८२

रस का शास्त्रीय एवं व्यावहारिक स्वरूप—विभाव, अनुभाव सात्विक भाव एवं व्यभिचारिभावों का विवेचन ।

रामायणमञ्जरी में भावों का विवेचन—भाव, भावाभास, रसाभास, भावसन्धि एवं भवशबलता का उल्लेख ।

रामायणमञ्जरी में वर्णित विभिन्न रस—शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत एवं शान्त आदि की सोदाहरण व्याख्या ।

रामायणमञ्जरी में प्रयुक्त छन्दों की समीक्षा ।

रामायणमञ्जरी में अलङ्कार विवेचन ।

रामायणमञ्जरी में प्रकृति चित्रण ।

षष्ठ अध्याय—लोक चित्रण २८३–३३०

रामायणमञ्जरी में वर्णित विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण-सांस्कृतिक परिस्थिति—वर्णव्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, पारिवारिक संस्कृति, संस्कार, यज्ञ आदि का उल्लेख ।

रामायणमञ्जरी में ललित कलाओं का चित्रण—वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला एवं संगीत कला का विवेचन ।

सामाजिक परिस्थिति—रामायणमञ्जरी में जाति व्यवस्था, वैवाहिक स्वरूप, नारी का स्वरूप, शिक्षा का स्वरूप आदि ।

रामायणमञ्जरी में धार्मिक परिस्थिति ।

राजनीतिक परिस्थिति—राजा का स्वरूप (अधिकार एवं कर्तव्य), मन्त्रिमण्डल, विधि, न्याय व्यवस्था, सैन्य संगठन एवं युद्ध प्रणाली आदि ।

उपसंहार ३३१–३३२

सहायक ग्रन्थ-सूची ३३३–३३६

संस्कृत ग्रन्थ

हिन्दी ग्रन्थ

अंग्रेजी ग्रन्थ

संकेताक्षर

अथ० वे०	—	अथर्ववेद
अध्या० रा०	—	अध्यात्मरामायण
अयो० कां०	—	अयोध्या काण्ड
अ० कां०	—	अरण्य काण्ड
अ० क० ल०	—	अवदानकल्पलता
अ० प०	—	अरण्य पर्व
आन० रा०	—	आनन्द रामायण
औ० वि० च०	—	औचित्यविचारचर्चा
उ० कां०	—	उत्तर काण्ड
कवि० कं० भ०	—	कविकण्ठाभरण
का० मी०	—	काव्यमीमांसा
का० प्र०	—	काव्यप्रकाश
कि० कि० कां०	—	किष्किन्धा काण्ड
कि० कि० प०	—	किष्किन्धा पर्व
के० एस०	—	क्षेमेन्द्र स्टडीज
दशा० च०	—	दशावतारचरित
ध्व० लो०	—	ध्वन्यालोक
ना० शा०	—	नाट्यशास्त्र
पु०	—	पुराण
बा० कां०	—	बालकाण्ड
यु० कां०	—	युद्ध काण्ड
रामा० मं०	—	रामायणमञ्जरी
बाल्मी० रा०	—	बाल्मीकि रामायण
बृ० क० मं०	—	बृहत्कथामञ्जरी
वृत्त० रा०	—	वृत्तरत्नाकर
सु० ति०	—	सुवृत्ततिलक
सु० काँ०	—	सुन्दर काण्ड
सा० द०	—	साहित्यदर्पण
क्षे० ल० का० सं०	—	क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसंग्रहः

अध्याय 1

रामकथा का उद्भव एवं विकास

वैदिक वाङ्मय में रामकथा[1]

आदि कवि के लेखनी की स्वतःस्फूर्त सर्जना के रूप में जो रामकथा आज तक जनमानस को आह्लादित कर रस-चर्वणा कराती आ रही है, उसका उल्लेख इससे पूर्व कहीं भी संक्षिप्त अथवा पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर नहीं होता। हाँ, इस रामकथा के विभिन्न पात्रों का उल्लेख वैदिक संहिताओं एवं वेदाङ्गों में इतस्ततः देखने को अवश्य मिलता है। ध्यातव्य है कि यहाँ रामकथा के पात्रों से तात्पर्य रामायण की आधिकारिक कथा से सीधा सम्बन्ध रखने वाले पात्रों से है। विश्वामित्र, अगस्त्य, वशिष्ठ और भरद्वाज ऋग्वेद के ऋषि हैं तथा बालकाण्ड और उत्तर काण्ड की विविध अन्तर्कथाओं के पात्रों के नाम वैदिक संहिताओं में सुलभ हैं। उनका इस स्थल पर उल्लेख नहीं किया जाएगा।

प्रायः सभी रामकथाओं में राम को इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न बताया गया है। रामायणमञ्जरी में भी कई स्थलों पर राम और दशरथ के लिए 'इक्ष्वाकु नन्दन' शब्द का प्रयोग हुआ है। इस 'इक्ष्वाकु' शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में केवल एक स्थल पर देखने को मिलता है, लेकिन जिस सूक्त में यह इक्ष्वाकु शब्द प्रयुक्त हुआ है उससे केवल इतना ही सूचित होता है कि इक्ष्वाकु नाम का कोई एक राजा था—"जिसकी सेवा में धनवान और प्रतापवान इक्ष्वाकु की वृद्धि होती है"[2]—**यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान मराय्येधते।** (यस्य इक्ष्वाकुः उपव्रते रेवान् मरायी एधते।) इसी प्रकार अथर्ववेद के एक मन्त्र में ज्वर से छुटकारा पाने के लिए कुष्ठ पौधे से प्रार्थना करते समय भी 'इक्ष्वाकु' शब्द का प्रयोग मिलता है। इसके अन्तर्गत यह वाक्य उल्लिखित है—"तू जिसको इक्ष्वाकु पूर्व काल में जानता था[3]—**त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं॥**

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद के उपर्युक्त स्थलों से केवल इतना ही सूचित होता है कि इक्ष्वाकु एक प्राचीन वीर एवं राजा थे, किन्तु इन स्थलों से इक्ष्वाकु शब्द का रामकथा से कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं पड़ता है।

---

१. वैदिक वाङ्मय में रामकथा हेतु विशेष द्रष्टव्य—रामकथा—बुल्के पृ० सं० (१–२४)

२. ऋग्वेद १०।६०।४

३. अथ० वे० १६।३६।६

वैदिक साहित्य में ऋग्वेद के एक स्थल से दशरथ का उल्लेख एक योद्धा राजा के रूप में मिलता है। "दशरथ के चालीस भूरे रङ्ग के घोड़े, एक हजार घोड़ों के दल का नेतृत्व कर रहे थे"[१]---चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति। इस स्थल के अतिरिक्त दशरथ का नाम अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। ऋग्वेद में वर्णित इस दशरथ का इक्ष्वाकु से सम्बन्ध रखने वाले स्थलों से किसी सम्बन्ध का कोई परिचय नहीं मिलता।

वैदिक साहित्य में 'राम' नामक अनेक व्यक्तियों का परिचय प्राप्त होता है। ऋग्वेद में एक स्थल पर अन्य प्रतापी यजमानों के साथ राम का नाम प्रयुक्त होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि वह कोई राजा था।[२]

'ऐतरेय ब्राह्मण'[३] में एक 'राम मार्गवेय' का उल्लेख मिलता है जो ब्राह्मण हैं। 'शतपथ ब्राह्मण'[४] में एक 'राम औपतस्विनि' का उल्लेख मिलता है जो आचार्य हैं। इसी प्रकार 'जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण'[५] में एक 'राम क्रातुजेय' का भी उल्लेख प्राप्त होता है, तथा वे भी आचार्य हैं।

वैदिक साहित्य में 'सीता' शब्द का प्रयोग साधारणतः 'हल से बनी हुई रेखा के लिए' हुआ है। केवल 'कल्प सूत्रों, को छोड़कर सीता शब्द का अनेकशः उल्लेख प्राप्त होता है। वैदिक साहित्य में दो भिन्न-भिन्न सीताओं की सूचना प्राप्त होती है। इनमें से पहली सीता 'कृषि की अधिष्ठात्री देवी'' हैं जिसका वर्णन ऋग्वेद से लेकर सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर मिलता है। दूसरी सीता का परिचय 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' से प्राप्त होता है जहाँ सीता सावित्री तथा सूर्य की पुत्री से सम्बन्धित उपाख्यान मिलते हैं। प्रथम प्रकार की सीता में दैवीकरण की प्रवृत्ति केवल कृषि की अधिष्ठात्री देवी के अर्थ में ही प्रकट है। दूसरी सीता जो सूर्य की पुत्री हैं उनके साथ भी रामायण की ज्ञात कथा का कोई प्रसङ्ग नहीं आया है।

रामकथा के कुछ अन्य पात्रों के नाम भी वैदिक साहित्य में मिलते हैं। 'शतपथ ब्राह्मण[६] और 'छान्दोग्य उपनिषद्'[७] में अश्वपति कैकय से सम्बन्धित एक प्रसङ्ग मिलता है। इन दोनों ग्रन्थों में अश्वपति से सम्बन्धित प्रसङ्ग एक समान है।

---

१. ऋग्वेद १।१२६।६,
२. वही १०।९३।१४
३. ऐतरेय ब्राह्मण ७।२७।२४
४. शतपथ ब्राह्मण ४।६।१।७
५. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ३।७।३।२ व ४।९।१।१
६. शतपथ ब्राह्मण १०।६।१।२
७. छान्दोग्य उपनिषद् ५।११।४

इसी प्रकार 'जनक' का सर्वप्रथम उल्लेख "कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय ब्राह्मण"[१] में प्राप्त होता है। इसमें एक आख्यान मिलता है जिसके अनुसार जनक 'वैदेह देवताओं' से मिलते हैं। आगे चलकर 'शतपथ ब्राह्मण[२] में जनक वैदेह का चार भिन्न प्रसङ्गों में उल्लेख हुआ है। 'बृहदारण्यकोपनिषद्'[३] में जनक और याज्ञवल्क्य के सम्बन्ध में एक और विस्तृत वृत्तान्त मिलता है जिसमें जनक याज्ञवल्क्य से पारलौकिक विषयों पर शिक्षा प्राप्त करते हैं। 'बृहदारण्यकोपनिषद्'[४] में दो अन्य स्थलों पर भी जनक का उल्लेख हुआ है। एक स्थल पर जनक गायत्री के विषय में बुडिल आश्वतराश्वि से कुछ कहते हैं। दूसरे स्थल में गार्ग्य बालाकि और अजातशत्रु का वार्तालाप दिया गया है।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि रामायण के अन्य पात्रों की अपेक्षा 'जनक वैदेह' का वैदिक साहित्य में कहीं अधिक उल्लेख मिलता है। यद्यपि अर्वाचीन रामकथा साहित्य में वैदिक जनक तथा रामायण के जनक अभिन्न माने जाने लगे हैं किन्तु दोनों की अभिन्नता सिद्ध करने के लिए पुष्ट प्रमाणों का अभाव है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यद्यपि वैदिक साहित्य में रामकथा के पात्रों के नाम सुलभ हैं किन्तु रामकथा कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। इसलिए प्रायः विद्वानों का मत है कि वैदिक ऋषियों को रामकथा अज्ञात थी। यद्यपि किसी वस्तु की अनुपस्थिति उसके अनस्तित्व का प्रमाण नहीं हो सकती किन्तु ऐसा अनुमान करना कदाचित् अनुचित नहीं होगा कि यदि वैदिक ऋषियों को राम और भरत के अतुलनीय उदार चरित्रों का परिचय होता तो वे अवश्य इनका उल्लेख कहीं न कहीं करते।

बौद्ध एवं जैन वाङ्मय में रामकथा[५]

रामकथा का विकृत स्वरूप

चिरकाल से देश-विदेश में प्रचलित रामकथा की आधार-शिला प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से महर्षि वाल्मीकिकृत रामकथा ही रही है। इसी को आधार मानकर विभिन्न कवियों तथा ग्रन्थकारों ने समय-समय पर देश, काल, धर्म एवं मौलिकता के आधार पर रामकथा को एक नवीन साँचे में ढालने का सतत् प्रयत्न किया है। परन्तु उनकी इस मौलिकता में वाल्मीकीय रामकथा की मर्यादा का हनन नहीं हुआ है। उन्होंने

१. कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१०।९

२. शतपथ ब्राह्मण ११।३।१।२-४, वही ११।६।२।१-१०, वही ११।४।३।२०, वही ११।६।३।१

३. बृहदारण्यकोपनिषद् ४।१।१ से ४।४।७, ४. वही ५।१४।८ व २।१।१

५. 'बौद्ध एवं जैन वाङ्मय में रामकथा' के विस्तार हेतु—रामकथा-बुल्के—पृ० सं० (५६–१०१)

तो मात्र कथा को रोचक एवं सर्वजनग्राह्य बनाने के उद्देश्य से ही मौलिकता का समावेश अपने ग्रन्थों में किया है। परन्तु इस परम्परा से ठीक विपरीत बौद्ध एवं जैन वाङ्मय की रामकथा में बहुत परिवर्तन के साथ वाल्मीकीय रामकथा से अलग उसका एक विकृत स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है। यदि वाल्मीकीय रामकथा के परिप्रेक्ष्य में बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों में वर्णित रामकथा का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाय तो इसके अमर्यादित एवं विकृत स्वरूप का स्पष्ट परिज्ञान होता है। सम्प्रति बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों के आलोक में उस युग की रामकथा के विकृत स्वरूप पर प्रकाश डालने का उद्योग किया जा रहा है।

सर्वप्रथम बौद्ध वाङ्मय के अन्तर्गत 'दशरथ जातक', 'अनामाकंजातकम्' तथा 'दशरथ कथानम्' ग्रन्थों में क्रमशः रामकथा की विकृति का अवलोकन करते हैं—

दशरथ जातक में सीता, राम तथा लक्खन तीनों राजा दशरथ के ज्येष्ठा महिषी की सन्तानें हैं। तीनों पिता की आज्ञा से वन चले जाते हैं तथा अवधि पूर्ण होने पर तीनों राजधानी वापस आते हैं। राम अपनी बहन सीता से विवाह करके धर्मपूर्वक राज्य करने लगे।

दशरथ जातक के उपर्युक्त प्रसङ्ग की सबसे बड़ी विकृति है कि राजा दशरथ की सन्तानें राम और सीता जो एक सहोदर भाई-बहन के रूप में थे बाद में पति-पत्नी हो गये। प्रायः लोक व्यवहार में ऐसी घृणित परम्परा के उदाहरण तो दुर्लभ ही हैं, पुनः वाल्मीकिरामायण तथा अन्य रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थ जो भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं तथा जिसमें राम और सीता के उज्ज्वल एवं पावन चरित्र के उन्नायक तत्वों की भूरि-भूरि प्रशंसा ही वर्णित है, उनमें रामकथा का यह विकृत घृणित एवं अमर्यादित स्वरूप कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है।

दशरथ जातक के इस प्रसङ्ग की जितनी भी आलोचना की जाय वह कम ही है क्योंकि इसके अनुसार राम अपनी बहन सीता से विवाह करके धर्मपूर्वक राज्य करने लगे। ध्यातव्य है कि कोई भाई अपनी सहोदर बहन से विवाह करके सारे धर्मों का विनाश तो वहीं कर देता है पुनः उसका कौन सा धर्म शेष रह गया है जिसके सहारे वह धर्मपूर्वक जीवन-यापन करेगा।

दशरथ जातक की अन्य विकृतियों के अन्तर्गत-राजा दशरथ के वाराणसी में राज्य करने का उल्लेख, ज्येष्ठा रानी की तीन सन्तानें सीता, राम एवं लक्खन का वर्णन ज्येष्ठा रानी की मृत्योपरान्त अन्य रानी से विवाह तथा उससे भरत कुमार की उत्पत्ति एवं राम के १६००० वर्ष शासन करने के उपरान्त स्वर्ग जाने का उल्लेख आदि घटनाएँ तथ्य विहीन एवं विकृत कपोलकल्पना लगती हैं। जिसमें परम्परागत रामकथा की मर्यादा का अतिक्रमण एवं हनन ही सुलभ है।

दशरथ जातक का एक उल्लेखनीय प्रसङ्ग और भी है जिसमें भरत जब राम की तृणपादुका लाकर शासन करने लगते हैं, उस समय राज्य में अन्याय होने पर वे दोनों तृणपादुकाएँ आपस में आघात करने लगती थी। पुनः उचित न्याय होने पर दोनों शान्त हो जाती थी। प्रायः किसी भी रामकथा ग्रंथ में न तो राम की तृणनिर्मित पादुका का ही उल्लेख है और न ही उनकी पादुकाओं के विषय में इस तरह की कपोलकल्पित वचकानी एवं उपहासपूर्ण कथा ही सुलभ है।

रामकथा से सम्बन्धित बौद्धों के एक दूसरे ग्रन्थ 'अनामकं जातकम्' में वाल्मीकीय रामकथा से अलग जो एक विकृत स्वरूप देखने को मिलता है वह संक्षिप्ततः इस प्रकार है—इस जातक की सबसे बड़ी विकृति यह है कि इसमें रामकथा से सम्बन्धित किसी भी पात्र के नाम का उल्लेख नहीं है। हाँ, अप्रत्यक्ष रूप से राम-सीता वनवास, सीताहरण, जटायु वृतान्त, बालि-सुग्रीव युद्ध, सेतु-बन्ध, सीता की अग्नि परीक्षा आदि प्रमुख घटनाओं का अवश्य ही उल्लेख मिलता है। दूसरी महत्वपूर्ण विकृति यह है कि राम को विमाता के कारण पिता द्वारा वनवास नहीं दिया जाता, अपितु वे अपने मामा के आक्रमण की तैयारियाँ सुनकर स्वेच्छा से राज्य छोड़कर वन चले जाते हैं। प्रायः किसी भी रामकथा में राम वनवास का ऐसा कारण उल्लिखित नहीं है। इस जातक में जिसे हम रामकथा के आधार पर बालि नाम से सम्बोधित करते हैं वह सुग्रीव (बड़े बन्दर) का भाई नहीं चाचा है। प्रायः सभी रामकथाओं में बालि और सुग्रीव सहोदर भ्राता के रूप में दिखाई पड़ते हैं। इसमें एक रोचक घटना यह भी है कि इन्द्र एक छोटे बन्दर का रूप धारण करके बोधिसत्त्व (राम) की सहायता करते हैं तथा नाग (रावण) को मार कर रानी को वापस ले आते हैं।

बौद्धों में प्रचलित रामकथा के तीसरे ग्रन्थ 'दशरथ कथानम्' में सीता या किसी भी राजकुमारी का उल्लेख नहीं मिलता। प्राचीन काल से आज तक प्रायः जितने भी रामकथा विषयक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। सब में सीता का अवश्य ही उल्लेख है। पुनः सीता जो रामकथा की नायिका के रूप में प्रसिद्ध हैं तथा जिसके बिना रामकथा वास्तव में रामकथा नहीं मानी जा सकती, उसी सीता से विहीन इस ग्रन्थ में रामकथा की अन्य घटनाएँ भी सुलभ हैं। यह कमी इस ग्रन्थ की ही नहीं अपितु बौद्ध वाङ्मय और इस युग की रामकथा के विकृत स्वरूप का स्पष्ट प्रमाण है। इस ग्रन्थ में सीता के न रहने से उनसे सम्बन्धित सभी—सीता हरण, सीता स्वयम्वर, जनक वृत्तान्त, राम-रावण तथा बालि युद्धादि घटनाओं का अभाव भी है।

इनके अतिरिक्त कालान्तर में जो भी बौद्ध ग्रन्थ उपलब्ध हुए उनमें रामकथा का ही अभाव है।

बौद्ध वाङ्मय में रामकथा के विकृत स्वरूप के अध्ययनोपरान्त जैन-ग्रन्थों में वर्णित रामकथा पर विचार करना अत्यावश्यक जान पड़ता है। सर्वप्रथम विमलसूरि की रचना 'पउमचरियं' का अध्ययन करने के फलस्वरूप यह प्रतीत होता है कि विमलसूरि ने इस ग्रन्थ के कथानक में कोई आमूल परिवर्तन नहीं किया है अपितु वाल्मीकीय रामकथा और इसमें बहुत अधिक साम्यता है। परन्तु फिर भी इस ग्रन्थ की कुछ घटनाएं इतनी विचित्र एवं अमर्यादित हैं कि वे इस युग तथा जैन वाङ्मय में वर्णित रामकथा के विकृत स्वरूप का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। इस स्थल पर संक्षिप्ततः उनका विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है—

रावण-बालि सङ्घर्ष के वृत्तान्त में रावण बालि के पास दूत भेजकर उसकी बहन श्रीप्रभा को पत्नी स्वरूप माँगता है तथा बालि को आकर प्रणाम करने का आदेश देता है। बालि ऐसा न करके अपने भाई सुग्रीव को राज्य सौंप कर जैन दीक्षा ले लेता है। पुनः सुग्रीव रावण को प्रणाम कर बहन श्रीप्रभा का रावण के साथ विवाह कर देता है। रावण-बालि सङ्घर्ष का यह वृत्तान्त सर्वथा मौलिक एवं विकृत है।

इसी प्रकार खर-दूषण से रावण की बहन चन्द्रनखा (शूर्पनखा) के विवाह का उल्लेख तथा चन्द्रनखा की पुत्री अनङ्गकुसुमा एवं पुत्र शम्बूक का उल्लेख भी हास्यास्पद, तारतम्य विहीन तथा विकृत घटनाएँ हैं।

हनुमच्चरित्र के अन्तर्गत हनुमान द्वारा चन्द्रनखा की पुत्री अनङ्गकुसुमा को पत्नी के रूप में स्वीकार करना तथा हनुमान के अन्य विवाहों का उल्लेख भी पाया जाता है। यही नहीं हनुमान लङ्कासुन्दरी को परास्त कर रात भर उसके साथ काम-क्रीड़ा भी करते हैं। प्रायः सभी रामकथाओं में हनुमान का चरित्र जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी एवं काम-दोष रहित के रूप में ही वर्णित है परन्तु पउमचरियं की उपर्युक्त घटना ठीक इसके विपरीत अपने विकृत स्वरूप को ही प्रकट करती है।

राजा जनक की विदेह नामक महारानी से एक पुत्री सीता तथा एक पुत्र भामण्डल की उत्पत्ति का भी उल्लेख इस ग्रन्थ में मिलता है। यह भामण्डल रावण के विरुद्ध युद्ध में राम की तरफ से युद्ध भी करता है। सर्वत्र रामकथाओं में सीता की उत्पत्ति अयोनिजा ही मानी गयी है साथ ही राजा जनक के किसी पुत्र का उल्लेख भी नहीं पाया जाता है।

पउमचरियं के अन्तर्गत कई अवसरों पर लक्ष्मण को कन्याएँ भेंट की जाती हैं। लक्ष्मण सब को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि लौटते समय इन्हें ले जाऊँगा। इस प्रकार वज्रकर्ण ८ कन्याएँ तथा सिंहोदर आदि राजा ३०० कन्याएँ लक्ष्मण को प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त लक्ष्मण वनमाला, रतिमाला तथा जितपद्मा को भी स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार सुग्रीव ने भी राम को अपनी १३ कन्याएँ समर्पित की थी। रावण वध के

पश्चात् राम-लक्ष्मण रावण के महल में ठहरते हैं तथा उन कन्याओं को बुलाने के लिए दूत भेजते हैं, जिनके साथ उनकी मंगनी हो चुकी थी। लङ्का में ही उनके साथ विवाह सम्पन्न हो जाता है। इसके बाद राम और लक्ष्मण के ६ वर्ष तक लङ्का में रहने का उल्लेख प्राप्त होता है। लक्ष्मण की १६००० पत्नियाँ जिसमें विशल्या आदि ८ पटरानियाँ हैं तथा राम की ८००० पत्नियाँ जिसमें सीता, प्रभावती, रतिनिभा तथा श्रीदामा आदि प्रधान हैं का उल्लेख मिलता है।

सीताहरण का कारण भी विमलसूरि ने कुछ भिन्न प्रकार से बताया है किन्तु उसमें चन्द्रनखा के नाक, कान काटने का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है।

सुग्रीव की विपत्ति के सन्दर्भ में जो कथा वर्णित है उसमें साहस-गति ने सुग्रीव का रूप धारण करके उसकी पत्नी और राज्य को छीन लिया था। राम साहस-गति को मारकर उसका राज्य वापस लौटा देते हैं।

रावण सामन्त नामक दूत भेजकर सन्धि का प्रस्ताव करता है। रावण राम को अपने राज्य का एक अंश तथा ३०० कन्याओं को इस शर्त पर देने को तैयार है कि वह सीता को त्याग दें और कुम्भकर्ण, इन्द्रजित तथा मेघवाहन को मुक्त कर दें।

अन्त में लक्ष्मण (नारायण) ही (प्रति नारायण) रावण का वध करते हैं न कि राम। कुम्भकर्ण, इन्द्रजित तथा मेघवाहन आदि जो युद्ध में कैदी थे उन्हें मुक्त कर दिया गया। वे विरक्त होकर तपस्या करने चले गए।

इस प्रकार पउमचरियं में उल्लिखित उपर्युक्त घटनाओं के आलोक में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये घटनाएँ पारम्परिक रामकथा के सर्वथा विरुद्ध, गर्हित, घृणित एवं विकृत हैं।

दूसरे जैन ग्रन्थ गुणभद्र कृत 'उत्तर पुराण' में भी रामकथा का विकृत स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है। इसमें राजा दशरथ वाराणसी के राजा थे जिनके चार पुत्र हैं। राम सुबाला के गर्भ से तथा लक्ष्मण कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न हुए। पुनः बाद में दशरथ अपनी राजधानी साकेतपुर स्थापित कर लेते हैं तो भरत और शत्रुघ्न किसी अन्य रानी के गर्भ से उत्पन्न हुए। दशरथ के पुत्रों की उत्पत्ति का यह प्रसङ्ग पारम्परिक रामकथा से किसी भी प्रकार से मेल नहीं खाता। उनके राजधानी परिवर्तन की यह घटना भी किसी रामकथा ग्रन्थ में सुलभ नहीं है।

राम-लक्ष्मण के विवाह के सन्दर्भ में जो प्रसङ्ग इस ग्रन्थ में उपलब्ध है वह भी इस युग की रामकथा के विकृत स्वरूप का ही परिचय प्रस्तुत करता है। एक यज्ञ की रक्षा के लिए जनक राम और लक्ष्मण को बुलाते हैं। यज्ञ समाप्त होने पर राम-सीता का विवाह होता है। इसके बाद राम ७ अन्य कुमारियों के साथ तथा लक्ष्मण पृथ्वी देवी आदि १६ राज कन्याओं के साथ विवाह करते हैं।

नारद से सीता के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर ही रावण उन्हें हर लाने का सङ्कल्प करता है। किसी अन्य कारण से सीताहरण नहीं होता। इसके बाद दशरथ को सीताहरण का समाचार स्वप्न द्वारा मालूम होता है तथा वे इस समाचार को राम के पास भेजते हैं। इतने में सुग्रीव और हनुमान बालि के विरुद्ध सहायता माँगने के लिए पहुँचते हैं। लक्ष्मण चक्र से रावण का सिर काटते हैं। इसके बाद लक्ष्मण राम के साथ ४२ वर्ष तक दिग्विजय यात्रा करते हैं और अर्द्धचक्रवर्ती बनकर अयोध्या वापस लौटते हैं। अनन्तर दोनों का सम्मिलित अभिषेक सम्पन्न होता है। लक्ष्मण की १६००० और राम की ८००० रानियाँ बताई जाती हैं।

उत्तर पुराण की उपर्युक्त घटनाएँ भी अन्य रामायण ग्रन्थों से सर्वथा भिन्न रूप में दृष्टिगोचर होती हैं, जिसमें पारम्परिक रामकथा की मर्यादा का अतिक्रमण एवं विकृत स्वरूप ही दर्शनीय है।

इस प्रकार बौद्ध एवं जैन वाङ्मय में वर्णित रामकथा सम्बन्धी उपर्युक्त घटनाएँ तत्कालीन रामकथा के विकृत स्वरूप को ही स्पष्ट करती हैं।

संस्कृत धार्मिक साहित्य में रामकथा

(क) पौराणिक साहित्य

पौराणिक साहित्य में रामकथा[1] का स्थान अत्यधिक विस्तृत नहीं है। हरिवंश तथा प्राचीनतम महापुराणों में तो रामकथा का संकेत मात्र ही मिलता है, किन्तु बाद के महापुराणों तथा उपपुराणों में रामकथा विषयक सामग्री में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई।

हरिवंश पुराण—(४०० ई०) इसमें एक संक्षिप्त रामचरित उपलब्ध है, जिसमें रामावतार के उल्लेख के बाद वनवास से लेकर रावण-वध तक, रामकथा की मुख्य घटनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। अनन्तर रामराज्य की प्रसंशा की गई है।

प्रधान महापुराण—डा० हाजरा के अनुसार—मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड, विष्णु, वायु, मत्स्य, भागवत तथा कूर्म पुराण कालक्रमानुसार प्राचीनतम महापुराण हैं। इनमें भी मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य पुराण में रामचरित का वर्णन नहीं पाया जाता।

विष्णु पुराण—(चौथी श० ई०) में रामकथा का अत्यंत संक्षिप्त रूप मिलता है।

वायु पुराण—(५वीं श० ई०) में उपलब्ध रामकथा विष्णु पुराण से ही साम्य रखती है।

---

१. पौराणिक साहित्य में रामकथा के विस्तार हेतु तत्सम्बन्धी पुराण एवं रामकथा—बुल्के (१४७–१६५)

भागवत पुराण—(छठवीं अथवा ९वीं श० ई०) में सीता सर्वप्रथम पौराणिक साहित्य में लक्ष्मी का अवतार मानी गयी हैं।

कूर्म पुराण—(७वीं श०ई०) में उपलब्ध रामकथा दो विभागों (पूर्व एवं उत्तर) में वर्णित है।

३. गौण महापुराण—उपर्युक्त प्रधान महापुराणों के अतिरिक्त कुछ गौण महापुराण भी हैं जिनमें रामकथा सम्बन्धी कुछ सामग्री उपलब्ध होती है।

वाराह पुराण—(८०० ई०) में पूर्णरूपेण रामकथा नहीं प्राप्त होती अपितु एक-दो स्थलों पर इसका संकेत मात्र मिलता है।

अग्नि पुराण—(८०० ई०) की रामकथा वाल्मीकीय रामकथा के सात काण्डों का संक्षेप है।

लिङ्ग पुराण—(१०वीं श० के पूर्व) इक्ष्वाकु वंश वर्णन के अन्तर्गत अत्यन्त संक्षिप्त रामचरित मिलता है।

वामन पुराण—इस अर्वाचीन पुराण (३७, ८–१२) में वेदवती तीर्थ के प्रसङ्ग में रावण द्वारा अपमानित वेदवती की सीता के रूप में उत्पत्ति का उल्लेख है।

नारदीय पुराण—(१०वीं श० ई०) के पूर्व खण्ड में एक संक्षिप्त रामचरित के बाद उत्तर खण्ड में बालकाण्ड से उत्तर काण्ड तक समस्त वाल्मीकि रामायण की संक्षिप्त रामकथा वर्णित है।

ब्रह्म पुराण—(१०वीं श०) के २१३वें अध्याय में वर्णित रामकथा हरिवंश के ४१वें अध्याय से उद्धृत है। १७६वें अध्याय के अन्तर्गत रावण की तपस्या के वर्णन के बाद एक संक्षिप्त रामकथा भी पाई जाती है। ब्रह्म पुराण की शेष रामकथा सम्बन्धी सामग्री गौतमी माहात्म्य (अध्याय ७०-१७५) के अन्तर्गत मिलती है।

गरुण पुराण—(लगभग १०वीं श० ई०) के रामकथा की विशेषता यह है कि इसमें स्वयं शूर्पणखा को विरूप कर देते हैं तथा अयोध्या लौटने के बाद पितृकर्म के लिए गयाशिर जाते हैं।

स्कन्द पुराण—इसका रचना काल अज्ञात है किन्तु इसकी कथा ८वीं शताब्दी के बाद की ही मानी जाती है। इसकी रामकथा माहेश्वर खण्ड तथा प्रभास खण्ड प्रभृति सात खण्डों में विभक्त है जिसमें २७८ अध्याय हैं।

पद्म पुराण—के खण्डों का अलग-अलग रचना काल माना जाता है। पाताल खण्ड (१२वीं श०) के २८ अध्यायों में बहुत सी रामकथा सम्बन्धी सामग्री मिलती है। उत्तर खण्ड (१५वीं श०) में रामचरित का पूरा वर्णन किया गया है। सृष्टि खण्ड में

विस्तृत रामचरित न प्राप्त होकर केवल उससे सम्बन्धित कुछ प्रसङ्गों का ही वर्णन मिलता है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण—की रचना सम्भवतः ७वीं श० के पूर्व हुई थी किन्तु उसका वर्तमान रूप १६वीं श० का है। इसके प्रकृति खण्ड एवं कृष्ण जन्म खण्ड में संक्षिप्त रामचरित सुलभ है।

४. उपपुराण—विष्णुधर्मोत्तर पुराण (५वीं श०) में रामकथा से सम्बन्धित कुछ प्रसङ्गों का ही वर्णन है।

नृसिंह पुराण—(४००–५०० ई०) के ६ अध्याओं में रामायण के ६ काण्डों की कथा किञ्चित् परिवर्तन सहित संक्षिप्त रूप में मिलती है।

वह्नि पुराण—में बालकाण्ड से लेकर युद्ध काण्ड तक सम्पूर्ण रामायण की कथा वर्णित है।

शिव महापुराण की रुद्र संहिता—(१४वीं श०) के सृष्टि खण्ड एवं युद्ध खण्ड में संक्षिप्त रामकथा मिलती है। गणपति कृष्ण जी प्रेस के शिव पुराण संस्करण के धर्म संहिता तथा ज्ञान संहिता के अन्तर्गत भी एक संक्षिप्त रामकथा उद्धृत है।

श्रीमद्देवीभागवत पुराण—(११वीं–१२वीं श०) के नवरात्र माहात्म्य के अन्तर्गत भी एक संक्षिप्त रामचरित मिलता है। इसके नवें स्कंध में वेदवती तथा छायासीता की भी कथा मिलती है।

महाभागवत पुराण—(१०वीं–११वीं श०) में एक रामोपाख्यान मिलता है जिसकी कथावस्तु वाल्मीकीय रामकथा से बहुत भिन्न है।

बृहद्धर्म पुराण—(१३वीं श०) के पूर्व खण्ड में जो रामचरित सुलभ है वह देवी महाभागवत पुराण की रामकथा से बहुत अधिक साम्यता रखती है।

सौर पुराण—(लगभग ९५०–१०५० ई०) के अध्याय ३० में रामकथा से सम्बन्धित कुछ प्रसङ्ग वर्णित हैं।

कालिका पुराण—(१०वीं–११वीं श०) के अध्याय ३८ एवं ६२ में भी रामकथा के कुछ प्रसङ्ग वर्णित हैं।

आदि पुराण—के १६वें अध्याय में कृष्णजन्म के पश्चात् नन्द के एक स्वप्न का विवरण है, जिसमें एक संक्षिप्त रामचरित प्राप्त होता है जो वाल्मीकीय रामकथा के अनुरूप है।

कल्कि पुराण—की संक्षिप्त रामकथा (अंश ३ ३, २६–५८) तथा (३, १७, ४०) में रामकथा के कुछ प्रसङ्गों का वर्णन पाया जाता है।

(ख) साम्प्रदायिक रामायण ग्रन्थों में रामकथा

योगवाशिष्ठ रामायण[1]—यह वास्तव में साम्प्रदायिक रामायण नहीं है लेकिन अन्य साम्प्रदायिक रामायणों के साथ इसका उल्लेख सुविधाजनक है। एम० विन्टरनित्स तथा एस० एन० दास गुप्त ने इसका रचनाकाल ८वीं शताब्दी माना है किन्तु डा० वी० राघवन ने इसे (११००-१२५० ई०) स्वीकार किया है। इसमें रामकथा अत्यन्त गौण है। इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय वशिष्ठ-रामचन्द्र-संवाद है, जिसमें वशिष्ठ राम को मोक्ष प्राप्ति पर एक विस्तृत उपदेश देते हैं। वाल्मीकि ने अरिष्टनेमि को यह संवाद सुनाया था तथा योगवाशिष्ठ में अगस्त्य सुतीक्ष्ण की शिक्षा के लिए वाल्मीकि-अरिष्टनेमि-संवाद दुहराते हैं। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में रामावतार के चार कारण बताए जाते हैं। अनन्तर राम के जीवन्मुक्त होने, विद्याभ्यास करने तथा तीर्थयात्रा का वर्णन है। पुनः राम के १६ वर्ष की अवस्था में विरक्त हो जाने की कथा वर्णित है। विश्वामित्र के कहने पर वशिष्ठ ने एक विस्तृत उपदेश दिया जिसके फलस्वरूप राम निर्लिप्त होकर अपने कर्तव्य पालन के लिए तत्पर हुए। अन्तिम प्रकरण में कागभुशुण्डि के जन्म तथा उसके सुमेरु पर्वत पर निवास की कथा वर्णित है। आगे चलकर समस्त रामकथा का सिंहावलोकन है।

अध्यात्म रामायण[2]—रामकथा से सम्बन्धित ग्रन्थों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इस ग्रन्थ के कर्ता एवं काल के विषय में अभी तक विद्वानों में अनिश्चितता बनी हुई है। यद्यपि कुछ आधुनिक समालोचकों ने इसकी प्राचीनता पर संदेह व्यक्त करते हुए इसे अधुनातन कृति सिद्ध करने का प्रयास किया है किन्तु उनके तर्कों में पुष्ट प्रमाणों का अभाव है। इसके ठीक विपरीत अधिकांश विद्वज्जनों ने इस ग्रंथ की भाषा-शैली एवं कथानक व्यवस्था के आधार पर इसे रामायण एवं महाभारत के समकालीन मानते हुए इसकी प्राचीनता के लिए पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत किया है जो अत्यन्त समीचीन एवं तर्कसंगत प्रतीत होता है। अतः अध्यात्म रामायण की प्राचीनता पर संदेह नहीं किया जा सकता है। इसमें वाल्मीकि रामायण की कथा अत्यन्त संक्षेप में है जो पूर्णरूपेण अवतारवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत की गई है। इसका मुख्य उद्देश्य वेदान्त दर्शन के आधार पर राम-भक्ति का प्रतिपादन है। इस रचना की मुख्य विशेषता है, स्थान-स्थान पर राम की स्तुतियाँ जिसमें अवतारवाद आदि पारमार्थिक तत्वों का निरूपण किया गया है। इस ग्रंथ के प्रायः सभी पात्रों को राम के परब्रह्मत्व का ज्ञान रहता है।

आनन्द रामायण[3]—इस ग्रंथ के भी कर्ता एवं काल के खोज की आवश्यकता है। इसमें अनेक विचित्र कथाओं का वर्णन है। १२२५२ श्लोकों के इस ग्रंथ में सार

१. योगवाशिष्ठ रामायण—संपादक, वासुदेव शर्मा,
२. अध्या० रा०—गीता प्रेस, गोरखपुर
३. आन० रा०—पं० रामतेज पाण्डेय

काण्ड, यात्रा काण्ड, याग काण्ड, विलास काण्ड, जन्म काण्ड, विवाह काण्ड राज्य काण्ड, मनोहर काण्ड, एवं पूर्ण काण्ड प्रभृति ६ काण्डों में रामकथा वर्णित है। इसमें शिव-पार्वती-संवाद का वर्णन है जिसके अन्तर्गत द्वितीय काण्ड के तृतीय सर्ग में रामदास विष्णुदास का उपसंवाद मिलता है।

अद्भुत रामायण[1]—इस ग्रंथ की भूमिका में समस्त वृत्तान्त वाल्मीकि भरद्वाज-संवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है इसकी कथावस्तु तीन भागों में विभाजित की जा सकती है। प्रथम भाग में रामावतार का कारण बताया गया है। द्वितीय भाग में परशुराम के तेजोभंग से लेकर रावण वध के बाद अयोध्या में प्रत्यागमन तक की समस्त रामकथा का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। इसके तृतीय एवं अन्तिम भाग में देवी का रूप धारण कर सीता द्वारा पुष्कर निवासी सहस्रस्कंध रावण का वध वर्णित है।

तत्त्वसंग्रह रामायण[2]—इसकी रचना संभवतः राम ब्रह्मानन्द द्वारा १७वीं श० में हुई थी। इस ग्रंथ में राम कथा के अतिरिक्त रामायण के प्रमुख पात्रों के विषय में प्रचलित कथाओं का संग्रह हुआ है तथा रामकथा के तत्त्व (राम के परब्रह्मत्व) पर प्रकाश डाला गया है। इसकी भूमिका में राम को विष्णु के अतिरिक्त शिव, ब्रह्मा, हरिहर, त्रिमूर्ति तथा परब्रह्म का अवतार माना गया है। इसमें रामदास्य भक्ति के अतिरिक्त अद्वैत रामोपासना का उल्लेख है।

कालनिर्णय रामायण[3]—रामायणों का एक ऐसा वर्ग मिलता है जिसमें रामकथा की प्रधान घटनाओं की तिथियाँ दी गयी हैं। इस प्रकार की सबसे प्राचीन रामकथा स्कन्दपुराण (ब्राह्म खण्ड) के अन्तर्गत धर्मारण्य खण्ड के तीसवें अध्याय तथा पद्मपुराण (पाताल खण्ड) के छत्तीसवें अध्याय में सुरक्षित है। पद्मपुराण में रामचरित के वक्ता लोमश ऋषि माने जाते हैं।

इस प्रकार के अन्य रामायणों में अग्निवेश कृत रामायण भी उल्लेखनीय हैं—अग्निवेश रामायण, समयादर्श रामायण, समय निरूपण रामायण, रामायण सार, रामायण रहस्य या राम हृदयम् तथा राम जातकम् आदि।

लोमश तथा अग्निवेश कृत रचनाओं के अतिरिक्त इस प्रकार के कुछ अन्य काल निर्णय रामायणों का भी उल्लेख मिलता है—अब्द रामायण, व्यासकृत रामायण तात्पर्य दीपिका, रामावतार कालनिर्णय सूचिका तथा निवास राघव कृत रामायण संग्रह आदि।

भुशुण्डि रामायण[4]—एक लम्बे समय तक रामकथा प्रेमियों के लिए जिज्ञासा का विषय बना हुआ भुशुण्डि रामायण डा० भगवती प्रसाद सिंह के सौजन्य से प्रकाश में

१. अद्भुत रामायण—टीका० पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र

२. रामकथा—बुल्के, (१७०–१७१)

३. रामकथा—बुल्के (१७२)

४. भुशुण्डिरामायण—संपादक डा० भगवती प्रसाद सिंह,

आ चुका है। इस रामायण में भी वाल्मीकीय रामकथा का अत्यन्त संक्षेप प्रस्तुत किया गया है, किन्तु इसमें अनेक मौलिकताएँ भी हैं जिनका उल्लेख इस प्रकार है—

बालक राम का सरयू तटस्थ गोप प्रदेश में निवास और रावण[1] द्वारा उनकी हत्या का प्रयास (पू० खं, पृ० ६३-१८४)। राम गीता की योजना (पूर्व खण्ड)। दशरथ की तीर्थ यात्रा का विस्तृत एवं सर्वथा मौलिक वर्णन (पू० खं, पृ० ४७५-६६६)। योनिजा सीता एवं उनके स्वयंवर की कथा (द० खं, पत्र-११०-१११)। पुष्पवाटिका प्रसंग (द० खं, चतुर्थ अध्याय, पत्र-६-८)। अगले अवतार में राम द्वारा दण्डकारण्य के मुनिकुमारों के साथ विहार करने का वचन देना (द० खं, पत्र-२२७-२३२)। मंदाकिनी प्रादुर्भाव की कथा (द० खं, पत्र २०८-२११)। सरयू उत्पत्ति की कथा (पश्चिम खण्ड, पत्र-५२-६४)। पादुका राज्य व्यवस्था वर्णन (द० खं, अध्याय ४७-५८)। सीता से अभिन्न राम की आह्लादकारिणी शक्ति सहजा के चरित्र का वर्णन (पू० खं, अ० ८१-८५ तथा प० खं ५३, ६४, ६६)। अशोक वाटिका में राम द्वारा रास लीला का आयोजन (द० खं, ३११)। मुनि परिवारों की सेवा के लिए सीता का पुनः आगमन। सीता त्याग की मौलिकता। मेघनाथ को शेष से नागमणि की प्राप्ति (द० खं, अ० ११४, पत्र-२, ४)। ऋषोज ऋषि का उद्धार (उ० खं, अ० ४८-४६)।

भुशुण्डि रामायण में निम्नलिखित वाल्मीकीय कथाओं का अभाव है—अहल्योद्धार, अनसूया का सीता को उपदेश, वानर-स्वयंप्रभा-संवाद, समुद्रलंघन विषयक वानर-ऋक्ष-मन्त्रणा, त्रिजटा का स्वप्न, रावण की अपने मन्त्रियों से युद्ध विषयक मन्त्रणा, सरमा द्वारा सीता को आश्वासन, राम का सुवेल पर्वत पर निवास और वहाँ से लंका का अवलोकन (उल्लेख मात्र), राम-वालि-युद्ध, कुम्भकर्ण-विभीषण-संवाद, हनुमान द्वारा भरत को राम के आगमन की सूचना देना तथा शंबूक वध आदि।

गौण रामायण[2]—उपर्युक्त रामायण ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ गौण रामायणों की भी सूचना प्राप्त होती है। इनमें मन्त्र रामायण (वेंकटेश प्रेस), वेदान्त रामायण (लहरी प्रेस बनारस), गायत्री रामायण, विद्यारण्य कृत रामायण रहस्य आदि।

श्रीराम दास गौड़ ने अपने हिन्दुत्व नामक ग्रन्थ में उन्नीस रामायणों का संक्षिप्त परिचय दिया है, जो निम्नलिखित हैं—महारामायण, संवृत्त रामायण, लोमश रामायण, अगस्त्य रामायण, मन्जुल रामायण, सौपद्य रामायण, रामायण महामाला, सौहार्द्र रामायण, रामायण मणिरत्न, सौर्य्य-रामायण, चान्द्र-रामायण, मैन्द रामायण,

---

१. रामकथा—बुल्के, (१७३, १७४)

२. वही (१७३, १८१, १८२, १८३)

स्वायंभुव रामायण, सुब्रह्म रामायण, सुवर्चस रामायण, देव-रामायण, श्रवण-रामायण, दुरंत रामायण, रामायण-चम्पू आदि ।

संस्कृत महाकाव्यों में रामकथा

आश्चर्यमिदमाख्यानं मुनिना सम्प्रकीर्तितम् ।
परं कवीनामाधारं समाप्तं च यथाक्रमम् ।।

वाल्मीकि रामायण परवर्ती कवियों के लिए श्रेष्ठ आधारशिला है ।[1] इसी का अनुकरण करते हुए कालान्तर में कवियों ने इस रामकथा को साहित्य के विभिन्न अंगों में उचित स्थान देकर अक्षुण्ण कर दिया । संस्कृत काव्य के प्रायः श्रव्य एवं दृश्य दोनों भेदों में रामकथा से सम्बन्धित अनेक ग्रंथों की सर्जना हुई जिनका क्रमशः उल्लेख आगे किया जाएगा । सर्वप्रथम रामकथा से सम्बन्धित संस्कृत महाकाव्यों[2] का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

रघुवंश[3]—(४०० ई० के लगभग) कविकुलगुरु कालिदास विरचित रघुवंश महाकाव्य के १०वें से १५वें सर्ग के अन्तर्गत सम्पूर्ण रामचरित का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया गया है । वैसे तो ९वें सर्ग के अन्त में दशरथ राज्य वर्णन के अन्तर्गत मुनि-पुत्र वध से ही रामकथा की पूर्व पीठिका तैयार हो जाती है किन्तु कथानक का प्रारम्भ १०वें सर्ग से ही होता है । रघुवंश में वर्णित रामचरित की संक्षिप्त कथा-वस्तु अधोलिखित है—९वें सर्ग में मुनिकुमार वध एवं दशरथ को शाप प्राप्ति, सर्ग १० में पुत्रेष्टि यज्ञ एवं रामादि पुत्रों की उत्पत्ति, सर्ग ११ में सीता स्वयंवर एवं रामादि का विवाह, सर्ग १२ में राम वनवास, सीता हरण, युद्ध एवं रावण वध, सर्ग १३ में पुष्पक विमान से अयोध्या प्रत्यागमन तथा मार्ग के रमणीय स्थलों का विशद एवं मनोहारी वर्णन, सर्ग १४ में राम का राज्याभिषेक तथा सीता परित्याग १५वें सर्ग में लव-कुश जन्म एवं राम का स्वर्गारोहण ।

भट्टि काव्य[4]—(५५० ई० के लगभग) भट्टिस्वामी रचित भट्टिकाव्य को रावण वध भी कहते हैं । भट्टिकाव्य के २० सर्गों में विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण के वनगमन की घटना से प्रारम्भ कर वाल्मीकि रामायण के प्रथम ६ काण्डों की कथावस्तु का किञ्चित्

१. वाल्मी० रामा० (१।४।२७)
२. संस्कृत महाकाव्यों के रचनाकाल एवं साहित्यिक समालोचना के लिए द्रष्टव्य—
(अ) हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—प्रो० ए० बी० कीथ
(ब) संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डा० सुशील कुमार डे
(स) संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय एवं डा० कपिल देव द्विवेदी
३. रघुवंश—व्याख्या० डा० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी
४. भट्टिकाव्य—संपा० पं० शिवदत्त

परिवर्तन सहित निरूपण किया गया है। इस महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य रामकथा के मनोरम वर्णन के साथ-साथ व्याकरण के गूढ विषयों का सोदाहरण एवं सुस्पष्ट विवरण प्रस्तुत करना है। यह काव्य ४ भागों में विभक्त है। **प्रकीर्ण काण्ड**—इसमें एक से पाँच सर्ग हैं जिसमें रामजन्म से सीताहरण तक की कथा है। **अधिकार काण्ड**—इसके ६ से ९ सर्ग में वालि वध, सुग्रीव राज्याभिषेक, अशोक वन-दाह तथा हनुमान निग्रह का वर्णन है। **प्रसन्न काण्ड**—१०वें से १३वें सर्ग में सीताभिज्ञान दर्शन, विभीषण आगमन, तथा सेतु बंध का वर्णन है। **तिङन्त काण्ड**--१४ से २२ सर्ग में युद्ध, रावण वध, विभीषणाभिषेक और रामाभिषेक का वर्णन है। व्याकरण ज्ञान के लिए यह महाकाव्य दीपक के तुल्य है, अन्यथा मनुष्य शब्दशास्त्र में अंधवत् रहता है।[1]

जानकीहरण[2]—(६५०-७५० ई० के लगभग) कवि कुमारदास विरचित जानकी हरण महाकाव्य में कुछ विद्वानों ने २५ सर्गों का उल्लेख किया है, परन्तु पण्डित व्रजमोहन व्यास की हिन्दी टीका में २० सर्ग ही प्राप्त होता है।[3] वाल्मीकीय रामकथा पर आश्रित जानकीहरण में २० सर्ग हैं। इसकी मुख्य विशेषताओं में दशरथ की जलक्रीड़ा तथा राक्षसों का केलि वर्णन है। शेष कथा में वाल्मीकि रामायण की कथा का किञ्चित् परिवर्तित रूप दर्शनीय है।

रामचरित[3]—(लगभग ९वीं शताब्दी) अभिनन्द कृत रामचरित के ३६ सर्गों में वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से युद्धकाण्ड तक की कथा निबद्ध है। इस महाकाव्य का युद्धकाण्ड अधूरा था जिसे भीम नामक किसी कवि ने चार-चार सर्गों का दो परिशिष्ट जोड़कर पूर्ण किया है।

रामायणमञ्जरी[4]—(१०३७ ई०) महाकवि क्षेमेन्द्र ने इस ग्रन्थ के ६४०० श्लोकों में वाल्मीकि रामायण का अति संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करने का श्लाघनीय प्रयास किया है। इस ग्रन्थ का समस्त विवरण शोध प्रबन्ध के अगले अध्यायों में प्रस्तुत किया जाएगा।

दशावतारचरित[5]—(१०६६ ई०) महाकवि क्षेमेन्द्र विरचित दशावतारचरित के कुल १७५९ श्लोकों में विष्णु के दश अवतारों का वर्णन है। ग्रंथ के 'रामावतार' वर्णन के २९४ छन्दों में कवि ने रामकथा का एक नवीन रूप प्रस्तुत किया है। इसकी मुख्य विशेषता है कि इसमें सम्पूर्ण कथावस्तु रावण के माध्यम से कही जाती है। इसके प्रारम्भिक ६९ छन्दों में रावण की तपस्या, वर प्राप्ति तथा अत्याचार आदि का उल्लेख, पुनः ७०-१०४ छन्द तक पद्मजा सीता को रावण का पुत्री रूप में ग्रहण करना।

१. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, प्रो० ए० बी० कीथ, पृ० सं० ११६
२. जानकीहरण—पं० व्रजमोहन व्यास
३. रामकथा बुल्के, पृ० सं० (१९८, १९९)
४. रामायणमञ्जरी—सम्पा० पं० शिवदत्त शास्त्री एवं काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब
५. दशावतारचरित—सम्पा० पं० दुर्गाप्रसाद एवं काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब

१०५-१३० छन्द तक शूर्पणखा अपने विरूपीकरण तथा खरदूषण के वध का वृत्तान्त सुनाती है एवं मारीच रावण को विष्णु अवतार राम की कथा सुनाता है। १५२-१८४ में सीताहरण तथा सुकेतु द्वारा मारीच वध एवं लङ्का दहन आदि की घटनाएँ रावण को सुनाई जाती हैं। २१३वें छन्द तक सुकेतु तथा विभीषण दोनों रावण से सीता को लौटाने के लिए अनुरोध करते हैं। विभीषण राम की शरण लेता है। रावण किसी गुप्तचर से विभीषणाभिषेक, सेतु बन्ध तथा राम के त्रिकूटागमन की कथा सुनता है। २१४–२२३ तक प्रतीहारपति से नागपाश द्वारा राम-लक्ष्मण के बन्धन तथा कुम्भकर्ण के जागरण का वृत्तान्त सुनता है। अन्त में कुम्भकर्ण वध से लेकर राम के स्वर्गारोहण तक की संक्षिप्त कथा का उल्लेख है।

उदारराघव[1]—(१४वीं श०) शिङ्गभूपाल (१३३० ई०) के समकालीन होने से उदारराघव के रचयिता साकल्यमल्ल का रचनाकाल १४वीं श० का पूर्वार्द्ध विद्वानों ने माना है। उदारराघव का सम्पूर्ण विस्तार १८ सर्गों का बताया जाता है परन्तु अभी तक केवल ८ सर्ग ही सुरक्षित एवं प्रकाशित हैं जिसमें राम जन्म से शूर्पणखा विरूपीकरण तक की कथा वर्णित है।

उत्तर कालीन महाकाव्य

१५वीं शताब्दी के बाद रामकथा से सम्बन्धित अनेक काव्यों की सर्जना हुई, जो अधिकांश अप्रकाशित ही हैं तथापि शोध के फलस्वरूप जो कुछ भी सूचनाएँ उनके संबंध में प्राप्त हुई उसका उल्लेख इस स्थल पर किया जा रहा है।[2]

१५वीं शताब्दी में वामनभट्ट बाण ने 'रघुनाथचरित' की रचना की, जिसके ३० सर्गों में रामचरित का उल्लेख है। १६०८ ई० में काशी निवासी अद्वैत नामक कवि ने 'रामलिङ्गामृत' की रचना की। इसमें १८ सर्ग हैं तथा कथानक में अनेक विचित्रताएँ उपलब्ध हैं। 'राघवोल्लास' नामक एक महाकाव्य की रचना भी सम्भवतः अद्वैत कवि ने ही किया था जिसके १२ सर्गों में प्रारम्भ के तीन सर्ग अप्राप्य हैं। १७वीं शती के कवि चक्र कृत 'जानकी परिणय' में वाल्मीकीय रामकथा के अनुसार दशरथ यज्ञ से लेकर परशुराम तेजोभङ्ग तक की घटनाओं का ८ सर्गों में वर्णन किया गया है। मोहन स्वामी कृत 'रामरहस्य' (१७५० ई०) में सूर्यवंश वर्णन से लेकर राम के स्वर्गारोहण तक की कथावस्तु में कोई मौलिकता नहीं दिखाई पड़ती। १८०० ई० के लगभग रघुनाथ उपाध्याय से 'रामविजय' महाकाव्य की रचना की जो १८३२ में वाराणसी से प्रकाशित हुआ। त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से प्रकाशित 'रघुवीरचरित' का रचयिता अज्ञात है। इसके १७ सर्गों में रामचन्द्र के वनवास से लेकर स्वर्गारोहण तक की कथा वर्णित है।

---

१. उदारराघवम्—सम्पा० डा० सुधाकर मालवीय

२. रामकथा–बुल्के (१८०–१८६)

इनके अतिरिक्त रामकथा सम्बन्धी कुछ स्फुट काव्यों की भी सर्जना हुई है। इस प्रकार के काव्य भिन्न-भिन्न कोटियों में विभाजित हैं, यथा—श्लेष काव्य, द्विसन्धान काव्य एवं विलोम काव्य आदि। श्लेष[1] काव्यों में १२वीं शताब्दी के प्रारम्भ में सन्ध्याकर-नन्दी विरचित 'रामचरित' उल्लेखनीय है। इसके २२० आर्या छन्दों में समस्त रामकथा की प्रमुख घटनाओं का वर्णन श्लेषात्मक शब्दों द्वारा किया गया है। इसके साथ ही साथ बङ्गाल के शासक रामपाल का चरित्र भी वर्णित है।

रामायण एवं महाभारत की कथा को एक ही साथ एक काव्य में प्रतिपादित करने की परम्परा को देखकर दण्डी आदि ने इस प्रकार के काव्यों को द्विसन्धान काव्य कहा। द्विसन्धान[2] काव्यों में भी रामकथा सम्बन्धी विशेष सामग्री प्राप्त होती है। इसमें धनञ्जय विरचित 'राघवपाण्डवीय' (१२वीं श० का पूर्वार्द्ध), कविराज माधव भट्ट कृत 'राघवपाण्डवीय' (१२वीं श० का उत्तरार्ध), हरदत्त सूरिकृत 'राघवनैषधीय' तथा चिदम्बर कृत 'राघवपाण्डवयादवीय' (१६वीं श०) एवं गंगाधर महाडकर कृत 'संकटनाशन स्तोत' (१८वीं श०) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इसी प्रकार विलोम[3] काव्यों में चिदम्बर सुमति कृत 'राघवयादव-पाण्डवीय' लग-भग (१६वीं श०), वेंकटाध्वरिन कृत 'यादवराघवीय' (१७वीं श० का पूर्वार्द्ध) एवं सूर्य-देव कृत 'रामकृष्ण' विलोम काव्य में भी रामकथा का वर्णन पाया जाता है।

चित्र[4] काव्यों में भी रामकथा सम्बन्धी सामग्री प्राप्त होती है। इनमें कृष्णमोहन कृत 'रामलीलामृत' तथा वेङ्कटेश कृत 'चित्रबन्ध रामायण' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पं० बलदेव[5] उपाध्याय ने हरिकृष्ण भट्ट रचित एक 'सीता स्वयंवर' काव्य का उल्लेख किया है। यह १२७ पद्यों का एक लघुकाव्य है जो भक्तिरस से पूरित तथा वर्णन की सुषमा से मण्डित है। केरल के एक कवि वासुदेव के 'संक्षेप रामायण' का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

शृङ्गारिक[6] खण्ड काव्य में भी रामकथा सम्बन्धी कुछ सामग्री उपलब्ध होती है। इन खण्डकाव्यों में कुछ मेघदूत के अनुकरण पर तथा कुछ गीतगोविन्द के अनुकरण पर लिखे गये हैं। मेघदूत के अनुकरण पर लिखे गये खण्ड काव्यों में वेङ्कटदेशिक रचित

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय, पृ० ३०७, ३०८, ३०९

२. वही पृ० ३०८, ३. वही पृ० ३०९

४. रामकथा—बुल्के, पृ० २११

५. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय, पृ० ३०२, ३१४

६. रामकथा—बुल्के, पृ० २११, २१२, २१३

हंस सन्देश अथवा हंसदूत (१३वीं), नैयायिक रुद्र वाचस्पति कृत 'भ्रमरदूत', कपिदूत (अज्ञात) वेङ्कटाचार्य कृत 'कोकिल सन्देश' (१७वीं श०), कृष्णचन्द्र तर्कालङ्कार कृत 'चन्द्रदूत' आदि उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार गीतागोविन्द के अनुकरण पर जयदेव कृत 'रामगीतागोविन्द', हरिशंकर एवं प्रभाकर कृत 'गीतराघव' श्री हय्याचार्य कृत 'जानकी गीता' एवं विश्वनाथ सिंह कृत 'संगीत रघुनन्दन' आदि खण्डकाव्यों का उल्लेख प्राप्त होता है।

उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ कृत 'राघव विलास', सोमेश्वर कृत 'रामशतक', मुद्गल भट्ट कृत 'रामार्याशतक' एवं कृष्णेन्द्र कृत 'आर्या रामायण' आदि रामकथा सम्बन्धी कृतियों का विवरण प्राप्त होता है।[1]

आधुनिक समालोचकों ने कुछ अधुनातन रामकाव्यों की सूची तैयार की है।[2] इसमें अभिराम कामाक्षी कृत 'अभिनव रामाभ्युदय' (१४२५ ई०), सुलुबनरसिंह कृत 'रामाभ्युदय' (१४६० ई०), वरदेशिक कृत 'रघुवर विजय' (१६८० ई०), रामपाणिवाद कृत 'राघवीय काव्य' (१७२५ ई०), रामवर्मा कृत 'रामचरित' (१८०० ई०), भद्रादि रामशास्त्री कृत 'श्रीरामविजय' (१६०० ई०), अन्नदाचरण कृत 'रामाभ्युदय' (१६३० ई०), वटुकनाथ शर्मा कृत 'सीता स्वयंवर' (१६३० ई०), नागराज कृत 'सीता स्वयंवर' (१६४० ई०), रामसनेही दास कृत 'जानकीचरितामृतम्' (१६५० ई०), डा० रेवा प्रसाद द्विवेदी कृत 'सीताचरितम्' (१६६८ई०) तथा डा० राजेन्द्र मिश्र कृत 'जानकी-जीवनम्''[3] (१६८२ ई०) महाकाव्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत नाटकों में रामकथा[4]

प्राचीन काल से ही रामकथा सम्बन्धी नाटकों के अभिनय का प्रचलन था जो कालान्तर में भी जीवित रही। संस्कृत कवियों ने श्रव्य काव्यों की भाँति दृष्य काव्यों में

---

१. रामकथा—बुल्के, पृ० (२१३)

२. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास—डा० कपिलदेव द्विवेदी, पृ० २५५ से २६३ तक

३. जानकीजीवनम्—वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद

४. रामकथा सम्बन्धी संस्कृत नाटकों के रचनाकाल एवं साहित्यिक समालोचना के लिए—
   (अ) हिस्ट्री आफ संस्कृत लिरेचर—प्रो० ए० बी० कीथ
   (ब) संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डा० एस० के० डे०
   (स) संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय एवं डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

भी विपुल रामकथा सम्बन्धी नाटकों की सर्जना की है, जिसका संक्षिप्त उल्लेख अधोलिखित है।

प्रतिमानाटकम्[१]—भास रचित प्रतिमानाटक के सात अङ्कों में राम बनवास से रावण वध तक वाल्मीकीय रामकथा का संक्षेप प्रस्तुत किया गया है। इसमें मुख्य रूप से राम का राज्याभिषेक रुकना, दशरथ की प्रतिमा देखकर भरत को दशरथ की मृत्यु का ज्ञान होना, अयोध्या में विना आए ही भरत का राम के पास जाना तथा सीताहरण का सर्वथा एक नवीन रूप आदि घटनाएँ मौलिक हैं।

अभिषेकनाटकम्[२]—भास द्वारा ही रचित इस नाटक के ६ अङ्कों में बालि वध से लेकर रामाभिषेक तक अर्थात् वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा, सुन्दर एवं युद्धकाण्ड की कथा वर्णित है। भास कृत उपर्युक्त दोनों नाटकों में बालकाण्ड को छोड़कर रामायण के शेष काण्डों की कथाएँ आ गई हैं।

उत्तररामचरितम्[३]—यह भवभूति का अन्तिम और सर्वोत्कृष्ट नाटक है। इसकी कथा वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड पर आधारित है। इसके सात अङ्कों में कवि ने उल्लेखनीय परिवर्तन किया है। प्रथम अङ्क में चित्रवीथी का दृश्य एवं दुर्मुख की सूचना पर लोकापवाद के कारण सीता का परित्याग करना। द्वितीय अङ्क में सीता का गङ्गा के प्रवाह में लवकुश को जन्म देना, दूध छोड़ने के बाद बच्चों को वाल्मीकि के संरक्षण में रखना और स्वयं पाताल में निवास करना। तृतीय अङ्क में छाया दृश्य एवं वासन्ती, तमसा, मुरला आदि की कल्पना। चतुर्थ अङ्क में वाल्मीकि के आश्रम में जनक का आगमन, कौशल्या-जनक-संवाद, लव दर्शन, घोड़े को पकड़ने के लिए लव का प्रस्थान। पञ्चम अङ्क में चन्द्रकेतु-लव-संवाद, जृम्भक अस्त्र का प्रयोग तथा राम की निन्दा। षष्ठ अङ्क में चन्द्रकेतु-लव का दिव्यास्त्रों से युद्ध, राम का आगमन, युद्ध की समाप्ति, राम का लव-कुश से स्नेह प्रदर्शन। सप्तम् अङ्क में गर्भ नाटक की कल्पना आदि।

महावीरचरितम्[४]—यह भवभूति की दूसरी रचना है। इसके सात अङ्कों में राम विवाह से राज्याभिषेक तक की वाल्मीकीय कथा वर्णित है।

उदात्त राघव[५]—लगभग ८वीं शताब्दी में अनंगहर्ष मायुराज ने उदात्त राघव की रचना की। इसके ६ अंकों में राम के निर्वासन से लेकर रावण वध के बाद उनके

---

१. व्याख्याकार—डा० जगदीश चन्द्र मिश्र

२. टीकाकार—डा० रामचन्द्र मिश्र

३. टीकाकार—डा० रमाशंकर मिश्र

४. टीकाकार—आचार्य रामचन्द्र मिश्र

५. रामकथा—बुल्के, पृ० (२००)

अयोध्या में प्रत्यागमन तक की कथा वर्णित है। राम को उदात्त रूप में चित्रित करने के लिए मायुराज ने रामायणीय घटनाओं में अनेक परिवर्तन किया है। कथानक की विशेषताओं में सीताहरण का एक नवीन रूप प्रमुख है। इसके अतिरिक्त कई राक्षस राम के पक्ष वाले पात्रों का रूप धारण कर लेते हैं।

कुन्दमाला[1]—लगभग (१००० ई०) में दिङ्नाग ने कुन्दमाला नाटक की रचना की थी। कुन्दमाला में राम द्वारा सीता परित्याग से लेकर राम-सीता-सम्मिलन तक की घटना वर्णित है। तृतीय अङ्क के अन्तर्गत वाल्मीकि आश्रम के पास गौतमी तट पर घूमते हुए राम-लक्ष्मण, जल में बहती हुई कुन्दमाला देखते हैं जिसकी बनावट सीता के कौशल का स्मरण दिलाती है। संभवतः इसी इतिवृत्त के आधार पर नाटक का नाम कुन्दमाला पड़ा।

अनर्घराघव[2]—लगभग (९०० ई०) में मुरारि ने अनर्घराघव की सर्जना की। इसके सात अङ्कों में ताटका वध से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है। कवि ने रामायण की कथा में रोचक परिवर्तन किया है। जब परशुराम से लड़ने के लिए उद्यत राम के धनुष्टंकार को सीता सुनती हैं तो उनको भय उत्पन्न हो जाता है कि कहीं राम किसी दूसरी स्त्री को पाने के लिए तो धनुर्भङ्ग नहीं कर रहे हैं। बालि वध के हेतु में भी नवीन कल्पना की गयी है। कबन्ध, गुह पर आक्रमण कर देता है। लक्ष्मण कबंध को मारकर गुह की रक्षा करते हैं किन्तु ऐसा करने में वे उस वृक्ष को गिरा देते हैं जिस पर दुन्दुभि का कंकाल लटक रहा था वालि इस बात से उत्तेजित होकर राम से युद्ध करता है तथा उसका वध हो जाता है। सातवे अङ्क में राम विमान से कई तीर्थों की यात्रा करते हुए अयोध्या पहुँचते हैं।

बालरामायण[3]—लगभग १०वीं शताब्दी में राजशेखर द्वारा रचित बाल रामायण दस अङ्कों का महानाटक है। प्रत्येक अङ्क एक नाटिका के बराबर है। इसमें भी कवि ने बहुत सी मौलिकता का समावेश किया है। सीता स्वयंवर में रावण स्वयं उपस्थित होता है, पर शिव धनुष चढ़ाने का साहस न कर केवल सीता के भावी पति को आपत्तियों का डर दिखा कर चला जाता है। राम के विरुद्ध परशुराम को भड़काने पर उसे लेने के देने पड़ जाते हैं तथा परशुराम से युद्ध होते-होते बचता है। रावण को सीता की मूर्ति भेंट की जाती है। रावण उसे वास्तविक समझ धोखा खा जाता है। पुनः खिन्न होकर पुरुरवा की भाँति अपनी प्रिया (सीता) के लिए प्रकृति से याचना करता

---

१. टीकाकार—प्रो० चुन्नी लाल शुक्ल

२. टीकाकार—आचार्य रामचन्द्र मिश्र

३. संपादक—डॉ० गंगा सागर राय

है। इसी समय नाक, कान से हीन शूर्पणखा को देख निराश प्रेमी रावण के हृदय में पुरुषोचित आवेश का संचार होता है। लंका की ओर बढ़ती चली आ रही राम की सेना के सम्मुख सीता का कटा मस्तक फेंक कर रावण असफल छल भी करता है। अन्त में राम उसका वध करके आकाश मार्ग से वापस लौटते हैं। बाल रामायण की एक प्रमुख विशेषता है कि इसमें रावण को एक प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है तथा उसके प्रति सहानुभूति भी प्रदर्शित की गई है।

महानाटक[1] या हनुमन्नाटक—संस्कृत नाटक साहित्य में महानाटक या हनुमन्नाटक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस नाटक के दो रूप हैं—पश्चिम भारतीय पाठ जो दामोदर मिश्र द्वारा संकलित है जिसे हनुमन्नाटक कहते हैं तथा पूर्वी भारत या बंगाली पाठ जिसे मधुसूदन मिश्र ने महानाटक के सन्दर्भों में संग्रथित किया है। हनुमन्नाटक में १४ अंक तथा ५४८ गद्य हैं एवं महानाटक के ९ अंकों में ७२० पद्य हैं। दोनों प्रतियाँ हनुमान जी को मूल नाटककार मानती हैं। मधुसूदन मिश्र के महानाटक के ९ अङ्कों में विश्वामित्र के साथ राम गमन से लेकर रावण वध, सीता की अग्नि परीक्षा, राम का अयोध्या आगमन, राज्याभिषेक तथा पुनः प्रजावर्ग के साथ स्वर्ग गमन वर्णित है। दामोदर मिश्र रचित हनुमन्नाटक के १४ अङ्कों में सीता स्वयंवर से लेकर रावण वध या राम विजय तक की कथा वर्णित है। महानाटक या हनुमन्नाटक की रचना संभवतः दसवीं शताब्दी में हुई थी।

आश्चर्यचूणामणि[2]—लगभग दशम शती के मध्यकाल में शक्तिभद्र रचित आश्चर्यचूणामणि के ७ अङ्कों में शूर्पणखा प्रसंग से लेकर लंका विजय और सीता के अग्नि परीक्षा तक की कथा वर्णित है। इसके अन्तर्गत सीताहरण की घटना सर्वथा मौलिक है। इसकी प्रमुख विशेषता है राम तथा सीता को मुनियों से प्राप्त एक अँगूठी तथा चूणामणि। जिनकी सहायता से छद्मवेशी राक्षस, राम अथवा सीता के स्पर्श से अपना वास्तविक रूप धारण कर लेते हैं। इसी से इसका नाम आश्चर्यचूणामणि पड़ा।

प्रसन्न राघव[3]—लगभग १२वीं शती जयदेव द्वारा रचित इस नाटक के ७ अङ्कों में सीता स्वयंवर से लेकर रावण वध के बाद राम के अयोध्या आगमन तथा राज्याभिषेक की रामायणी कथा वर्णित है। कवि ने मूल कथा में बहुत परिवर्तन किया है—सीता स्वयंवर में रावण तथा बाणासुर की उपस्थिति, इसी अवसर पर रावण द्वारा सीता हरण करने का संकल्प, धनुर्भङ्ग के पूर्व राम और सीता का चंडिकायतन में मिलना,

---

१. रामकथा—बुल्के, पृ० (२०२, २०३, २०४)

२. व्याख्याकार—पं० रमाकान्त झा

३. टीकाकार—आचार्य शेषराज शर्मा 'रेग्मी'

विद्याधर रत्नशेखर का विरह व्याकुल राम को लंका की घटनाएँ इन्द्रजाल द्वारा दिखलाना आदि।

उल्लाघ राघव[1]—१३वीं श० ई० के पूर्वार्द्ध में सोमेश्वर रचित उल्लाघ राघव के ८ अंकों में वाल्मीकि रामायण की कथा बालकाण्ड से लेकर युद्ध काण्ड तक वर्णित है। एक अपवाद को छोड़कर वाल्मीकीय कथानक में कहीं भी परिवर्तन नही किया गया है।

इसके अतिरिक्त रामकथा सम्बन्धी कुछ गौण[2] नाटकों की भी सूची मिलती है। जिसके अन्तर्गत जैन कवि हस्तिमल्ल कृत "मैथिलि कल्याण" (१२९० ई०), हस्तिमल्ल कृत 'अंजनापवनजय' (१२९० ई०), सुभट्ट कृत 'दूतांगद' (१३वीं श०), भास्कर भट्ट कृत 'उन्मत्त राघव' (१४वीं श०), विरुपाक्षदेव कृत 'उन्मत्त राघव' (१५वीं श०), व्यासदेव मिश्र कृत 'रामाभ्युदय' (१५वीं श०), महादेव कृत 'अद्भुत दर्पण' (१७वीं श०) रामभद्र कृत 'जानकी परिणय' (१७वीं श०) आदि प्रमुख हैं।

काव्यशास्त्र विषयक ग्रंथों के उद्धरणों से भी अनेक प्राचीन रामकथा सम्बन्धी नाटकों का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अन्तर्गत १०वीं श० में लिखे गए राघवानन्द, माया पुष्पक, स्वप्न दशानन नाटकों का उल्लेख मिलता है। इसके कर्ता अज्ञात हैं। पुनः १०वीं० श० में क्षीरस्वामी कृत 'अभिनव राघव' तथा १२वीं श० में रामचन्द्र कृत 'रघुविलास' एवं 'राघवाभ्युदय' आदि नाटकों की भी सूचना मिलती है।

डा० राघवन ने भी कुछ अन्य अप्राप्य रामकथा सम्बन्धी नाटकों की भी सूचना दी है। इसमें ८वीं श० के यशोवर्मन कृत 'रामाभ्युदय' के अतिरिक्त ९वीं श० में लिखे गए 'रामानन्द', 'छलित राम' तथा 'कृत्या रावण' के कर्ता अज्ञात हैं।

चम्पूसाहित्य में रामकथा

रामायण को आधार बनाकर चम्पू साहित्य में अनेक ग्रंथों की सर्जना हुई[3] इस स्रोत को अपनाने वाले प्रकाशित एवं अप्रकाशित लगभग ३६ चम्पू काव्यों का अब तक उल्लेख प्राप्त हुआ है। अध्ययन के सुविधा की दृष्टि से इन चम्पू काव्यों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है—प्रथम प्रकार के वे चम्पू काव्य हैं जिनमें सम्पूर्ण रामकथा संक्षिप्त रूप में वर्णित है—इसके अन्तर्गत सबसे प्राचीन एवं प्रचलित चम्पू ११वीं शती

---

१. रामकथा—बुल्के, पृ० (२०७)

२. रामकथा—बुल्के पृ० सं० (२०७, २०८, २०९)

३. चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डा० छविनाथ त्रिपाठी, पृ० सं० (२६०, २६१, २६२)

के मध्यधारा नरेश भोजराज की लेखनी से प्रसूत **रामायण चम्पू**[१] है। रामायण चम्पू का आधार महर्षि वाल्मीकि का रामायण है ग्रंथ किष्किन्धाकाण्ड तक ही रचा गया था और पिछले काल के कवियों ने युद्धकाण्ड की पूर्ति कर चम्पू को सम्पूर्ण किया।

भोजकृत चम्पू रामायण के अतिरिक्त विश्वेश्वर कृत **अमोघराघव**, बल्ली सहाय कवि विरचित **काकुत्स्थ विजय**, महाराज विश्वनाथ सिंह कृत **रामचन्द्र चम्पू रामानुज** देशिक कृत **रामायण चम्पू**, सुन्दर वल्ली कृत **रामायण चम्पू**, श्री निवास कृत **रामकथा सुधोदय**, रामचन्द्र दीक्षित कृत **रामचन्द्र चम्पू**, कृष्णायंगर कृत **रामचर्यामृत**, शाम्बशास्त्री कृत **अभिनव चम्पूरामायण**, लक्ष्मण दान्ते कृत **अभिनव रामायण**, असूरि अनन्ताचार्य कृत **राघव चम्पू**, अवंचिराम शास्त्री कृत **रामाभ्युदय चम्पू**, वन्दला मुडि रामस्वामी कृत **राम चम्पू** आदि सम्पूर्ण रामायण के संक्षिप्त रूप में वर्णित चम्पू काव्य हैं।

द्वितीय प्रकार के अन्तर्गत वे चम्पू काव्य हैं जिसमें किसी काण्ड विशेष की कथा को आधार बनाया गया है। इन चम्पू काव्यों में **राजचूड़ामणि दीक्षित, एकाभ्रनाथ, शास्त्रिन्, लक्ष्मण सूरि** आदि ने **युद्धकाण्ड** की कथा का अनुकरण करके चम्पू काव्य लिखे।

राघवाचार्य, भगवतन्त, यतिराज, शंकराचार्य, वेंकट कृष्ण **ब्रह्मपंडित, राघवभट्ट, हरिहरानन्द, वेंकटाध्वरि** आदि ने उत्तरकाण्ड के आधार पर 'उत्तर रामायण' या 'उत्तर चम्पू रामायण' की सर्जना की।

इसके अतिरिक्त '**सीताविजयचम्पू** (घण्टावतार) कृत, तथा गुण्डूरामास्वामी कृत **सीताचम्पू**' भी उत्तरकाण्ड की कथा पर आधारित चम्पू काव्य हैं।

तीसरे प्रकार के वे चम्पू काव्य हैं जिनमें राम के अतिरिक्त रामायण के अन्य प्रमुख पात्रों का चरित्र प्रस्तुत किया गया है, यथा—हनुमान के चरित्र को आधार बनाकर नृसिंह कवि ने **हनुमदापादान, आंजनेय विजय चम्पू** तथा **चूणामणिचम्पू** एवं रघुनाथ भट्ट ने **मारुति विजय चम्पू** की रचना की। इसके अतिरिक्त वेंकटाध्वरि कृत **उत्तररामचरित चम्पू** में रावण के जन्म, वंश एवं दिग्विजय का उल्लेख तथा रामवर्मा कृत **कार्तवीर्य प्रबन्ध चम्पू** में रावण और कार्तवीर्य अर्जुन का वर्णन है।

कथा साहित्य में रामकथा

कथा साहित्य की सबसे प्राचीन कृति गुणाढ्य विरचित वृहत्कथा है। इस वृहत्कथा के कालान्तर में जो दो रूपान्तर—कथासरित्सागर तथा वसुदेवहिण्डि हुए उसमें रामकथा सुलभ है। गुणाढ्य की इस रचना का संक्षेप आचार्य क्षेमेन्द्र तथा बुधस्वामी ने भी किया

---

१. 'चम्पू रामायण'—डा० करुणा श्रीवास्तव

किन्तु बुधस्वामी के 'बृहत्कथाश्लोकसंग्रह' में तो रामकथा का उल्लेख ही नहीं मिलता। आचार्य क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथामञ्जरी' में अति संक्षिप्त रामकथा अवश्य मिलती है।

वसुदेवहिण्डि—५वीं शताब्दी में बृहत्कथा का एक प्राकृत संस्करण जैन परम्परा में संघदास गणि ने वसुदेवहिण्डि के नाम से तैयार की। 'हिण्डि' शब्द का अर्थ है परिभ्रमण या पर्यटन। संघदास गणि ने जो वसुदेवहिण्डि लिखी उसमें उन्होंने यद्यपि बृहत्कथा को ही आधार बनाया किन्तु ग्रन्थ के ठाट और उद्देश्य में काफी परिवर्तन किये। जहाँ बृहत्कथा लौकिक काम कथा थी वहाँ संघदास ने वसुदेवहिण्डि को धर्म कथा का रूप दिया। वसुदेवहिण्डि में २८ लम्बक एवं लगभग ११००० श्लोक प्रमाण की सामग्री है। यह महाराष्ट्री प्राकृत की गद्य शैली में लिखित है।[१] वसुदेवहिण्डि में वर्णित रामकथा[२] का प्रारम्भ रावण की अत्यन्त संक्षिप्त कथा से होता है। इसके बाद दशरथ की संतति—कौशल्या पुत्र राम, सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण एवं कैकेयी पुत्र भरत तथा शत्रुघ्न का उल्लेख है। इसके अनन्तर सीता जन्म की नवीन कथा, जिसमें प्रारम्भ में रावण तथा मन्दोदरी की पुत्री सीता का उल्लेख तथा बाद में परित्यक्ता सीता का जनक का दत्तक पुत्री बनना। सीता स्वयंवर में किसी धनुष की चर्चा नहीं है। अपितु बहुत से राजाओं में से सीता राम का वरण करती हैं। राम के १२ वर्ष के निर्वासन में मन्थरा तथा कैकेयी के दो वरों का उल्लेख। भरत, दशरथ मरण के बाद अयोध्या पहुँचकर राम के पास जाते हैं उसी अवसर पर कैकेयी पश्चात्ताप करते हुए राम से राज्य स्वीकार करने के लिए निवेदन करती है। सुग्रीव का निमन्त्रण स्वीकार कर भरत की सेना युद्ध में भाग लेती है। शेष कथा वाल्मीकि रामायण से मिलती है, केवल लक्ष्मण रावण का वध करते हैं।

कथासरित्सागर—कथासरित्सागर कहानी साहित्य का शिरोमणि ग्रन्थ है। इसे काश्मीर में पं० सोमदेव ने त्रिगर्त या कुल्लू कांगणा के राजा की पुत्री काश्मीर के राजा अनन्त की रानी सूर्यमती के मनोविनोद के लिए १०६३ और १०८१ के बीच में लिखा। ग्रन्थ में २१३८८ पद्य हैं तथा लेखक ने उसे १२४ तरङ्गों में बाँटा है। इसका एक दूसरा विभाग लम्बकों में हैं जिनकी संख्या १८ है। यह ग्रन्थ अपने वर्तमान रूप में अनेक छोटी-बड़ी कहानियों का संग्रह है। सोमदेव ने यथार्थ ही इसे कथा रूपी नदियों का सागर कहा है। इस ग्रन्थ में दो स्थलों पर रामकथा[३] वर्णित है। चौदहवीं लम्बक की तरङ्ग १०७ के अन्तर्गत वनवास से लेकर रावण वध के बाद राम की अयोध्या यात्रा तक की अत्यन्त संक्षिप्त कथा मिलती है। इसमें वाल्मीकीय कथा से कोई भिन्नता नहीं है

---

१. 'कथासरित्सागर' की भूमिका—स्व० पं० केदारनाथ शर्मा

२. रामकथा—बुल्के, पृ० (२१४, २१५)

३. रामकथा—बुल्के, पृ० (२१५, २१६)

किन्तु दूसरे स्थल पर प्रयुक्त रामकथा का एक नवीन रूप दृष्टिगोचर होता है। अलंकारवती लम्बक में कांचनप्रभा नामक विद्याधरी विरह व्याकुल नरवाहन को सांत्वना देने के उद्देश्य से रामकथा का वर्णन करती है। प्रारम्भ में विष्णु के अंशावतार, राम निर्वासन, सीताहरण तथा रावण वध का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन है। अनन्तर रजक वृत्तान्त से मिलती-जुलती सीता त्याग की कथा दी गयी है। इसके शेष वृत्तान्त की निम्नलिखित बिशेषताएँ हैं—वाल्मीकि के आश्रम में सीता की परीक्षा, पृथ्वी देवी का प्रकट होकर सीता को टिट्टिभसर के उस पार पहुँचाना लव जन्म के बाद कुश के अलौकिक जन्म की कथा। लव और कुश का राम की सेना से युद्ध तथा राम सीता सम्मिलन।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा

आदि कवि की रामकथा का अनुकरण केवल संस्कृत कवियों ने ही अपने काव्यों, नाटकों तथा अन्य पौराणिक एवं धार्मिक ग्रंथों में नहीं किया; अपितु यह रामकथा भारतीय जनों के रोम-रोम में निवास करने के कारण भारत की विभिन्न भाषाओं में समान रूप से व्यापक एवं लोकप्रिय हुई। इसी के फलस्वरूप यह भारत की विभिन्न प्रान्तीय एवं आञ्चलिक भाषाओं में प्रचलित होकर एक महत्वपूर्ण रामकथा साहित्य के रूप में अवतरित हुई। इस स्थल पर आधुनिक भारतीय भाषाओं में प्रचलित रामकथा का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया जा रहा है। विषय विस्तार के कारण उनका समग्र विवेचन न प्रस्तुत करके केवल संकेत मात्र ही प्रस्तुत किया जाएगा।

तमिल रामकथा साहित्य

कंब रामायण[१]—१२वीं शताब्दी में कंब रचित रामायण द्राविण भाषाओं का सबसे प्राचीन एवं महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है। इसमें कवि ने अनेक मौलिकताओं के साथ वाल्मीकि रामायण के प्रथम ६ काण्डों की कथावस्तु का वर्णन किया है। ध्यातव्य है कि कंब रामायण का उत्तर काण्ड उनके द्वारा रचित नहीं है, अपितु बाद में इसकी रचना ओट्टकूतन द्वारा की गई थी।[२]

तेलगू रामकथा साहित्य[3]

रंगनाथ रामायण[४]—विदेशी पंडितों के द्वारा (Italion of the east) कहीं जाने वाली तेलगू भाषा, भाषा-परिवार की समृद्ध एवं साहित्य सम्पन्न भाषा है। १३वीं

१. 'कंब रामायण'—महाकवि कंब कृत मूल तमिल से अनूदित–अनुवादक, श्री न० वी० राज गोपालन,

२. कंब रामायण—वी० एम० गोपाल कृष्णचारियर, पृ० ६

३. तेलगू साहित्य-तेलगू में रामकथा—ए० सी० कामाक्षिराव, पृ० सं० (५५–७२)

४. 'रंगनाथ रामायण' का हिन्दी अनुवाद—अनुवादक ए० सी० कामाक्षिराव

श० के प्रारम्भ में तेलगू भाषा में एक रामायण की सर्जना हुई जो 'रंगनाथ रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है। लोकप्रिय 'द्विपद छन्द' में रचित होने के कारण इस रामायण का तेलगू जनसाधारण में काफी प्रचार हुआ। इसके ६ काण्डों में वाल्मीकि रामायण के प्रथम छः काण्डों की कथावस्तु वर्णित है फिर भी इसमें बहुत-सी मौलिकताओं का समावेश है।

इसके अतिरिक्त १३वीं श० में तिक्कनयाग्वी कृत उत्तर काण्ड सम्बन्धी 'निर्वचनोत्तर रामायण'' तथा कंकटि पापराजु कृत 'उत्तर रामायण चम्पू' की सर्जना संभवतः रंगनाथ रामायण के उत्तरकाण्ड की कथावस्तु के अभाव को पूर्ण करने हेतु हुई। १४वीं श० में भास्कर कृत 'भास्कर रामायण १५वीं श० में पिंगलि सूरना कृत 'राघवपाण्डवीयमु' (द्विसन्धाय काव्य) १६वीं शता० में कुम्हारिन कवयित्री मोल्लाकृत 'रामायण', १७वीं श० में कट्ट वरदराजु कृत विस्तृत 'द्विपद रामायण' एवं १८वीं श० में चम्पू शैली में लिखित 'गोपीनाथ रामायण' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

मलयालम रामकथा साहित्य[1]

मलयालम साहित्य के प्राचीनतम सुरक्षित ग्रन्थ 'रामचरित' की रचना १४वीं श० में राम नामक कवि द्वारा हुई। इस रचना का वास्तविक नाम 'इराम-चरित' है। इसकी कथावस्तु वाल्मीकि रामायण के केवल युद्ध काण्ड से सम्बन्ध रखती है। इसी काल में अय्यिपिप्लै आशन कृत 'राम कथप्पाट्टु' में भी राम-रावण युद्ध की कथा वर्णित है।

१५वीं श० में पूनम नंपूतिरि कृत 'रामायण चम्पू' केरली के कलेवर में साहित्य का श्रृङ्गार है। इसमें रावण का जन्म, रामावतार, ताड़का निधन, अहल्या मोक्ष से लेकर स्वर्गारोहण तक की सम्पूर्ण वाल्मीकीय रामकथा वर्णित है। १५वीं श० में ही निरणम कवियों में प्रमुख रामप्पणिक्कर कृत 'रामायण' तथा केरल राज वर्मा कृत 'केरल वर्मा रामायण' का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

१६५० ई० में महाकवि तुन्चन्तु रामानुजन एपुत्तुच्छन ने कई काव्यों की सर्जना की, जिसमें 'अध्यात्म रामायण' और 'रामायणम्' प्रमुख हैं।

१७वीं श० के उत्तरार्द्ध में 'कृष्णनाट्टम्' केरल में बहुत लोकप्रिय था, परन्तु कालान्तर में 'रामनाट्टम' की लोकप्रियता हो गयी। कहते हैं कि कथकलि का स्वर्ण युग 'धर्म राजा' का काल माना जाता है। धर्म राजा के आश्रितों में राघवप्पिषारटी ने 'रावणोद्भवम्' तथा पतियिक्कल ने 'रामानुकरणम्' नामक रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की।

---

१. मलयालम रामकथा साहित्य हेतु वि० द्र०—मलयालमसाहित्य का इतिहास—डा० के० भास्करन नायर

१८वीं श० में विद्वान कोयितंपुरान ने 'रावणविजय' नामक एक विशाल रचना की। इसमें कवि ने रावण को एक सरल तथा मिलनसार व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। १८वीं श० में ही शंकुण्णि वैयम्मल ने 'रामकर्णामृतम्' तथा कल्लूर नंपतिरि ने 'वालि विजयम्' की रचना की। १८८२ ई० के लगभग चात्तकुट्टी मन्नाटीयार ने 'जानकी परिणय' तथा उत्तररामचरितम्' को एवं राजवर्मा ने 'आश्चर्यचूणामणि' को मलयालम भाषा में अनूदित किया। १८वीं श० में ही पौराणिक कथाओं को आधार मानकर वी० कृष्णन तंपी ने 'ताटका वध' नामक संगीत नाटक लिखा।

सन् १६०२ के बाद लगभग २० वर्षों में मलयालम काव्य क्षेत्र में बड़ी प्रगति हुई। 'रामचन्द्र विलासम्' इस समय का सर्वप्रथम राम काव्य कहा जाता है।

कुमार नाशन ने उत्तर रामायण की कथा को अवलम्ब मानकर 'चिन्ताविष्टयाय सीता' (चिन्ताकुल सीता) लिखा। इसके अतिरिक्त कुट्टिपुरत्तु नायर ने प्रतिमानाटकम् का का अनुवाद किया, नीलकंठतीर्थपादर ने 'श्रीरामगीता भाषा' तथा वी० नारायणक्कुरूप ने 'अध्यात्मरामायण' पर सुन्दर भाष्य लिखा। अधुनातनकाल में कुञ्चिरामनायर ने 'श्रीराम-चरितम्' नामक ग्रंथ की सर्जना की।

उपर्युक्त रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थों के अतिरिक्त मलयालम साहित्य में 'रावण विजय' चम्पू नामक एक ग्रन्थ का उल्लेख प्राप्त होता है जिसके रचयिता का नाम अज्ञात है। एक अन्य पुस्तक उण्णवारियर कृत 'रामपञ्चशति' की युक्तियुक्तता के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है।

कन्नड़ रामकथा साहित्य[1]

कन्नड़ साहित्य में विपुल रामकथा सुलभ है। इसमें रामकथा सम्बन्धी महाकाव्य खण्डकाव्य एवं नाटकों की रचना हुई। कन्नड़ का प्रारम्भिक लक्षण ग्रन्थ कविराज मार्ग से स्पष्ट होता है। लगभग क्रि० श० नवीं श० के पूर्व (सन् ८५० ई०) में 'रामायण' की रचना की गयी थी। उसमें कई रामायण से सम्बन्धित उद्धरण दिए गए हैं।

नृपतुंग के कविराज मार्ग के अनुसार प्रथम रामकथा सम्बन्धी काव्य पोन्न के 'भुवनैक्य रामाभ्युदय' के नाम से विख्यात है जो आज तक उपलब्ध नहीं है। इसका रचनाकाल क्रि० श० ६५० माना गया है।

---

१. **विशेष द्रष्टव्य**—कन्नड़ साहित्य में रामकथा के लिए—
   (अ) कन्नड़ साहित्य में रामकथा परम्परा—डा० हिरण्यमण्य-मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ७५१
   (ब) कन्नड़ साहित्य सौरभ—डा० हिरण्यमण्य, पृ० २३

जिन भक्त कवि नागचंद्र द्वारा 'पम्प रामायण' की रचना लगभग क्रि० श० (११००-१२००) के बीच हुई थी। महाकवि पम्प के पदचिन्हों पर चलकर नागचंद्र ने पम्प रामायण की रचना की। इसकी सम्पूर्ण कथावस्तु प्रधानतया विमलसूरि के पउमचरियं से ली गई है।

जैन कवि कुमुदेन्दु मुनि ने लगभग १२७५ ई० में 'कुमुदेन्दु रामायण' की रचना की। देशी छन्द षट्पदी में लिखे गए इस रामायण की कथावस्तु नागचंद्र के अनुकरण पर ही विमलसूरि के पउमचरियं से उद्धृत है। सम्पूर्ण काव्य प्राप्त नहीं है।

१६वीं० श० में कुमार वाल्मीकि ने 'तोरवे रामायण' की रचना की। कुमार वाल्मीकि तोरवे नामक गाँव के निवासी तथा वहाँ के ग्राम देवता नरसिंह के अनन्य भक्त थे। ऐसा लगता है कि उन्होंने उनकी स्मृति में इस रामायण की रचना की थी। इसीलिए इसका नाम तोरवे रामायण पड़ा। तोरवे रामायण ६ काण्डों एवं ५०० भामिनी षट्पदी छन्दों में लिखा गया है। इसके कुछ प्रसङ्ग इतने मौलिक हैं कि वे अन्य किसी रामकथा सम्बन्धी ग्रंथ में सुलभ ही नहीं हैं।

तोरवे रामायण के बाद कन्नड़ भाषा में रामकथा विषयक अत्यन्त समृद्ध साहित्य की सृष्टि हुई किन्तु रामकथा के विकास की दृष्टि से इसमें कोई महत्वपूर्ण सामग्री नहीं मिलती है। उनका संक्षिप्त उल्लेख निम्नलिखित है।

१६०५ ई० में कवि सिम्मरस कृत 'मारकण्डेय रामायण' (षट्पदी छंद एवं १९०० पद्य), १६५० ई० में निजगुणाचार्य कृत 'अद्वैत रामायण', क्रि० श० १७५०ई० में चन्द्रशेखर तथा पद्मनाभ कृत 'रामचन्द्र चरित' (सांगत्य छन्द), १७४८ ई० में तिम्ममात्य कृत 'रामाभ्युदय', 'कुसुमांजरी' तथा 'आनन्द रामायण' का अनुवाद (षट्पदी छंद), १७९२ ई० में देवचन्द्र कृत 'रामकथावतार' चम्पूकाव्य), १७७० ई० में वेंकाताटय कृत 'रामायण' (वार्धिक षट्पदी छंद), १७०० ई० में रचित शंकररामायण' (भामिनी षट्पदी छंद) के कर्ता का नाम भी अज्ञात है, १६०० ई० में रचित 'मूलक रामायण' (भामिनी षट्पदी छंद) के कर्ता का नाम भी अज्ञात है, १७५० ई० में हरिदास कृत 'मूल बाल रामायण' (भामिनी षट्पदी छंद), १८५० ई० में चन्द्रसागर वर्मा कृत 'जिन रामायण' (भामिनी षट्पदी छंद) अलसिंगाचार द्वारा 'श्रीमद्रामायण'(अनूदित) का समय अज्ञात है, १९१३ ई० में रामकृष्ण राव द्वारा 'श्रीराम चरित्र' (अनूदित) १९३८ इ० में पं० के० आर० नरसिंहय्या कृत 'संग्रह रामायण' (भामिनी षट्पदी छंद), १६०० ई० नारायण द्वारा, उत्तर रामकथा (भामिनी षट्पदी छंद), १०४० ई० में कवयित्री हलवनकट्टे गिरियमना कृत 'सीता कल्याण', १७५० ई० में सुब्रमण्य कृत 'हनुमद् रामायण' (कंड छंद), क्रि० श० १६५० ई० में तिरुमल वैद्य कृत 'उत्तररामायण'

(भामिनी षट्पदी छंद), लगभग १८वीं श० में वी० नगर पुट्टण कृत 'पंचवटी रामायण', पुट्टण अथवा नन्दलिके लक्ष्मीनारायण कृत रामाभिषेक, राम पट्टाभिषेक तथा अद्भुत रामायण का समय अज्ञात है, १८३७ ई० में सोसले अय्य शास्त्री कृत 'कर्नाटक शेष रामायण' (वार्षिक षट्पदी छंद), कवयित्री महालक्ष्मी कृत 'श्रीरामभिषेक' का समय अज्ञात है, पं० के० आर० नरसिंहय्या ने रघुवंश का अनुवाद करके 'रघुपति चरित' लिखा जिसका समय अज्ञात है, १८वीं० श० में उत्तररामचरितम् के आधार पर घोड़ों-नरसिंह महबागिल ने 'उत्तररामचरित' नाटक की सर्जना की, १८३६ ई० में श्री कण्ठ्य शास्त्री ने 'वालि' नामक खण्डकाव्य की रचना की, ११४८ ई० में मुद्दा तिम्मपय्या ने 'नवनीत रामायण' लिखा, डा० वी० गुण्डप्पा कृत 'श्रीराम परीक्षा' (खण्डकाव्य), पी० टी० नरसिंहाचार्य कृत 'अहल्या' (गीति नाटिका), तथा तिम्मणाचार्य कृत 'श्रीहनुमद् विलास' (वचनगीतिका), का समय अज्ञात है, तुलसीदादास कृत रामचरितमानस का कवितानुवाद 'रामचरितमानस' नामक किसी कवि द्वारा किया गया है, १८३६–१८४८ के मध्य के० वी० पुट्टप्पा ने 'श्रीरामायणदर्शनम्' लिखा।

उड़िया रामकथा साहित्य[1]

उड़िया साहित्य के प्राचीनतम रामकथाकार के रूप में सारलादास (१५वीं श०) ही जाने जाते हैं। दुर्भाग्यवश उनका रामायण उपलब्ध नहीं है। उनकी रचनाओं में केवल महाभारत तथा चण्डी पुराण प्रकाशित है। सारलादास ने अपने महाभारत में बहुत से स्थलों पर रामकथा विषयक सामग्री का समावेश किया है तथा आदि, वन एवं उद्योग पर्वों में समस्त रामायण का संक्षिप्त रूप भी प्रस्तुत किया है।

१६वीं शती के प्रारम्भ में उत्कल वाल्मीकि बलरामदास द्वारा उड़िया साहित्य के सबसे प्रसिद्ध रामायण की रचना की गयी, जो जगमोहन रामायण, दाण्डि रामायण तथा बलरामदास रामायण के नामों से प्रचलित है। यद्यपि इसका आधार वाल्मीकि रामायण ही है, किन्तु रामकथा के विकास की दृष्टि से इसमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए हैं। उन्होंने एक 'ब्रह्माण्ड भूगोल' की रचना की है जिसमें समस्त रामकथा को शरीर में अवतरित किया गया है। 'कन्तकोइलि' भी बलरामदास की एक छोटी सी रचना है जिसमें हरण के समय सीता के करुण क्रन्दन की अभिव्यक्ति की गई है। १६वीं श० के उत्तरार्ध में अर्जुनदास ने 'राम विभा' नामक १२ सर्गों के एक गीतिकाव्य की रचना की।

---

1. उड़िया में राम साहित्य—देवी प्रसन्न पट्टनायक—मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ७७०-७७७

१७०० ई० के लगभग सिद्धेश्वर दास ने 'विलंकारामायण' की रचना की। इसका प्रधान वर्ण्य विषय है सीता द्वारा पूर्व खण्ड में सहस्रस्कन्ध-रावण वध तथा इसके अतिरिक्त १७वीं श० के केवल तीन रामकथा विषयक ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है— धनंजयभंज का सर्ग बद्ध 'रघुनाथ विलास' शंकरदास कृत 'बारमासी कोइलि' तथा हलधरदास कृत 'अध्यात्म रामायण' का उड़िया अनुवाद।

उड़िया राम साहित्य में १८वीं श० समृद्धि का युग था। इनमें से तीन रचनाओं का वर्ण्य-विषय सहस्र-स्कन्ध रावण-वध है—सिद्धेश्वर कृत 'विलंका रामायण', वारनिधिदास कृत 'विलंका खण्ड' तथा बलरामदास का 'विलंका रामायण'। 'विचित्र रामायण' नामक दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं—एक विश्वनाथ खुंटिया की तथा दूसरी भुइआँ माधवदास की। इसी शताब्दी में उपेन्द्रभंज ने 'रामलीलामृत' तथा 'वैदेही विलास' की रचना की। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित काव्य ग्रंथों का उल्लेख प्राप्त होता है—रामदास का 'रामरसामृत', गोपीनाथ कवि भूषण कृत 'रामचन्द्र विहार', कान्हुदास का 'रामरसामृतसिन्धु', त्रिपुरारिदास का 'रामकृष्ण-केलिकल्लोल', ब्रजबन्धु सामन्तराय का रामलीलामृत', ईश्वरदास कृत 'रामलीला', लक्ष्मीधरदास कृत 'अगदपणि' तथा मागुणि पट्टनायक का 'रामचन्द्र विहार'। इसी शताब्दी में तेलेंगा गोपाल, नरहरि कविचन्द्र, सूर्यमणि च्याऊ, पट्टनायक तथा सारलादास ने अध्यात्मरामायण का अनुवाद किया है। हरिहर कवि के पुत्र वनमालीदास ने चम्पूरामायण को अनूदित कर उसका नाम 'सुचित्र रामायण रखा। १८वीं श० में नाट्य साहित्य का भी प्रवर्तन हुआ था—वैश्य सदाशिव, पीताम्बर राजेन्द्र, अनंग, नरेन्द्र, विक्रम नरेन्द्र तथा कल्पतरुदास सभी लोग एक रामलीला' नामक रचना के लेखक माने जाते हैं।

१९वीं तथा २०वीं श० में भी रामकथा विषयक रचनाओं की सृष्टि होती रही। १९वीं श० में रामकृष्ण चरण पट्टनायक कृत 'रामायण', भुवनेश्वर कविचन्द्र का 'सीतेश विलास', केशव पट्टनायक का नृत्यरामायण' तथा केशव त्रिपाठी का 'पूर्ण रामायण' उल्लेखनीय है। 'हलिआ रामायण' हल चलाते समय के गीतों का संकलन है।

काश्मीरी रामकथा साहित्य[1]

१८वीं शताब्दी में दिवाकर प्रकाश भट्ट द्वारा रचित काश्मीरी रामायण अथवा 'रामावतारचरित' में दशरथ यज्ञ से लेकर सीता के भूमि प्रवेश तथा राम के स्वर्गारोहण

१. रामकथा—बुल्के, पृ० सं० २२९, २३०

तक, वाल्मीकीय रामकथा वर्णित है। परन्तु कवि ने इसमें बहुत अधिक परिवर्तन एवं परिवर्द्धन भी किया है। समस्त काव्य शिव-पार्वती-संवाद के रूप में प्रस्तुत किया है।

असमीया रामकथा साहित्य[1]

असमीया राम साहित्य की प्रमुख प्रचलित रचना 'माधवकंदली रामायण' है। इस रामायण में अयोध्या काण्ड से युद्ध काण्ड तक की ही कथा माधवकन्दली कृत मानी जाती है। शेष उत्तरकाण्ड एवं बालकाण्ड की रचना क्रमशः शंकरदेव तथा उनके शिष्य माधवदेव ने किया है। माधवकन्दली रामायण के कुछ वृत्तान्त छोड़कर समग्र ग्रंथ की कथावस्तु वाल्मीकि रामायण से साम्यता रखती है।

१४वीं श० में हरिवर विप्र कृत लव-कुश युद्ध की रचना हुई जिसमें सीता त्याग से उनके पाताल प्रवेश तक की कथा वर्णित है। १६वीं श० में दुर्गावर कृत 'गीति रामायण', अनंत कंदली कृत 'जीवस्तुति रामायण', महीरावण वध, पातालखण्ड रामायण, 'सीतार पाताल प्रवेश' (नाटक), शंकरदेव कृत 'उत्तरकाण्ड', राम विजय' (नाटक), माधवदेव का बालकाण्ड तथा अनंत ठाकुर आता का 'श्रीरामकीर्तन' आदि उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

इसी प्रकार १७वीं तथा १८वीं श० के अन्तर्गत धनंजय कृत 'गणक चरित', गंगाराम दास कृत सीता वनवास, भवदेव विप्र का श्रीरामचंद्र अश्वमेध, श्रीचंद्र भारती कृत महीरावण वध, रघुनाथ महंत कृत 'कथा रामायण' एवं 'अद्भुत रामायण' आदि ग्रंथों की रचना हुई।

बंगला रामकथा साहित्य[2]

१५वीं श० के अन्त में पयार छंद में कृत्तिवास ओझा ने 'कृत्तिवास रामायण' अथवा 'श्रीराम पांचाली' की रचना गौडेश्वर को प्रेरणा से की थी। कृत्तिवास रामायण बंगला साहित्य की नींव का पत्थर है। यह रामायण इतना लोकप्रिय हुआ कि प्रत्येक सम्प्रदाय ने इसमें बहुत कुछ परिवर्तन करके अपनी साम्प्रदायिक छाप जमाने की चेष्टा की है। यही कारण है कि आज इसका जो रूप मिलता है, वह पर्याप्त प्रक्षिप्तांशों से युक्त है। कृत्तिवास रामायण को सभी लोगों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इसमें राम वनगमन से लेकर सीता के भूमि में प्रविष्ट हो जाने तक का वृत्त दिया हुआ है। यद्यपि कृत्तिवास रामायण वाल्मीकि रामायण पर आधारित है परन्तु उसमें बहुत सी सामग्री ऐसी है जो लोक क्षेत्र से ली गयी है।

---

१. असमीया में राम साहित्य—श्री विष्णुकान्त शास्त्री—मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ—पृ०सं० ८३१–८३९

२. बङ्गला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—डा० सत्येन्द्र, पृ० सं० ८१–८२

कृत्तिवास रामायण के बाद भी बंगला में २०-२१ अनुवाद मिलते हैं। ये सभी स्वतन्त्र अनुवाद हैं। इसके अन्तर्गत षष्ठीवर सेन कृत 'रामायण' (अपूर्ण), गंगादास ने पिता षष्ठीवर सेन के रामायण को पूर्ण किया। द्विज दुर्गादास कृत 'रामायण' १६५५ई० में, जगतरामकृत 'रामायण' १६८०ई०में तथा रामप्रसादने पिता जगतराम के रामायण का अंतिम काण्ड लिखा। १८वीं शती के अंतिम चरण में शिवचरण कृत 'शारदा मङ्गल' रामायण, १७४२ ई० में अद्भुताचार्य कृत 'आश्चर्य रामायण', कवि चन्द्र चक्रवर्ती कृत 'अङ्गद का दौत्य' फकीर राम कवि भूषण कृत 'अङ्गद का दौत्य', रघुनन्दन गोस्वामी कृत 'राम रसायन' १८वीं श० के अन्तिम चरण में राममोहन कृत 'रामायण' तथा १८५० ई० में राम गोविन्द दास कृत 'रामायण' उल्लेखनीय हैं।

इन पूर्ण रामायणों के अतिरिक्त ऐसे कितने ग्रन्थ प्राप्त होते हैं जो रामायण की किसी खण्ड कथा पर लिखे गए हैं। कुछ ऐसे भी ग्रन्थ हैं जिनमें प्रसङ्गात् रामचरित्र का समावेश किया गया है। ये ग्रन्थ १४वीं से १६वीं शती के बीच में रखे गये हैं। इनमें गुणराज खाँ कृत श्री धर्म इतिहास, रामजीवन रुद्र कृत कौशल्य चौशिका, गुणचन्द्र के पुत्र द्वारा रचित सीतार वनवास, लोकनाथ सेन कृत लव कुशेर युद्ध, भवानीनाथ कृत परिजात हरण, द्विज तुलसीदास कृत रायबर, भवानीचन्द्र कृत रामेर स्वर्गारोहण भवानीदास कृत लक्ष्मण-दिग्विजय, द्विज दयाराम रामायण, काशीराम कृत रामायणी कथा, जगत वल्लभ कृत जगवल्लभ रामायण, राजा पृथ्वी चन्द्र कृत भुशुण्डि रामायण, फकीर राम कृत लङ्का काण्ड, वीकन शुक्ल दास कृत अरण्य काण्ड तथा काशीनाथ कृत कालनेमीर रायबर प्रमुख हैं।

बङ्गला साहित्य के आधुनिक काल में भी काव्यों तथा नाटकों के विविध क्षेत्रों में रामकथा सम्बन्धी कृतियों का उल्लेख प्राप्त होता है। जिनमें से कुछ का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—१८८१-८२ ई० में गिरीश चन्द्र घोष ने रामायण विषयक—सीतार वनवास, रामेर वनवास, सीतार विवाह, सीताहरण तथा लक्ष्मण वर्जन आदि नाटकों का सृजन किया। १८०० से १८५० ई० के अन्तर्गत ही रघुनन्दन स्वामी ने रामायण के अनुकरण के आधार पर 'राम रसायन' नामक स्वतन्त्र रचना की। १८५८ ई० के लगभग मधुसूदन दत्त ने 'मेघनाथ वध' नामक एक वृहद् काव्य लिखा। इसी के साथ १८६२ ई० में मधुसूदन का 'वीराङ्गना' काव्य भी प्रकाश में आया, जिसमें रामकथा के विभिन्न स्त्री पात्रों के विषय में उल्लेख है। १८१८ ई० में प्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चटर्जी ने 'सीताराम' नामक एक उपन्यास की रचना की जिसमें रामकथा प्राप्त होती है।

हिन्दी रामकथा साहित्य

हिन्दी रामकथा साहित्य में तुलसीदास का एकाधिपत्य है। उनकी समस्त कृतियाँ उनके इष्टदेव राम से ही सम्बन्धित हैं, परन्तु इन सब में 'रामचरितमानस' ही सर्वाधिक लोकप्रिय प्रमाणित हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने—दोहावली, कवित्त रामायण, गीतावली, रामचरितमानस, रामाज्ञा प्रश्न, विनयपत्रिका, रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकीमंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, और कृष्ण गीतावली जैसे १०-१२ ग्रंथों का उल्लेख किया है।[1] 'शिवसिंह सरोज' में रामसतसई; संकट मोचन, हनुमद् बाहुक रामशलाका, छन्दावली, छप्पय रामायण, कड़खा रामायण, रोला रामायण, झूलना रामायण तथा कुंडलियाँ रामायण प्रभृति दस अन्य ग्रंथों का नाम भी गिनाया गया है। परन्तु इन सभी रचनाओं में रामचरितमानस ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय है। हिन्दी रामकथा साहित्य के विकास में रामचरितमानस तथा तुलसीदास के अन्य ग्रंथों का अपूर्व योगदान है।

तुलसीदास के पूर्व का हिन्दी राम साहित्य अधिक विस्तृत नहीं है। गोस्वामी जी के पूर्व हिन्दी साहित्य के आदि काल की कृतियों से मंगलाचरण अथवा स्तुति के रूप में कहीं-कहीं रामकथा के कुछ प्रसंग दृष्टिगत होते हैं। 'पृथ्वीराजरासो' में 'दशावतार वर्णन' वस्तुतः मंगलाचरण के रूप में है। इसके अन्तर्गत रामावतार से संबद्ध लगभग ३८ छन्दों में तथा कुछ संस्करणों के लगभग १०० छन्दों में रामकथा के कुछ प्रमुख प्रसंग वर्णित हैं।[2] महाकवि सूरदास रचित 'सूरसागर' के प्रथम खण्ड के प्रथम, द्वितीय एवं दशम स्कंध के कई पदों से राम एवं उनके अवतार का उल्लेख प्राप्त होता है।[3] नवम स्कंध द्वितीय खण्ड में तो सम्पूर्ण रामकथा लगभग १५७ पदों में वर्णित है।[4] रामचरितमानस की भाँति ये सात काण्डों में विभाजित हैं।

गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व हिन्दी की रामकथा परम्परा का विकास यदि स्वामी रामानन्द (१५३५ ई०) से स्वीकार किया जाय तो कोई अनौचित्य नहीं होगा। रामानन्द के हिन्दी में रचित कुछ पद सुप्रसिद्ध हैं। इन पदों के विषय में प्रामाणिक रूप से कुछ कहना ठीक नहीं है, केवल परम्परागत प्रसिद्धि के कारण ही इन्हें उनके द्वारा रचित मानना उचित है। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा रचित 'रामरक्षास्तोत्र' की भी सूचना

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० नगेन्द्र, पृ० २०२
३. पृथ्वीराजरासो में रामकथा—मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ—विपिन बिहारी त्रिवेदी, पृ० ६७७
४. सूरसागर प्रथम खण्ड—सम्पादक नन्ददुलारे बाजपेयी

मिलती है।[1] तुलसीदास के पूर्व रामभक्त कवियों में विष्णुदास का नाम उल्लेख्य है। इन्हें वाल्मीकिरामायण के हिन्दी रूपान्तरकर्ता के रूप में जाना जाता है। ईश्वरदास (१६वीं श० का पूर्वार्द्ध) के 'भरतमिलाप' में अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु का दोहा चौपाईयों में वर्णन किया गया है। इनके 'रामजन्म' तथा 'अंगदपैज' भी सुरक्षित हैं।

तुलसीदास के समकालीन कवियों में अग्रदास तथा नाभादास प्रमुख हैं। अग्रदास के मुख्य ग्रंथों में ध्यानमञ्जरी, अष्टयाम, रामभजनमञ्जरी, उपासना बावनी और पदावली प्रमुख हैं नागादास ने भी रामचरित से सम्बन्धित 'अष्टयाम' की रचना की। इसके अतिरिक्त केशवदास कृत रामचन्द्रिका, सीढ़ी मेहरबान का आदि रामायण तथा लालदास कृत अवधविलास प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है।

हिन्दी राम काव्य परम्परा में कुछ जैन कृतियों का भी उल्लेख मिलता है, जिनमें से मुनि लावण्य प्रणीत रावण-मन्दोदरी-संवाद, ब्रह्मजिनदास रचित रामचरित या रामरास और हनुमन्त रास तथा ब्रह्मरामल्ल, सुन्दरदास प्रणीत हनुवन्तगामी कथा तथा हनुमानचरित प्रमुख है। जैनी राम साहित्य के समय सुन्दर कृत सीताराम चौपाई भी विशेष उल्लेखनीय है।[2] जैनेतर रचनाओं में लक्ष्मणायण (१६वीं श०) का तथा नरहरिदास कृत अवतारचरित का रामावतार विषयक अंश रामचरितमानस तथा रामचन्द्रिका पर निर्भर है।

गोस्वामी तुलसीदास के बाद हिन्दी साहित्य में रामकथा सम्बन्धी विपुल ग्रंथों की सर्जना हुई। तुलसीदासोतर रामकाव्य के मध्य युग[3] (१६५०–२०१८ संवत्) में केशवदास कृत रामचन्द्रिका (सं० १६१२–१६७४), सरजू राम पंडित कृत जैमिनि पुराण (सं० १८०५ में वर्तमान), श्री मधुसूदन कृत रामाश्वमेध (सं० १८३९) पद्माकर कृत रामनरायन (स० १८१०–१८८०), गणेश कृत वाल्मीकिरामायण, श्लोकार्थ प्रकाश (१८५०–१८९०), नवलसिंह कायस्थ कृत आल्हा रामायण, सीता स्वयम्वर, रूपका रामायण, रामायण सुमिरिनी, राम रहस्य कलेवा (सं० १८७३–१८२५), राजा रुद्र प्रताप सिंह कृत सुसिद्धान्तोतम रामखण्ड (१८वीं श० उत्तरार्ध), रघुराजसिंह कृत रामस्वयम्वर (सं० १८८०–१९३६), बन्दीदीन दीक्षित, कृत विजय रावो खण्ड (२० वीं श० पूर्वार्द्ध), रघुनाथदास रामसनेही कृत विश्राम सागर (सं० १९११ में वर्तमान); रामनाथ ज्योतिषी कृत रामचन्द्रोदय (सं०

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—डॉ० नगेन्द्र, पृ० २०३

२. विशेष द्रष्टव्य—राजस्थानी भाषा में रामकथा सम्बन्धी ग्रंथ—अगरचन्द नाहटा—मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ८४०–८४३

३. तुलसीदासोतर हिन्दी रामसाहित्य—डॉ० रामलखन पाण्डे—अभिनव भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

१८८६ वि०) विहारी लाल शर्मा कृत कौशलेन्द्र कौतुक (सं० १८८३ वि०) आदि उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ अभिनेय नाटकों की भी रचना हुई। इसमें प्राणचन्द्र चौहान (सं० १६६७), हृदयराम (सं० १६८०), तथा राम (१७३०) का हनुमन्नाटक और विश्वनाथ सिंह (१८७८-१७८७) कृत आनन्द रघुनन्दन नाटक उल्लेखनीय है। विश्वनाथ सिंह की राम साहित्य पर और भी कृतियां उपलब्ध हैं—अष्टयाम आह्निक, गीता रघुनन्दन, शतिका, रामायण, गीता रघुनन्दन प्रामाणिक, विनय-पत्रिका की टीका, राम चन्द्र की सवारी, आनन्द रामायण, गीतावली पूर्वार्द्ध, संगीत रघुनन्दन आदि।

अभिनेय नाटकों के अतिरिक्त वर्णनात्मक काव्यों (सं० १८४२-१८५०) की एक सूची प्राप्त होती है इसके अन्तर्गत नाभादास तथा खुमान कृत अष्टयाम, जनकराज किशोरी शरण कृत जानकी शरणमणि, ललकदास कृत सत्योपाख्यान, रघुराजसिंह कृत रामाष्टयाम तथा सरदार कृत रामलीला प्रकाश आदि उल्लेखनीय है।

संवत् १६८७-२०१८ के अन्तर्गत रामकथा के अंगभूत चरित पर लिखे कुछ काव्यों का उल्लेख मिलता है। इसमें भगवतराम खींची (सं० १८७०) तथा गणेश (१८५०-१८१०) कृत हनुमत पचीसी, खुमान (सं० १८३०-१८८०) कृत हनुमान नखशिख, हनुमान पंचक तथा हनुमान पचीसी, हरितालिका प्रसाद द्विवेदी कृत विरुदावली (हनुमान स्तुति), लक्ष्मीनारायण सिंह ईश कृत लंकादहन, स्वामी ब्रह्माश्रम कृत हनुमान हृदय (सं० २०१८), रामलल पाण्डे कृत हनुमच्चरित एवं हनुमन्नाटक १८८६ वि०), सरदार कृत हनुमत भूषण तथा संवत् १७०६ में सेनापति के 'कवित्त रत्नाकर' से राम चरित सम्बन्धी कवित्त प्राप्य हैं।

खड़ी बोली के आरम्भिक गद्य साहित्य के अन्तर्गत रामप्रसाद निर्जनी कृत भाषा योगवशिष्ठ, दौलतराम कृत पद्मपुराण तथा सदलमिश्र कृत रामचरित में भी रामकथा पायी जाती है।[1]

मधुरा भक्ति प्रमुख तुलसीदासोत्तर रामकाव्य के मध्ययुग[2] में (सं० १७००-२००० के अन्तर्गत) गुणी सुखरामदास टण्डन कृत, रामविलास (१८३२ ई०) बनादास कृत उभयप्रबोधक रामायण (१८८२ ई०), महात्मा शूर किशोर कृत श्री मिथिला विलास (१८८५ ई०), राम प्रियाशरण कृत सीतायन ग्रंथ (१८८७ ई०) रामचरन कवि कृत जानकी समर विजय (१८३३ ई०) आदि ग्रंथ प्राप्त होते हैं।

इनके अतिरिक्त हिन्दी रामकथा साहित्य में कुछ गीत तथा पद रचनाकार कवि और उनकी कृतियाँ मिलती हैं। इसके अन्तर्गत बालअली जी कृत स्नेह प्रकाश; ध्यान

---

१. तुलसीदासोत्तर हिन्दी राम साहित्य—डा० रामलखन पाण्डे

२. रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना—डा० भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र

मंजरी (सं० १७२६-१७४६), बालानन्द के स्फुटपद (सं० १७१२). रूपलाल कृत रूपसखी (१६वीं० श० वि०), सूर किशोर के स्फुटपद (सं० १७६०) रामसखा कृत पदावली, नृत्य, राघव मिलन, दोहावली (१८वीं० श०), कृपानिवास कृत लगनपचीसी, अनन्य चिन्तामणि, रामरसामृतसिन्धु, रस पद्धति भावना, पच्चीसी; पदावली (१६वीं० वि०), रामचरनदास कृत पंचशतक, रसमालिका, अष्टयाम पूजाविधि, राम पदावली, झूलन, कौशलेन्द्र रहस्य, रामनवरत्नसार-संग्रह (१७६० सं०), जीवाराम कृत युगल प्रिया पदावली (१६वीं० श० वि०), जनकराज किशोरीशरण रसिक अली कृत सिद्धान्त मुक्तावली १६वीं श० वि०), स्वामी युगलनन्द शरण जी कृत सियभाव प्रभा दोहावली, युगल विनोद विलास (२०वीं० श०) सीताराम शरण कृत सीताराम शोभावली, प्रेम पदावली, श्रीराम शत वन्दना श्रीराम रसमंग विलास, राम झाँकी विलास (२०वीं० श०) रामशरण कृत सोहर, पदावली (सं० १८६४), हनुमान शरण मधुर अली कृत—लीला, पदावली (२०वीं० श०) बैजनाथ कुरमी कृत रामसिया संयोग पदावली (१८८० वि०), श्री शीलमणि कृत विवेक गुच्छा, सियावर मुद्रिका (सं० १८७७), जानकीवर प्रीतिलता-महात्म्य (सं० १८७८), ज्ञान अलि सहचर जी कृत सियावर केलि पदावली, सियालाल शरण कृत वृहद् उपासना रहस्य, प्रेम लता पदावली (सं० १८२८), रामनारायण दास कृत भजन रत्नावली (२०वीं श० वि०), युगल मंजरी जी कृत भावनामृत (२०वीं० श०) रामवल्लभ शरण कृत युगल विहार पदावली (सं० १६१६), सीताराम शरण भगवान प्रसाद कृत नाभादास के भक्तमाल की टीका, भक्तिसुधाबिन्दुस्वादतिलका, रामायण रसविन्दु, मानस अष्टयाम, प्रेम-गंग-तरंग, स्फुटपद, सीताराम शरण शुभ लीला कृत युगलोत्कण्ठ प्रकाशिका (२०वीं० श० वि०) रामजी के स्फुटपद तथा रामवल्लभ शरण प्रेमानिधि कृत वृहत्कोशल खण्ड और शिव संहिता की टीका आदि है।

हिन्दी राम काव्य के आधुनिक युग[1] (सं० १६७७ से २०२० तक) में भी अनेक ग्रन्थों की सर्जना हुई है। इनका विवरण निम्नलिखित है—रामचरित उपाध्याय कृत रामचरित चिन्तामणि (सं० १६७०), श्री शिवरत्न शुक्ल कृत श्रीराम तिलकोत्सव तथा श्रीरामावतार, राधेश्याम कथावाचक का राधेश्याम रामायण, श्याम नारायण पाण्डे कृत जय हनुमान (तुमुल), गयाप्रसाद द्विवेदी कृत नन्दिग्राम काव्य (१६३६ ई०), मैथिली शरण गुप्त कृत साकेत, पंचवटी, प्रदक्षिणा (सं० १६४३-२०२१), सूर्यकान्त निराला कृत राम की शक्ति पूजा, पंचवटी जयशंकर प्रसाद कृत चित्रकूट, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध कृत प्रिय-प्रवास, वैदेही वनवास, सुमित्रा नन्दन पन्त कृत लक्ष्मण और अशोक वन, डा० बलदेव प्रसाद मिश्र कृत कौशलकिशोर, साकेत संत, रामराज्य, चन्द्रप्रकाश वर्मा कृत सीता, शेषमणि शर्मा "मणि रायपुरी" कृत कैकेयी, केदार नाथ मिश्र 'प्रभात'

१. तुलसीदासोत्तर हिन्दी राम साहित्य—डा० राम लखन पाण्डे

कृत कैकेयी, रघुवीर शरण मित्र कृत भूमिजा, श्रीमती माया देवी शर्मा कृत शबरी, आचार्य तुलसी कृत अग्नि परीक्षा, शिव शंकर त्रिपाठी कृत अभिशप्ता साम्राज्ञी तथा धरणिजा-परिचय तथा डा० रामकुमार वर्मा कृत उत्तरायण आदि।

इसके अतिरिक्त रामचरित उपाध्याय का विभीषण एवं गुलाब कवि की कैकेयी पर कविताएँ माधुरी पत्रिका में तथा गुलाब खण्डेलवाल का ही अहल्या खण्ड-काव्य प्रसाद पत्रिका में प्रकाशित है। श्री उमाकान्त मालवीय ने 'अभिशप्त अमर ज्योति' तथा देवराज दिनेश ने 'विभीषण' नाम से मुक्तक काव्य लिखा। मुक्तक काव्यों में एस० आर० अरविन्द 'राम का अन्तर्द्वन्द' विशेष उल्लेखनीय है।

हिन्दी नाटकों और एकांकी में भी रामकथा साहित्य उपलब्ध है। इसमें सेठ गोविन्ददास कृत कर्त्तव्य, कृषि यज्ञ (एकांकी), तथा शबरी (नाटक), सद्गुरु शरण अवस्थी कृत बालि वध तथा मँझली रानी (एकाकी), मिश्रबन्धु कृत रामचरित्र (नाटक)' लक्ष्मी नारायण मिश्र कृत अशोक वन (एकांकी) एवं चित्रकूट (नाटक), सीताराम चतुर्वेदी कृत शबरी (नाटक), सर्वदानन्द वर्मा कृत भूमिजा (नाटक), डा० रामकुमार वर्मा कृत राज-रानी (नाटक), चन्द्र पकाश वर्मा कृत त्रेता (नाटक), लक्ष्मीनारायण लाल कृत रावण (एकांकी) उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी रामकथा साहित्य के अन्तर्गत प्रेमचन्द्र कृत ।रामचर्चा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत 'वयं रक्षामः' श्री अक्षय कुमार जैन कृत युगपुरुष राम (कहानी) श्री रघुनाथ सिह कृत रामायण कथा एवं सिस्टर निवेदिता कृत रामायण कथाचक्र उल्लेखनीय हैं।

रामकथा पर मनोविश्लेषणात्मक चिन्तन से अनुप्रेरित हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत रामवृक्ष बेनीपुरी कृत सीता की मां (नाटक), जयशंकर त्रिपाठी कृत आञ्जनेय (खण्ड काव्य) तथा श्री नरेश मेहता कृत 'संशय की एक रात' (४ सर्गो का काव्य) भी महत्व पूर्ण कृतियाँ हैं।[१]

उपर्युक्त हिन्दी राम साहित्य के अतिरिक्त साहित्य सम्मेलन प्रयाग में कुछ पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं जो रामकथा से सम्बन्धित हैं। इनका नाम 'रामचरित' तथा 'राम रत्नावली' है। इनके कर्ता का नाम अज्ञात है।[२]

मराठी रामकथा साहित्य[3]

मराठी में रामकाव्य के पुरस्कर्ता संत एकनाथ हैं। इनके 'भावार्थ रामायण' की रचना १६वीं० श० के अन्त में हुई। इसमें राम का चरित्र पौराणिक शैली में

१. तुलसीदासोत्तर हिन्दी रामसाहित्य—डा० रामलखन पाण्डे

२. पाण्डुलिपियां—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृ० सं० ४१४-४१६

३. तुलसीदासी रामचरितमानस और एकनाथी भावार्थ रामायण—डा० विनय मोहन शर्मा, पृ० ४

अंकित किया गया है। 'भावार्थरामायण' की आधिकारिक कथा वाल्मीकिरामायण से ही अत्यधिक मिलती है। किन्तु इसकी अनेक प्रासंगिक कथाएँ आनन्द रामायण से ली गयी हैं। भावार्थ रामायण में केवल लोकभाषा का ही प्रयोग नहीं है अपितु लोक छन्द ओवी का भी प्रयोग है।

एकनाथ जी के पश्चात् उनके नाती ने 'संक्षिप्त रामायण' की रचना की। संवत् १६६२ में श्रीकृष्णदास ने भी 'रामायण' की रचना की जो ७८ अध्याय तथा ८०० ओवियों में पूर्ण हुआ। स्वामी रामदास की 'लघुरामायण' का भी विशेष महत्त्व है। इनकी सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड भी लोकप्रिय कृतियाँ हैं। इन्हीं की शिष्या वेणाबाई ने भी 'रामचरित लिखा'। गिरधर स्वामी ने ६ रामायणों की रचना की। १८वीं श० में माधव स्वामी ने भी तीन राम काव्यों की रचना की। इनकी 'निरोष्ठ्य रामायण' में ओष्ठ से उच्चरित शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। इनका 'रामकरुणायत्त' चित्रकाव्य है। सबसे प्रसिद्ध काव्य मोरोपन्त कृत 'रामकाव्य' है। इन्होंने १०० रामायणों की रचना की जिसमें से ७४ प्रकाशित हैं। इसके अतिरिक्त श्रीधर स्वामी का 'रामविजय' तथा अमृतराव ओक कृत शतमुख रामायण (१६वीं श०) उल्लेखनीय हैं।

गुजराती रामकथा साहित्य

गुजराती साहित्य में रामकथा की अपेक्षा कृष्णकथा को अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। तथापि गुजराती साहित्यकारों की सूची से पता चलता है कि सन् १३७० ई० से सन् १८५२ ई० तक ३७२ कवियों में से पचास कवियों ने रामकथा विषयक साहित्य की सर्जना की।[1] रामकथा से सम्बन्धित गुजराती ग्रंथों एवं ग्रंथकारों की सूची निम्नलिखित हैं।[2]

(१) आशाएत कृत **रामलीलानापदो** (१४वीं श०), (२) भालण कृत **राम विवाह बालचरित**, (३) मन्त्री कमणकृत **सीताहरण** (१५वीं श०) (४) भीमकृत **रामलीला नापदो** (१५वी श०), (५) मांडल ववाशे कृत **रामायण** (अपूर्ण) (१५वीं श०), (६) लावण्यसमय कृत **रावण मन्दोदरी** (१६वीं श०), (७) उद्धवकृत **सीता हनुमान संवाद** (१६वीं श०), (८) नाकर का लवकुशाख्यान (१६वीं श०), (९) प्रेमानन्द कृत **'रणयज्ञ'** (१७वीं श०), (१०) हरिदास कृत 'सीता विरह' (१७वीं श०), (११) शिवदासकृत 'परशुराम आख्यान' (१७वीं श०) आदि।

१८वीं श० में डभोई की एक विधवा ब्राह्मणी **'दिवालीबाई'** ने रामजन्म तथा 'राम विवाह' की रचना की। बड़ेनगर की एक नागर महिला **कृष्णबाई** (१८वीं श० ने **'सीता विवाह'** तथा उमरेण की 'पुरीबाई' १८वीं ने **'सीतामंगल'**

१. रामकथा—बुल्के, पृ० २५८

२. गुजराती में रामसाहित्य के लिए—'गुजराती साहित्य का इतिहास' श्री जयन्त कृष्ण' हरिकृष्ण दवे—हिन्दी समिति ग्रन्थमाला ६८

की रचना की। लोकवार्ता के सर्वश्रेष्ठ रचयिता कवि शाकल ने 'रावण मन्दोदरी संवाद' की रचना की। १९वीं श० का गिरधरदास कृत 'रामायण' गुजरात में सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। भालड़ के पुत्रों उद्धव और विष्णुदास ने १६वीं श० में समस्त रामायण की रचना की लेकिन वह अधिक प्रचलित नहीं हो सका।

इसके अतिरिक्त वजियो ने ५ कड़ियों में सीता स्वयंवर का वर्णन करते हुए 'सीतावेल' तथा 'सीता सन्देश' लिखा, जिसमें हनुमान के द्वारा सीता जी श्रीराम का करुण सन्देश देती हैं। मांडल के बाद दूसरे बंधारों कवि 'काशी सुत शेधजी' ने 'हनुमान चरित्र' की रचना की तथा नर्मदा कवि ने 'रामायणनोसार' की रचना की। सूरत के हरिराम ने भी 'सीता स्वयंवर' लिखा।

उर्दू एवं फारसी रामकथा साहित्य

उर्दू साहित्य में रामकथा सम्बन्धी सामग्री अत्यन्त अल्प है। १९वीं श० के पूर्व में तो उर्दू साहित्य में रामकथा विषयक कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता। हाँ इस काल के उत्तरार्ध के निम्नलिखित चार रामायण उल्लेखनीय हैं—१८६४ ई० में सबसे लोकप्रिय रामायण मुन्शी जगन्नाथ खुश्तर कृत 'रामायण खुश्तर' है। इसके अतिरिक्त मुन्शी शंकरदयाल फर्हत का 'रामायण मंजूम' बाँकेविहारी लाल बहार कृत 'रामायण बहार' तथा सूरजनारायण मेन्ह का 'रामायण मेन्ह' आदि विशेष रूप से रामचरितमानस तथा वाल्मीकि रामायण पर अधारित हैं, फिर भी इन्हें स्वतन्त्र काव्यग्रंथ मानना ही उचित होगा।

उर्दू की अपेक्षा फारसी रामकथा साहित्य अधिक प्राचीन है। अकबर के आदेशानुसार अलबदायूनी ने (१८५४–५८ ई० में) वाल्मीकिरामायण का पद्यानुवाद किया। जहाँगीर के राज्यकाल में तुलसीदास के समकालीन गिरधरदास ने भी वाल्मीकिरामायण का संक्षिप्त अनुवाद प्रस्तुत किया तथा मुल्ला मसीह ने रामायण फैजी, गोबिन्द पुत्र गोपालकृत 'तर्जुमारामायण' (१०वीं श० उत्तरार्ध) चन्द्रभान वेदिलकृत वाल्मीकिरामायण का पद्यानुवाद (औरंगजेब का राज्यकाल) लाला अमर सिंह का गद्यात्मक रामायण 'अमर प्रकाश' (१७५० ई०) तथा लाला अमानत राय कृत 'वाल्मीकि रामायण का पद्यानुवाद (१७५४ ई०) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

रामकथा की व्यापकता एवं विदेशों में रामकथा

आर्यावर्त का प्रतिनिधि पुरुष यदि भारतीय इतिहास में किसी को कहा जा सकता है तो वह राम हैं, उनके जीवन में आर्य आदर्शों का जो विकास हुआ, वह इस देश के द्वारा ऐसा स्वीकृत हुआ कि हमारी जीवन-धारा का एक विशिष्ट अंग बन गया। आज समग्र भारत राममय जान पड़ता है। हिमालय की कन्दराओं में राम नाम गूँज रहा है। विन्ध्य-पर्वत श्रेणी राम नाम के जय-घोष से निनादित है। गोदावरी और कावेरी की

उत्तुङ्ग-तरंगों में अवगाहन करने वाले स्नातक राम-राम का जाप करते हुए राम के पुनीत नाम में रमे रहते हैं। कन्याकुमारी रामेश्वरम् के मन्दिर इसी पावन नाम का स्मरण कराते हैं। पंजाब, सिन्ध, राजस्थान, अङ्ग-बङ्ग और कलिङ्ग में से कौन-सा ऐसा प्रान्त है, जो इस पवित्र राम नाम की दीक्षा से वंचित कहा जा सके ? तक्षशिला राम के ही वंशज का बसाया हुआ है। लाहौर को 'लवपुर' और कसूर को 'कुशपुर' कहा जाता है। समग्र देश राम-जीवन से सम्बद्ध तीर्थस्थानों से व्याप्त है। हमारे पर्व—नवरात्र, दीपावली, दशहरा आदि आज भी देश भर में मनाये जाते हैं। कवियों ने राम-गाथा-गायन में अपने पुरुषार्थ की इतिश्री समझी है। संतों ने राम के निर्गुण रूप की उपासना की है तो वैष्णव कवियों ने उनके सगुण को अपनाया है। राम, सम्प्रदाय भावना से भी ऊँचे उठ गये। बौद्ध सम्प्रदाय में 'दशरथ जातक' लिखा गया तो जैन साहित्य में पउमचरियम्, जैसे ग्रन्थ लिखे गये। आज का भारतीय कवि भी राम को अपनी वाणी का विषय बनाता है और उस पर कविता लिखता है। शिक्षित वर्ग ही नहीं, अनपढ़-अशिक्षित, कोल-भील-गौड़ आदि सभी के हृदयों में राम नाम बसा हुआ है और अब जो अनुसंधान हुए हैं, वे भारत के बाहर भी दूर-दूर देशों में पहुँचे हुए इस राम नाम की तेजस्विता की उद्घोषणा कर रहे हैं।

भारत के भगवान राम ने केवल अपने देश को ही नहीं; विश्व के सभी भागों को प्रेरित और प्रभावित किया। इसीलिए रामकथा निस्सन्देह विश्व की सबसे अधिक सशक्त और प्रभावोत्पादक कथा बन गयी है, जिसकी शक्ति और प्रभाव का अनुमान इसकी अद्वितीय लोकप्रियता और विश्वव्यापी प्रचार से लगाया जा सकता है।

रामकथा हजार, दो हजार वर्ष ही नहीं शायद उससे भी पहले सुदूर देशों में गयी, और उन्हें ले जाने वाले थे, भारत के संस्कृतनिष्ठ व्यापारी, राज परिवारों के लोग तथा वे विदेशी यात्री और विद्वान जो ज्ञान-प्राप्ति की अभिलाषा में समय-समय पर भारत की यात्रा पर आते थे। इस प्रकार जो रामकथा विदेशों में गयी, वह वहाँ के साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन एवं कला में पूर्णरूपेण समाहित होकर उनका प्राणतत्त्व बन गयी। यही कारण है कि 'मैक्सिको' में आज भी राम-सीतोत्सव मनाया जाता है। 'पेरू' का सूर्यमन्दिर सूर्यवंश के राम की स्मृति को जाग्रत कर देता है। 'इटली' का 'रोम' नगर अपने मूल रूप में राम का ही अभिव्यञ्जक है 'मिश्र' के राजाओं के नाम भी राम शब्द से संयुक्त हैं। एशिया के पश्चिम में भी कुछ स्थानों के नाम 'राम' शब्द से प्रारम्भ होते हैं, जैसे—रामसर, राम मल्लाह। 'यूनान' की कला और वीरता पर राम की मुद्रा अंकित है। 'रूस का साईबेरिया' और 'चीन के उत्तर का मंगोलिया' रामकथाओं से निस्सृत लोकगाथाओं को अपने क्रोड में संजोए हुए हैं। 'जापान' के राजा का सूर्यवंश और उत्तर में लक्ष्मी का मन्दिर तथा 'ईरान' के राजा का अपने को 'आर्य मिहिर' (सूर्य) कहना, 'आर्यों' के पौराणिक इतिवृत्त को स्मरण करा रहे हैं। फिजी, मारिशस, गुयाना, ट्रिनि-

डाड, सूरीनाम आदि देशों में जहाँ भारत के प्रवासी बड़ी संख्या में विद्यमान हैं वहाँ तो राम का लगभग वही स्वरूप सुरक्षित है, जो भारत में है।

सन् २५१ में ही रामायण का चीनी भाषा में 'काङ्सङ्हनी' ने अनुवाद किया। यह भारत से बाहर की भाषा में प्रथम रूपान्तर होने के कारण महत्वपूर्ण है। सन् ४७२ में चीनी भाषा में एक दूसरा अनुवाद हुआ जो 'केकय' ने लुप्त संस्कृति कृति 'दशरथ निदान' से किया था १६वीं शती में चीनी-उपन्यास परम्परा में 'वानर' नाम से सुविख्यात उपन्यास लिखा गया, जिसमें हनुमान जी द्वारा सीता जी की खोज का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

रामकथा का प्रचार उत्तर के दूरतम प्रदेश 'साइवेरिया' तक हुआ। यहाँ रामायण तिब्बत होती हुई पहुँची। 'तुनह्वाङ' की गुफाओं से क्रमशः ७वीं, २६वीं शती की दो तिब्बती पाण्डुलिपियाँ मिली हैं, जिनमें रामायण की दो शाखाएँ हैं। १५वीं शती में 'शाङ् शुङ पा छोवाङ ड्राग्याइपाल' ने तिब्बती भाषा में छन्दोबद्ध रामायण लिखी। काव्यादर्श और सुभाषित रत्ननिधि की तिब्बती टीकाओं में भी रामायण उपलब्ध है।

तिब्बती की ही भाँति खोतान की रामकथा जो नवीं शताब्दी ई० की मानी जाती है, तिब्बती रामायण से बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

छठीं शताब्दी में सिंहली नरेश एवं कवि 'कुमारदास' ने 'जानकी हरण' काव्य की रचना की। यह लंका में रचित प्राचीनतम संस्कृत ग्रन्थ है। १२वीं शती में एक अज्ञात-नामा लेखक ने स्थानीय सिंहली भाषा में इसका अनुवाद भी किया। वर्तमान शती में रामायण का सिंहली अनुवाद 'सी० डान० डी०' सिल्वा ने रामायण का रूपान्तर करके श्रीलंका में रामकथा को सुव्याप्त कर दिया। रामायण के आदर्श श्रीलंका की धरोहर बन गये हैं।

दक्षिण पूर्वी एशिया में रामायण को प्रसारित करने में 'इण्डोनेशिया' का विशेष योगदान रहा है। इण्डोनेशिया की प्राचीनतम राम सम्बन्धी साहित्यिक रचना 'रामायण काकविन'[1] है जो दशवीं शताब्दी का माना जाता है। नवीं शती में रामायण इंडोनेशिया के भव्य शिवालय 'चंडो लोरोजोड०राड' में उत्कीर्ण की गयी। यह रामायण काकविन से कुछ भिन्न है जिससे सिद्ध होता है कि नवीं शती तक इंडोनेशिया में रामायण की अनेक शाखाएँ थी। सन् १३७६ के 'पानातरान' मन्दिर में रामायण बाह्य भित्तियों पर उत्कीर्ण हैं। इसकी कला स्थानीय वायाङ् शैली की है। इंडोनेशिया में १४वी शती में रामायण के कुछ दृष्य अति लोकप्रिय हो चुके थे।

---

१. विशेष द्रष्टव्य—'रामायण काकविन का सर्वप्रथम संस्कृत एवं हिन्दी रूपान्तर' द्वारा—डॉ० राजेन्द्र मिश्र (प्रकाशनाधीन)

'जावा' में एक प्राचीन उत्तरकाण्ड मिलता है जिसमें वाल्मीकीय उत्तरकाण्ड की कथा का गद्य में वर्णन किया गया है इसके अतिरिक्त एक 'चरित रामायण' भी पाया जाता है जिसके १०१ श्लोकों के रामायण के ६ काण्डों की कथा के साथ-साथ व्याकरण के उदाहरण भी दिये गये हैं 'हिमांशुभूषण सरकार' जावा की प्राचीन भाषा की तीन रचनाओं का उल्लेख करते हैं—सुमन सांतक काकविन (११वीं० श०), हरिश्रय काकविन (१३वीं श०), अर्जुन विजय (१४वीं श०) जावा का आधुनिक 'सेरत राम' भी रामायण काकविन की भाँति वाल्मीकीय कथा से बहुत कुछ मिलता है। मध्य जावा के 'परमबनन' (परब्रह्म) नामक स्थान पर नवीं श० ई० का एक शिव मन्दिर है। इस मन्दिर के चारों ओर की ऊँची दीवारों पर रामायण की समस्त घटनाओं का चित्र-लिपि में चित्रण किया गया है। पूर्व जावा के पनतरन नामक स्थान के १४वीं श० पूर्वार्द्ध के एक शिव मन्दिर में भी रामकथा पाषाण चित्र-लिपि में अंकित हैं।

रामायण काकविन की प्राचीन परम्परा को छोड़कर इंडोनेशिया में रामकथा का एक अर्वाचीन रूप भी प्रचलित है, जो अधिक लोकप्रिय है तथा जिसके आधार पर आधुनिक समय तक 'जावा' और 'सुमात्रा' में रामकथा सम्बन्धी नाटकों का अभिनय होता है। जावा का नाटक साहित्य प्रायः 'सेरत काण्ड' तथा 'राम केलिंग' पर आधारित है। जावा और सुमात्रा द्वीपों में रामकथा का प्रचार विशेष रूप में दिखलाई पड़ती है। सुमात्रा तो हिन्दू द्वीप है और वह पूर्णतः रामकथा से आप्लावित है, किन्तु मुस्लिम बहुल जावा के 'जोगजोकर्ता' में राम सम्बन्धी नृत्य-नाटक विश्वभर में प्रसिद्ध हैं।

मलेशिया में सन् (१४००-१५००) के बीच 'हिकायत सेरी राम' की रचना हुई। तब से यह रामायण की छाया लीलाओं का आधार बन गया। इसके अतिरिक्त मलेशिया में रामायण के विभिन्न स्थायी रूपान्तर भी पाये जाते हैं, जिनमें—'हिकायत महाराज रावण' 'श्रीराम' तथा रामकथा का पातानी पाठ उल्लेखनीय है। इससे ज्ञात होता है कि रामायण वहाँ की लोक परम्परा में अभिन्न रूप से रमकर लोकप्रिय हो चुकी थी। मलेशिया में आज भी सूत्रधार जो 'दालाङ्' कहलाता है, एक वर्ष में २-३ सौ बार अभिनय करता है। यह मनोरंजन मात्र नहीं अपितु इसका धार्मिक महत्त्व भी है।

'वर्मा' (ब्रह्म देश) में भी रामायण का प्रचार शताब्दियों से रहा है। वर्मा नरेश क्यान्जित्था (सन् १०८४-१११२) का रामायण से विशेष अनुराग था। उन्होंने अपने को राम का वंशज कहा है। वर्मा में रामायण का आधुनिक अभिनय २१ रात चलता था किन्तु आजकल वह केवल १२ रात ही होता है।

सातवीं शती में कम्बोडिया (कम्बुज देश) में सर्वत्र रामायण के उद्धरण पाये जाते हैं जिनसे पता चलता है कि रामकथा कम्बुज जीवन का अभिन्न प्रतीक बन चुकी थी। विशाल स्मारकों में रक्षित रामायण के शिल्प कम्बुज की ऐतिहासिक घटनाओं के

महत्व को सप्रमाण सिद्ध करते है। 'बायोन' मन्दिर की बाह्य भित्तियों पर महाराज 'जयवर्मन सप्तम्' की चरम जाति पर दनदनाती विजय उत्कीर्ण की गयी है। यह रामायण पर आधारित है यह दिखाने के लिए कि कम्बुज के महाराज जयवर्मन राम के अवतार हैं रावण रूपी चाम जाति को पराजित करने के लिए अवतीर्ण हुए थे। सप्तम् जयवर्मन के उपरान्त रामायण कम्बुज जीवन का अभिन्न अंग बन गयी। अभिनय होने लगे, भित्ति-चित्रों के रूप में आलेखन होने लगी, कथावाचकों ने गाँव-गाँव घूमकर उसका प्रचार किया और राजभवनों के अभिनय इसके सत्यम्-शिवम् से झंकृत हो उठे। यह कम्बुज देश के मानस की भव्यतम् लीला बन गयी। यहाँ पर यह उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण तथ्य है कि आंकोर के विशाल वैष्णव मन्दिर में उत्कीर्ण रामायण, जावा के रामायण काकविन के अधिक समीप है।

थाइलैण्ड (श्यामदेश) में रामायण का रूपान्तर 'रामकियेन' के नाम से प्रख्यात है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर यहाँ अनेक रामायण लिखी भी जा चुकी है किन्तु सबसे अधिक प्रमाणिक और लोकप्रिय रामायण सन् १८०६ में नरेश 'राम प्रथम' ने लिखी थी। इसी नरेश की वंश परम्परा आज भी थाईलैण्ड में चली आ रही है और आज के नरेश भी अपने नाम के साथ 'राम' लगाते हैं। थाइलैण्ड में अयोध्या नाम की नगरी भी है। अयोध्या ही नहीं 'लोबपुरी' (लवपुरी) भी है। बैङ्काक के एक प्रसिद्ध मन्दिर की दीवारों पर रामकियेन की घटनाएँ चित्रित है। यहाँ के राष्ट्रीय संग्रहालय में राम की अनेक मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं। भवन के बाहर भी राम की मूर्ति है।

श्यामदेश के उत्तर पूर्वीय प्रान्तों में 'लाओ' भाषा बोली जाती है। १६वीं शताब्दी में 'राम जातक' की लाओ भाषा में रचना की गयी। राम जातक का एक अन्य रूप 'पालक पालम' के नाम से भी विख्यात है। सन् १५५३ ई० के पहले 'एच० देदिये' ने लाओस में तीन और रामकथा विषयक रचनाओं का पता लगाया था—गुआलाकी; द्वन्द्वभि, लंकानोय तथा पोम्मचका। इनकी अकाल मृत्यु के कारण इन रचनाओं का प्रकाशन नहीं हो पाया है किन्तु एक अन्य विद्वान ने पोम्मचका की एक हस्तलिपि प्राप्त की है तथा इसके कथानक का सार सन् १८५७ ई० में प्रकाशित किया। इस विपुल रामकथा साहित्य के अतिरिक्त अभिनय, कला एवं राजकीय सम्मान में भी लाओस में रामकथा पूर्णरूपेण व्याप्त है।

इस प्रकार चाहे बौद्ध देश थाईलैण्ड हो, चाहे मलय देश और जावा द्वीप का मुसलमान हो और चाहे सुमात्रा द्वीप का हिन्दू हो सभी के लिए राम समान रूप से महान और श्रेष्ठ हैं।

काम मोहित क्रौञ्च दम्पति के वध पर शोकाहत और विह्वल वाल्मीकि की गिरा से श्लोक निर्झर निकलकर आदिकाव्य रामायण में परिणत हो गया और वह एशिया के

उत्तरतम हिमाच्छादित साइबेरिया से लेकर इन्डोनेशिया की शस्य-श्यामला भूमि तक मानव की अन्तर्गीति बन, उसकी अन्तरात्मा को आनन्दलहरी से आप्लावित करता है। इस रामध्वनि और रामलीला को एक बार फिर से झंकृत करने के लिए सितम्बर १९७१ ई० में इण्डोनेशिया के शिक्षा मन्त्रालय के संस्कृति विभाग ने प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय रामायण महोत्सव एवं संगोष्ठी का आयोजन किया। इसी परम्परा में रामायण सम्मेलन की यह विश्वयात्रा प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन के रूप में १९८४ में भारत की अयोध्या से शुरू हुई। पुनः द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन थाईलैण्ड की अयोध्या में सन् १९८६ ई० में हुआ। इसी क्रम में तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन 'टोरंटो' में १०-१५ जुलाई १९८७ को सम्पन्न हुआ। सम्मेलन के अध्यक्ष श्री लल्लन प्रसाद व्यास ने बताया कि चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन भारत में होगा जिसके अनुसार यह सम्मेलन सन् १९८८ में दिल्ली में सम्पन्न हुआ। पुनः पंचम अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन १९८९ ई० में नेपाल में तथा १९९० में छठा विश्व रामायण सम्मेलन मारीशस में सम्पन्न हुआ। ७वें विश्व रामायण सम्मेलन का आयोजन दक्षिण अमेरिका स्थित सूरीनाम में इसी वर्ष होने वाला है।

आचार्य क्षेमेन्द्र एवं तत्प्रणीत रामायणमञ्जरी का रामकथा वाङ्मय में स्थान

रामायण और महाभारत आर्षग्रन्थ हैं, तथा समस्त आर्यावर्त में ये दोनों ग्रन्थ जनमानस में वन्दनीय एवं समादृत है। यही कारण है कि इन ग्रंथों को आधार मानकर समय-समय पर कवियों ने अनेक काव्यों की सर्जना की तथा आज भी कवियों की लेखनी इन पर आधारित ग्रंथों की रचना किए बिना नहीं मानती। इसमें भी, रामकथा की व्यापकता, लोकप्रियता एवं समृद्धता के विषय में कहना ही क्या। इससे तो प्रायः कोई भी देशी अथवा विदेशी साहित्य अछूता नहीं रहा, फिर आदि भाषा संस्कृत में आदिकाव्य की रचना होने के कारण, संस्कृत वाङ्मय रामकथा की सामग्री से भरा पड़ा है। महर्षि वाल्मीकि के परवर्ती संस्कृत कवियों ने इस रामकथा से सम्बन्धित अनेक काव्यों की रचना करने में ही अपने कवित्व की इति श्री समझी। इसी श्रृंखला के अन्तर्गत ईसा की ११वीं शताब्दी में क्षेमेन्द्र नामक सर्वतोमुखी, प्रतिभावान कवि ने भी 'रामायणमञ्जरी' नामक महाकाव्य की रचना करके अपनी लेखनी को पवित्र और अमर कर दिया। संस्कृत साहित्य एवं रामकथा साहित्य में उनकी इस प्रसिद्ध कृति 'रामायणमञ्जरी' को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। महाकवि क्षेमेन्द्र 'रामायणमञ्जरी' और 'भारतमञ्जरी' के रचयिता थे जिससे यह पता चलता है कि कवि क्षेमेन्द्र रामायण और महाभारत से अधिक प्रभावित थे। किन्तु इसमें भी रामकथा से उनका कुछ अधिक लगाव ही दिखाई पड़ता है इसका प्रत्यक्ष उदाहरण 'वृहत्कथामञ्जरी' एवं 'भारतमञ्जरी' में वर्णित रामचरित तथा 'दशाव-

तारचरित' का रामावतार प्रसंग है। इतने पर भी जब कवि के लेखनी की—रामकथा विषयक पिपासा नहीं शान्त हुई तो उसने महाकाव्य 'रामायणमञ्जरी' की ही सर्जना कर डाली। रामायणमञ्जरी वाल्मीकि कृत रामायण का सरस और काव्यमय संक्षेप है। रामकथा वाङ्मय के इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना के पूर्व भी कई संस्कृत कवियों ने रामकथा पर अनेक उपजीवी ग्रंथों की रचना की है, किन्तु महर्षि के पद-चिह्नों पर चलते हुए तथा उन्हीं की भाँति आद्योपान्त कथानक एवं घटनाओं का चित्रण करने वाले आचार्य क्षेमेन्द्र प्रथम महाकवि हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही आचार्य क्षेमेन्द्र महर्षि की वन्दना करते हुए कहते हैं[1]—

ज्येष्ठो जयति वाल्मीकिः सर्गबन्धे प्रजापतिः।
यः सर्वहृदयालीनं काव्यं रामायणं व्यधात्॥
नुमः सर्वोपजीव्यं तं कवीनां चक्रवर्तिनम्।
यस्येन्दुधवलैः श्लोकैर्भूषिता भुवनत्रयी॥

इसी प्रकार ग्रन्थ के अवसान पर भी वर्णों में ओंकार की भाँति तथा कवियों में प्रथम मुनि वाल्मीकि की पुन: एक बार वन्दना करते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र कहते हैं[2]—

स वः पुनातु वाल्मीकेः सूक्तामृतमहोदधिः।
ओंकार इव वर्णानां कवीनां प्रथमो मुनिः॥

प्रस्तुत शोधकार्य का औचित्य एवं अपेक्षा

पूर्वोक्त विवरण से 'रामायणमञ्जरी' की महिमा एवं गरिमा तो सुस्पष्ट ही हो जाती है, किन्तु खेद है कि रामकथा सम्बन्धी इस महत्वपूर्ण काव्य का अभी तक कोई साहित्यिक अथवा आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत नहीं किया जा सका था; जिससे इस ग्रंथ में वर्णित रामकथा सम्बन्धी तथ्यों तथा इसके साहित्यिक अङ्गों एवं उपाङ्गों का स्पष्ट विवरण लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया जा सके। शोधकर्त्ता ने इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए, अर्यावर्त का निवासी होने के कारण, एक आस्थावान हिन्दू परिवार का सदस्य होने के कारण तथा राम भक्ति की प्रबल भावना से ओत-प्रोत होने के भी कारण, 'रामायणमञ्जरी' से सम्बद्ध अनुसन्धान कार्य के सम्पादन में ही अपना सौभाग्य अनुभव किया।

प्रथम अध्याय समाप्त

---

१. रामायणमञ्जरी, बालकाण्ड, श्लोक सं० २, ३

२. रामायणमञ्जरी, उपसंहार, श्लोक सं० २

अध्याय २

क्षेमेन्द्र का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

आचार्य क्षेमेन्द्र की जन्मभूमि

सरस्वती की लीला-विलास भूमि काश्मीर में संस्कृत साहित्य की श्री-वृद्धि करने वाले अनेक विद्वद्रत्न हुए हैं। शास्त्रीय विचार-विमर्श से लेकर सरस तथा सुमधुर साहित्य तक प्रत्येक प्रकार की रचनाओं के लिए संस्कृत भाषा और वाङ्मय का इतिहास इस प्रदेश का ऋणी है। नाट्यशास्त्र पर 'अभिनवभारती' नाम की प्रख्यात टीका तथा 'प्रत्यभिज्ञाविमर्श' आदि प्रसिद्ध ग्रंथों के रचयिता श्रीमद्भिनवगुप्तपादाचार्य, 'काव्यप्रकाशकार' आचार्य मम्मट, संस्कृत में उपलब्ध एक मात्र प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथ 'राजतरंगिणी' के लेखक कल्हण, 'वृहत्कथा' जिसे धनञ्जय ने रामायण और महाभारत के समान विख्यात बताया है,[1] के लेखक गुणाढ्य और 'विक्रमाङ्कदेवचरित' जैसे ध्वनिप्रधान काव्य और 'चौरपञ्चाशिका' जैसे सरस तथा माधुरी मण्डित गीतिकाव्य के रचयिता विल्हण तथा संस्कृत के विशालतम् महाकाव्य 'हरविजय' के लेखक रत्नाकर आदि काश्मीर में ही उत्पन्न हुए थे। प्राचीन काल में यह देश ज्ञान-विज्ञान विद्या और अध्ययन का केन्द्र माना जाता था। वहाँ शास्त्रीय परीक्षा भी होती थी तथा कवियों की कृतियों का निर्णय भी हुआ करता था। प्रसिद्धि है कि श्री हर्ष को भी अपने काव्य की उत्कृष्टता के प्रमाण के लिए काश्मीर जाना पड़ा था। शैवागम तथा प्रत्यभिज्ञा-दर्शन की जन्मभूमि भी काश्मीर ही है।

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में इसी विद्वत्प्रसू शारद देश में क्षेमेन्द्र नामक सर्वतोमुखी प्रतिभावान रत्न का अभ्युदय हुआ जिसने संस्कृत साहित्य के विविध क्षेत्रों को अपनी लेखनी से समृद्ध कर सम्पूर्ण वाङ्मय को अक्षुण्ण बना दिया।

जहाँ तक इस विद्वद्रत्न के जन्म स्थान का सम्बन्ध है, उन्होंने इस सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं दी है कि किस गाँव तथा प्रमण्डल में इनका जन्म हुआ। किन्तु भारत के शीर्षस्थानीय, सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध काश्मीर को ही इन्होंने अपने जन्म से अलंकृत किया, यह बात निर्विवाद सत्य है। 'प्रो० सिलवालेवी'[2] तथा 'डा० पी० एल० वैद्य'[3] आदि विद्वानों ने भी इसे स्वीकार किया है। लेवी के कथन से ऐसा प्रतीत होता

---

१. 'रामायणादि च विभाव्य वृहत्कथां च'। —दशरूपक १।६८

२. "Born in kashmir, kshemendra appears to have lived all his life in the land of his birth". —सी० एस० एल० डब्ल्यू० के पृ० ४६ पर उद्धृत।

३. वही, पृ० ४६

है कि क्षेमेन्द्र का जन्म काश्मीर में हुआ और उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन वहाँ बिताया। किन्तु 'पण्डित काल'[1] के अनुसार वे अपने जन्मस्थान काश्मीर में सदा ही बँधे न रहे अपितु दूर-दूर तक देशाटन भी किया।

काश्मीर उनका जन्मस्थान माना जाय इसमें क्षेमेन्द्र की उक्ति भी साधिका सिद्ध होती है। क्योंकि कवि क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रंथों में बड़े ही सम्मानपूर्वक अपनी जन्मभूमि काश्मीर का उल्लेख किया है।[2] पुनः राजा कलश तथा अनन्त के शासन काल में अपने को बताकर कवि ने अपनी जन्मभूमि के लिए पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत किया है।[3]

इस प्रकार अपना परिचय देने के सन्दर्भ में क्षेमेन्द्र ने काश्मीर का उल्लेख बड़े यत्न, गौरव और अनुराग के साथ स्पष्ट रूप से किया है। इस संदर्भ में 'नर्ममाला'[4] का यह श्लोक द्रष्टव्य है—

> अस्ति स्वस्तिमतामतामग्रयं मण्डितं बुधमण्डलैः।
> खण्डिताखण्डलावासदर्पं काश्मीरमण्डलम्॥

'वृहत्कथामञ्जरी'[5] के कतिपय अन्य श्लोकों से भी यह ध्वनित होता है—

> वितस्तेत्यस्ति तटिनी मोक्षश्रीहारवल्लरी।
> रिङ्गत्तरङ्गभ्रूभङ्गैस्तर्जयन्तीव कल्मषम्॥
> तयास्ति लोललहरीक्षाल्यमानरजोव्रजम्।
> काश्मीरमण्डलनाम मण्डलंसर्वसम्पदाम्॥

---

१. सी० एस० एल० डब्लू० के पृ० ४६ पर उद्धृत

२. (अ) काश्मीरेषु पृथुप्रतापसवितु क्रीदयंशुतारापतेः।
X X X ॥ —कवि० कं० भ०, उपसंहार ५
(ब) काश्मीरेषु बभूव सिन्धुरधिकः सिन्धोरचनिम्नाशयः।
X X X क्षेमेन्द्रनाम्नभवत्॥
—दशावतारचरित, उपसंहार २
(स) काश्मीरेष्वभवत्............व्यधात्। —रामा० मं०, उपसंहार ३
(द) काश्मीरको.....नानाप्रवणयोग्यताम्। —वृ० क० मं०, उपसंहार ३१, ३६

३. (अ) एकाधिकेऽब्दे विहितश्चत्वारिंशेषकार्तिके।
राज्ये कलशभूभर्तुः काश्मीरेष्वच्युतस्तवः॥ —दशावतारचरित, उपसंहार ५
(ब) क्षेमेन्द्रेण प्रणयविपदां हर्तुराश्चर्यकर्तु—
र्भूभृद्भर्तुर्भुवनजयिनोऽनन्तराजस्य राज्ये॥ —सुवृत्ततिलक ३।४०

४. क्षे० ल० का० सं०, तद्गत नर्ममाला पृ० ३०७

५. सी० एस० एल० डब्ल्यू० के पृ० ४७ पर उद्धृत

यस्मिन्नारीकपोलेषु कान्तिकल्लोलितोर्मिषु ।
बिम्बागतः शशीधत्ते सुधागर्भमुखं पुनः ॥

तीक्ष्णं तपति नोष्णांशुः करैः कुसुमकोमलैः ।
त्वष्ट्रेवयत्र लावण्य नवनीतेन निर्मितः ॥

सूक्तार्पितारणत्तार-हार - नूपुर - मेखला ।
नृत्यतीव कवीन्द्राणां यत्र वक्त्रे सरस्वती ॥

उपर्युक्त प्रमाणों के आलोक में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आचार्य क्षेमेन्द्र का जन्म काश्मीर में ही हुआ था। जहाँ तक काश्मीर में त्रिफर गाँव के नजदीक त्रिपुरशैल, जो डाल-झील से लगभग तीन मील पर है, की बात है, वह उनका जन्म स्थान न होकर अवसान स्थान रहा होगा, ऐसा 'पण्डित काल' ने स्पष्ट लिखा है।[1] वास्तव में उन्होंने अपने ग्रंथों में जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, लगभग उन्हें व्यवहार में भी लाने का प्रयास किया।[2] चारुचर्या नामक शतक में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य आदि आश्रमों में क्रमशः प्रवेश करना चाहिए।[3] रामायणमञ्जरी'[4]में भी उनकी इस भावना का परिचय मिलता है। अपनी इन्हीं भावनाओं के अनुसार क्षेमेन्द्र सम्भवतः जीवन के अन्त में त्रिपुरशैल जैसे शान्तिमय एवं पवित्र पर्वत पर वानप्रस्थ बिताते हुए इहलीला समाप्त की हो; यह युक्तियुक्त प्रतीत होता है।[5]

काल निर्णय

संस्कृत वाङ्मय की समृद्धि हेतु जीवनोपान्त प्रयत्न करने वाले कवियों में आचार्य क्षेमेन्द्र का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। परम्परया अन्य कवियों की भाँति आचार्य क्षेमेन्द्र भी अपने जीवनवृत्त से सम्बन्धित तथ्यों को अपने ग्रंथों में उद्घोषित करना नहीं भूलते हैं। यद्यपि उन्होंने कहीं भी सुव्यवस्थित रूप से अपने जीवन परिचय का उल्लेख नहीं किया है जिससे उनके कालक्रम आदि का परिज्ञान हो सके परन्तु फिर भी उनके ग्रंथों में यत्र-तत्र बिखरे हुए सन्दर्भों से हम इस विषय में कुछ संकेत प्राप्त कर सकते हैं। प्रायः प्रत्येक ग्रंथ के अन्तिम उपसंहार के श्लोकों से हमें कुछ न कुछ सूचना उनके विषय में मिल जाती है। सम्प्रति उन्हीं बिखरे हुए तथ्यों के आलोक में क्षेमेन्द्र के कालनिर्णय का प्रयास किया जाता है।

---

१. सी० एस० एल० डब्ल्यू० के पृ० ४९
२. आचार्य क्षेमेन्द्र—मनोहर लाल गौड़, पृ० १०-११
३. चारुचर्या, पृ० २२, श्लोक ९२
४. द्रष्टव्य—शोध प्रबन्ध, अध्याय ६
५. सी० एस० एल० डब्ल्यू० के पृ० ४९

आचार्य क्षेमेन्द्र अपनी कृतियों के अन्त में अपने विरद और ग्रन्थ की समाप्ति के समय के साथ ही साथ अपने आश्रयदाता का भी बड़े सम्मानपूर्वक उल्लेख करते हैं। महाकवि ने औचित्यविचारचर्चा,[1] कविकण्ठाभरण[2] और सुवृत्ततिलक[3] में राजा अनन्त का उल्लेख किया है। दशावतारचरित[4] में उन्होंने राजा कलश के नाम का भी संकीर्तन किया है। इससे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने राजा कलश और अनन्त के शासनावधि में ही अपने ग्रन्थों की सर्जना की।

पूर्वोक्त तथ्यों की जानकारी के अनन्तर यह प्रश्न उठता है कि महाराजा अनन्त और कलश शारद देश में किस समय सिंहासनारूढ़ थे तथा उनके बीच क्या सम्बन्ध था ? इसकी जानकारी के लिए प्रसिद्ध संस्कृत ऐतिहासिक ग्रन्थ 'राजतरङ्गिणी' का अनुशीलन आवश्यक हो जाता है। राजतरङ्गिणी में अनन्त को राजा कलश का पिता बताया गया है।[5] अनन्त के पिता संग्रामराज ने अपने ज्येष्ठ पुत्र हरिराज[6] को लौकिक सम्वत् अथवा सप्तर्षि सम्वत् चार (४) में राज्याभिषिक्त किया। किन्तु वह अधिक दिनों तक सिंहासनारूढ़ नहीं रह सका। दुर्भाग्य से राज्याभिषेक के २२वें दिन के अनन्तर ही उसका प्राणान्त

---

१. यस्यासिः परिवारकृत त्रिभुवनप्रख्यातशीलश्रुतेः,
सर्वस्यावनतेन येन नितरां प्राप्ता विशेषोन्नतिः।
आशाः शीतलतां नयत्यविरतं यस्य प्रतापानल-
स्तस्य श्रीमदनन्तराजनृपतेः काले किलायं कृतः॥—औचित्य वि० चर्चा०, उपसंहार ५

२. कश्मीरेषु पृथुतापसवितुः कीर्त्यंशुतारापतेः,
प्रौढारातिवनानलस्य धनदस्येन्द्रस्य भूमण्डले।
विश्वाकारवतः पुनः कलियुगे विष्णेरिवोत्साहिनों,
राज्ये श्रीमदनन्तराजनृपतेः काव्योदयोऽयं कृतः॥ —कविकण्ठाभरण, उपसंहार १

३. क्षेमेन्द्रेण प्रणयिविपदां हर्तुराश्चर्यकर्तु-
र्भूभृद्भर्तुर्भुवनजयिनोऽनन्तराजस्य राज्ये॥ —सुवृत्ततिलक, ३।४०

४. एकाधिकेऽब्दे विहितश्चत्वारिंशेषकार्तिके।
राज्ये कलशभूभर्तुः कश्मीरेष्वच्युतस्तवः॥ —दशावतारचरित, उपसंहार ५

५. हरिराजानन्तदेवावास्तां तस्याऽऽत्मजो ततः।
कलशोऽनन्ततनयः क्रमाद्भूपो तदात्मजो॥ —राजतरङ्गिणी, ८।३४४

६. स चतुर्थसमाषाढ़प्रारम्भाहे महीपतिः।
हरिराजाभिधं पुत्रमभिषिच्याऽस्तमाययो॥ वही, ७।१२७

हो गया।[1] तदनन्तर अनन्त को राज्यभार सौंप दिया गया।[2] चूंकि राजा हरिराज लौकिक सम्वत् चार के आषाढ़ मास के प्रथम दिन को ही राज्याभिषिक्त हुआ था अतएव २२ दिन को छोड़कर शेष सम्वत् चार से ही राजा अनन्त का कार्यकाल प्रारम्भ हो जाता है। राजतरङ्गिणी से यह भी ज्ञात होता है कि राजा अनन्त लौकिक सम्वत् ३९ तक राज्य किये थे।[3] यद्यपि कि इस समय राजा अनन्त बहुत स्वस्थ थे, अर्थात् राज्य संचालन के लिए उपयुक्त एवं समर्थ थे किन्तु भार्या द्वारा संप्रेरित होने पर इन्होंने अपने पुत्र कलश का राज्याभिषेक कर दिया।[4] राज्याभिषेक के समय कलश अत्यधिक अल्पवय थे, जैसा कि राजतरङ्गिणी में वर्णित है कि पिता के समीप ही भोजन करने वाले कलश, नाम मात्र के राजा हो गये थे।[5] राज्य के सम्पूर्ण कार्यभार तो अनन्त ही संभालते थे। हाँ इतना अवश्य था कि वे पुरोहित के सदृश पिता अनन्त के सहायक थे। अन्त में महाराज अनन्त के लौकिक सम्वत् ५५ में स्वर्गवासी होने का उल्लेख भी राजतरङ्गिणी में वर्णित है।[6]

आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपनी अधिकांश कृतियों में लौकिक सम्वत् का उल्लेख किया है। यद्यपि ऐसा करने में उन्होंने शताब्दियों का निश्चित उल्लेख नहीं किया है, परन्तु यह कमी कल्हण कृत राजतरङ्गिणी की सहायता से दूर की जा सकती है और उनका समय स्थिर किया जा सकता है। लौकिक सम्वत् जो कि सम्प्रति काश्मीर में प्रवर्तमान है कलियुग के २५वें वर्ष में प्रारम्भ हुआ।[7] प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जब लौकिक वर्ष का प्रयोग होता है तब शताब्दियों का उल्लेख नहीं किया जाता है। यथा—कल्हण (चतुर्थसमाषाढ़प्रारम्भाहे) और अभिनव गुप्त (इति नवतितमेऽस्मिन् वत्सरे) लौकिक सम्वत् के चलने वाले वर्ष मात्र का ही उल्लेख करते हैं। राजतरङ्गिणी के अध्ययन से यह विदित

---

१. द्वाविंशति महान्युर्वी स रक्षयित्वा क्षमापतिः।
क्षयं यया शुचियशाः शुचिशुक्लाष्टमीदिने ॥ —राजतरङ्गिणी ७।१३१

२. मिलितेस्तावदेकाङ्क्ष्भ्रान्त्रा धाल्लेयकेण च।
सागराख्येन तरुलो बालोऽनन्तो नृपः कृतः ॥ —वही ७।१३५

३. पत्न्या संप्रेरितश्वत्तनयस्नेहमूढ़या।
पुत्राय कलशायभूद्राज्यं दातुं समुद्यतः ॥ —वही ७।२३१

४. एकान्नचत्वारिंशस्य वर्षस्य तनयः सिते।
षष्ठेऽब्दि बाहुलस्या भूदभिषिक्तो मही भुजा ॥ —वही ७।२३३

५. पित्रोरेवान्तिके कुर्वन्नाहाराद्यपि संततम्।
ततो बभूव कलशो नाममात्रमहीपतिः ॥ —वही ७।२४५

६. वत्सरे पञ्चपञ्चाशे ज्येष्ठे मासि विनिर्गतः।
आसाद्य विजयक्षेत्ते स स्वर्गसुखमन्वबभूव ॥ —वही ७।३६१

७. काश्मीर रिपोर्ट—बूलर, पृ० सं० ४५–४८

होता है कि लौकिक सम्वत् का प्रारम्भ ३०७५ ई० में हुआ।[1] अतः इस कालक्रम के आधार पर कल्हण द्वारा वर्णित राजाओं के लौकिक सम्वत् को ई० सन् में देखा जा सकता है। इस प्रकार राजा अनन्त का राज्यारोहण (४१०४–३०७५) = १०२६ ई० में हुआ तथा इन्होंने (४१३६–३०७५) = १०६४ ई० तक शासन किया। महाराजा अनन्त के बाद उनके पुत्र एवं उत्तराधिकारी कलश १०६४ ई० में सिंहासनारूढ हुये। अनन्त के जीवनकाल तक नाममात्र के राजा कहलाने वाले कलश ने अपने पिता की मृत्यु (४१५५–३०७५) = १०८० ई० के बाद से १०८८ ई० तक राज्य किया। चूंकि राजा कलश का शासन काल १०६४ ई० से ही प्रारम्भ हो गया था। अतएव महाकवि क्षेमेन्द्र ने दशावतारचरित का रचनाकाल जो महाराजा कलश के समय का बताया है, वह उसके रचनाकाल के समय (४१४१–३०७५) = १०६६ ई० को देखते हुए ठीक ही है।

महाकवि क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथामञ्जरी,[2] समयमातृका[3] तथा दशावतारचरित[4] के अन्त में लौकिक सम्वत् में ही इन कृतियों के रचनाकाल का उल्लेख किया है। अतः ऊपर की गई काल गणना के अनुसार इन कृतियों का भी रचनाकाल ई० सन् में रखने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

अतएव बृहत्कथामञ्जरी का रचनाकाल (४११२-३०७५) = १०३७ ई० में हुई। समयमातृका की रचना (४१२५–३०७५) = १०५० ई० में तथा दशावतारचरित की रचना (४१४१–३०७५) = १०६६ में हुई।

इसी प्रकार सोमेन्द्र ने अवदानकल्पलता की भूमिका में यह स्पष्ट उल्लेख किया है कि इस ग्रन्थ की समाप्ति लौकिक सम्वत् २७ में हुई।[5] ई० सन् में इसका उल्लेख (४१२७–३०७५) = १०५२ ई० के रूप में किया जा सकता।

---

१. (क) राजतरङ्गिणी, १।५१–५८
(ख) क्षेमेन्द्र स्टडीज—डा० सूर्यकान्त, पृ० सं० ११
(ग) 'नीतिकल्पतरु'—भूमिका, डा० वी० पी० महाजन, पृ० सं० १

२. कदाचिदेव विप्रेण स द्वादश्यामुपोषितः।
प्रार्थितो गमयशता सरसः स्वच्छचेतसा ॥ —बृहत्कथामञ्जरी–उपसंहार, १।३८

३. संवत्सरे पञ्चविंशे षष्ठिशुक्लाद्रिवासरे।
श्रीमता भूतिरक्षार्थं रचितो यं स्मितोत्सवा ॥ —समयमातृका–उपसंहार, २

४. एकाधिकेऽब्दे विहितश्चत्वारिंशे सकार्तिके।
राज्ये कलशभूभर्तुः कश्मीरेष्वच्युतस्तवः ॥ —दशावतारचरित–उपसंहार ५

५. संवत्सरे सप्तविंशे वैशाखस्य सितोदये।
कृतेयं कल्पलतिका जिनजन्ममहोत्सवे ॥
—सोमेन्द्र विरचित अवदानकल्पलता की भूमिका १६

महाकवि क्षेमेन्द्र के उपलब्ध ग्रन्थों में सबसे प्राचीन वृहत्कथामञ्जरी १०३७ ई० तथा नवीनतम दशावतारचरित १०६६ ई० है। इससे यह विदित होता है कि अनन्त के शासनकाल से लेकर कलश के शासन के प्रारम्भिक वर्षों तक क्षेमेन्द्र अपनी रचनाओं के प्रणयन में व्यस्त थे।

इस प्रकार एक कवि के रूप में क्षेमेन्द्र का परिचय हमें सर्वप्रथम १०३७ ई० में होता है। इससे पूर्व एक रचयिता के रूप में इनका कोई परिचय नहीं प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य क्षेमेन्द्र को कवि की श्रेणी में आने के पूर्व कठोर साहित्य साधना करनी पड़ी होगी क्योंकि उन्होंने स्वतः कविकण्ठाभरण में स्वीकार किया है कि कवि बनने के लिए दिव्य प्रयत्न तथा पौरुष की आवश्यकता पड़ती है। इससे यह ध्वनित होता है कि कवि को प्रथम सर्जना के पूर्व कई वर्षों साहित्य साधना में भगीरथ प्रयत्न करना पड़ा होगा।

वृहत्कथामञ्जरी में इसका उल्लेख प्राप्त होता है कि आचार्य क्षेमेन्द्र ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी के टीकाकार अभिनवगुप्तपादाचार्य से साहित्यशास्त्र का अध्ययन किए थे।[1] यहाँ यह प्रश्न उठता है कि अभिनव गुप्त की इस टीका का रचना काल क्या है?

अभिनव गुप्त ने विद्याविवृत्ति के अन्त भाग में एक श्लोक लिखा है जिसमें वे इस टीका की रचना की समाप्ति का समय लिखा है।[2] इसमें लौकिक सम्वत् ४०९० का उल्लेख है जिसे (४०९०–३०७५) = १०१५ ई० से समीकृत किया जा सकता है। चूँकि अभिनवगुप्त का कर्तृत्वकाल ९८० ई० से १०२० ई० के बीच पड़ता है। अतः क्षेमेन्द्र ने १०२० के आस-पास अभिनवगुप्त से अध्ययन किया होगा। इसके बहुत बाद में चलकर वृहत्कथामञ्जरी लिखना प्रारम्भ किया होगा। अभिनवगुप्त के जीवन के अन्तिम भाग में क्षेमेन्द्र ने उनके चरणों में बैठकर अध्ययन किया होगा।[3] अतः १०३७ ई० के बहुत पहले क्षेमेन्द्र की जन्म तिथि निश्चित की जानी चाहिए। श्री मधुसूदन कौल "Deshopadesh and Narmmala of Kshemendra" की भूमिका में लिखते हैं—अभिनवगुप्त से साहित्यशास्त्र का अध्ययन करने के लिए और उसकी गुत्थियों को समझने के लिए एवं साहित्यशास्त्र की एक सामान्य जानकारी के लिए क्षेमेन्द्र को कम से

---

१. श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात्साहित्यं बोधवारिधेः।
आचार्यशेखरवर्णेविद्याविवृतिकारिणः ॥ —वृहत्कथामञ्जरी–उपसंहार ३६

२. इति नवतितमेऽस्मिन् वत्सरान्त्ये युगान्ते तिथिशशिजलधिस्थेमार्गशीर्षावसाः।
जगति विहितबोधामीश्वरप्रत्यभिज्ञा व्यवृणतपरिपूर्णा प्रेरितः शम्भुपादैः ॥
—ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी टीका, पृ० ४०६

३. Kshemendra probably contacted Abhinavagupta towards the end of his life."—History of poetics–P. V. Kane

कम २५ वर्ष का होना तर्कसंगत लगता है।[1] इन तथ्यों के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि क्षेमेन्द्र का जन्म लगभग ९९० ई० के आस-पास हुआ होगा। ऐसी स्थिति में उनका साहित्यिक जीवन जैसा कि वी० पी० महाजन मानते हैं १०१०–१०१५ ई० तक होना चाहिए।[2] डा० सूर्यकान्त बृहत्कथामञ्जरी की रचना के समय ग्रन्थकार की उम्र लगभग २५ वर्ष तथा उनकी जन्म तिथि १०१० ई० के आस-पास स्वीकार करते हैं।[3] दशावतारचरित १०६६ ई० के बाद उनके विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती है क्योंकि दशावतारचरित को ही उनकी अन्तिम रचना मानी जाती है। १०६६ ई० के बाद उनकी कोई कृति उपलब्ध नहीं होती है। इससे यह प्रतीत होता है कि १०६६ ई० के बाद १०७० ई० तक महाकवि क्षेमेन्द्र का स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में निस्सन्देह रूप से यह कहा जा सकता है कि आचार्य क्षेमेन्द्र ने ११वीं शताब्दी के प्रथम तीन चरणों में इस धराधाम को अलंकृत कर अपने भगीरथ प्रयत्नों के द्वारा संस्कृत वाङ्मय को समृद्ध एवं अक्षुण्ण बनाया।

क्षेमेन्द्र का वंश वृक्ष

महाकवि क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों की एक लम्बी शृङ्खला है, जिसके अवलोकन से सहज ही उनकी वंश परम्परा का ज्ञान हो सकता है। किन्तु खेद है कि महाकवि ने अपने किसी भी ग्रन्थ में समग्र रूप से एक ही स्थल पर कोई ऐसा आत्मवृत्त नहीं लिखा है जिससे जिज्ञासुओं की पिपासा एक बार में ही शान्त हो जाए। हाँ ! कवि ने केवल कुछ ग्रन्थों के चरम भागों में स्ववंशादि का अल्प परिचय अवश्य कराया है। यद्यपि इस संक्षिप्त आत्मवृत से भी कवि के सम्बन्ध में पूरी-पूरी जानकारी कर पाना सुकर नहीं है, तथापि इसको आधार बनाकर तथा अन्य सोमेन्द्र कृत अवदानकल्पलता की भूमिका एवं कल्हण कृत राजतरङ्गिणी प्रभृति समसामयिक कृतियों के माध्यम से कवि के वैयक्तिक जीवन एवं वंशावली के सम्बन्ध में कुछ निश्चित कर लेना दुष्कर भी नहीं है।

आचार्य क्षेमेन्द्र दशावतारचरित का उपसँहार करते हुए लिखते हैं—"समुद्र से भी गम्भीर सिन्धु नामक एक व्यक्ति हुए उन्होंने प्रकाशेन्द्र को पुत्र के रूप में प्राप्त किया। उन प्रकाशेन्द्र से क्षेमेन्द्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।[4] बृहत्कथामञ्जरी में अपने पिता का परिचय एक समृद्ध एवं दानी के रूप में देते हुए वे कहते हैं कि उन्हीं से क्षेमेन्द्र नामक

---

१. आमुख—'देशोपदेश एवं नर्ममाला'—श्री मधुसूदन कौल

२. नीति कल्पतरु—वी० पी० महाजन

३. क्षेमेन्द्र स्टडीज—डा० सूर्यकान्त

४. दशावतारचरित–उपसंहार २

तनय उत्पन्न हुआ।[१] **भारतमञ्जरी** में प्रकाशेन्द्र की दानवीरता का उल्लेख बड़े जोरदार शब्दों में करते हुए कहते हैं कि—विप्रगण उन्हें कहते थे कि आप इन्द्र ही हैं किन्तु अन्तर इतना है कि आप में प्रकाश अधिक है।"[२]

रामायणमञ्जरी में अपने पितामह तथा पिता की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं कि—"सिन्धु (राजा, पक्षा० समुद्र) से दूसरे चन्द्र के समान प्रकाशेन्द्र का जन्म हुआ और उन प्रकाशेन्द्र से क्षेमेन्द्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।[३]

क्षेमेन्द्र द्वारा उपर्युक्त ग्रन्थों में वर्णित वंशादि परिचय से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि क्षेमेन्द्र प्रकाशेन्द्र के पुत्र और सिन्धु के पौत्र थे।

कविकण्ठाभरण में उल्लिखित एक अन्य तथ्य पर ध्यान देने से पता चलता है कि क्षेमेन्द्र का कोई एक भाई भी था। जिसका नाम चक्रपाल वर्णित है।[४] **बौद्धावदानकल्पलता** की भूमिका में क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमेन्द्र का उल्लेख प्राप्त होता है जिसने पिता क्षेमेन्द्र द्वारा विरचित बौद्धावदानकल्पलता की भूमिका लिखी है।[५]

अब जैसा कि अवदानकल्पलता की भूमिका से ही स्पष्ट हो जाता है कि उसे क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमेन्द्र ने लिखी है। अतः क्षेमेन्द्र के वंश वृक्ष से सम्बन्धित किसी तथ्य पर विप्रतिपत्ति होना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता है। क्योंकि पुत्र द्वारा लिखी गयी अपने पिता के सम्बन्ध में किसी बात की विशेषकर वंश वृक्ष से सम्बद्ध प्रमाणिकता स्वयं-सिद्ध है।

सोमेन्द्र ने लिखा है कि नरेन्द्र राजा जयापीड के मंत्री थे। नरेन्द्र के वंश में भोगीन्द्र से सिन्धु नामक पुत्र का जन्म हुआ जो सिन्धु अमृत उत्पन्न करने वाले सिन्धु के समान वाणी रूपी सुधा के उत्पत्ति स्थल थे।[६] उनके पुत्र प्रकाशेन्द्र सूर्य के सदृश तेजस्वी

---

१. बृहत्कथामञ्जरी—उपसंहार, ३१, ३६
२. भारतमञ्जरी—उपसंहार, २
३. कश्मीरेष्वभवत्सिन्धुजन्मा चन्द्र इवापरः।
प्रकाशेन्द्रः स्थिरा यस्य पृथ्व्यस्य कीर्तिकौमुदी॥
X X X X
कथासारसुधासारं क्षेमेन्द्रस्तत्सुतो व्यधात्॥
—रामायणमञ्जरी—उपसंहार ३, ४, ५
४. यथा, चैतद्भ्रातुश्चक्रपालस्य। —कविकण्ठाभरण, द्वितीय संधि, उदा० सं० ७
५. अस्मत्पित्रावदानानां कृते सप्तोत्तरे शते।
सोमेन्द्रेण समाप्येकं कृतं मङ्गलपूरणम्॥ —बौद्धावदानकल्पलता, भूमिका १४
६. अवदानकल्पलता, भूमिका १, २

थे। प्रकाशेन्द्र अपनी दानवीरता के लिए विख्यात थे। उनके पुत्र का नाम क्षेमेन्द्र था। क्षेमेन्द्र की कीर्तिचन्द्रिका विद्वन्मण्डली में चन्द्रमा की भाँति छिटक रही थी।[1]

क्षेमेन्द्र की वंशावली से सम्बन्धित उपर्युक्त नरेन्द्र, भोगीन्द्र, सिन्धु और प्रकाशेन्द्र आदि नामों की जानकारी के अनन्तर यह कौतूहल उत्पन्न होता है कि वास्तव में ये कौन थे, तथा किस समय ये व्यक्ति इस भूतल पर विराजमान थे ? सोमेन्द्र की भूमिका से तो यही स्पष्ट होता है कि नरेन्द्र राजा जयापीड के मंत्री थे। क्षेमेन्द्र भी अपने पिता प्रकाशेन्द्र को एक सम्भ्रान्त महापुरुष के रूप में चित्रित करते हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकाशेन्द्र भी किसी राजा के आश्रित रहे हों, साथ ही किसी उच्च पद पर प्रतिष्ठित रहे हों, जिससे कि उन्हें प्रभूत द्रव्य एकत्रित करने का सुयोग प्राप्त हुआ। पुनः यदि नरेन्द्र आदि किसी प्रतिष्ठित पद पर रहे होंगे तो काश्मीर के इतिहास में उनका नाम कालक्रमानुसार अवश्य ही उल्लिखित होना चाहिए।

सम्प्रति इस तथ्य की जानकारी हेतु कल्हण कृत राजतरङ्गिणी का आश्रय लेना आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि काश्मीर के इतिहास की स्पष्ट एवं विस्तृत जानकारी की तो यह अक्षय निधि ही है। क्षेमेन्द्र के प्राचीन वंशज नरेन्द्र जयापीड के मन्त्री थे। राजतरङ्गिणी के अनुशीलन से पता चलता है कि जयापीड नामक दो व्यक्ति हुए। जिसमें प्रथम जयापीड काश्मीर के राजा (८५० ई०) थे। दूसरे जयापीड राजा जयसिंह (११२८–४८ ई०) के आश्रित थे। प्रथम जयापीड संग्रामपीड के बाद काश्मीर के राजा हुए।[2] इस राजा जयापीड के देवशर्मा आदि अनेक मन्त्री थे।[3] परन्तु नरेन्द्र का उल्लेख राजतरङ्गिणी में नहीं हुआ। जबकि सोमेन्द्र उन्हें राजा जयापीड का मन्त्री कहता है। सम्भव है कि मन्त्रिपरिषद् के लब्ध प्रतिष्ठित मन्त्रियों में नरेन्द्र का स्थान निम्न रहा हो। परन्तु बहुधा ऐसा देखा जाता है कि मन्त्रिपरिषद् के अन्य मन्त्रियों को कभी-कभी कोई एक मन्त्री अपनी कूटनीति, विद्वत्ता अथवा किसी विशेष गुण से अभिभूत कर उच्च पद पर न रहते हुए भी अपनी श्रेष्ठता का वर्चस्व स्थापित कर लेता है। ऐसी स्थिति में अन्य मन्त्रियों का व्यक्तित्व दब जाता है। परन्तु इतिहास लेखक को तो महत्त्वपूर्ण मन्त्री को छोड़कर अन्य मन्त्रियों के विषय में उतनी जानकारी नहीं हो पाती। पुनः जहाँ तक दूसरे जयापीड का प्रश्न है, वे तो (११२८–४८) के मध्य विद्यमान थे। इस काल में

---

१. अवदानकल्पलता, भूमिका ३, ४

२. शान्तेऽथ संग्रामपीडे कनीयान् वप्पियात्मजः।
राजा श्रीमाञ्जयापीडः प्राप राज्यं ततः क्रमात्॥ —राजतरङ्गिणी ४।४०२

३. गतशेषं प्रभुत्यक्तं सैन्यं संवाह्यान्स्थितः।
मित्रशर्मात्मजो देवशर्माऽमात्यस्तमाययौ॥ —वही ४।४६८

क्षेमेन्द्र के वंशज नरेन्द्र को मानना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता है। क्योंकि उन्हें इससे कम से कम दो शताब्दी पूर्व होना चाहिए था।

भोगीन्द्र से सम्बन्धित कोई भी तथ्य राजतरङ्गिणी में सुलभ नहीं है। हाँ भोगसेन[1] नामक एक व्यक्ति का अवश्य ही उल्लेख प्राप्त होता है, जो राजा के प्रति सेवा के कारण राजा उच्चल[2] के विश्वासपात्र बन गये। राजतरङ्गिणी में जैसा कि वर्णित है कि यह भोगसेन एक उच्च अधिकारी भी था। महाराज उच्चल (११०१–११) तक शासन कर रहे थे। अतः क्षेमेन्द्र के वंशज भोगीन्द्र की तुलना भोगसेन से करना अनुचित नहीं जान पड़ता क्योंकि भोगीन्द्र को इससे बहुत पहले होना चाहिए था।

सोमेन्द्र, भोगीन्द्र के पुत्र सिन्धु का उल्लेख करते हैं। राजतरङ्गिणी में जिस सिन्धु[2] का उल्लेख प्राप्त होता है वह रानी दिड्डा (९५८–१००३) का खजान्ची था। सिन्धु और भूय दोनो सहोदर भाई थे। ये दोनों कुय्य के पुत्र थे। भूय नगराधिपति थे। सिन्धु अपने भाई भूय के प्रति विद्वेष रखता था। राजतरङ्गिणी में सिन्धु के बहुत ही निम्न एवं घृणास्पद चरित्र का वर्णन प्राप्त होता है जबकि क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थों में जिस सिन्धु का उल्लेख किया है वे भक्त-दानी और अत्यन्त समृद्ध हैं। राजतरङ्गिणी सिन्धु के पुत्र मातंग का उल्लेख करती है जो राजा संग्रामराज मा मन्त्री था, जबकि क्षेमेन्द्र के वंशज सिन्धु का पुत्र प्रकाशेन्द्र था। राजतरङ्गिणी के सिन्धु का पिता कुय्य था जबकि क्षेमेन्द्र के वंशज सिन्धु भोगीन्द्र के पुत्र थे। कुय्य के साथ भोगीन्द्र के समीकरण को तर्क-संगत ठहराना अनुचित नहीं जान पड़ता। राजतरङ्गिणी में सिन्धु के पुत्र, पौत्र आदि का वर्णन नहीं है और न ही प्रकाशेन्द्र का उल्लेख प्राप्त होता है। इसमें केवल क्षेमेन्द्र का उल्लेख 'नृपावली' के रचयिता के रूप में आया है। अतएव क्षेमेन्द्र के पूर्वज सिन्धु राजतरङ्गिणी में वर्णित सिन्धु से बिलकुल पृथक है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि क्षेमेन्द्र के पूर्वजों का नाम प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थ राजतरङ्गिणी में नहीं प्राप्त होता है। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि क्षेमेन्द्र के पूर्वज नरेन्द्र आदि किसी राजा के न तो आश्रित ही थे और न ही किसी उच्च पद पर आसीन थे। यदि ऐसा होता तो उनका उल्लेख राजतरङ्गिणी में अवश्य होता।

---

१. भोगसेनो निरनुगः क्षीणवासा भवन् कृतः।
तेनाऽतिसेवाप्रीतेन राजस्थानाधिकारभाक्॥ —वही ८।८१

२. उपायापकृतेः प्राप्य राज्यं दस्युभिः।
एवं शनैरवष्टम्भं भेजे भूपतिरुच्चलः॥ —वही ८।३९

३. अभूतां युगवाहस्य कुय्यनाम्नः सुतो पुरा।
यो सिन्धुभूयया तज्जायमानः सिन्धुलोलतिकः किल्॥ —राजतरङ्गिणी ६।२६४

चूँकि क्षेमेन्द्र उच्चकोटि के कवि थे अतएव उन्होने अपने पूर्वजों का नाम श्रद्धापूर्वक संकीर्तन किया। परन्तु यह समझना कि वे तत्कालीन राजा के कृपापात्र या वरिष्ठ अधिकारी रहे हों, अत्युचित् नहीं प्रतीत होता। जहाँ तक प्रकाशेन्द्र की अत्यधिक समृद्धि का प्रश्न है, निरन्तर प्रयत्न तथा उद्योग से धनसंग्रह करना किसी अभ्युदयशील एवं पुरुषार्थी के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

अंततः क्षेमेन्द्र तथा सोमेन्द्र के अनुसार कथित वंश परम्परा निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत की जा सकती है—

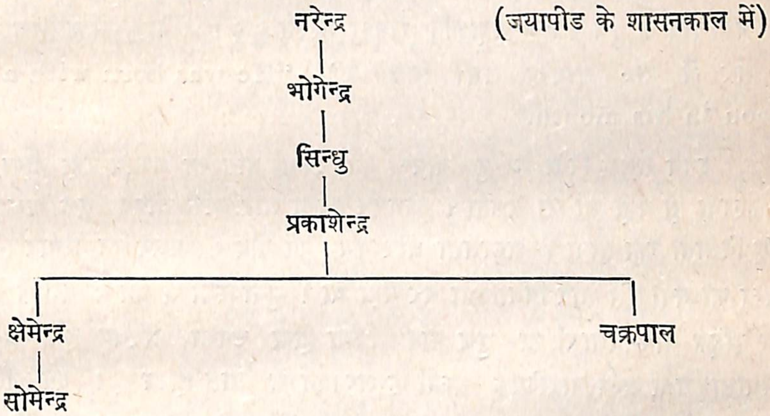

प्रारम्भिक जीवन एवं शिक्षा

सूर्य के सदृश तेजस्वी, इन्द्र तुल्य प्रकाशेन्द्र के ऊपर भगवती लक्ष्मी की महती अनुकम्पा थी। वह विपुल धन-धान्य एवं वैभव सम्पन्न थे, परन्तु उनकी प्रवृत्ति धन-संग्रह की नहीं थी, अपितु मुक्त हस्त से दान करने में ही वे प्रभूत धन की सार्थकता मानते थे। क्षेमेन्द्र ने वृहत्कथामञ्जरी,[१] रामायणमञ्जरी,[२]

---

१. यस्य मेरोरिवोदार कल्याणपूर्णसंपदः।
अगणयेवाभूद गेहे यस्य भोज्यं द्विजन्मनाम्॥
सूर्यग्रहे त्रिभिर्लक्षैर्दत्वा कृष्णाजिनत्रयम्।
अल्पप्रदोऽस्मीत्यभवत् सलज्जानतकन्धरः॥
स्वयम्भूनिलये श्रीमान यः प्रतिष्ठाप देवताः।
दत्वा कोटिचतुर्भागं देवद्विजमठादिषु॥
पूजयित्वा स्वयं शम्भु प्रसरद्वाष्पनिर्भरः।
गाढं दोर्भ्या समालिग्य यस्तयेव व्यपतत्॥ —वृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार ३२–३५

२. रामायणमञ्जरी–उपसंहार ४

भारतमञ्जरी,[1] औचित्यविचारचर्चा[2] तथा दशावतारचरित[3] आदि ग्रन्थों में अपने पिता के दानवीरता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कवि के सुपुत्र सोमेन्द्र ने भी अपने पितामह की अल्प महत्व वाली अन्य विशेषताओं को छोड़कर संक्षेप में उनकी दानपुण्यता का ही स्तवन किया है।[4] जिससे स्पष्ट होता है कि यही उनके जीवन का प्रधान लक्ष्य था। याचकों के मनोरथ को पूर्ण करने में कल्प-वृक्ष-कल्प थे। सूर्यग्रहण लगने पर उन्होंने विप्रों को तीन लाख मुद्राओं से युक्त तीन कृष्ण मृग चर्म दान में दिया था, फिर भी कम दान करने के कारण उनका मस्तक लज्जा से अवनत हो गया था। उन्होंने देवताओं, ब्राह्मणों को चार करोड़ दान में दिया था। ऐसे धन सम्पन्न किन्तु उच्चकोटि के दान-वीर प्रकाशेन्द्र के पुत्र रूप में महाकवि क्षेमेन्द्र उत्पन्न हुए। क्षेमेन्द्र की वांशिक सम्पन्नता के बारे में डा० आर्येन्द्र शर्मा लिखते हैं[5]—"He was born with a silver spoon in his mouth."

इतने समृद्ध पिता के पुत्र क्षेमेन्द्र को किसी बात का अभाव रहा होगा, इसकी तो कल्पना हो नहीं की जा सकती। अतएव इनका प्रारम्भिक जीवन एक राजकुमार की तरह विलासी रहा होगा। सम्पन्नता और वैभव की गोद में पलने का प्रभाव निश्चिततः क्षेमेन्द्र की मनोवृत्ति और विलासिता पर पड़ा था। युवावस्था में धन के सम्पर्क से उन्होंने जिन ऐहिक भोग-विलासों का सुख प्राप्त किया होगा उनका परिचय हमें 'देशोपदेश', 'नर्ममाला' तथा अन्य प्रारम्भिक ग्रन्थों के अध्ययन से प्राप्त होता है। इन कृतियों में वे अश्लीलता के स्तर तक पहुँच गये हैं और प्रत्येक वर्णन कवि की अपरिष्कृत रुचि का परिचायक है "कला विलास" और "समय मातृका" आदि में यह प्रवृत्ति उतनी उच्छृङ्खल तो नहीं है, परन्तु फिर भी वेश्याओं आदि का वर्णन उन्होंने इतनी स्वतन्त्रता और स्वाभाविकता से किया है जिससे यह समझने में सन्देह नहीं रहता कि वे उनसे निकटतः परिचित थे। इस दिशा में वे बाण को भी पीछे छोड़ देते हैं।

प्रौढ़ता के आगमन के साथ-साथ क्षेमेन्द्र की प्रतिभा का निखार और मनोवृत्ति का उन्नयन होता हुआ दिखाई देता है। 'अवदानकल्पता', कविकण्ठाभरण', औचित्य-विचारचर्चा तथा 'दशावतारचरित' आदि उनके प्रौढ़ कृतित्व और ज्ञान का परिचय देते हैं। उनकी प्रवृति में होने वाले इस आकस्मिक परिवर्तन के कारण के विषय में लोगों ने नाना प्रकार की कल्पनाएँ एवं संभावनाएँ व्यक्त की हैं। कोई उनकी पत्नी और पिता

१. भारतमञ्जरी–उपसंहार २
२. औचित्यविचारचर्चा–उपसंहार ५
३. दशावतारचरित–उपसंहार २
४. अवदानकल्पलता की भूमिका ३
५. क्षे० ल० का० सं० की भूमिका, पृ० २

पिता की मृत्यु से उत्पन्न होने वाली विरक्ति को इस परिवर्तन का श्रेय देता है, तो कोई भोग-विलास की अति के पश्चात उनकी ओर से स्वभावतः हो जाने वाली अरुचि को इसका कारण मानता है। जहाँ तक अनुमान है कि अवस्था और अनुभव के विकास के साथ ही ज्ञान की वृद्धि और उसी के फलस्वरूप मनुष्य के चरित्र में आने वाली दृढ़ता और गुरुता को इसका मूल समझना चाहिए।

धनी और सम्पन्न पिता के पुत्र होने के कारण क्षेमेन्द्र को सभी सुविधाएँ प्राप्त थीं और जीवन के विविध पक्षों का उन्होंने पर्याप्त अनुभव भी प्राप्त किया था। फिर भी धन से उत्पन्न होने वाले मद का उनमें अभाव था। विद्या और ज्ञान जहाँ कहीं से भी प्राप्त हो सके, प्राप्त करना चाहिए, यह उनका सिद्धान्त था।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने जीवन के हर पहलू पर कुछ न कुछ अवश्य ही प्रकाश डाला है। उनकी शिक्षा दीक्षा के सम्बन्ध में अन्तरंग प्रमाणों से विदित होता है कि उन्होंने उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त की थी। पुनः अच्छी शिक्षा प्राप्त करने के लिए उन्हें बहुत ही अनुकूल परिस्थितियाँ भी रही होंगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। "कविकण्ठाभरण"[१] में कवि शिक्षा नामक जो द्वितीय सन्धि का प्रणयन किया है, बहुत सम्भव है उन्होंने कवि होने के पूर्व की अवस्था में इसका अध्ययन किया हो और भली-भाँति अपने कवि जीवन में उसे ढालने का प्रयास किया हो।

जैसा कि इस अध्याय के पूर्व में हम देख चुके हैं कि महाकवि क्षेमेन्द्र ने ज्ञानम्बुधि, आचार्य शिरोमणि, विद्याविवृतिकार अभिनवगुप्त से उन्होंने साहित्य शास्त्र का अध्ययन किया था।[२] सोमपाद नामक वैष्णवाचार्य से उन्होंने अध्यात्मविद्या का अध्ययन किया था।[३] औचित्यविचारचर्चा[४] में आशीर्वचनोचित्य के उदाहरण में उन्होंने अपने उपाध्याय गङ्गक का एक श्लोक उद्धृत किया है जिससे लगता है कि उन्होंने गङ्गक से भी

---

१. कविकण्ठाभरण २२।२।२

२. श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात् साहित्यंबोधवारिधेः।
आचार्यशेखरमणेर्विद्याविवृतिकारिणः ॥ —बृहत्कथामञ्जरी–उपसंहार ३७

३. श्रीमद्भागवताचार्यसोमपादाब्जरेणुभिः।
धन्यतां यः परं यातः नारायणपरायणाः ॥ —बृहत्कथामञ्जरी–उपसंहार ३६

४. यथा अस्मदुपाध्यायगङ्गकस्य—
स कोऽपि प्रेमार्द्रः प्रणयपरिपाकप्रचालितो,
विलासोऽक्षणं देयात् सुखमनुपमं वो मृगदृशम।
यदाकूतं दृष्ट्वा पिदधति मुखं तूणविवरे,
निरस्तव्यापारा भुवनजयिनः पञ्चविशिखाः ॥
—औचित्यविचारचर्चा–उदाहरण सं० १०५

अध्ययन किया था। इस प्रकार इन आचार्यों की शृंखला से स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य क्षेमेन्द्र किसी भी विषय का अध्ययन केवल उसके विशेषज्ञ से ही करना पसन्द करते थे। यही कारण है कि उन्होंने साहित्य शास्त्र का अध्ययन अभिनवगुप्त से किया और वैष्णव दर्शन का अनुशीलन सोमपाद से किया। सोमेन्द्र विरचित बौद्धावदानकल्पलता की भूमिका में आचार्य **गोपदन्त, आचार्य वीरभद्र तथा आचार्य सूर्यश्री** का उल्लेख मिलता है। क्षेमेन्द्र को अवदानकल्पलता की रचना से पूर्व इन आचार्यों से अध्ययन और अनुशीलन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। आचार्य गोपदत्त[1] से उन्होंने जातकों के विस्तृत वर्णन का अध्ययन किया था। वीरभद्र[2] ने जिन शास्त्रों के शासनों में इन्हें पारंगत बनाया। सूर्यश्री[3] लिपिन्यास का अध्ययन कराने के लिए क्षेमेन्द्र द्वारा प्रार्थित थे। द्विजेन्द्र **'रामयश'** और **देवधर**[4] इनकी समस्त कृतियों के प्रेरक थे। इनको क्षेमेन्द्र का आचार्य तो नहीं कहा जा सकता लेकिन उपाध्याय कल्प के रूप में ये लोग क्षेमेन्द्र को परामर्श देते रहते थे।

क्षेमेन्द्र का ज्ञान बहुमुखी था। साहित्य, दर्शन, नाटक, आख्यायिका, इतिहास पुराण, शिल्पकला आदि के वे विशेषज्ञ थे। इतने अधिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इनके आचार्यों की लम्बी सूची रही होगी। औचित्यविचारचर्चा में क्षेमेन्द्र ने अपने को "सर्वमनीषीशिष्यः" कहा है। 'कविकण्ठाभरण' में उन्होंने "व्युत्पत्त्यैसर्वशिष्यता" को अङ्गीकार किया है। इनकी रचनाओं के विषय-वैभिन्य से यह प्रकट हो जाता है कि वे बहुशास्त्रभिज्ञ थे।

अपने आचार्य अभिनवगुप्त की भाँति क्षेमेन्द्र भी अध्यापन में बहुश्रुत थे। वैसे तो

---

१. आचार्यगोपदत्तैरवदानक्रमोज्झितः ।
उच्चित्योच्चित्य विहिता गद्यपद्यविशङ्कलता ।।
एकमार्गानुसारिण्यः परं गाम्भीर्यकर्कशा ।
विस्तीर्णवर्णसाः सन्ति निजजातकमालिका ।। —अवदानकल्पलता–भूमिका ७, ८

२. अथाभेत्य स्वयं तस्य गृहं प्रज्ञाप्रकाशवान ।
आचार्यो वीरभद्राख्यः प्रख्यात् सुकृतोज्ज्वलः ।। —वही २

३. यस्य हस्तगतं सर्वशास्त्रमायाति शुद्धताम् ।
आचार्यः सोऽत्र सूर्यश्रीलिपिन्यासार्थमर्थितः ।। —वही

४. (अ) स श्री देवधरायख्स्य द्विजराज्यपदस्थितेः ।
सर्वज्ञस्यज्ञिया चक्रे कथामेतां विनोदिनीम् ।।
—क्षे० ल० का० सं०, तद्‌गत वृहत्कथामञ्जरी, पृ० ४२

(ब) "Kshemendra mentions one Deodhar........It is probable that he was his teacher".—Dr. Suryakant, K. S. Page 15

दोनों के क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं परन्तु अभिनवगुप्त की प्रतिभा की छाप अगर किसी पर पड़ी तो क्षेमेन्द्र पर। अभिनवगुप्त की ही भाँति क्षेमेन्द्र के शिष्यों की संख्या अत्यधिक रही होगी। क्षेमेन्द्र ने 'कविकण्ठाभरण' में अपने दो शिष्यों का उल्लेख किया है—भट्टोदयसिंह[1] और राजपुत्रलक्ष्मणादित्य[2]। उदयसिंह ने ललिताभिधान नामक महाकाव्य का प्रणयन किया था।

इस तरह प्राप्त सामग्री के आधार पर क्षेमेन्द्र के विद्यावंश की पीढ़ियों का क्रम निम्नलिखित बनता है।

अभिनवगुप्त—सोमपाद—गङ्गक—गोपदत्त—वीरभद्र—सूर्यश्री—देवधर—द्विजेन्द्र—रामयश

|

क्षेमेन्द्र

|

भट्टोदय सिंह   राजपुत्र लक्ष्मणादित्य

क्षेमेन्द्र का कर्तृत्व

क्षेमेन्द्र की प्रतिभा बहुमुखी थी। साहित्य तथा शास्त्र के विभिन्न अङ्गों पर उनका विशिष्ट अधिकार था। संस्कृत वाङ्मय को उन्होंने अपनी लेखनी से प्रचुर रूपेण समृद्ध किया, किन्तु दुर्भाग्यवश १८७१ ई० तक क्षेमेन्द्र अपने व्यापक रूप में ज्ञात नहीं थे। १८७१ ई० में 'डा० बर्नेल' को क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी की एक पाण्डुलिपि मिली। उसी वर्ष 'बूलर' को भी गुजरात में उपर्युक्त ग्रंथ की ही पाण्डुलिपि मिली। तब से लगभग १८८५ ई० तक उनकी अनेक कृतियों का पता चला तथा १९०३ तक १३ पुस्तकें निर्णयसागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित भी हो गयी। इस प्रकार बढ़ते समय में विद्वानों के

---

१. अचेतनचेतनाध्यारोपपरिचयो यथा मच्छिष्यमहाश्री **भट्टोदयसिंहस्य** ललिताभिधाने महाकाव्ये इह विकसदशोकास्तोकपुण्योपकारैरयमतिशयरक्तः सक्तसुस्निग्ध भावः। त्रिभुवन जयसज्जः प्राज्यसाम्राज्यभाजः प्रथयति पृथुमैत्रीं पुष्पचापस्य चैत्रः।

—क्षे० ल० का० सं०, तद्गत, कविकण्ठाभरण, पृ० ८२

२. विवेकपरिचयो यथा मच्छिष्य—**राजपुत्रलक्ष्मणादित्य**—

आशापाशविमुक्तियुक्तममलं संतोषमान्यं मनः
सेवायासविवर्जितं विहरणं मायाविहीनं वचः।
चण्डीशार्चनमात्मशुद्धिजननी गंगेव सत्संगतिः
सो यं संतरणे परः परिकरः संसारवारांनिधेः॥

—क्षे० ल० का० सं० तद्गत, कविकण्ठाभरण, पृ० ८३

प्रयास से क्षेमेन्द्र की इतनी कृतियाँ मिली कि लगभग १८ पुस्तकें प्रकाशित भी हो चुकी हैं। 'व्यासाष्टक' को लेकर इनके प्रकाशित रचनाओं की संख्या १९ हैं। डा० मनोहर लाल गौड़,[१] डा० चन्द्रहंस पाठक,[२] डा० सूर्यकान्त[3] तथा पं० बलदेव उपाध्याय[४] प्रभृति विद्वानों ने व्यासाष्टक को स्वतंत्र कृति के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु डा० आर्येन्द्र शर्मा इसको भारतमञ्जरी का ही अंश मानते हैं। वस्तुतः यह पृथक रचना नहीं है। अत-एव उनके प्रकाशित ग्रंथों की संख्या १९ न मानकर १८ मानना ही उपयुक्त होगा।

महाकवि क्षेमेन्द्र ने इतनी अधिक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं तथा उनकी कोटियाँ इतनी विविध हैं कि उनके विषय में कोई भी समीक्षात्मक अथवा मूल्यांकनात्मक अध्ययन करने के लिए हमें उनका वर्गीकरण करना पड़ता है। अतः अध्ययन की सुविधा के लिए उनके समस्त उपलब्ध ग्रंथों को काव्यात्मक, उपदेशात्मक तथा शास्त्रीय तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

प्रकाशित रचनायें

काव्यात्मक ग्रन्थ—(१) बृहत्कथामञ्जरी, (२) भारतमञ्जरी, (३) रामायण-मञ्जरी, (४) दशावतारचरित, (५) बौद्धावदानकल्पलता।

उपदेशात्मक ग्रन्थ—(६) कलाविलास, (७) समयमातृका, (८) चरुचर्यशितक, (९) सेव्यसेवकोपदेश, (१०) दर्पदलन, (११) देशोपदेश, (१२) नर्ममाला, (१३) चतुर्वर्ग संग्रह, (१४) नीति कल्पतरु, (१५) लोकप्रकाश कोश।

शास्त्रीय ग्रन्थ—(१६) औचित्यविचारचर्चा, (१७) कविकण्ठाभरण, (१८) सुवृत्ततिलक।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में इन प्रकाशित रचनाओं के अति-रिक्त अपरी अन्य रचनाओं का भी उल्लेख किया है, जो मात्र श्रुतिगोचर ही हैं। ये अप्रकाशित रचनाएँ इस प्रकार हैं—

अप्रकाशित रचनाएँ

(अ) कविकण्ठाभरण में उल्लिखित रचनाएँ[५]—(१) शशिवंश महाकाव्य

१. औचित्यविचारचर्चा—डा० मनोहरलाल गौड़, पृ० ८
२. औचित्य सम्प्रदाय का हिन्दी काव्यशास्त्र पर प्रभाव—डा० चंद्रहंस पाठक, पृ० १२२
३. 'क्षेमेन्द्र स्टडीज'—डा० सूर्यकान्त
४. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय, पृ० २२३
५. क्षे० ल० का० सं०, पृ० ७२–८०

(२) पद्य कादम्बरी, (३) चित्र भारत नाटक, (४) लावण्यवती अथवा लावण्यमञ्जरी, (५) कनक जानकी, (६) मुक्तावली, (७) अमृततरङ्ग महाकाव्य।

(ब) औचित्यविचारचर्चा में उल्लिखित रचनाएँ—(८) विनयवल्ली, (९) मुनिमतमीमांसा, (१०) नीतिलता, (११) अवसरसार, (१२) ललितरत्नमाला, (१३) वात्सायनसूत्रसार।[1]

औचित्यविचारचर्चा में एक ऐसा श्लोक है, जिससे क्षेमेन्द्र के कतिपय अन्य ग्रंथों के नाम का संकेत मिलता है। वह श्लोक निम्नलिखित है[2]—

कृत्वापि काव्यालंकारां क्षेमेन्द्रः कविकर्णिकाम्।
तत्कलङ्क विवेकं च विधाय विबुधप्रियम्॥

इस श्लोक से यह प्रतीत होता है कि **कविकर्णिका, कविकलङ्क** तथा '**कविविवेक**'' नाम के भी इनके ग्रंथ रहे होंगे। इन सब की रचना के बाद ही क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा लिखी होगी। इनमें कविकर्णिका की चर्चा आधुनिक आलोचकों[3] तथा इतिहासकारों ने भी की है।[4] किन्तु जिस आधार पर कविकर्णिका को मान्यता मिलती है उसी आधार पर कविकलङ्क तथा कविविवेक को भी माना जाना चाहिये। किन्तु ये केवल नाम में ही सुरक्षित है। जब तक इनके संबंध में कोई सूचना नहीं मिलती है तब तक अधिक कुछ कहना सम्भावना से परे है।

(स) प्रसिद्ध छंदग्रंथ सुवृत्ततिलक के तृतीय विन्यास की २२वीं कारिका में स्रग्धरा छन्द के संबंध में क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रंथ 'पवनपञ्चाशिका' से उद्धरण दिया है।[5]

(द) कल्हण ने अपनी राजतरङ्गिणी में क्षेमेन्द्र द्वारा असावधानीपूर्वक लिखी हुई '**नृपावली**' अथवा 'राजावली' नाम की पुस्तक का उल्लेख किया है[6]—

केनाऽप्यनवधानेन कविकर्मणि सत्यपि।
वंशोऽपि नास्ति निर्दोषः क्षेमेन्द्रस्य नृपावली॥

इस प्रकार कविकर्णिका, पवनपञ्चाशिका तथा नृपावली सहित क्षेमेन्द्र की अप्रकाशित रचनाओं की संख्या कुल १६ हो गयी।

---

१. क्षे० ल० का० सं, पृ० १५, २४, २५, ३६, ४०, ६१
२. वही, पृ० ११
३. के० एस०, पृ० २०
४. हनुमत प्रसाद शास्त्री कृत काश्मीरेतिहास, पृ० २२५
५. क्षे० ल० का० सं०, पृ० ११४
६. राजतरङ्गिणी १।१३

(य) इसके अतिरिक्त पं० शिवदत्त ने 'हस्तिप्रकाश' नामक ग्रंथ को भी क्षेमेन्द्र की ही कृति माना है।[1] डा० बूहलर ने अपनी काश्मीर रिपोर्ट में 'स्पन्दनिर्णय' तथा 'स्पन्द-संदोह' नाम के दो ग्रंथों को भी क्षेमेन्द्र की रचना माना था, किन्तु बाद में स्वयं उनका मत भी भिन्न हो गया और इन्होंने इन्हें क्षेमराज की रचना माना।[2] हनुमत प्रसाद शास्त्री के काश्मीरेतिहास में क्षेमेन्द्र लिखित ग्रंथों की सूची दी गयी है जिसके अंतर्गत 'विनयवती' तथा 'क्षेमेन्द्रप्रकाश' नामक दो ग्रंथों की भी सूचना मिलती है।[3]

इस प्रकार पूर्वोक्त १८ प्रकाशित एवं १५ अप्रकाशित ग्रंथों के साथ क्षेमेन्द्र की कुल ३४ कृतियों का परिचय अभी तक साहित्य जगत को प्राप्त हुआ है। पुरः यदि व्यासाष्टक को स्वतन्त्र कृति माना जाय तथा कविकलङ्क, कवि विवेक, विनयवती, क्षेमेन्द्र प्रकाश तथा हस्ति प्रकाश आदि की प्रमाणिकता स्पष्ट हो जाय तो क्षेमेन्द्र के कृतियों की कुल संख्या लगभग ४० हो जाती है जो उनकी विशाल साहित्य साधना का संकेत प्रस्तुत करती हैं।

सम्प्रति आचार्य क्षेमेन्द्र की प्रकाशित रचनाओं का वर्ण्य विषय संक्षिप्ततः प्रस्तुत करने का उद्योग किया जा रहा है—

वृहत्कथामञ्जरी—इसका रचनाकाल (१०३७ ई०) माना गया है। मूल वृहत्कथा अप्राप्य है तथा गुणाढ्य की महान् कृति का आधिकारिक रूपान्तर होने के कारण वृहत्कथामञ्जरी का संस्कृत साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है। इस ग्रंथ का सबसे अधिक महत्व यह है कि क्षेमेन्द्र के कथनानुसार उसको लिखते समय उनके पास मूल वृहत्कथा की प्रतिलिपि थी। इस ग्रंथ का प्रकाशन काव्यमाला सीरीज के ८३वें गुच्छक में हुआ है। संपूर्ण ग्रंथ १८ लम्बकों में विभक्त है और उपसंहार के रूप में १९वें लम्बक की रचना की गयी है। इसमें श्लोकों की संख्या ७६३८ है। 'कथापीठ' में गुणाढ्य का वर्णन है। दूसरे और तीसरे लम्बकों में उदयन और पद्मावती की कथा है। चौथे में नरवाहनदत्त का जन्म और आगे के तीन लम्बकों में भी इन्हीं लोगों की कथाएँ हैं। आठवें से लेकर अठारहवें लम्बक तक अन्य विविध कथाएँ हैं। पाँचवें लंबक तक क्षेमेन्द्र ने पूर्णरूपेण गुणाढ्य का अनुसरण किया है और इसके बाद यत्किञ्चित स्वतंत्र हो गये। इस प्रकार क्षेमेन्द्र ने वृहत्कथा के प्राचीन कथानक को अलंकृत शैली में संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास ग्रंथ में किया है जिसमें उन्हें पूर्णरूपेण सफलता प्राप्त हुई है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से इसका विशेष महत्व है।

---

१. के० एस०, पृ० २६

२. के० एस०, पृ० २६

३. हनुमत प्रसाद शास्त्री कृत काश्मीरेतिहास, पृ० २२९

भारतमञ्जरी—भारत के महत्तम महाकाव्य 'महाभारत' का श्लोकों में किया हुआ संक्षिप्त रूपान्तर है जिसने आचार्य क्षेमेन्द्र को साहित्य जगत में अत्यधिक प्रतिष्ठा प्रदान की। क्षेमेन्द्र ने "व्यास दास" की उपाधि इसी के कारण प्राप्त की। एक सच्चे रुपान्तरकार की भांति आचार्य ने महाभारत की अल्प अथवा वृहत परिमाण वाली घटनाओं का संक्षिप्त रुप प्रस्तुत करने में अपनी कुशलता का परिचय दिया है। इस ग्रंथ का प्रकाशन का. मा. सी. के २८वें गुच्छक में हुआ है। इसमें कुल श्लोकों की संख्या १०६६२ है। शान्ति पर्व के ३४२वें से लेकर ३५३वे अध्याय का संक्षेप इसमें न होने के कारण यह प्रतीत होता है कि क्षेमेन्द्र के समय में उपर्युक्त भाग मूलग्रंथ में नहीं था और वह बाद का प्रक्षेप है। इस ग्रंथ में कुल १८ पर्व हैं।

रामायणमञ्जरी—ऐसा प्रतीत होता है कि क्षेमेन्द्र रामायण और महाभारत आदि से बहुत प्रभावित थे क्योंकि उन्होंने स्वयं लिखा है कि इन ग्रंथों के अध्ययन से ही उन्हें "कवीन्द्रत्व" की प्राप्ति हुई है। रामायणमञ्जरी वाल्मीकि कृत रामायण का सरस और काव्यमय संक्षेप है। इस ग्रंथ का सर्वाधिक महत्व इस दृष्टि से है कि इससे क्षेमेन्द्र के समय में उपलब्ध रामायण के पाठ का पर्याप्त अनुमान हो जाता है। इस ग्रंथ के ६४०० श्लोकों को ग्रंथकार ने वाल्मीकि रामायण की ही भांति बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्य पर्व, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड प्रभृति सात काण्डों में विभक्त किया है परन्तु इस विभाजन में उन्होंने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है जो महाभारत के कथानक विभाजन से कुछ साम्यता रखती है। यथा-ग्रंथकार का बालकाण्ड एवं अयोध्याकाण्ड को संयुक्त रूप देना साथ ही किष्किन्धाकाण्ड को-किष्किन्धा पर्व और किष्किन्धाकाण्ड में विभाजित करना एवं युद्धकाण्ड के पश्चात तथा उत्तरकाण्ड के पूर्व रामाभिषेक नामक एक अलग से अंश जोड़ना आदि। वस्तुतः कवि ने मौलिकता की ओर विशेष ध्यान दिया है और परकीय ग्रंथ का संक्षेप करते समय उसमें मौलिकता का सन्निवेश करके सचमुच एक गुरुतर कार्य किया है। कल्पनाओं की नवीनता हमें उत्प्रेक्षाओं, रुपकों एवं उपमाओं के प्रयोग में उपलब्ध होती है ग्रंथ के ६४०० श्लोकों में किष्किन्धाकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड के अंत में तथा रामाभिषेक, के (६२) श्लोकों को छोड़कर प्रायः सर्वत्र श्लोक छन्द का ही प्रयोग हुआ है। एक सम्पूर्ण दृश्य का चित्र केवल एक छोटे से अनुष्टुप में कर देने में क्षेमेन्द्र को विशेष सफलता मिली है। भाषा को सामान्य तथा प्राञ्जल कहा जा सकता है जो रस से स्निग्ध और मधुर पदावली से समन्वित है। अलंकारों के प्रति यद्यपि विशेष मोह का प्रदर्शन नहीं किया गया है फिर भी यत्र-तत्र अनुप्रासों तथा अर्थालंकारों की स्वाभाविक छटा दर्शनीय है। बहुत से विद्वानों ने रामायणमञ्जरी की यद्यपि आलोचना की है क्योंकि इसमें कठिन और अस्पष्ट वर्णनों की भरमार है परन्तु ऐसा होते हुए भी काव्यात्मक दृष्टि से क्षेमेन्द्र स्थल-स्थल पर बहुत सफल हुए

हैं। क्षेमेन्द्र की अत्यन्त सरस और मधुर रचनाओं में से यह एक है, इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसका प्रकाशन का. मा सी. के ८३ वें गुच्छक में हुआ है।

दशावतारचरित—इस ग्रंथ में विष्णु के प्रख्यात दश अवतारों का वर्णन है। प्रथम नव अवतारों के वर्णन के लिए क्षेमेन्द्र पुराणों के ऋणी हैं। महाकाव्य का विभाजन अवतारों के आधार पर किया गया है। इसमें कुल १७५८ श्लोक हैं। इसकी रचना १०६६ ई० में हुई थी। महाकवि क्षेमेन्द्र की यह अन्तिम कृति है। इसके बाद क्षेमेन्द्र की कोई कृति नहीं मिलती है। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें बुद्ध को भी विष्णु का अवतार स्वीकार किया गया है। इसकी शैली सबल और प्रभावोत्पादिका है। इस ग्रंथ से यह ज्ञात होता है कि क्षेमेन्द्र अपने जीवन के चरण समय में वैष्णव धर्म के अनुयायी हो गये थे।

बौद्धावदानकल्पलता—यह ग्रंथ जातक कथाओं का संग्रह है। इसका प्रकाशन कलकत्ता से १८८८-१६१८ ई० के बीच दो भागों में हुआ है। इसमें १०८ पल्लव कथाएँ हैं जिसमें १०७ पल्लव कथाओं का प्रणयन क्षेमेन्द्र ने किया था और १०८ वें पल्लव कथा का प्रणयन उनके पुत्र सोमेन्द्र ने किया। अवदानकल्पलता की भूमिका में सोमेन्द्र ने यह प्रकट किया है कि बौद्ध आचार्य नक्क[1] एवं गोपदत्त[2] की प्रार्थना पर प्रस्तुत पुस्तक की रचना की गयी। क्षेमेन्द्र ने तीन अवदान कथाओं को लिपिबद्ध किया परन्तु अवदानों की दीर्घता को देखकर इन्होंने इसकी रचना करना बन्द कर दिया। पुनः स्वप्न में भगवान जिन द्वारा प्रेरित किये जाने पर क्षेमेन्द्र ने इसको पुनः लिखना प्रारम्भ किया।[3] इसकी रचना १०५२ ई० में हुई थी। तेरहवीं शती में इसका अनुवाद तिब्बती भाषा में किया गया था जो श्री शरतचन्द्र दास को प्राप्त हुआ है। भारत में इसके प्रथम चालीस अध्याय उपलब्ध नहीं हैं। "बिब्लिओथेका इण्डिका" में इसका प्रकाशन श्रीदास ने किया है। यह कृति कवि की धार्मिक उदारता की परिचायिका कही जा सकती है।

कला विलास—हास्यव्यङ्ग्य शैली पर आधारित, महाकवि क्षेमेन्द्र के उपदेश प्रधान ग्रंथों में कलाविलास का श्रेष्ठ स्थान है। इस कृति में १० सर्ग हैं। 'दम्भाख्यानम्' नामक प्रथम सर्ग में सम्पूर्ण कलाओं की धुरी धूर्तराज मूलदेव का परिचय दिया गया है। इस कृति का प्रधान पात्र मूलदेव है। सार्थवाह हिरण्यगुप्त अपने पुत्र चन्द्रगुप्त को छल

---

१. सौगतः ख्यात सुकृतो नक्क नाम समभ्यधात्। अ० क० ल०, भूमिका—६

२. आचार्यगोपदत्तेनावदानक्रमोज्झितः। वही—७

३. ततः स्वप्ने भगवता जिनेन प्रेरितः स्वयम्।
सोऽग्रहीत् पुनरुद्योगमवदानार्थ संग्रहे॥ वही, भूमिका ११

विद्या में निष्णात् करने के लिये धूर्तराज मूलदेव के संरक्षण में छोड़ जाता है। मूलदेव उसे अपने व्यवसाय में शिक्षित करने के लिए चन्द्रगुप्त को विविध कलाओं का रहस्य समझाता है। यहाँ दम्भ के तीन भेदों—कदम्भ कूर्मजदम्भ और मार्जारदम्भ का उल्लेख किया गया है।[1] मूलदेव अपने शिष्य से दम्भ के चक्रवर्तित्व प्राप्ति का वर्णन करते हुए कहता है कि—पृथ्वी पर चारों ओर दम्भ का ही साम्राज्य है। साधु-सन्यासी, वैद्य, भृत्य, क्षत्रिय, दण्डी, योगी, स्वर्णकार, नट एवं विट सभी दम्भ के रूप हैं। ग्रंथ के द्वितीय सर्ग में लोभ का, तृतीय सर्ग में काम का बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है। इसी प्रकार चतुर्थ सर्ग में वेश्या का, पञ्चम सर्ग में कायस्थ का एवं षष्ठ सर्ग में मद का तथा सप्तम सर्ग में गायकों का बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है।[2] अन्तिम दो सर्गों में युवकों को कुमार्ग से बचने के लिए विभिन्न उपदेश दिए गये हैं। डा० कीथ के[3] अनुसार "इस कृति के चित्रों में कई दृष्टियों से आधुनिकता विद्यमान है। इन्होंने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में कला विलास के कुछ सुन्दर श्लोकों का उल्लेख भी किया है।[4]

समय मातृका—यह भी क्षेमेन्द्र की उत्कृष्ट रचना है। प्रो०कीथ ने इसे "Mother by convention" कहा है। हास्य व्यंग्य शैली पर आधारित क्षेमेन्द्र की यह प्रौढ़ कृति १०५० ई० में लिखी गई। इसका विभाजन समयों में किया गया है। इसमें आठ समय (परिच्छेद) है जिसमें श्लोकों की कुल संख्या ६३५ है। इस कृति में कवि ने वेश्याओं के जाल का सुन्दर तथा सजीव वर्णन किया है। कंक नाम का नापित, कलावती का परिचय एक वृद्धा वेश्या से कराता है जिसका चेहरा उल्लू के समान, कण्ठ कौवे के समान और आँखें बिल्ली के समान हैं। इसमें अस्सी प्रकार के प्रेमियों का वर्णन है। धनविहीन प्रेमियों को टालने के २३ उपाय भी बतलाये गये हैं। इस पुस्तक में काश्मीर के कुछ स्थानों का अत्यन्त सजीव चित्रण किया गया है जिसकी सहायता से उन स्थानों को हम आज भी पहचान सकते हैं। समयमातृका का प्रकाशन का० मा० सी० के १०वें गुच्छक में हुआ है।

चारुचर्याष्टक—इस ग्रंथ में अर्थान्तरन्यास और दृष्टान्त के माध्यम से नीति के आधार पर उपदेश करने वाले १०० अनुष्टुप छन्दों से युक्त रचना है। इस लघुकाव्य

१. बकदम्भो दम्भपतिदम्भनरेन्द्रश्च कूर्मजो दम्भः।
मार्जारदम्भ एव प्रातो दम्भेषु चक्रवर्तित्वम्॥ —कला विलास १/४८

२. तर्जति वरावश्चोरो हाहाकारेण याति संत्रस्तः।
गायनचोरः प्रकटं हाहाकुर्वेव हरति सर्वस्वम्॥ —कला विलास, ७/४

३. "There is certain respects a curious modernity in kshemendra's pictures"—History of sanskrit litterature—Prof. keith, Page 238

४. History of Sanskrit litterature—Prof. keith, Page 239, 240

ग्रंथ में कवि ने आचरण के विषय में उपदेश किया है। दो तीन अनुष्टुप को छोड़कर लगभग समस्त श्लोकों में कवि न करने योग्य कार्य का निषेध करता है। एक सद्गृहस्थ को किस तरह से पवित्र एवं धर्मानुकूल आचरण करना चाहिए इसका सम्यक् वर्णन इस लघुकाय ग्रंथ में उपलब्ध होता है। कवि कहता है कि स्त्री के अधीन नहीं होना चाहिए क्योंकि जायाजित दशरथ को पुत्रशोक में प्राण छोड़ना पड़ा।[1] कवि का उद्देश्य भय दिखाकर लोगों को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर लाना है। इसमें प्रयुक्त आधिकारिक पौराणिक कथा तथा दृष्टान्त कवि की बहुज्ञता को प्रकट करते हैं। इसके आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कवि का इतिहास-पुराण सम्बन्धी ज्ञान अत्यन्त विस्तृत था। प्रो० कीथ के अनुसार १५वीं शताब्दी के ग्रंथ 'नीतिमञ्जरी' और जल्हण के "मुग्धोपदेश" पर इसका प्रभाव स्पष्टतः प्रतीत होता है। इसका प्रकाशन का० मा० सी० के दूसरे गुच्छक में हुआ है।

सेव्यसेवकोपदेश—जैसा कि इसके नाम से ही सुस्पष्ट है कि स्वामी और सेवकों के कर्तव्यों का व्याख्यान करनेवाली एक छोटी सी पुस्तक है जिसमें ६१ छन्द हैं। इस पुस्तक के द्वारा कवि का एकमात्र उद्देश्य स्वामी और सेवक के पारस्परिक सम्बन्ध सुधार की दिशा में प्रयत्न है। इसमें सेवावृत्ति की लघुता का वर्णन करते हुए इन्होंने सेवकों को यह उपदेश दिया है कि वे मदान्ध राजाओं की सेवा का परित्याग करके ईश्वर की सेवा करें। ईश्वर की सेवा ही मनुष्य को भवधारा से मुक्त करने में समर्थ है।[2]

दर्पदलन—इस ग्रंथ में सात अध्याय हैं जिन्हें "विचार" की संज्ञा आचार्य क्षेमेन्द्र ने दी है। प्रथम विचार में कवि ने गर्व या दर्प के सात कारण बतलाए हैं—आभिजात्य, धन, ज्ञान, सौन्दर्य, वीरता, दान और तप।[3] पुनः इन सातों का पृथक-पृथक वर्णन किया गया है। प्रत्येक अध्याय में इन कारणों के प्राकट्य हेतु कवि ने सूक्तियों की भरमार की है जो अब संस्कृत कहावतों का रूप धारण कर चुकी हैं। क्षेमेन्द्र की अन्य उपदेशात्मक कृतियों की अपेक्षा कलेवर में यह बड़ी रचना है। इसमें कुल ५८५ श्लोक हैं। श्री मधुसूदन कौल के अनुसार दर्पदलन संस्कृत साहित्य की श्रेष्ठ रचना है।[4] इसका प्रकाशन का० मा० सी० के छठें गुच्छक में हुआ है।

देशोपदेश—इस लघुकाय ग्रंथ में २८८ श्लोक हैं। इसमें आठ 'उपदेश'-संज्ञक अध्याय हैं। प्रथम उपदेश में दुष्ट व्यक्ति का वर्णन है। दूसरे में कंजूस का उपहासात्मक

१. चारुचर्याष्टक २६

२. सेव्यसेवकोपदेश ५२

३. कुलं वित्तं श्रुतं शौर्यं दानं तपस्तथा।
   प्राधान्येन मनुष्याणां सप्तैते मदहेतवः ॥—दर्पदलन १।४

४. आमुख—देशोपदेश व नर्ममाला—श्री मधुसूदन कौल पृ० २४

वर्णन है। तीसरे और चौथे में वेश्याओं तथा पाँचवें में विटों के कार्यकलापों की विवेचना और आलोचना है। छठें उपदेश में काश्मीर विश्वविद्यालय में अध्ययन के लिए आये हुए गौड़ देशीय विद्यार्थी पर व्यङ्ग्य किया गया है। सातवें में वृद्ध के विवाह की हंसी उड़ाई गयी है और आठवें में कवि, चिकित्सक और वैयाकरण आदि पर चोट की गयी है। यह क्षेमेन्द्र की प्रारम्भिक कृतियों में से है और इसमें कहीं कहीं अश्लीलता के दर्शन होते हैं, जो सातवें उपदेश में अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त होती है। डा० मनोहर लाल गौड़ के अनुसार इस कृति में क्षेमेन्द्र ने भद्दे-भद्दे व्यङ्ग्य का प्रयोग किया है।[1] श्री मधुसूदन कौल द्वारा सम्पादित होकर इसका प्रकाशन काश्मीर के अनुसन्धान विभाग द्वारा किया गया है।

नर्ममाला—सम्पूर्ण कृति को तीन भागों में विभाजित कर "परिहास" की संज्ञा दी गयी है। इसमें प्राधान्येन कायस्थों की तीव्र एवं व्यङ्ग्यात्मक आलोचना की गयी है। कायस्थ को जिसकी एकमात्र आकांक्षा राज्याधिकारी बनना बताई गई है। अत्यन्त दुष्ट व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है तथा अन्त में उसे कारागार में बन्दी दिखाया गया है। अपनी बहिन की सहायता से छूट जाने पर भी उसे नाना प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं और अन्त में उसकी अत्यन्त दुःखद मृत्यु होती है। प्रथम परिहास में कायस्थों के अतिरिक्त चाक्रिक परिपालक, लेखकोपाध्याय, गञ्जदिविर, मार्गपति, ग्रामदिविर, पारिदारिक आदि की भी तीव्र आलोचना की गई है। ग्रंथ के द्वितीय परिहास में क्षेमेन्द्र ने जीवनदिविर, कुलमंगिका, दारकोपाध्याय, मठदेशिक, सभर्तृका, वैद्य, गणक, तृणरक्षक, गुरु अधिकरण भट्ट आदि का रोचक परिहास प्रस्तुत किया गया है। तृतीय परिहास में गुग्भट, वेश्या, चक्षुर्वैद्य, शल्यहर्ता, वृद्धवणिक आदि उपहास के पात्र बनाए गये हैं। इस लघुकाय ग्रंथ के प्रथम परिहास में १४८ श्लोक, द्वितीय में १४५ श्लोक, तथा तृतीय में ११३ श्लोक हैं। इस प्रकार इस ग्रंथ में कुल ४०६ श्लोक हैं। ग्रंथ की रचना अनुष्टुप छन्दों में की गई है। इसका प्रकाशन भी मधुसूदन कौल के सम्पादकत्व में काश्मीर के अनुसन्धान विभाग ने किया है।

चतुर्वर्ग संग्रह—इस लघुकाय ग्रंथ में पुरुषार्थ चतुष्टय की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की गयी है। ग्रंथ के चार परिच्छेदों में क्रमशः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है। काव्यात्मक दृष्टि से तृतीय एवं चतुर्थ परिच्छेद में २७२ श्लोक, द्वितीय परिच्छेद में २५ श्लोक, तृतीय परिच्छेद में २५ एवं चतुर्थ परिच्छेद में २८ श्लोक हैं। इस तरह इसमें कुल श्लोकों की संख्या १०६ है। वैराग्य की प्रशंसा करते हुए कवि कहता है—हर जगह भय है चाहे भोग हो या सुख व चाहे मान हो या जय,

---

1. औचित्यविचारचर्चा—डा० मनोहर लाल गौड़ पृ० ७

केवल वैराग्य ही भय से मुक्त है।[1] इसका प्रकाशन का० मा० सी० के ५वें गुच्छक में हुआ है।

नीति कल्पतरु—यह कृति स्वतन्त्र रचना नहीं मानी जाती है। वस्तुतः यह एक टीका है, जो व्यासरचित किसी नीतिशास्त्रीय ग्रंथ की व्याख्या करने के उद्देश्य से की गई है। इसका प्रथम प्रकाशन डा० वी० पी० महाजन ने १९५६ ई० में पूना से किया था।

लोक-प्रकाश कोश—यह कृति सेठना देवचन्द सभाई जैन पुस्तकोद्धार सिरीज बम्बई के ६५वें गुच्छक में १९२६ ई० में प्रकाशित हुई है। इसकी केवल दो प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई हैं।—एक वेबर को दूसरी बूहलर को। दोनों ही अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण दशा में हैं। वेबर इसे क्षेमेन्द्र की रचना नहीं मानते परन्तु बूहलर का निश्चित मत है कि क्षेमेन्द्र व्यासदास ही इसके रचयिता हैं। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने अनेक प्रमाण दिए हैं, जिनमें से मुख्य यह है कि प्रस्तुत कोश में काश्मीर के अनेक पदाधिकारियों, परगणों, भूगोल, व्यापार तथा वहाँ के प्रशासन आदि का जो विस्तृत वर्णन किया गया है वह किसी अन्य कोशकारों के द्वारा नहीं किया जा सकता है। डा० सूर्यकान्त भी इसे क्षेमेन्द्र की कृति मानते हैं। मधुसूदन कौल इस विषय में वेबर से सहमत हैं।

काव्यशास्त्रीय ग्रंथ

औचित्यविचारचर्चा—क्षेमेन्द्र के आचार्यत्व की प्रतिभा का प्रतिपादन करने वाला सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है। इसमें हमें कवि की नई सूझ-बूझ और गवेषणात्मक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। कवि ने प्रचलित रूढ़ियों से ऊपर उठकर स्वतन्त्र विचार पद्धति से प्राप्त निष्कर्षों को अपना आधार बनाया है। इसी कृति में क्षेमेन्द्र ने अपने औचित्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। ग्रंथ का परिच्छेद में विभाजन नहीं किया है अपितु इसमें औचित्य के प्रतिपादनार्थ कवि ने ३८ कारिकाएँ लिखी हैं साथ ही प्रत्येक कारिका की वृत्ति का प्रणयन भी स्वयं क्षेमेन्द्र ने किया है। क्षेमेन्द्र की दृष्टि में काव्य की सरसता और उत्कृष्टता का आधार उसमें विद्यमान "औचित्य" है। औचित्य ही वह तत्व है जिससे युक्त होने पर कोई भी कृति विद्वानों से आदर और रहित होने पर उपेक्षा प्राप्त करती है। इसलिए औचित्य, ही काव्य की आत्मा है। रस को औचित्य-रूपी साध्य के लिए साधन माना गया है। अतः औचित्य हीं रस सिद्ध काव्य का प्राण है।[2] क्षेमेन्द्र के अनुसार औचित्य के योग से ही अलङ्कार काव्य को अलंकृत करने में समर्थ हो सकता है। अन्यथा औचित्य के अभाव में अलङ्कारों की अलङ्कार संज्ञा ही नहीं बन सकती है;

1. चतुर्वर्ग संग्रह ४।७
२. औचित्यम् रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्। औ० वि० चर्चा ५

ठीक यही तथ्य आचार्य ने गुणों के सम्बन्ध में उद्घाटित किया है।[1] क्षेमेन्द्र ने काव्य में औचित्य के २७ स्थान निश्चित किए हैं जिनका विवेचन एक-एक कारिका और उसकी विवृत्ति में किया गया है। वे स्थान इस प्रकार हैं—पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ, गुण, अलङ्कार, रस, क्रिया, कारक, लिङ्ग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात, काल, देश, कुल, व्रत, तत्त्व, सत्त्व, अभिप्राय, स्वभाव, सार-संग्रह, प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम और आशिषि आदि।[2] इस प्रकार काव्य शास्त्र के विषय में उन्होंने 'औचित्य' का अपना विशिष्ट और महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रस्तुत कर संस्कृत साहित्य शास्त्र में अमर हो गए। इसी 'औचित्य' सिद्धान्त के आधार पर ही 'औचित्य' सम्प्रदाय का भी गठन हुआ। यद्यपि विद्वानों का यह मत भी ठीक ही है कि औचित्यतत्त्व की कल्पना तो बहुत प्राचीन है और 'ध्वन्यालोक' के रचयिता आनन्दवर्धन[3] को उसका श्रेय दिया जाना चाहिए, परन्तु क्षेमेन्द्र का महत्त्व यह है कि उन्होंने अनेक सबल तर्कों और प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया कि औचित्य ही काव्य की आत्मा है और उसे रस, अलङ्कार तथा ध्वनि से भी उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया। आचार्य क्षेमेन्द्र की इस अमर कृति का प्रकाशन भी हरिदास संस्कृत सीरीज और का० मा० सी० दोनों में हुआ है।

कविकण्ठाभरण—क्षेमेन्द्र की महत्त्वपूर्ण रचनाओं में कविकण्ठाभरण का प्रमुख स्थान है। जैसा कि इस ग्रंथ के नाम से ही सूचित होता है कि यह कवियों के के कण्ठ का आभूषण है। यह पांच सन्धियों में विभक्त है। इन पांचों सन्धियों में उन बातों का उपदेश किया गया है जिसका आश्रय लेकर कोई साधारण किन्तु कवि बनने की इच्छा वाला व्यक्ति श्रेष्ठ कवि बन सकता है। कवित्व प्राप्ति नामक प्रथम सन्धि में २४ कारिकाएँ हैं। अकवि को कवि बनने के लिए दो बातों को आवश्यक बतलाया गया है—दिव्य प्रयत्न और पौरुष। पौरुष के आधार पर शिक्षार्थियों को तीन भागों में विभक्त किया गया है—अल्प प्रयत्न साध्य, कृच्छ साध्य और असाध्य। शिक्षा कथन

---

१. उचितस्थानविन्यासादलंकृतिरलंकृतिः।
औचित्यादच्युता नित्यं भवन्त्येव गुणा गुणाः॥—औ० वि० चर्चा० ६

२. पदे वाक्ये प्रबन्धार्थे गुणेलङ्करणे रसे।
क्रियायां कारके लिङ्गे वचने च विशेषणे॥
उपसर्गे निपाते च काले देशे कुल व्रते।
तत्त्वे सत्त्वेऽप्यभिप्राये स्वभावे सार संग्रहे॥
प्रतिभायामवस्थायां विचारे नाम्नयथाशिषि।
काव्यस्याङ्गेषु प्राहुरौचित्यम् व्याति जीवितम्॥—औ० वि० चर्चा ८-१०

३. अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा॥—ध्वन्या० कारिका, १४ पृ० १६०

नामक द्वितीय सन्धि में प्राप्त वाणी कवि को २३ कारिकाओं में १०० व्यवहारिक उपदेश दिये गये हैं। चमत्कार कथन नामक तृतीय सन्धि की तीन कारिकाओं में काव्य में चमत्कार लाने का उपदेश दिया गया है। क्षेमेन्द्र के अनुसार चमत्कार के अभाव में न तो कवि का कवित्व माना जा सकता है और न ही काव्य का काव्यत्व। यहाँ चमत्कार को काव्य का अनिवार्य तत्व बताया गया है।[1] लावण्यहीन ललना यौवन के समान चमत्कृति विहीन काव्य भी व्यर्थ है।[2] कवि ने १० प्रकार के चमत्कारों का वर्णन किया है।[3] दो कारिकाओं वाले चतुर्थ सन्धि में गुण–दोष पर विचार किया गया है। शब्द वैमल्य, अर्थवैमल्य, रसवैमल्य ये तीन काव्य के गुण एवं शब्द कालुष्य, अर्थकालुष्य, रसकालुष्य ये तीन दोष गिनाए गये हैं। परिचय–प्राप्ति नामक पंचम सन्धि में लोकाचार परिज्ञान को अति आवश्यक बताया गया है। लोकाचार परिज्ञान यद्यपि अनन्त है तथापि बहुविज्ञ महाकवि ने कुछ का नामतः उल्लेख किया है।[4] इसमें तीन कारिकाएँ हैं। यहीं पर ग्रंथ की परिसमाप्ति होती है। सम्पूर्ण ग्रंथ में ६३ उदाहरण श्लोक उद्धृत किए गए हैं जिनमें अधिकांश कवि के अन्य ग्रंथों से ही लिए गये हैं। इसका प्रकाशन हरिदास संस्कृत सीरीज तथा का० मा० सी० दोनों में हुआ है।

सुवृत्ततिलक—यह छन्दशास्त्र का ग्रंथ है जो तीन विन्यासों में विभक्त है। 'वृत्तावचय' नामक प्रथम विन्यास में ३८ कारिकाएँ हैं जिसमें २६ छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण दिए गए हैं। समीक्षात्मक दृष्टि से इस विन्यास का उतना महत्त्व नहीं है जितना बाद के दोनों का है। "गुणदोषवर्णनम्" नामक द्वितीय विन्यास में छन्दों के अन्तर्गत वर्णनीय विषय-वस्तु उनके गुण-दोष तथा रस आदि का विवेचन है। इसमें कुल ४६ कारिकाएँ एवं ७५ उदाहरण श्लोक हैं। 'वृत्तविनियोग' नामक तृतीय विन्यास में छन्दों के समुचित प्रयोग पर विचार किया गया है। किस प्रसंग में कौन सा छन्द प्रयुक्त हो तथा तथा किस कवि का कौन सा छन्द प्रयोग अधिक उत्तम रहा है, इसका भी उल्लेख किया गया है। अभिनन्द का अनुष्टुप पाणिनि का उपजाति वृत्ति, भारवि का वंशस्थ, वृत्त रत्नाकर का वसन्ततिलकावृत्त, कालिदास का मन्दाक्रान्ता, राजशेखर का शार्दूलविक्रीडित वृत इनके अन्य वृत्त प्रयोगों की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट कोटि के हैं। इस प्रकार के छन्दों के प्रयोग का वैज्ञानिक विचार किसी भी छन्दशास्त्र में उपलब्ध नहीं होता है। इस विषय में क्षेमेन्द्र का विवेचन मौलिक है।

---

१. न हि चमत्कारविरहितस्य कवेः काव्यस्य वा काव्यत्वम्। —कवि कं० भ० ३।१

२. वही ३।२

३. तत्र दशविधं चमत्कारः—अविचारितरमणीयः, विचार्यमाणरमणीय, समस्तसूक्तव्यापारस्क्तैकदेश दृश्यः शब्दगतः, शब्दार्थगतः, अलंकारगतः, रसगतः प्रख्यातवृत्तिगतश्च। वही ३।२ की वृत्ति

४. कवि क० भ० ५।१ की वृत्ति।

क्षेमेन्द्र का व्यक्तित्व

यह एक आधारभूत तथ्य है कि जिस प्रकार की भावना चित्त में उदित होती है वही एक आकार बनाकर बाह्य जगत में दिखाई पड़ती है। बाह्य जगत और कुछ नहीं केवल अन्तर्मन से उद्भूत होने वाले विज्ञानों की शृंखला मात्र है। ठीक यही बात कवि और उसकी कृति पर भी लागू होती है। कवि के व्यक्तित्व की छाप उसकी कृति पर पड़ना स्वाभाविक है। क्योंकि कृति कवि का कार्य है और कवि उसका कारणभूत तत्त्व। कवि का जो जोवन दर्शन होता है, जो सिद्धान्त होता है, जो मान्यता होती है उसी से वह अपनी कृति का ताना-बाना बुनता है। जगत् के कटु किन्तु यथार्थ अनुभवों को वह अवसर पाकर अपनी कृति में यथास्थान प्रतिष्ठित करता है। यद्यपि कि अद्यतन कवियों को छोड़कर पूर्व के कवियों का झुकाव आदर्श की ओर होता था परन्तु यथार्थ को वे भी पूर्णतया नकार नहीं पाते थे। अतएव आदर्शवादी कविता में भी कवि के व्यक्तित्व को ढूंढ़ पाना दुस्साध्य भले हो परन्तु असाध्य नहीं।

महाकवि क्षेमेन्द्र भी इस तथ्य के अपवाद नहीं हैं। उनकी कृतियों के अध्ययन के आधार पर उनके व्यक्तित्व की रूपरेखा तैयार की जा सकती हैं। उनकी कृतियों की एक लम्बी सूची है। संस्कृत वाङ्मय को समृद्ध बनाने वाले कवियों में क्षेमेन्द्र का नाम प्रथम श्रेणी में रखा जा सकता है। उनकी बहुसंख्यक और बहुविषयक कृतियों से उनकी भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियों का ज्ञान होता है। कालक्रम के अनुसार की गयी रचनाएँ युवावस्था से लेकर मृत्युपर्यन्त उनके बदलते विचारों एवं मान्यताओं का ज्ञान कराती हैं। अवस्था का प्रभाव व्यक्ति के विचारों पर बहुत अधिक पड़ता है। एक ही तथ्य के संबन्ध में व्यक्ति के दृष्टिकोण युवावस्था में कुछ और होते हैं और जरावस्था में कुछ और। युवावस्था में व्यक्ति के विचारों में उच्छृङ्खलता होती है और वृद्धावस्था में विचार संयत होते हैं। एक अंग्रेजी भाषा के लेखक का कहना है कि युवक प्राचीन कहावतों, लोकोक्तियों को व्यर्थ की चीज समझता है, उसमें उसे कुछ भी आनन्द नहीं मिलता है, उलटे वे नीरस लगती हैं। किन्तु वही व्यक्ति जब बुड्ढा हो जाता है, उसे संसार का अनुभव हो जाता है, तब वही चीजें उसे सार्थक लगने लगती हैं और उन्हें पढ़कर वह आनन्दानुभूति करता है। जैसा कि इतिहास बताता चला आ रहा है कि जो सभ्यता, जो राष्ट्र जो योद्धा आज अपनी उन्नति के शिखर पर हैं वे ही कल अवनति के गर्त में गिर जाएंगे। किन्तु इतिहास प्रसिद्ध योद्धा नैपोलियन क्या इस बात से सीख ले सका? परन्तु जब उसे करारी हार का मुंह देखना पड़ा, तब उसे ज्ञान हुआ कि हाँ बात सच है। यही कारण है कि धनी पिता के घर में पैदा हुए तथा बिना किसी अभाव के, सुख-सुविधा में राजकुमार की तरह पले हुये महाकवि क्षेमेन्द्र प्रारम्भ में बाज की तरह अल्हड़ थे तथा बाद में निरीह साधु के रूप में भगवान विष्णु के दशों अवतारों का स्तवन करते हुए त्रिपुर शैल पर निवास करने लगे।

देशोपदेश, नर्ममाला, कला विलास और समयमातृका आदि कवि की प्रारम्भिक कृतियाँ हैं क्योंकि इन कृतियों की भाषा शैली और वर्ण विषय कुछ इस तरह के हैं जो कवि के प्रारम्भिक कर्तृत्व का बोध कराते हैं। इन कृतियों का साधारण अध्ययन यह बताता है कि कवि ललित यौवन में पदार्पण कर चुका है तथा तज्जन्य कमजोरियों का अपवाद नहीं है। कवि की उपदेशात्मक हास्य व्यङ्ग्य शैली इस बात का प्रमाण है कि कवि उपहासप्रिय है। देशोपदेश में खल शब्द का निर्वचन करते हुए उन्होंने दुर्जनों की मीठी चुटकी ली है।[1] परन्तु किसी वर्ग के प्रति ईर्ष्यावश क्षेमेन्द्र ने उपहास नहीं किया है। क्योंकि यदि ईर्ष्या ही उनके मन में होती तो दो-चार वर्गों का ही उपहास करते, जबकि उन्होंने समाज के लगभग सभी वर्गों पर कुछ न कुछ हास्य व्यङ्ग्य का प्रयोग किया है। क्षेमेन्द्र का हृदय बहुत विशाल था। पतित समाज के उत्थान के लिए वे प्रयत्नशील थे। उनके चित्त में समाज सुधार की भावना बड़ी प्रबल थी। क्षेमेन्द्र के उपदेशात्मक काव्यों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उनका समाज-सुधारक व्यक्तित्व उनके कवि-व्यक्तित्व पर हावी हो गया था। यही कारण है कि इन उपदेश प्रधान रचनाओं में उन्होंने काव्य वैशिष्ट्य को उत्पन्न करने का उतना प्रयास नहीं किया जितना कि भ्रष्ट समाज को सत्पथ पर ले जाने के लिए सुन्दर हास्योक्तियों के सम्यक् चयन में किया है। इनकी तुलना कबीरदास से की जा सकती है जिन्होंने समाज के प्रत्येक वर्ग का भण्डाफोड़ किया है। परन्तु क्षेमेन्द्र कबीर की तरह धर्मों का विरोध नहीं करते हैं। इनका तो एक मात्र लक्ष्य था समाज की कुरीतियों का उन्मूलन। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने उपदेश प्रधान रचनाएँ की। इन कृतियों में उन्होंने समाज के प्रत्येक वर्ग का (यथा-वेश्या, विट, नट, गायक, वैद्य, स्वर्णकार, लुहार आदि का) आनन्दप्रद चित्रण प्रस्तुत करके उपहास किया है वे श्रीमानों को सचेत करते हुए कहते हैं कि वेश्याएँ धनिकों को आकृष्ट कर अपने प्रेम पास में आबद्ध करने के लिए विविध एवं कपट व्यापारों का अवलम्बन करती हैं।[2] इस प्रकार समाज सुधारक के रूप में उनका व्यक्तित्व अत्यन्त श्लाघनीय है।

समीक्षक के रूप में क्षेमेन्द्र का व्यक्तित्व प्रौढ़ एवं गम्भीर प्रतीत होता है। वे ध्वनि, रस, अलंकार आदि अन्य काव्य मार्गों के प्रवर्तक आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त एवं दण्डी के समक्ष ठहरते हैं।[3] अन्य कवियों की कृतियों का समुचित आदर, विवेचन, समीक्षण एवं अन्य आचार्यों के मतों को स्वीकार करते हुये अपने मत के महत्व को प्रकट करना

---

१. सचित्रमपि मायावी रचयत्येव लीलया।
लघुश्च महतां मध्ये तस्मात् खल इति स्मृतः ॥—देशोपदेश १।६

२. श्रीमान मूढोधनीनिःस्व शुचिश्चोरो लघुर्गुरुः।
भवितव्यतमेवायं वेश्यया क्रियते जनः ॥—देशोपदेश ३।१५

३. औचित्यविचारचर्चा—डा० मनोहर लाल गौड़ पृ० १२

आदि गुणों की क्षेमेन्द्र ने प्रशंसा की है।[1] इस आदर्श का उन्होंने अपनी कृतियों में सर्वथा निर्वाह भी किया है। कवि ने बड़े सम्मान के साथ ग्रंथ सहित ग्रंथकारों का नामोल्लेख किया है। उनकी रचनाओं से उन्होंने उदाहरण प्रस्तुत किया है। उन उदाहरणों के गुण-दोषों पर भी सम्यक् विचार किया है। क्षेमेन्द्र की उदारता, सदाशयता तो तब अपनी उत्कृष्टता की सीमा पर पहुँच जाती है जब वे अपनी रचनाओं में से दिए गए उदाहरणों की भी सम्यक् आलोचना करते हैं। उनका गुण-दोष स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार जहाँ एक ओर वे सिद्धान्ती आचार्य हैं, समीक्षक हैं, वहीं दूसरी ओर निरंकुश कवि भी हैं।

महाकवि क्षेमेन्द्र में स्वाभिमान[2] कूट-कूट कर भरा था, तभी तो उन्होंने अपनी कृतियों में स्थल-स्थल पर स्वाभिमान के नष्ट हो जाने पर जीवन को निस्सार एवं नीरस माना है। उनके अनुसार अपमानपूर्ण जीवन बिताने से तो अच्छा है मर जाना।[3] मौलिमणिभूत मान से रहित होने पर व्यक्ति के जीवन से क्या लाभ ?

महाकवि क्षेमेन्द्र धार्मिक भावना से ओतप्रोत थे। इसके प्रबल प्रमाण उनके द्वारा रचित रामायणमञ्जरी और दशावतारचरित जैसे महाकाव्य हैं। इससे उनकी हिन्दुत्व एवं विष्णु[4] भक्ति भावना का भी प्रमाण प्राप्त होता है। रामायणमञ्जरी में बाल काण्ड, सुन्दरकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड के प्रारम्भिक श्लोकों में वे भगवान विष्णु की वन्दना करते हैं।[5] पुनः दशावतारचरित में तो विष्णु के दश अवतारों का ही सविस्तार वर्णन करते हैं।

वे परम आस्तिक हिन्दू थे। नास्तिकों से घोर द्वेष भी रखते थे। वे कहते हैं— लोकायतों के मत में आकर नास्तिक नहीं होना चाहिए। भगवान नृसिंह ने खम्भ से प्रकट होकर हिरण्यकशिपु का वध किया था।[6] ब्राह्म-मुहूर्त में वे शय्या परित्याग को उचित मानते थे।[7] शास्त्रोक्त विधि से श्रद्धापूर्वक पितरों को पिण्डादिक देने में विश्वास करते थे।[8] जप, होम, पूजा, चरण प्रक्षालन एवं पवित्रता आदि को उन्होंने अनिवार्य

---

१. सहवासः कविवरैर्महाकाव्यार्थचर्वणम्।
आर्यत्वं सुजनैर्मैत्री सौमनस्यम् सुवेषता ॥—कवि० कं० भ० २।४

२. अवज्ञां प्रीतिवाक्येऽपि न सहन्तेऽभिमानिनः ॥—रामा० मं०, सु० कां० ३५५

३. विपद्विमानेन कुजीवितेन किम्।—दशा० च० ३।४

४. दशा० च०, ७।२४८

५. जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा।
अजेन विश्वरूपेन निर्गुणेन गुणात्मना ॥—रामा० मं, बा० कां० १

६. चारुचर्या ४५

७. चारुचर्या २

८. चारुचर्या ५

माना है।[1] वे परस्त्रीगमन को निषिद्ध मानते हैं। तथा स्त्री पर विश्वास करना के बड़ी भारी भूल मानते हैं।[2] उनके अनुसार धर्ममर्यादा का परित्याग क्लेश दशा में भी नहीं करना चाहिए[3], तथा सत्य पर अडिग रहना चाहिए।[4]

क्षेमेन्द्र याच्ञा प्रवृत्ति के प्रबल विरोधी हैं। उनके अनुसार याच्ञा एक ऐसी कुल्हाड़ी है जो व्यक्ति के मान पर ही आघात करती है।[5] नीच व्यक्ति ही अर्थनाश होने पर याच्ञा और वञ्चना द्वारा जीवित रह सकता है।[6] इस याच्ञा वृत्ति को कभी नहीं अपनाना चाहिए, क्योंकि श्री विष्णु भी बलि से याच्ञा करने के कारण लघुत्व को प्राप्त हो गये थे।[7] शत्रु के प्रति कठोरतम कदम उठाने में वे तनिक भी संकोच नहीं करते थे। यही कारण है कि शत्रु के प्रति सतत् सजग रहने का वे उपदेश देते हैं। उनके अनुसार शरीर से क्षीण हो जाने पर भी शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।[8]

महाकवि क्षेमेन्द्र भाग्यवादी थे। वे कहते हैं कि भाग्य का सहारा लेकर जो व्यक्ति उद्योग में प्रवृत्त नहीं होता उसके द्वारा मानों कूप से निकाला हुआ जल सैकड़ों छिद्र वाले घड़े में रखा जाता है। भाग्य[9] की गति विचित्र होती है। भाग्य प्रतिकूल होने पर मनुष्य द्वारा किए गए सभी कार्य व्यर्थ हो जाते हैं। अपने अभ्युदय के लिए मनुष्य की बुद्धि सदैव कुछ न कुछ प्रयत्न करती रहती है परन्तु ज्योंही फल की झलक दिखाई पड़ती है त्योंही विधि खेल ही में जल से भरे हुए घड़े को पत्थर पर तोड़ देता है। फलस्वरूप जल गिर पड़ता है।[10] यही नहीं, प्रतिकूल भाग्य व्यक्ति को मानसिक एवं शारीरिक आघात पहुँचाते हुए पतन की ओर अग्रसर करता है। क्षेमेन्द्र कहते है— विरुद्ध भाग्य बुद्धि में मोह उत्पन्न करता है, दुर्व्यसनों में में प्रवृत्त करता है, सम्मान पर प्रहार करता है, कीर्ति को नष्ट करता है, उत्कृष्ट कुल को भी कलंकित करता है।

---

१. चारुचर्या ८
२. चारुचर्या १०
३. चारुचर्या १३
४. चारुचर्या १५
५. सा दुर्दशैवातिशयेन याच्ञा न कस्य मानक्षतिमातनोति।—दशा० च०, ५।१६०
६. जीवत्यर्थक्षये नीचो याच्ञापचयवञ्चने। वही ५।१६६
७. चारुचर्या ३१
८. (अ) रिपोर्गतस्यापि शरीरशेषतां न नाम युक्तं क्षणमप्युपेक्षणम्॥—दशा०च० ३।११
(ब) हीनोऽपि नावमन्तव्यो बलिभिः शत्रुरिद्यतो। रामा० मं, यु० कां ३७९
९. दैवं प्रमाणमाश्रित्य नोद्योगे यः प्रवर्तते।
तेन कार्य शतच्छिद्रे घटे जलमिवोद्धृतम्। रामा० मं, सु० कां० ३४३
१०. दशा० च० ८।३१

बुद्धिमान व्यक्ति के द्वारा अपने कार्य की पूर्ति के लिए जो भी प्रयास किया जाता है, विरुद्ध भाग्य उस प्रयास को शीघ्र ही नष्ट कर देता है।[1]

क्षेमेन्द्र धन सञ्चय के पक्षपाती नहीं थे। उनके अनुसार धन दुःख प्रदान करने वाला होता है।[2] यह धन का अधम बाण बुद्धिमानों को नहीं वेध पाती।[3] भृत्य, बन्धु एवं सुहृद्जनों को दान न देकर जो धन एकत्र किया जाता है, उसका परिणाम सुखद नहीं होता है।[4] क्षेमेन्द्र दान वीर थे। उनके अनुसार धन का सर्वोत्तम उपयोग दान करना है। यथा-गुप्त धन नष्ट हो जाता है, प्रकट धन नष्ट हो जाता है। बिखरा हुआ धन नष्ट हो जाता है, एकत्र किया हुआ धन भी नष्ट हो जाता है। यह धन अपने तथा दूसरों के द्वारा नष्ट कर दिया जाता है किन्तु दीन एवं आर्तजनों को दान किया गया धन कभी नष्ट नहीं होता है।[5]

क्षेमेन्द्र पौरुष में विश्वास रखते थे। यह पौरुष व्यक्ति को अच्छे से अच्छा एवं सुखद परिणाम दिलाने वाला होता है। वे कहते हैं—देश और काल के लिए उपयुक्त तथा पौरुष का विरोध न करने वाले व्यक्ति को फल की प्राप्ति वैसे ही निश्चित होती है, जैसे बाण को लक्ष्य की।[6]

द्वितीय अध्याय समाप्त

---

१. दशा० ७।२४१

२. धनाशौचशरीराणि निवृष्यन्ते यथा यथा।
तथा तथा भृशं तेभ्यो दुःखमेव प्रजायते ॥—रामा० मं, अ० प० २६६

३. धनैरधमसंघार्यैर्विदार्यन्ते न धीधनाः ॥ वही २८१

४. दशा० च० ५।१८३

५. गुप्तं विनष्टं प्रकटं विनष्टं कीर्णं विनष्टं मिलितं विनष्टं।
स्वयं विनष्टं परतो विनष्टं दीनार्तदत्तं द्रविणं न नष्टं ॥ वही ५।१८२

६. देशकालोपपन्नस्य पौरुषस्याविरोधिनः।
अविसंवादिनी नित्यं बाणस्येव फलोद्गतिः ॥—रामा० मं०, सु० कां ३४४

अध्याय ३

रामायणमञ्जरी : प्रतिपाद्य समीक्षा

रामायणमञ्जरी की कथानक व्यवस्था

रामायणमञ्जरी का अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रंथकार ने अन्य रामायण ग्रंथों की अपेक्षा रामायणमञ्जरी की कथानक व्यवस्था में बहुत ही रोचक एवं मौलिक परिवर्तन किया है। यद्यपि कि कवि ने ग्रंथ के ६४०० श्लोकों को मुख्य रूप से बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्य पर्व, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड प्रभृति सात काण्डों में विभाजित किया है, किन्तु काण्ड व्यवस्था के इस बाह्य रूप के अन्तर्गत कवि द्वारा किये गये कुछ परिवर्तन ध्यातव्य हैं। यथा-ग्रंथकार ने ग्रंथ का शुभारम्भ—'काश्मीरिकमहाकविश्रीक्षेमेन्द्रविरचिता रामायणमञ्जरी बालकाण्डम्'—ऐसा लिखते हुये मंगलाचरण के प्रस्तुत प्रथम श्लोक से किया है—

जितं भगवता तेन हरिणालोकधारिणा। अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना॥

किन्तु ग्रंथ के अग्रिम अवलोकन से पता चलता है कि कवि ने इस बालकाण्ड की समाप्ति का कहीं उल्लेख नहीं किया है, अपितु 'दशरथविपत्तिः' के सन्दर्भ में ८८७ श्लोक संख्या तक पहुँचने पर 'इति क्षेमेन्द्र विरचिते रामायणकथासारे समाप्तोऽयमयोध्याकाण्डः' ऐसा लिखा प्राप्त होता है।

इस स्थल पर ध्यातव्य है कि ग्रंथकार जहाँ एक ओर बालकाण्ड के प्रारम्भ का उल्लेख कर उसकी समाप्ति का उल्लेख नहीं करते वहीं दूसरी ओर अयोध्याकाण्ड की समाप्ति का उल्लेख करने से पूर्व किसी भी स्थल पर उसके प्रारम्भ का उल्लेख नहीं करते हैं। अपितु इन दोनों काण्डों को संयुक्त रूप में देकर कवि ने बालकाण्ड एवं अयोध्याकाण्ड के विभाजन को संदिग्ध बना दिया है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि रामायणमञ्जरी में बालकाण्ड एवं अयोध्याकाण्ड की इस व्यवस्था के अन्तर्गत कथानक के विभाजन को किस सीमा तक बाँधा जाय? इस समस्या के समाधान हेतु अन्य रामायण ग्रंथों पर ध्यान देना आवश्यक है। अतः यदि वाल्मीकि रामायण को ही ध्यान में रखते हुये रामायणमञ्जरी की इस काण्ड व्यवस्था पर विचार करें तो सीता विवाह के पश्चात् 'अयोध्या प्रत्यागमनम्' तक ही बालकाण्ड की समाप्ति, तदनन्तर अयोध्याकाण्ड का प्रारम्भ कर अरण्यपर्व के 'अत्रिदर्शनम्' तक इसकी समाप्ति होनी चाहिए। परन्तु रामायणमञ्जरी में कवि ने ऐसा न करके तथा बालकाण्ड एवं अयोध्याकाण्ड को संयुक्त रूप में प्रस्तुत करके अपनी एक मौलिक व्यवस्था का ही परिचय दिया है।

यहाँ पुनः एक प्रश्न उठता है कि बालकाण्ड एवं अयोध्याकाण्ड को संयुक्त रूप से प्रस्तुत करने के पीछे कवि का क्या मन्तव्य है ? इसके समाधान हेतु सम्पूर्ण रामायण मञ्जरी की काण्ड व्यवस्था का अवलोकन करना पड़ता है, जिससे विदित होता है कि ग्रंथकार संभवतः घटनास्थल के आधार पर काण्डों का विभाजन करना चाहते थे। उदाहरणार्थ—अरण्य में घटने वाली समस्त घटना को अरण्यपर्व तथा किष्किन्धा पर्वत पर घटने वाली घटनाओं को किष्किन्धा पर्व एवं किष्किकिन्धा पुरी में घटने वाली घटना को किष्किकिन्धाकाण्ड के अन्तर्गत और युद्धसम्बन्धी घटना को युद्धकाण्ड के अन्तर्गत रखा है। कवि ने इसी दृष्टिकोण के आधार पर अयोध्या में घटने वाली समस्त घटना रामजन्म से लेकर उनके वनगमन तथा दशरथ-मरण तक (बालकाण्ड तथा अयोध्याकाण्ड) को संयुक्त रूप से प्रस्तुत किया है। पाठकों के अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से बालकाण्ड के प्रारम्भ एवं अयोध्याकाण्ड की समाप्ति का उल्लेख करके कवि अपने मन्तव्य को दर्शा देता है कि अयोध्या में घटने वाली समस्त घटनाएँ अमुक स्थान से प्रारम्भ होकर अमुक स्थान पर समाप्त हो जाती हैं।

इसके बाद दशरथ संस्कार से प्रारम्भ कर बसंतवर्णनम् तक ११५८ श्लोकों में संग्रथित अरण्य पर्व का वर्णन है। इस पर्व के अन्तर्गत भी कथानक व्यवस्था संबन्धी कवि की एक मौलिकता दर्शनीय है। वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में वर्णित वे घटनाएँ जो क्षेमेन्द्र की व्यवस्था के अनुसार अयोध्या में न घटित होकर अरण्य में घटित होती हैं, उसको उन्होंने अरण्य पर्व के अन्तर्गत रखा है। फिर भी उस प्रसंग को अलग रखने के लिए तथा भरत से संबन्धित होने के भी कारण कवि क्षेमेन्द्र ने अरण्य पर्व के ही अन्तर्गत ३२८ श्लोकों वाले 'भरत पर्व' की कल्पना की है। इसी स्थल पर एक विचारणीय तथ्य और है कि अन्य रामायण ग्रंथों में जिस काण्ड को प्रायः अरण्य काण्ड से संबोधित किया गया है उसी को ग्रंथकार ने रामायणमञ्जरी में 'अरण्य पर्व' के नाम से संबोधित किया है। कवि का यह कृत्य उसकी एक मौलिकता से ही परिचय कराता है।

इसी प्रकार 'सुग्रीवसख्यम्' से लेकर सुग्रीवाभिषेक तक के २१४ श्लोकों का वृतान्त किष्किकिन्धा पर्वत पर घटित होने के कारण 'किष्किन्धापर्व' तथा प्रावृड्वर्णनम् से सागरलङ्घनम् के बीच की अधिकाश घटनाएँ किष्किन्धापुरी से संबन्धित होने के कारण ५७३ श्लोकों वाले किष्किन्धाकाण्ड से अभिहित की गयी हैं। ग्रंथकार की यह व्यवस्था संभवतः कथानक को सरल, सुबोध एवं सुविधाजनक बनाने का ही एक प्रयास है।

इसके बाद सुन्दरकाण्ड के ७०५ श्लोक, युद्धकाण्ड के १२८८ श्लोक तथा उत्तर काण्ड के १२६३ श्लोक वर्णित हैं। यहाँ ध्यातव्य है कवि ने युद्धकाण्ड की समाप्ति तथा उत्तरकाण्ड के प्रारम्भ से पू। कुछ प्रसंगों का अलग से उल्लेख किया है। जिसके अन्तर्गत-

अन्तःपुरप्रलापः, रावणसत्क्रिया, विभीषणाभिषेकः, वह्निप्रवेशः, महापुरुषस्तवः, लोकपाल-दर्शनम्, पुनराख्यायिकम्, भरतसमागमः तथा रामाभिषेकः आदि घटनाएँ समाहित हैं। रामायणमञ्जरी की कथानक व्यवस्था का यह परिवर्तन अन्यत्र सुलभ नहीं हैं।

अन्त में उत्तरकाण्ड की समाप्ति के पश्चात् कवि ६ श्लोकों के अन्तर्गत राम एवं वाल्मीकि की वन्दना तथा स्ववंशादि परिचय के साथ—

गुणागुणतया भान्ति येषु स्वस्तेषु विस्मया।
निर्गुणेषु गुणानेव ये वदन्ति जयन्ति ते॥

प्रस्तुत श्लोक से ग्रंथ की परिसमाप्ति करता है—इति क्षेमेन्द्र विरचिता रामायणमञ्जरी समाप्ता।

रामायणमञ्जरी की कथानक व्यवस्था के उपर्युक्त सन्दर्भ में एक उत्कण्ठा जागृत होनी स्वाभाविक है। वह यह कि आचार्य क्षेमेन्द्र को परम्परा के विरुद्ध इस नूतन विभाजन की प्रेरणा कहाँ से मिली ? ऐसा प्रतीत होता है कि रामायणमञ्जरी का रचनाकार इस प्रसंग में निश्चय ही महाभारत से प्रभावित हुआ है। महाभारत का एक विभाजन तो आदि, सभा, उद्योग तथा वनपर्वादि १८ पर्वों के रूप में व्यवस्थित एवं सर्वजनवेद्य है। परन्तु उसका एक उपविभाजन भी है जो कि घटनाक्रम के अनुसार व्यवस्थित होकर उसी नाम से प्रख्यात् है।

इस विशिष्ट विभाजन के अनुसार ही महाभारत १८ पर्व की बजाय कुल १०० पर्वों में विभक्त है। इन पर्वों की संज्ञाएँ ही उस पर्व की कथा को स्पष्ट कर देती है। उदाहरणार्थ—अंशावतार पर्व में विभिन्न देव-दानवों का पाण्डव-कौरव वीरों के रूप में अवतरण। हिडिम्ब पर्व में हिडिम्ब वध। आदि-आदि।

वस्तुतः यह विभाजन लोकमानस के अधिक समीप है क्योंकि सामान्य पाठक को पर्व नाम से ही पर्व कथा का बोध हो जाने के कारण स्वाध्याय रुचि की दृष्टि से बड़ी सुविधा हो जाती है।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी तकनीकी तौर पर पारम्परिक काण्ड के विभाजन को उतना महत्व नहीं दिया जितना कि पाठकाभिमत विभाजन पर। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने घटनास्थल के अनुसार काण्ड की सीमा रेखा निश्चित की।

रामायणमञ्जरी की कथानक व्यवस्था के विवेचन के उपरान्त इसकी काण्ड संख्या एवं श्लोक संख्या का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा, जो अधोलिखित है—

काण्ड	श्लोक
बालकाण्ड—अयोध्याकाण्ड—	९८७
अरण्यपर्व	११५८

किष्किन्धापर्व	११४
किष्किन्धाकाण्ड	५७३
सुन्दरकाण्ड	७०५
युद्धकाण्ड	१२८८
रामाभिषेक	१८३
उत्तरकाण्ड	१२६३
कवि वंशादि परिचय	८

६४०० ग्रंथ की कुल श्लोक संख्या।

रामायणमञ्जरी की आधिकारिक कथा—

फल का स्वामी होना ही अधिकार है, और उस फल का स्वामी ही अधिकारी है। फल की सिद्धि तक अभिव्याप्त या उस अधिकारी के द्वारा निष्पन्न वृत्त या कथा आधिकारिक कहलाती है।[1] इस प्रकार प्रधानभूत कथा को ही आधिकारिक कथा कहते हैं। रामायणमञ्जरी में आधिकारिक कथा—राम सीता की कथा है, क्योंकि पूरे ग्रंथ का कथानक राम एवं सीता को ही केन्द्र बिन्दु मानकर प्रवाहित होता है। अंत में फल के रूप में रावण वध तथा राम को विजय एवं राम सीता का पुर्नमिलन होता है। यहाँ फल का स्वामित्व राम को ही प्राप्त होता है जिससे वे अधिकारी हुए। पुनः इनसे संबंधित कथावृत्त जिसका कि रामायणमञ्जरी में आद्योपान्त निर्वहण हुआ है—आधिकारिक कथा है।

पताका कथा

मुख्य कथा के साथ गौण रूप से दूर तक चलने वाले प्रासङ्गिक वृत्त को पताका कहते हैं।[2] रामायणमञ्जरी की मुख्य कथा—राम कथा है। इस मुख्य कथा के अङ्ग के रूप में सुग्रीव एवं विभीषण की कथा उसका दूर तक अनुवर्तन करती हैं जिससे कि मुख्य कथा में प्रवाहमयता सदैव विद्यमान रहती है इन दोनो पताका कथाओं के फल की भी सिद्धि होती है, यथा—बालि वध के उपरान्त सुग्रीव का अभिषेक तथा रावण आदि राक्षसों के वध के पश्चात् विभीषण का अभिषेक। ये दोनों कथाएं जिस स्थल से प्रारम्भ होती हैं, वहाँ से लेकर आधिकारिक कथा के अधिकारी के फल की सिद्धि तक उसका अनुवर्तन करती हैं।

प्रकरी कथा

एक प्रदेश में रहने वाले अर्थात थोड़ी दूर तक चलने वाले प्रासङ्गिक वृत्त को

१. अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्याद्राधिकारिकम्॥ दशरूपक—१।१२

२. सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्। दशरूपक—१।१३

प्रकरी कहते हैं ।[1] पताका कथा की तरह प्रकरी कथाएँ मुख्य कथा का दूर तक अनुवर्तन नहीं करती हैं अपितु मुख्य कथा के साथ बहुत थोड़ी दूर तक चलकर वहीं समाप्त हो जाती हैं । प्रकरी कथा मुख्य कथा के प्रवाह अथवा उसकी अभिवृद्धि में किसी न किसी रूप में सहायक होती है । रामायणमञ्जरी में वर्णित विभिन्न प्रकरी कथाएँ जो मुख्य कथा राम कथा की अभिवृद्धि में सहायक हैं उनका उल्लेख अधोलिखित है ।

ऋष्यशृङ्गोपाख्यानम्—बालकाण्ड के प्रारम्भ में ऋष्यशृंग का वृत्तान्त वर्णित है । जिसमें सुमन्त्र के द्वारा राजा दशरथ को पुत्र प्राप्ति के लिए अश्वमेध एवं पुत्रेष्टि यज्ञ के सम्पादनार्थ ऋष्यशृंग को बुलाने की सलाह दी गयी है । यहाँ ऋष्यशृंग की कथा मुख्य कथा की पूर्वपीठिका के रूप में वर्णित है क्योंकि आधिकारिक कथा के नायक तथा राजा दशरथ के पुत्र राम की उत्पत्ति के लिए उनका यज्ञ कराना तथा उस यज्ञ के विधिवत सम्पादनार्थ ऋष्यशृंग के बुलाने के उपक्रम में इस कथा का महत्वपूर्ण स्थान है । इस कथा के द्वारा ही आधिकारिक कथा की अभिवृद्धि होती है यहीं से मुख्य कथा के प्रवाहित होने की रूपरेखा तैयार होती है । यदि इसके निषेधात्मक पक्ष का आश्रय लेकर थोड़ी देर के लिए इस कथा को बाहर निकाल दे तो फिर राजा दशरथ के यज्ञ का विधिवत् सम्पादन कैसे होगा, यज्ञ का सम्पादन न होने पर रामादि पुत्रों की उत्पत्ति कैसे होगी तथा रामादि पुत्रों की उत्पत्ति ही यदि न हो तो फिर काव्य की आधिकारिक कथा का सृजन ही नहीं हो पाएगा । अतः उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ऋष्यशृंगोपाख्यान को निर्विवाद रूप से प्रकरी कथा कहा जा सकता है ।

गङ्गावतरणम्—इस कथा का भी वर्णन बालकाण्ड के अन्तर्गत ही हुआ है । गंगा के किनारे पहुँचने पर राम, गुरु विश्वामित्र से गङ्गा जी के विषय में पूँछते हैं । विश्वामित्र सहर्ष सम्पूर्ण वृत्तान्त को राम से कहते हैं । इसके अन्तर्गत विश्वामित्र इक्ष्वाकु वंश के नरेशों अर्थात राम के पूर्वजों—राजा सगर, असमञ्ज, अंशुमान, दिलीप तथा भगीरथ आदि का विधिवत उल्लेख करते हुए यह बताते हैं कि राजा भगीरथ किस प्रकार तपश्चर्या के बल पर गंगाजी को पृथ्वी पर लाकर अपने ६० हजार पूर्वजो का तर्पण करते हैं । इस कथा को प्रत्यक्षतः देखने से ऐसा प्रतीत नहीं होता कि यह प्रकरी कथा है क्योंकि इसमें कोई स्थल ऐसा नहीं जिससे स्पष्टतः लक्षित होता हो कि यह मुख्य कथा में अभिवृद्धि करती है । परन्तु सूक्ष्मावलोकन पर इसके द्वारा आधिकारिक कथा के नायक राम के पूर्वजों का उल्लेख प्राप्त होता है जिसका कि मुख्य कथा के प्रवाह में काफी महत्व है । पुनः जिसके ऊपर सम्पूर्ण कथा ही अवलंबित है उसके कुल एवं पूर्वजों का वर्णन होना भी तो अत्यावश्यक है यह कथा यद्यपि कि ग्रंथ के एक भाग में आती है और कुछ दूर तक चलने के बाद पुनः समाप्त हो जाती है परन्तु मुख्य कथा के नायक राम से संबंधित कुछ

१. दशरूपक—१/१३

महत्वपूर्ण सूचनाओं को देकर मुख्य कथा में अभिवृद्धि करती है। अतएव इस कथा को भी प्रकरी कथा कहा जा सकता है।

अहल्याशापमुक्तिः—सम्पूर्ण रामायणमञ्जरी में अहल्या का प्रसंग दो बार प्रयुक्त हुआ है—प्रथमतः बालकाण्ड में तदुपरान्त उत्तरकाण्ड में। बालकाण्ड में संक्षिप्त रूपेण अहल्या को शाप से मुक्त होने का प्रसंग है परन्तु उत्तरकाण्ड की कथा में इसके विस्तार के साथ इन्द्र के शाप मुक्त होने की कथा भी वर्णित है। बालकाण्ड के अन्तर्गत प्रयुक्त अहल्या कथा में गौतम ऋषि अहल्या को शाप देते हुए कहते हैं, "इस आश्रय विहीन निर्जन वन में शीघ्र ही तुम भस्म होकर अदृश्य हो जाओ तथा राम के दर्शन की अवधि तक प्रतीक्षा करो।"[1] यहाँ गौतम ऋषि के इस शाप वाक्य से ही अहल्या शाप मुक्ति की कथा का प्रकरीत्व सूचित होता है। तात्पर्य है कि जब राम इस स्थल पर आकर तुम्हें शाप मुक्त करेंगे उस अवधि की प्रतीक्षा करो। यह वाक्य राम के आने की सूचना देते हुए मुख्य कथा की अभिवृद्धि करता है। यह कथा भी यद्यपि मुख्य कथा का दूर तक अनुवर्तन नहीं करती परन्तु उपर्युक्त वाक्य से ही उसमें प्रवाह लाकर समाप्त हो जाती है। इस प्रकार अहल्या शाप मुक्ति भी एक प्रकरी कथा है।

यज्ञदत्तवधवर्णनम्—अयोध्या काण्ड के अन्त में पुत्र वियोग एवं शोक से पीड़ित राजा दशरथ पहले किए हुए दुष्कृत्य (यज्ञदत्त वध) का वर्णन करते हुए कौशल्या से कहते हैं, "कौशल्ये! मनुष्य अपने द्वारा ही किए हुए शुभ या अशुभ कर्मों के फल का भोग करता है। मेरे द्वारा किए हुए यज्ञदत्त वध रूप दुष्कृत्य के फल की परिपक्वता ही आज मेरे इस दुःख का कारण है। क्योंकि पुत्र शोक से पीड़ित अंधे मुनि ने शाप देते हुए कहा था कि हे राजन! तुम अवश्य ही इस पाप के फल का भोग करोगे।[2] यहाँ मुनि के इस शाप वाक्य से मुख्य कथा के अन्तर्गत आने वाली घटनाओं—कैकेयी द्वारा वर माँगना, राम वन गमन एवं दशरथ मरण तथा भरत पर्व की सूचना मिलती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यज्ञदत्त वध का वृत्तान्त अप्रत्यक्ष रूप से मुख्य कथा के प्रवाह में सहायक है जिसके कारण ही इस कथा को प्रकरी कथा कहा जा सकता है।

जटायुसत्क्रिया—सीता हरण के पश्चात राम जंगल में विलाप करते तथा भटकते हुए—जब खून से लथ-पथ तथा मरणासन्न गृद्धराज जटायु को देखते हैं तो उन्हें भ्रम होता है कि संभवतः इसी ने सीता का वध किया हो। अतः उसे मारने के लिए

---

१. चिरमस्मिन्निरालम्बा कानने भस्मशायिनि।
अदृश्या प्राप्स्यसि शुभं रामसंदर्शनावधि॥
—रामा० मं०, बा० कां०, श्लो० ३०७

२. रामा० मं०, अयो० कां०, श्लो० ८१३

तुरन्त धनुष पर बाण चढ़ा लिए। इतने में ही जटायु ने कहा, "हे राम मैं पाप कर्मी निशाचर नहीं हूँ अपितु आपके पिता राजा दशरथ का मित्र, वरुण पुत्र जटायु हूँ। दशानन ने मुझे घायल कर, आपकी प्रिया सीता का अपहरण कर लिया।"[१] ऐसा सुनकर राम बहुत दुखी हुए। लक्ष्मण के पूछने पर सीताहरण का वृत्तान्त कहते हुए जटायु ने कहा, "आप निश्चय ही राक्षसों का वध करके सीता को प्राप्त कर लेंगे।"[२] जटायु का वृत्तान्त अरण्य पर्व के अन्तर्गत आया है। यद्यपि कि यह कथा आधिकारिक कथा के साथ थोड़ी दूर चलकर ही समाप्त हो जाती है परन्तु आधिकारिक कथा में पूर्ण रूपेण अभिवृद्धि करती है। सीता हरण के पश्चात राम को सर्वप्रथम इसी स्थल पर सूचना मिलती है कि रावण ने सीता का अपहरण किया है। साथ ही जटायु ने यह भी कह दिया कि सीता को प्राप्त करने के लिए राक्षसों से युद्ध करके उनका वध करना होगा। इस प्रकार देखते हैं कि जटायु की कथा एक ही साथ सीता हरण से लेकर रावण वध तक का संकेत करती है। इस कथा के द्वारा मुख्य कथा के प्रवाह को एक नया आयाम मिलता है। इन तथ्यों के आलोक में जटायु वृत्तान्त को निस्सन्देह रूप से प्रकरी कथा कहा जा सकता है।

कबन्धहननम्—कबन्ध राक्षस का वध करने के उपरान्त जब राम उसे चिता में जलाकर शाप मुक्त करते हैं तो वह कबन्ध जो शापवश राक्षस हो गया था, एक दिव्य पुरुष के रूप में विमान पर बैठकर अवतरित हुआ। वह दिव्य पुरुष राम से बोला, "आप मतंग आश्रम के पास स्थित ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर भाई बालि द्वारा त्रासित सुग्रीव से मित्रता करें। उसकी मित्रता से सीता जी को प्राप्त करने में आपको सहायता मिलेगी। कबन्ध वध की कथा पूर्णरूपेण प्रकरी कथा है। यह ग्रंथ में अरण्य पर्व के एक प्रदेश में आकर वहीं समाप्त हो जाती है। पताका कथाओं की तरह मुख्य कथा का दूर तक अनुवर्तन नहीं करती अपितु उसे अग्रसारित कर वहीं समाप्त हो जाती है। क्योंकि कबन्ध के कथनानुसार ही राम ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर सुग्रीव से मित्रता करते हैं तथा बालि वध के उपरान्त उसका राज्याभिषेक होता है। सुग्रीव सभी वानरों एवं रीछों की सहायता से सीता की खोज करवाता है। इसी वानरों एवं रीछों की सेना के द्वारा राम, रावण आदि राक्षसों का वध करके विजय प्राप्त करते हैं। राम सीता का मिलन एवं विभीषण का अभिषेक होता है। इस प्रकार देखते हैं कि कबन्ध की कथा मुख्य कथा की इस प्रकार अभिवृद्धि करती है कि वह अधिकारी के फल की सिद्धि तक प्रवाहित होती रहती है।

शबरीदर्शनम्—रामायणमञ्जरी में अरण्य पर्व के अन्तर्गत आयी हुई शबरी कथा पूर्णरूपेण प्रकरी कथा नहीं प्रतीत होती, क्योंकि सम्पूर्ण कथा में एक भी

---

१. रामा० मं०, अ० प०, श्लोक–१०५०, ५१

२. रामा० मं०, अ० प०, श्लोक–१०६१-१०६८

स्थल ऐसा नहीं है जिससे यह सूचित होता है कि यह कथा आधिकारिक कथा की अभिवृद्धि में सहायक है। रामायणमञ्जरी में केवल यही उल्लेख प्राप्त होता है कि राम मतंग ऋषि के आश्रम में शबरी से मिलते हैं। शबरी अर्घ्य, पाद्य, आसन से उनका सत्कार कर अपने को धन्य मानती है, तथा अपने स्वर्गीय गुरु मतंग की कथा राम से कहती है। राम उसकी भक्ति भावना से प्रसन्न हो आशीर्वाद देकर स्वर्गलोक भेज देते हैं। यद्यपि शोध ग्रंथ की इस शबरी कथा से प्रत्यक्ष रूपेण उसके प्रकरीत्व की कोई सूचना नहीं मिलती परन्तु आधिकारिक कथा के नायक राम के मनोरंजन की दृष्टि से इस शबरी कथा का बहुत अधिक महत्व है जिस आधार पर इसे प्रकरी कथा कहा जा सकता है।

संपातिदर्शनम्—किष्किन्धाकाण्ड के अन्तर्गत वर्णित संपाति की कथा भी प्रकरी कथा है। तापसी स्वयंप्रभा के गुफा मन्दिर में मार्ग भूल जाने से वानर अधिक चिन्तित हो गये। क्योंकि सुग्रीव के द्वारा सीता की खोज के लिए जो एक मास की अवधि निश्चित की गयी थी वह पूर्ण हो गयी। इसी चिन्ता में अंगद, जाम्बवान आदि प्रमुख वानर अपने को अधम कहते हुये जटायु की प्रशंसा करने लगे जो कि राम कार्य में अपने प्राणों को त्याग दिया। पास ही पर्वत पर स्थित संपाति, भाई के निधन को सुनकर बहुत दुःखी हुआ। तुरन्त ही वह भाई का सम्पूर्ण वृतान्त पूछते हुए अपने विषय में वानरों को अवगत कराता है। संपाति राम कार्य में सहायक होकर अपने पुत्र सुपार्श्व द्वारा कथित सीताहरण की बात वानरों से कहता है तथा रावण की लंका पहुंचने के विषय में सभी उपायों को बताता है। प्रारम्भ में ही वह कहता है—[1]

स्थितस्य मे विन्ध्यतटे साग्रं वर्ष शतं ययौ।
सीता हृता मया दृष्ट्वा रावणेन विहायसा ॥ ४१६ ॥

यहाँ संपाति का पूर्वोक्त कथन एवं उसके द्वारा पुत्र सुपार्श्व से सुनी हुई सीताहरण की घटना से वानरों को अवगत कराना ही मुख्य कथा की अभिवृद्धि है। क्योंकि संपाति द्वारा बतायी हुई युक्ति से ही वानर समुद्र लङ्घन कर लंका में जाकर सीता की खोज करते हैं। अतः संपाति का यह वृतान्त जो ग्रंथ के एक प्रदेश में आकर आधिकारिक कथा में अभिवृद्धि के साथ वहीं समाप्त हो जाता है, प्रकरी कथा है। पुनः इसके प्रकरीत्व की सबल पुष्टि अंत में कहे गये अंगद के इस वाक्य से तो पूर्णरूपेण हो जाती है—[2]

उपलब्धैव वैदेही सुहृदस्त्वत्पितुर्गिरा।
अधुना नास्ति नः किंचिदगम्यं व्यवसायिनाम् ॥ ४४ ॥

---

१. रामा० मं०, कि० कि० कां, श्लोक० ४१६
२. रामा० मं०, कि० कि० कां, श्लो० ४४०

मैनाकदर्शनम्—किष्किन्धाकाण्ड में वर्णित मैनाक पर्वत की कथा भी आधिकारिक कथा के प्रवाह में अप्रत्यक्ष रूप से सहायक है। इन्द्र के वज्र प्रहार से हनुमान के पिता वायु के द्वारा बचाये गए मैनाक पर्वत ने प्रत्युपकार हेतु हनुमान को अपनी चोटी पर थोड़ी देर विश्राम करने के लिए कहता है। मैनाक हनुमान से निवेदन करता है कि यहाँ मेरी चोटी पर विश्राम कर मधुर फलाहार के साथ मेरा आतिथ्य स्वीकार करें जिससे मैं कृतार्थ हो जाऊँ। पुनः नवीन शक्ति के द्वारा लङ्का के लिए प्रस्थान करें। इस स्थल पर राम कार्य में संलग्न हनुमान का मैनाक द्वारा अपनी चोटी पर विश्राम एवं मधुर फलाहार से आतिथ्य सत्कार करना ही मुख्य कथा की अभिवृद्धि में सहायक होना लक्षित होता है। तथा यहीं से इस कथा के प्रकरीत्व की भी सूचना प्राप्त होती है।

सुरसादर्शनम्—किष्किन्धाकाण्ड में देवताओं द्वारा हनुमान की परीक्षा लेने के लिए नियुक्त नाग माता सुरसा की कथा भी अप्रत्यक्षरूप से प्रकरी कथा मानी जा सकती है। हनुमान के द्वारा पहले अत्यन्त विशालकाय रूप धारण करना पुनः लघुरूप धारण कर सुरसा के मुख में प्रविष्ट हो बाहर निकल कर अपनी बल बुद्धि की निपुणता सिद्ध कर देने से सुरसा अत्यन्त प्रसन्न होती है। उसे यह विश्वास हो जाता है कि हनुमान राम कार्य को विधिवत संपादित कर लेंगे। यहाँ सुरसा की प्रसन्नता से ही इस कथा के प्रकरीत्व की सूचना प्राप्त होती है।

रामायणमञ्जरी के मूलस्रोत

महाकवि क्षेमेन्द्र अपने ग्रंथ रामायणमञ्जरी में वाल्मीकि रामायण के २४००० श्लोको में वर्णित राम कथा को ६४०० श्लोकों में प्रस्तुत करने का श्लाघनीय प्रयास किया है। यद्यपि कि कवि ने मुख्य रूप से वाल्मीकीय कथा को ही आधार माना है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य क्षेमेन्द्र, कुछ अन्य साम्प्रदायिक रामायणों, पौराणिक ग्रंथों एवं पूर्ववर्ती कवियों के काव्यों तथा नाटकों में वर्णित रामकथा का निस्संदेह सहारा लेकर ही अपने काव्य को पल्लवित एवं पुष्पित किया होगा। इस तथ्य की जानकारी हेतु पूर्ववर्ती राम कथा साहित्य से रामायणमञ्जरी का तुलनात्मक अध्यन अत्यावश्यक जान पड़ता है। रामायणमञ्जरी के मूलस्रोतों से तात्पर्य इसके रचना काल (१०३७ ई०) से पूर्व के राम कथा साहित्य से है। इस स्थल पर रामायणमञ्जरी के मूलस्रोतों का संक्षिप्त परिचय अधोलिखित है।

१—पौराणिक ग्रन्थ—हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, वायु पुराण, भागवत पुराण, कूर्म पुराण, वाराह पुराण, अग्नि पुराण, लिङ्ग पुराण, नारदीय पुराण, ब्रह्म

पुराण, गरुण पुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, नृसिंह पुराण, सौर पुराण, कालिका पुराण, महाभागवत पुराण, स्कंद पुराण आदि ।

२—रामायण ग्रन्थ—वाल्मीकिरामायण एवं अध्यात्मरामायण ।

३—महाभारत—(रामोपाख्यान)

४—संस्कृत काव्य—रघुवंश, सेतुबंध, भट्टिकाव्य, जानकीहरण, रामचरित ।

५—संस्कृत नाटक-प्रतिमानाटकम्, अभिषेकनाटकम्, महावीरचरितम्, उत्तररामचरितम्, बालरामायण, अनर्घराघव, कुन्दमाला, आश्चर्यचूड़ामणि, महानाटक ।

उपर्युक्त राम कथा से संबंधित सभी ग्रंथ आचार्य क्षेमेन्द्र के पूर्ववर्ती एवं रामायणमञ्जरी के मूलस्रोत के रूप में हैं । आगे इन्हीं ग्रंथों में वर्णित राम कथा के आलोक में रामायणमञ्जरी की कथावस्तु का तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा । ध्यातव्य है कि रामायणमञ्जरी में वर्णित सभी छोटी-बड़ी अंतर्कथाओं का तुलनात्मक वर्णन, विषय-विस्तार के कारण नहीं प्रस्तुत किया जाएगा, अपितु इसकी प्रमुख घटना एवं कथाओं का ही तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा जिसका कि ग्रंथ की आधिकारिक कथा से सीधा संबंध है ।

मूलस्रोतों से तुलनात्मक अध्ययन

बालकाण्ड तथा अयोध्याकाण्ड

अवतारवाद

रामायणमञ्जरी में बालकाण्ड के अन्तर्गत 'रामादि पुत्रोत्पत्ति'' के वर्णन में अवतारवाद का निरूपण किया गया है । इस सन्दर्भ में दशरथ के दो यज्ञों का उल्लेख प्राप्त होता है । सुमन्त्र के परामर्श के अनुसार दशरथ अंगराज लोमपाद के यहाँ जाकर ऋष्यशृङ्ग को अयोध्या ले आते हैं तथा पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से पहले उनके द्वारा अश्वमेध यज्ञ करवाते हैं तदनन्तर ऋष्यशृङ्ग पुत्रेष्टि यज्ञ भी करते हैं । इसी अवसर पर देवता लोग ब्रह्मा के साथ विष्णु के पास जाकर निवेदन करते हैं—देव ! ब्रह्मा के वरदान के कारण अवध्य रावण हम सभी को पीड़ित करता है । अतः उसके वध का कोई उपाय ढूँढ़िये । मनुष्य को छोड़ कर वह सभी प्राणियों से अवध्य है । इसलिए आज आप अपने को चारों अंशों में विभाजित करके, दशरथ के पुत्र रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण होकर, तीनों लोकों का कण्टक दूर करें । देवताओं के ऐसा कहने पर तथा राजा दशरथ का यज्ञ परिपूर्ण होने

पर यज्ञाग्नि में से कृष्ण पिङ्गल वर्ण का विशालकाय पुरुष दोनों हाथों में खीर से भरे स्वर्ण पात्र, राजा दशरथ को पुत्र-प्राप्ति के लिए देकर तिरोहित हो गया। राजा दशरथ हर्षपूर्वक उस खीर को रानियों में बाँट दिए। पायस का आधा भाग कौशल्या को, चौथा भाग कैकेयी को तथा शेष को दो भागों में विभक्त कर सुमित्रा को दिया। पायस के इस वितरण से तीनों रानियाँ गर्भवती हो गयीं। प्रसवकाल आने पर कौशल्या ने राम, कैकेयी ने भरत तथा सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक पुत्र को उत्पन्न किया।[1]

रामायणमञ्जरी में वर्णित अवतारवाद की यह घटना किञ्चित् विस्तार सहित वाल्मीकिरामायण में भी उपलब्ध है। रामायणमञ्जरी एवं वाल्मीकिरामायण में वर्णित अवतारवाद की घटनाओं का अवलोकन करने पर पता चलता है कि दोनों ग्रंथों में राजा दशरथ के अश्वमेध यज्ञ एवं पुत्रेष्टि यज्ञ प्रभृति दो यज्ञों का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त दोनों ग्रंथों में वर्णित अवतारवाद की घटनाओं में बहुत साम्यता है, परन्तु इस संदर्भ में किञ्चित् वैषम्य भी ध्यातव्य है। उदाहरणार्थ—वाल्मीकिरामायण के १५वें सर्ग में जिस समय समस्त देवता एवं ब्रह्मा रावण वध के विषय में विचार कर रहे थे उसी समय गरुण पर आरूढ़ विष्णु भगवान वहाँ स्वयं उपस्थित होकर रावण वध के लिए देवताओं को आश्वासन देते हैं,[2] जबकि रामायणमञ्जरी में देवता स्वयं विष्णु के पास जाकर रावण वध के लिए निवेदन करते हैं।

वाल्मीकिरामायण में राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न की जन्म तिथि एवं समय का वर्णन मिलता[3] है, जबकि रामायणमञ्जरी में इसका उल्लेख नहीं है। वाल्मीकि रामायण में दशरथ द्वारा पुत्रों के जात संस्कार तथा वशिष्ठ द्वारा उनके नामकरण का भी उल्लेख है।[4] रामायणमञ्जरी में जात संस्कार का तो नहीं किन्तु नामकरण का अवश्य ही उल्लेख है।

अवतारवाद के प्रथम रूप के अनुसार विष्णु ने चार अंशों में अवतार लिया था। वाल्मीकिरामायण में राम के विष्णुत्व, भरत को विष्णु के साक्षात् चतुर्थांश तथा लक्ष्मण

१. रामा० मं०, बा० कां० (४६–८०)
२. वाल्मी० रा० १/१५ (१६, १७)
३. वाल्मी० रा० १/१८ (८–११)
४. वाल्मी० रा० १/१८ (२०–२२)

एवं शत्रुघ्न को साक्षात् विष्णु के आधे भाग से सम्पन्न होने की सूचना प्राप्त होती है।[१] इसके साथ ही सीता के लक्ष्मीत्व का भी उल्लेख है। इन तथ्यों की वाल्मीकिरामायण में अनेकश: पुष्टि की गयी है। रामायणमञ्जरी में अंशावतार की यह रूपरेखा अस्पष्ट रूप में अवश्य वर्णित है। बालकाण्ड, सुन्दरकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड के प्रथम श्लोकों में ही कवि द्वारा विष्णु की वन्दना से राम का विष्णुत्व सूचित होता[२] है। बालकाण्ड के प्रारम्भ में मुनियों द्वारा पूछने पर तथा नारद के उत्तर में ही अद्वितीय शक्ति राम की जो प्रशस्ति है उससे भी राम के विष्णुत्व की सूचना मिलती है।[३] राम द्वारा वैष्णव धनुर्भङ्ग से अपमानित परशुराम की उक्ति से भी राम के विष्णुत्व की सत्यता प्रकाश में आती है।[४] 'महापुरुषस्तव:' के अन्तर्गत राम के विष्णुत्व एवं सीता के लक्ष्मीत्व का स्पष्ट प्रतिपादन किया गया[५] है। रामायणमञ्जरी में भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न के अंशावतार का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं मिलता किन्तु बालकाण्ड में देवताओं द्वारा विष्णु से ऐसा कहने पर कि आप अपने को चारों भागों में विभाजित कर पृथ्वी पर अवतरित हो तीनों लोकों का कण्टक दूर करें।[६] इससे सूचित होता है कि लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न विष्णु के ही अंशावतार हैं।

वाल्मीकिरामायण में ब्रह्मा के आदेश से देवताओं द्वारा वानर यूथपतियों के उत्पत्ति की घटना जो वर्णित है, इस प्रकार का उल्लेख यद्यपि रामायणमञ्जरी में अप्राप्य है किन्तु उत्तरकाण्ड के अंतर्गत स्वर्गारोहण के प्रसंग में राम के स्वर्गारोहण के बाद सुग्रीवादि प्रमुख वानर देवताओं के जिन अंशों से उत्पन्न हुए थे उन मूर्तियों में समाहित हो, अपने-अपने स्थान को चले गये।[७] इस वर्णन से स्पष्टत: परिलक्षित होता है कि ये सभी देवताओं के अंशों से ही उत्पन्न हुए थे, जैसा कि वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित है।

वाल्मीकिरामायण[८] और रामायणमञ्जरी[९] में एक ओर राम-लक्ष्मण तथा दूसरी ओर भरत-शत्रुघ्न की विशेष आत्मीयता का भी उल्लेख किया गया है।

---

१. वाल्मी० रा० १/१८ (११–१४)
२. रामा० मं०, बा० कां०, सुन्दर कां०, उ० कां० (१)
३. रामा० मं०, बा० कां० (६–१०)
४. रामा० मं० बा० कां० (६२२, ६२३)
५. रामा० मं० महापुरुषस्तव: (१११–१२०)
६. रामा० मं० बा० कां० (६८)
७. रामा० मं०, उ० का० (१२६०)
८. वाल्मी० रा०, १/१८ (२८, २९, ३२)
९. रामा० मं०, बा० कां० (७८)

रामायणमञ्जरी एवं वाल्मीकिरामायण में वर्णित अवतारवाद का प्रसंग किञ्चित् परिवर्तन सहित अध्यात्मरामायण में भी सुलभ है। रामायणमञ्जरी में दशरथ के दो यज्ञों अश्वमेध एवं पुत्रेष्टि का उल्लेख मिलता है किन्तु अध्यात्मरामायण में केवल पुत्रेष्टि यज्ञ का ही वर्णन मिलता है।[1] रामायणमञ्जरी में सुमन्त्र के परामर्श के अनुसार दशरथ, ऋष्यश्रृंग को यज्ञ के सम्पादनार्थ अयोध्या बुलाते हैं, साथ ही सुमन्त्र ऋष्यश्रृंग का सम्पूर्ण वृत्तान्त दशरथ से कहते हैं। परन्तु अध्यात्मरामायण में दशरथ वशिष्ठ के परामर्श के अनुसार ऋष्यश्रृंग को बुलाते हैं तथा ऋष्यशृङ्ग का वृत्तान्त भी यहाँ अप्राप्य है।

अध्यात्मरामायण में रावण आदि राक्षसों के भार से व्यथित पृथ्वी गौ रूप धारण कर देवता और मुनि के साथ ब्रह्मा के पास जाकर अपना दुःख कहती है। अनन्तर ब्रह्मा-पृथ्वी, देवता एवं मुनियों के साथ विष्णु के पास जाते हैं।[2] रामायणमञ्जरी में पृथ्वी के गौ रूप धारण करने तथा देवताओं के पास जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। वाल्मीकिरामायण की ही भाँति अध्यात्मरामायण में वर्णित देवताओं के अंशों से वानरों के उत्पत्ति[3] की घटना भी रामायणमञ्जरी में अप्राप्य है।

अध्यात्मरामायण में स्पष्ट रूप से वर्णित हैकि राम—विष्णु शेष जी—लक्ष्मण तथा शंख और चक्र—भरत एवं शत्रुघ्न के रूप में अवतरित हुए। दशरथ ब्रह्मा के पुत्र कश्यप और कौशल्या अदिति के अवतार हैं।[4] अध्यात्मरामायण के अंशावतार की यह घटना रामायणमञ्जरी में सुलभ नहीं हैं। अध्यात्मरामायण के उपर्युक्त स्थल के अतिरिक्त अरण्यकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड में भी भरत और शत्रुघ्न को शंख और चक्र का अवतार माना गया है।[5]

अध्यात्मरामायण में नारद राम को स्मरण दिलाते हैं कि वह विष्णु, शिव, ब्रह्मा तथा सूर्य से अभिन्न हैं तथा तदनुसार लक्ष्मी, पार्वती, प्रभा तथा सरस्वती सीता में अवतरित हैं।[6] अध्यात्मरामायण में लक्ष्मी के अतिरिक्त सीता को मूल प्रकृति, योगमाया तथा परम शक्ति भी माना गया है।[7] रामायणमञ्जरी में राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न के अंशावतारों का इतना विशद एवं स्पष्ट संकेत नहीं मिलता है।

१. अध्या० रा० १/३ (४५)
२. अध्या० रा० १/२ (६, ७)
३. वही (२९, ३०)
४. अध्या० रा० १/४ (१४-१८)
५. अध्या० रा० २/२ (२६) एवं ७/८ (५७)
६. अध्या० रा० २/१(१३)
७. अध्या० रा० १/७(२७), १/२(५), ४/३(३)

सीता को लक्ष्मीत्व के संकेत के साथ वैदेहि, मैथिलि, जनकपुत्री, वेदवती तथा अयोनिजा के रूप में ही रामायणमञ्जरी में देखा जा सकता है। कौशल्या तथा दशरथ के अवतार का भी उल्लेख नहीं है।

अध्यात्मरामायण के अनुसार जन्म के समय राम—शंख, चक्र, गदा आदि धारण किए हुये दिव्य रूप में माता कौशल्या के सामने प्रकट हुये। पुनः कौशल्या के निवेदन से वे बालभाव को प्राप्त हुए।[१] इसी स्थल पर राम का नटखट स्वरूप, मक्खन की चोरी, बर्तनों को फोड़ना आदि बालक्रीड़ाओं का विस्तृत वर्णन है,[२] जो अध्यात्म रामायण की सबसे बड़ी विशेषता है। रामायणमञ्जरी में राम के जन्म के समय न तो उनके विष्णु रूप में ही प्रकट होने का वर्णन है, और न तो उनकी बालक्रीड़ाओं का ही।

अध्यात्मरामायण में भी जात कर्म संस्कार के उल्लेख के साथ वशिष्ठ द्वारा भाइयों के नामकरण का भी उल्लेख है।[३] वशिष्ठ द्वारा नामकरण के अतिरिक्त जात संस्कार का उल्लेख रामायणमञ्जरी में नहीं मिलता है।

वाल्मीकिरामायण और रामायणमञ्जरी में राम-लक्ष्मण तथा भरत-शत्रुघ्न की विशेष आत्मीयता का जो उल्लेख है वह अध्यात्मरामायण में भी उपलब्ध है। कौशल्या और कैकेयी के दिए हुए पायसांशों के अनुसार राम-लक्ष्मण के तथा भरत-शत्रुघ्न के जोड़ीदार होकर रहने लगे।[४]

महाभारत के रामोपाख्यान में अवतारवाद का उल्लेख तो किया गया है किन्तु उसमें कहीं भी दशरथ के किसी यज्ञादि का संकेत नहीं मिलता। अवतारवाद से संबन्धित केवल एक ही तथ्य प्रकाश में आता है जिसमें ब्रह्मा देवताओं से कहते हैं कि विष्णु मेरे आदेश के अनुसार अवतार लेकर रावण की हत्या करेंगे।[५]

प्राचीन महापुराणों में अर्थात (हरिवंश,[६] विष्णु, वायु तथा भागवत) में जो संक्षिप्त रामकथा मिलती है, उनमें कहीं भी दशरथ के किसी यज्ञ का निर्देश नहीं किया गया है। हाँ इन पुराणों (हरिवंश, विष्णु, वायु) में विष्णु के चार रूपों में प्रकट होने का

---

१. अध्या० रा० १/३(१४-१८, ३५)

२. अध्या० रा० १/३ (४६-५८)

३. वही (३७-४१)

४. वही (४२)

५. रामोपाख्यान (३-२६०)

तदर्थमवतीर्णोऽसौ सन्नियोगाच्चतुर्भुजः।

विष्णुः प्रहरतां श्रेष्ठः स कर्मैतत्करिष्यामि॥

६. हरिवंश पु० (१, ४१, १२२)—'कृत्वात्मानं महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वरः।'

उल्लेख मिलता है। इन प्राचीन महापुराणों में विष्णु राम के अवतार माने गये हैं, साथ ही सीता और लक्ष्मी की अभिन्नता की भी ओर निर्देश किया गया है।[१]

स्कन्द पुराण के दो स्थलों पर दशरथ की तपस्या का उल्लेख मिलता है। 'नागरखण्ड'[२] के अनुसार दशरथ के शनैश्चर से युद्ध करने के बाद इन्द्र उनसे कहते हैं--'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति।' इसके अनन्तर दशरथ कार्तिकेयपुर में १०० वर्ष तपस्या करते हैं, फलस्वरूप जनार्दन प्रकट होते हैं तथा चार रूप धारण कर दशरथ के पुत्र रूप में पैदा होने का वचन देते हैं। इसके बाद दशरथ के चार पुत्र और एक पुत्री पैदा होती है। 'प्रभासखण्ड[३]' के अनुसार दशरथ पुत्र प्राप्ति के लिए तप करते हैं। 'माहेश्वर खण्ड[४]' में ब्रह्मविद्या का सीता के रूप में अवतरित होने का भी उल्लेख है।

वाराहपुराण में दशरथ द्वारा वशिष्ठ के परामर्श के अनुसार रामद्वादशीव्रत के पालन का उल्लेख मिलता है जिसके फलस्वरूप विष्णु उनकी संतान के रूप में प्रकट होते हैं।[५]

ब्रह्म पुराण में दशरथ श्रवणकुमार वध के प्रायश्चित हेतु वशिष्ठ से अश्वमेध यज्ञ के विषय में परामर्श करते हैं। अश्वमेध यज्ञ का आयोजन हुआ। यज्ञ के समय आकाशवाणी हुई कि दशरथ अपने ज्येष्ठ पुत्र के प्रसाद से पापमुक्त हो जाएँगे।[६] इसी यज्ञ के फलस्वरूप पुत्र प्राप्ति होती है। ब्रह्मपुराण में सीता और लक्ष्मी की अभिन्नता की ओर भी निर्देश किया गया है।[७]

अंशावतार के एक अन्य रूप के अनुसार नारायण चतुर्व्यूह के रूप में अर्थात (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध) अवतरित होते हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण[८] तथा नारद पुराण[९] के अनुसार राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न क्रमशः उपर्युक्त चतुर्व्यूह से अभिन्न हैं।

नृसिंहपुराण[१०] में केवल राम तथा लक्ष्मण का उल्लेख है जो विष्णु तथा शेष

---

१. हरिवंश पु० (१ अ० ४१), भागवत (९ अ० ९)
२. स्कन्द पु० नागरखण्ड (अ० ९६-९८)
३. स्कन्द पु० प्रभासखण्ड (अ० ११७)
४. स्कन्द-माहेश्वरखण्ड अ० ८, ९५)
५. वाराह पु० (अ० ४५)
६. ब्रह्म पु० (अ० १२३)
७. ब्रह्म पु० (अ० २१३, १२९)
८. विष्णुधर्मोत्तर पु० (अ० २१२)
९. नारद पु० (उ० खं०, अ० ७५)
१०. नृसिंह पु० (अ० ४७)

के अवतार हैं। लिंग पुराण[1] में भरत तथा शत्रुघ्न के अवतारत्व के विषय में उल्लेख है जो विष्णु के ही अंग स्वरूप थे।

उपर्युक्त पौराणिक सन्दर्भों से स्पष्ट है कि पुत्र प्राप्ति हेतु दशरथ ने किसी जप, तप तथा यज्ञ का अनुष्ठान अवश्य ही किया, परन्तु रामायणमञ्जरी में केवल अश्वमेध एवं पुत्रेष्टि यज्ञ के अतिरिक्त किसी अनुष्ठान का वर्णन नहीं मिलता है। अंशावतार के सन्दर्भ में पुराणों में राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न को किसी न किसी रूप में विष्णु का ही अंश स्वीकार किया गया है। रामायणमञ्जरी से भी यही तथ्य सूचित होता है किन्तु पुराणों की तरह इसमें कोई विस्तृत व्याख्या नहीं है।

संस्कृत महाकाव्यों (रघुवंश,[2] भट्टिकाव्य एवं जानकी हरण) में भी दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ का तो उल्लेख मिलता है लेकिन रामायणमञ्जरी की तरह अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख नहीं मिलता।

रघुवंश के अनुसार दशरथ की रानियाँ गर्भकाल में अलौकिक स्वप्न देखती हैं, जिससे दशरथ प्रसन्न होते हैं कि मैं जगद्गुरु का पिता बन रहा हूँ।[3] दशरथ की रानियों का यह अलौकिक स्वप्न तथा जन्म के समय जो अत्यंत काव्यमय वर्णन रघुवंश में प्राप्त होता है वे सभी रामायणमञ्जरी में सुलभ नहीं हैं। शेष अवतारवाद की घटनाएँ यथावत हैं केवल रघुवंश में रामादि के जन्मतिथि का वर्णन है लेकिन रामायणमञ्जरी में नहीं।

रामायणमञ्जरी से भट्टिकाव्य में अवतार से संबंधित सबसे बड़ा अन्तर यह है कि इसमें दशरथ यज्ञ का तो वर्णन है लेकिन रामायणमञ्जरी की तरह किसी दिव्य पुरुष द्वारा दिए गये पायस का इसमें उल्लेख नहीं है। दशरथ की रानियाँ यज्ञ के पश्चात् पायस के स्थान पर हुतोच्छिष्ट ग्रहण करती हैं।

राम-सीता-विवाह

रामायणमञ्जरी में वर्णित सीताविवाहः (राम-सीता-विवाह) के अन्तर्गत मुख्यतः तीन प्रसंग—धनुर्भङ्ग, सीता स्वयंवर एवं विवाहोत्सव विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सम्प्रति इन्हीं प्रसंगों का क्रमशः मूलस्रोतों से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है

धनुर्भङ्ग—रामायणमञ्जरी के अनुसार विश्वामित्र, जनक-यज्ञ के अवसर पर राम-लक्ष्मण के साथ मिथिला पहुँचते हैं तथा जनक से शिव-धनुष दिखाने को कहते हैं। इस

---

१. लिंग पु० (२, ५, १४७-१४८)

२. रघुवंश (१०, ४)

ऋष्यश्रृङ्गादयस्तस्य सन्तः सन्तानकांक्षिणः।
आरंभिरे जितात्मानः पुत्रीयामिष्टिमृत्विजः॥

३. रघुवंश (१०, ६०-६४)

पर जनक कहते हैं कि शिव ने मेरे पिता देवरात को यह धनुष दिया था। पुनः अयोनिजा सीता के जन्म की कथा सुनाते हुए जनक ने कहा कि मैंने प्रण किया है कि जो इस शिव धनुष की प्रत्यञ्चा को चढ़ा देगा उसी को पत्नी स्वरूप सीता प्रदान की जाएगी। बहुत से राजाओं ने प्रत्यञ्चा चढ़ाने का प्रयत्न किया परन्तु असफल होने पर उन्होंने मिथिला को घेर लिया। एक वर्ष तक उनके घेरा डालने से मेरी पूरी सैन्य शक्ति क्षीण हो गयी। अंत में देवताओं से वर प्राप्त कर चतुरंगिणी सेना द्वारा मैंने उन्हें पराजित किया। विफल मनोरथ वाले सभी राजा वापस लौट गये। इसके बाद जनक ने उस धनुष को ले आने का आदेश दिया। विश्वामित्र के आदेश से राम शिव धनुर्भङ्ग करते हैं। दशरथ को अयोध्या से बुलाया जाता है। राम के अतिरिक्त लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न का भी क्रमशः उर्मिला, मांडवी तथा श्रुतकीर्ति से विवाह सम्पन्न होता है।[१]

राम विवाह के इस वर्णन में धनुर्भङ्ग को एक महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। रामायणमञ्जरी के प्रायः सभी मूलस्रोतों में धनुर्भङ्ग का वर्णन पाया जाता है किन्तु महाभारत के रामोपाख्यान में न तो धनुर्भङ्ग का उल्लेख है और न ही राम को छोड़कर अन्य भाइयों के विवाह का ही उल्लेख है।[२]

वाल्मीकिरामायण[३] और रामायणमञ्जरी में वर्णित राम विवाह के प्रसंग में कोई भिन्नता नहीं दृष्टिगोचर होती है। केवल वाल्मीकीय कथा का संक्षिप्त रूप ही कवि क्षेमेन्द्र ने वर्णित किया है।

रामायणमञ्जरी के प्रायः सभी मूलस्रोत वाल्मीकिरामायण के ही अनुकरण पर धनुर्भङ्ग का उल्लेख किए हैं किन्तु कुछ रामकथा संबंधी ग्रंथों में इससे थोड़ी इतर व्यवस्था वर्णित है।

'महावीरचरित'[४] के अनुसार विश्वामित्र के आश्रम में ही राम, लक्ष्मण सीता और उर्मिला को देखकर आकर्षित हो जाते हैं। उसी आश्रम में रावण का एक दूत सीता को मांगता है तथा राम द्वारा धनुर्भङ्ग भी किया जाता है।

'अनर्घराघव'[५] में भी रावण दूत शौष्कल मिथिला में आकर रावण की ओर से सीता को माँगता है तथा रावण को धनुष परीक्षा के अयोग्य बताता है। इसके बाद राम धनुर्भङ्ग करते हैं। चारों भाइयों के विवाह का निश्चय हो जाने पर शौष्कल रावण के पास लौट आता है।

---

१. रामा० मं, बा० कां (५०३–५६७)
२. महाभारत–रामोपाख्यान (३, २६१)
३. वाल्मी० रा०, बा० कां (सर्ग ६६–७७)
४. महावीरचरित—अंक १
५. अनर्घराघव—अंक ३

रघुवंश सहित रामायणमञ्जरी के उपर्युक्त मूलस्रोतों में धनुर्भङ्ग के अवसर पर अन्य राजाओं की उपस्थिति का उल्लेख नहीं किया गया है तथा चारों भाइयों के विवाह का निर्देश मिलता है।

रामायणमञ्जरी में धनुष संबंधी जो तथ्य है उसके अनुसार जनक कहते हैं—निमि के श्रेष्ठ पुत्र देवरात को जो मेरे पितामह थे, पहले शंकर ने अपना धनुष दिया था।[1] वाल्मीकिरामायण के परशुराम तेजोभङ्ग के प्रसंग में यह कहा गया है कि शिव ने स्वयं ही देवरात को यह धनुष दिया था।[2] परन्तु वाल्मीकीय बालकाण्ड के अनुसार देवताओं ने देवरात को शिव धनुष दिया।[3] इसी के साथ अयोध्याकाण्ड में सीता अनसूया से कहती हैं कि मेरे पिता से प्रसन्न होकर वरुण ने उन्हें एक धनुष प्रदान किया।[4] पुनः रामायण मञ्जरी के परशुराम तेजोभङ्ग के अनुसार क्रुद्ध शंकर ने स्वयं अपना धनुष जनक को दिया था।[5]

उपर्युक्त शिव धनुष से संबंधित प्रसंगों में प्रथम दो रामायणमञ्जरी एवं वाल्मीकि रामायण के प्रसंग जिसमें स्वयं शंकर ने देवरात को धनुष दिया था, एक समान है। तीसरे वाल्मीकीय प्रसंग के अनुसार देवरात को शिव से धनुष न मिलकर अपितु देवताओं से मिला है। चौथे प्रसंग में तो बिलकुल भिन्नता है। जिसके अनुसार वरुण ने जनक को एक धनुष दिया था। जिसका राम ने भंजन किया था। वाल्मीकिरामायण के तीसरे एवं चौथे प्रसंग का एक उभयनिष्ठ प्रसंग रामायणमञ्जरी में मिलता है जिसके अनुसार शंकर ने देवरात को धनुष न देकर, अपितु जनक को दिया था।

धनुष संबंधी उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त भट्टिकाव्य, बालरामायण[6] एवं अध्यात्म रामायण[7] आदि में एक और तथ्य दर्शनीय है, जिसके अनुसार शिव ने उस धनुष से त्रिपुर को नष्ट किया था। अध्यात्मरामायण में जनक कहते हैं कि पूर्वकाल में त्रिपुरासुर के वध के अनन्तर महादेव जी ने यह धनुष मेरे पितामह के यहाँ धरोहर में रखी थी। वाल्मीकिरामायण में भी इस तथ्य का समर्थन किया गया है। परशुराम राम से कहते हैं—नरश्रेष्ठ ! इनमें से एक को देवताओं ने त्रिपुरासुर से युद्ध करने के लिए भगवान

१. रामा० मं, बा० कां० (४८४)
२. वाल्मी० रा०, १।७५ (२१)
३. वाल्मी० रा०, १।६६ (८, १२, १३)
४. वाल्मी० रा०, २।११८ (३९)
५. रामा० मं, बा० कां (६०२)
६. बालरामायण (४, ४५)
७. अध्या० रा० १।६ (६९)

शंकर को दिया था, जिससे त्रिपुर का नाश हुआ।[1] वही धनुष था जिसे तुमने तोड़ डाला रामायणमञ्जरी में जिस धनुष का उल्लेख किया गया है उसकी यह विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती कि उससे शिव ने त्रिपुरासुर का वध किया था। केवल एक स्थल पर इसका संकेत अवश्य ही मिलता है जिसके अनुसार विश्वामित्र त्रिपुर के शत्रु शंकर का धनुष दिखाने के लिए जनक से कहते हैं[2]—

विश्वामित्रस्तमवदद्दिव्यं तत्त्रिपुरद्विषः।
धनुर्धैर्यनिधिर्वीरो राघवो द्रष्टुमर्हति॥

सीता स्वयंवर—प्रायः सभी राम कथाओं में सीता स्वयंवर का वर्णन पाया जाता है। कुछ राम कथाओं में तो सीता स्वयंवर में उपस्थित भूमण्डल के समस्त राजाओं के मध्य राम शिव धनुर्भङ्ग करके सीता से विवाह करते हैं परन्तु कुछ में सीता स्वयंवर में जनक द्वारा आहूत समस्त राजा शिव धनुर्भङ्ग में असमर्थ होने पर मिथिला को घेर लेते हैं। अंत में देवताओं की सहायता से जनक उन्हें परास्त कर वापस भेज देते हैं तथा कुछ समय बाद राम मिथिला आकर धनुर्भङ्ग एवं सीता से विवाह करते हैं। रामायण-मञ्जरी में भी ऐसा ही वर्णन सुलभ है। जनक, धनुष एवं सीता वरण के विषय में विश्वामित्र से कहते हैं कि इस धनुष को तोड़कर सीता विवाह के लिए उत्सुक न जाने कितने राजा विडम्बित हुए, लेकिन धनुष नहीं टूटा। शिव धनुष तोड़ने में असमर्थ राजाओं ने मिथिला को घेर लिया। अंत में देवताओं की सहायता से मैंने उन्हें परास्त किया।[3] रामायणमञ्जरी के इस सन्दर्भ से सीता स्वयंवर की ही सूचना दी जाती है तथा बाद में उस शिव धनुष को तोड़कर सीता से विवाह करने का उल्लेख है।

वाल्मीकिरामायण में भी सीता स्वयंवर का उल्लेख किया गया है जो रामायण-मञ्जरी से बहुत निकट है। सीता स्वयंवर के अवसर पर बहुत से राजा शिव धनुष चढ़ाने में असमर्थ ही रहे और बाद में उन्होंने मिथिला को घेर लिया। अंत में देवताओं की सहायता से जनक ने उन्हें परास्त किया। इस घटना के बहुत काल बाद राम ने धनुष तोड़कर सीता से विवाह किया।[4]

रामायणमञ्जरी एवं वाल्मीकिरामायण के उपर्युक्त संदर्भों से स्पष्ट है कि सीता-स्वयंवर राम द्वारा धनुर्भङ्ग के पूर्व ही सम्पन्न हुआ था। कालान्तर में राम ने धनुर्भङ्ग करके सीता से विवाह किया। अतः सीता स्वयंवर में राम उपस्थित नहीं थे। किन्तु

---

१. वाल्मी० रा० १।७५ (१२)
२. रामा० मं, बा० कां (४८२)
३. रामा० मं, बा० कां (४८१–४८५)
४. वाल्मी० रा० १।६६ (१५–२६)

रामायणमञ्जरी के कुछ अन्य मूलस्रोतों से पता चलता है कि राम अन्य राजाओं की उपस्थिति में अर्थात सीता स्वयंवर के अवसर पर धनुष चढ़ाते हैं। इस प्रकार की रचनाओं में **नृसिंह पुराण,**[१] **भागवत पुराण**[२] तथा **अध्यात्मरामायण**[३] विशेष उल्लेखनीय हैं।

सीता स्वयंवर से संबंधित एक तथ्य रामायणमञ्जरी के कुछ मूलस्रोतों में और प्राप्त होता है जिसका धनुर्भङ्ग के प्रसंग में उल्लेख किया जा चुका है। **महावीरचरित**[४] तथा **अनर्घराघव**[५] में रावण का एक दूत सीता को माँगने आता है।

इसके अतिरिक्त कुछ रचनाओं के अनुसार सीता स्वयंवर के समय राम तथा रावण दोनों उपस्थित थे। इसके अन्तर्गत बाल रामायण प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। इसके अनुसार रावण ने धनुष परीक्षा अस्वीकार कर दिया।

मूलस्रोतों में वर्णित सीता स्वयंवर से संबंधित उपर्युक्त सभी घटनाएँ रामायणमञ्जरी में अप्राप्य हैं। इसमें केवल वाल्मीकिरामायण के अनुसार ही वर्णन प्राप्त होता है जिससे पता चलता है कि सीता स्वयंवर के बहुत बाद राम मिथिला पहुँचकर धनुर्भङ्ग करते हैं जहाँ न तो रावण न उसके दूत तथा न ही अन्य कोई राजा तथा देवता ही उपस्थित थे। यहाँ मात्र जनक द्वारा पहले सम्पन्न किए हुए सीता स्वयंवर की सूचना दी जाती है।

विवाहोत्सव—रामायणमञ्जरी में राम-सीता विवाह के अतिरिक्त राम के अन्य तीन भाइयों के विवाह का भी वर्णन है। इसके अनुसार राम का सीता से, लक्ष्मण का उर्मिला से तथा भरत एवं शत्रुघ्न का क्रमशः मांडवी एवं श्रुतकीर्ति के साथ विवाह सम्पन्न हुआ।[६]

रामायणमञ्जरी में वर्णित रामादि चारों भाइयों के विवाह का उल्लेख प्रायः इसके मूलस्रोतों तथा अन्य रामकथाओं में भी पाया जाता है। वाल्मीकिरामायण[७] और अध्यात्मरामायण[८] में रामादि चारों भाइयों के विवाह उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार ही सम्पन्न हुए हैं।

---

१. नृसिंह पु० (अ० ४७)
२. भागवत पु० (९, १०)
३. अध्या० रा० १।६ (२४)
४. महावीरचरित (अंक १)
५. अनर्घराघव (अंक ३)
६. रामा० मं, बा० कां (५५१)
७. वाल्मी० रा०, १।७३ (२५–३२)
८. अध्या० रा०, १।६ (५०–५६)

रामादि भाइयों के विवाह की यही व्यवस्था प्रायः सर्वत्र राम कथाओं में उपलब्ध है किन्तु इस सामान्य नियम के अपवाद का अभाव भी तो नहीं है। भट्टिकाव्य,[1] महाभारत (रामोपाख्यान)[2] एवं दामोदर मिश्र द्वारा सम्पादित महानाटक में केवल राम तथा सीता के विवाह का ही उल्लेख मिलता है। इसके विपरीत वह्नि पुराण में केवल राम तथा लक्ष्मण के ही विवाह का उल्लेख है।[3]

परशुराम तेजोभङ्ग—विवाहोपरान्त रामादि के अयोध्या जाते समय, दाशरथि राम के पराक्रम तथा उनके द्वारा शिव धनुर्भङ्ग को सुनकर क्षत्रिय विरोधी परशुराम राम से द्वन्द्व युद्ध की इच्छा से मार्ग में आ पहुँचे। साथ में विष्णु का धनुष लिए हुए परशुराम राम से कहते हैं कि इसे चढ़ाकर आप अपने को योग्य प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध करें। इसी सन्दर्भ में विष्णु धनुष के विषय में परशुराम कहते हैं—विश्वकर्मा ने पहले दो धनुषों का निर्माण किया था, एक शिव के लिए तथा एक विष्णु के लिए। किसी दिन शिव और विष्णु में युद्ध होने वाला था। विष्णु के हुंकार मात्र से शिव का यह धनुष ढीला पड़ गया जिससे शिव पराजित हो गये। क्रुद्ध होकर शिव ने वह धनुष जनक को दे दिया तथा विष्णु ने अपना धनुष भार्गव कुल में दे दिया। परशुराम के ऐसा कहने के बाद राम ने विष्णु चाप का भंजन कर दिया जिससे परशुराम का संचित पुण्यलोक नष्ट हो गया तथा उन्हें राम के विष्णुत्व का ज्ञान हो गया। अंत में लज्जित परशुराम महेन्द्र पर्वत की ओर चल दिए।[4]

वाल्मीकिरामायण[5] में भी बालकाण्ड के अंत में परशुराम के तेजोभङ्ग का वर्णन उपर्युक्त प्रकार से पाया जाता है। दोनों ग्रंथो में इस प्रसंग के अन्तर्गत कोई भिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती।

परशुराम तेजोभङ्ग के इस प्रसंग में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि वास्तव में राम और परशुराम के संघर्ष का कारण क्या है? उपर्युक्त दोनों ग्रंथों के अनुसार तो राम परशुराम के संघर्ष का कारण यह है कि परशुराम एक सुयोग्य प्रतिद्वन्द्वी से युद्ध करना चाहते हैं। **नृसिंह पुराण** से एक अन्य कारण का संकेत मिलता है जिसके अनुसार परशुराम राम को चुनौती देते हैं—या तो राम नाम छोड़ दो अथवा मेरे साथ युद्ध करो।[6] इसी प्रकार **अध्यात्मरामायण** में भी परशुराम कहते हैं—यदि तूं वास्तव में क्षत्रिय है तो मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध कर। एक पुराने जीर्ण-शीर्ण धनुष को तोड़कर तूं व्यर्थ ही प्रशंसा कर

---

१. भट्टिकाव्य (२, ४३)
२. रामोपाख्यान (३, २६१)
३. वह्नि पुराण (पृ० १८३)
४. रामा० मं, बा० कां० (५६८–६२६)
५. वाल्मी० रा०, बा० कां, सर्ग ७५
६. नृसिंह पु०, अ० ४७ (१४६)

रहा है।[1] यहाँ राम का क्षत्रियत्व तथा शिव का धनुष तोड़ना ही संघर्ष का कारण है। किन्तु राम नाटकों में एक और कारण मिलता है जिसमें परशुराम को शिव का शिष्य माना गया है और वे अपने गुरु के प्रति किए गए अनादर का प्रतिकार करने आते हैं। इसका प्रथम उल्लेख महावीरचरित में मिलता है, जिसमें रावण मंत्री माल्यवान के उकसाने पर परशुराम हरचाप भंजक राम का दमन करने के लिए मिथिला में आ पहुँचते हैं।[2] अनर्घराघव[3] तथा बाल रामायण[4] में परशुराम को शिव के शिष्य तथा शैव सन्यासी के रूप में चित्रित किया गया है।

अध्यात्मरामायण[5] में तेजोभङ्ग के पश्चात परशुराम राम (विष्णु) को पहचान जाते हैं। अनन्तर उनके विष्णुत्व की एक विस्तृत स्तुति के बाद वे महेन्द्र पर्वत पर चले जाते हैं। वाल्मीकिरामायण[6] में भी राम द्वारा तेज भङ्ग किए जाने पर दैन्यावनत परशुराम को उनके परंतप रूप का ज्ञान हो जाता है। परशुराम उनकी महिमा का ज्ञान करते हुए महेन्द्र पर्वत पर चले जाते हैं। अध्यात्म एवं वाल्मीकिरामायण में वर्णित उपर्युक्त तथ्य रामायणमञ्जरी में भी दर्शनीय है। विनष्ट तेज वाले परशुराम कहते हैं[7]—

धनुषोऽयं निजं नाथं जाने त्वां विष्णुमच्युतम्।
नीता मधुमुखा येन दैत्याः क्रोधोपहारताम्॥
इच्छामात्रेण जगतां प्रलयोदयकारिणा।
न मे त्वया जितस्यापि लज्जाधूसरमाननम्॥

इस प्रकार तेजभंग के पश्चात परशुराम द्वारा राम की स्तुति भी रामायणमञ्जरी में प्राप्त होती है।

रामायणमञ्जरी[8], वाल्मीकिरामायण[9] एवं अध्यात्मरामायण[10] में परशुराम के जाने के बाद राम द्वारा उनके पूजन एवं प्रदक्षिणा का भी संकेत मिलता है।

---

१. अध्या० रा०, १।७ (१२)
२. महावीरचरित, अंक २ (१२–१७)
३. अनर्घराघव (४, ३२)
४. बाल रामायण, अंक ४
५. अध्या० रा०, १।७ (२९–५०)
६. वाल्मी० रा०, १।७६ (१७–२२)
७. रामा० मं, बा० कां० (६२२–६२४)
८. रामा० मं, बा० कां (६२५)
९. वाल्मी० रा० १।७६ (२४)
१०. अध्या० रा०, १।७ (५०)

रामायणमञ्जरी एवं वाल्मीकिरामायण के अनुसार परशुराम राम से, विवाहोपरान्त अयोध्या लौटते समय मार्ग में मिलते हैं किन्तु **महावीरचरित**, **बालरामायण** एवं **अनर्घराघव** प्रभृति राम नाटकों में परशुराम के मिथिला में ही आगमन का वर्णन किया गया है। इनके अनुसार मिथिला में ही परशुराम और राम का एक विस्तृत वाग्युद्ध होता होता है। **महावीरचरित** में तो परशुराम का क्रोध बहुत उग्र रूप धारण कर लेता है और वह राम का वध करने की बार-बार धमकी देते हैं।[1]

बालरामायण[2] के अनुसार दशरथ तथा इसके अनन्तर परशुराम भी, राम-सीता विवाह के पश्चात ही मिथिला पहुचते हैं। विश्वामित्र का आदेश पाकर लक्ष्मण ही नारायणीय धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाते हैं जिस पर जनक, लक्ष्मण और उर्मिला के विवाह का प्रस्ताव करते हैं। इसके बाद विश्वामित्र के सुझाव से अन्य भाइयों के विवाह भी निश्चित हो जाते हैं।

परशुराम तेजोभंग से संबन्धित एक विचारणीय प्रश्न यह भी है कि क्या राम और परशुराम के बीच कोई युद्ध हुआ था? इसके उतर में यह देखने को मिलता है कि रामायणमञ्जरी प्रभृति प्रायः सभी रामकथा साहित्य में कहीं भी राम-परशुराम के किसी युद्ध का वर्णन नहीं मिलता है। राम द्वारा वैष्णव धनुष चढ़ाने पर ही परशुराम का तेज नष्ट हो जाता है तथा वे महेन्द्र पर्वत पर चले जाते हैं जिससे युद्ध की कोई परिस्थिति ही नहीं उत्पन्न होती। कुछ रामकथाओं में राम-परशुराम के विस्तृत वाग्युद्ध एवं परशुराम द्वारा राम के वध की धमकी का भी उल्लेख प्राप्त होता किन्तु युद्ध का वर्णन कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। केवल **महावीरचरित**[3] तथा **अनर्घराघव**[4] से इतना संकेत अवश्य मिलता है कि राम तथा परशुराम युद्ध करने के उद्देश्य से रंगमंच से चले जाते हैं।

महाभारत के **रामोपाख्यान** में परशुराम के तेजोभंग का कहीं उल्लेख भी नहीं किया गया है।

रामायणमञ्जरी में राम के अतिरिक्त परशुराम के विष्णुत्व का संकेत भी नहीं मिलता है। इसके प्रमुख मूलस्रोत **वाल्मीकिरामायण** में भी इसका उल्लेख नहीं किया गया है। किन्तु **अध्यात्मरामायण** एवं **नृसिंहपुराण** में परशुराम को विष्णु के अंशावतार के रूप में चित्रित किया गया है।

नृसिंहपुराण जो एक प्राचीनतम रचना है, उसके अनुसार राम के धनुष चढ़ाने

१. महावीरचरित (२, ३२ एवं ३, १६)
२. बालरामायण, अंक ४(७५)
३. महावीरचरित (३, ४८)
४. अनर्घराघव (४, ५६)

पर परशुराम का वैष्णव तेज उनके शरीर से निकलकर राम के मुख में प्रविष्ट हो गया— **परशुरामस्य देहान्निष्क्रम्य वैष्णवं पश्यता सर्वभूतानां तेजो राममुखेऽविशत् ।**[1]

अध्यात्मरामायण[2] में बालकाण्ड के अन्त में परशुराम के विष्णु के अंशावतार की स्पष्ट एवं विशद चर्चा की गयी है। तेजोभंग से मलिन मुख वाले परशुराम राम को पहचान कर निवेदन करते हैं—आप साक्षात् संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण, पुराण पुरुष, भगवान विष्णु हैं। मैंने बाल्यावस्था में तप के द्वारा भगवान विष्णु को प्रसन्न किया। प्रसन्न होकर विष्णु ने कहा—हे ब्रह्मन ! तपस्या छोड़कर खड़े हो जाओ। तुम्हारा महान तप सफल हो गया। तुम मेरे चिदंश से युक्त हो—**'मच्चिदंशेन युक्तस्त्वं ।'** जिसके लिए यह तपस्या करने का तुमने कष्ट उठाया, उस पितृघाती हैहयश्रेष्ठ कार्तवीर्य का वध कर इक्कीस बार क्षत्रियों को मार कर, सम्पूर्ण पृथ्वी कश्यपजी को देकर शान्ति लाभ करो। मैं अविनाशी परमात्मा त्रेता युग में दशरथ के यहाँ राम नाम से जन्म लूंगा। उस समय मेरी परमशक्ति सीता के साथ तुम मुझे देखोगे। तब उसी समय तुम्हें दिया हुआ अपना तेज पुनः मैं फिर ग्रहण करूँगा—**मत्तेजः पुनरादास्ये त्वयि दत्तं मया पुरा ।** हे राम ! आप वही विष्णु हैं। ब्रह्मा की प्रार्थना से आपने जन्म लिया है। आपका जो तेज मुझमें स्थित था वह आज आपने फिर ले लिया—**मयि स्थितं तु त्वत्तेजस्त्वयैव पुनराहृतम् ।**

राम निर्वासन—राम निर्वासन अयोध्याकाण्ड की सर्वप्रमुख घटना है। यह एक ऐसी घटना है जिससे अयोध्याकाण्ड की प्रायः सभी घटनाएँ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में अवश्य संबन्धित हैं। यदि राम निर्वासन तथा उसके हेतुओं पर विचार करें तो कैकेयी की वरप्राप्ति, मंथरा की कूटनीति तथा यज्ञदत्त वध आदि घटनाएँ स्वतः मस्तिष्क में घूमने लगती हैं। सम्प्रति उपर्युक्त घटनाओं के वर्णन से पूर्व राम निर्वासन से संबंधित रामायणमञ्जरी के मूलस्रोतों में उल्लिखित कुछ अन्य घटनाओं तथा हेतुओं का वर्णन किया जा रहा है जो रामायणमञ्जरी में सुलभ नहीं है।

रामायणमञ्जरी प्रभृति प्रायः सभी राम कथाओ में यह वर्णित है कि निर्वासन के समय भरत और शत्रुघ्न ननिहाल में थे। क्योंकि विवाहोपरान्त मिथिला से अयोध्या आने पर भरत के मामा युधाजित भरत तथा शत्रुघ्न को ननिहाल लिवाकर चले गये थे।[3] परन्तु **प्रतिमानाटक**[4] के अनुसार केवल भरत ही ननिहाल गये थे। उनके साथ शत्रुघ्न नहीं थे।

---

१. नृसिंह पु०, अध्या० ४७ (१४८, १४९)
२. अध्या० रा०, ११७(२०-३०)
३. रामा० सं०, बा० कां० (६३५)
४. प्रतिमानाटक—अंक ३(५)

सम्प्रति रामायणमञ्जरी तथा उसके मूलस्रोतों में राम निर्वासन के कारणों का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। **वाल्मीकिरामायण** में कैकेयी की वरप्राप्ति के अतिरिक्त कई अन्य परोक्ष कारणों का भी उल्लेख किया गया है। यथा—दशरथ द्वारा प्राणियों का वध[1], अंधमुनिपुत्रवध[2], पूर्व जन्म में कौशल्या द्वारा गायों के स्तनों को काटना[3] तथा स्त्रियों को पुत्रहीन करना[4]। एक अन्य स्थल पर सीता वन जाने के लिए अनुरोध करते हुए राम से कहती हैं—ब्राह्मणों ने मेरा वनवास अनिवार्य बताया है।[5]

अध्यात्मरामायण में भी एक अलग ही कारण दिखाई पड़ता है। इसके अनुसार नारद राम को उनके विष्णु रूप की याद के साथ-साथ पृथ्वी पर उनके कार्य का स्मरण कराते हुए राज्य अस्वीकार करने को कहते हैं।[6] **अध्यात्मरामायण** में भी सीता राम से कहती हैं कि बाल्यावस्था में एक ज्योतिष शास्त्र विशारद महात्मा ने मुझे देखकर कहा था कि तू अपने पति के साथ वन में रहेगी।[7] इसी स्थल पर सीता एक बात और कहती हैं कि आपने बहुत से ब्राह्मणों के मुख से बहुत सी रामायणें सुनी होंगी। बताइये ! इनमें सेकिसी में भी क्या सीता के विना राम वन को गये हैं।[8]

वाल्मीकिरामायण एवं अध्यात्मरामायण में वर्णित राम निर्वासन के परोक्ष कारणों का उल्लेख रामायणमञ्जरी में नहीं किया गया है। सम्प्रति रामायणमञ्जरी में वर्णित कारणों का मूलस्रोतों के परिप्रेक्ष्य में विवेचन किया जा रहा है।

कैकेयी वरप्राप्ति—रामायणमञ्जरी में अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत मन्थरा कैकेयी से दो वरों की प्राप्ति का वर्णन करते हुए कहती हैं—पूर्वकाल में देवासुर संग्राम में इन्द्र के सहायतार्थ युद्ध में गये हुए राजा दशरथ की युद्धस्थल पर तुमने सहायता की थी। उसी समय प्रसन्न होकर राजा दशरथ ने दो वर माँगने को कहा परन्तु तुमने अपनी इच्छा से उसे उस समय नहीं माँगा। सम्प्रति उन्हीं वरों में से एक के द्वारा भरत को अयोध्या का राज्य तथा दूसरे से राम को चौदह वर्ष का वनवास माँग लो। इसी के अनुसार कैकेयी राजा दशरथ से वर प्राप्त करके राम का निर्वासन माँग लेती हैं।[9]

---

१. वाल्मी० रा० २।३८(४)
२. वाल्मी० रा० २।६३(११)
३. वाल्मी० रा० २।४३(१७)
४. वाल्मी० रा० २।५३(१८)
५. वाल्मी० रा० २।२९(८)
६. अध्या० रा० २।१(१-४१)
७. अध्या० रा० २।४(७५, ७६)
८. अध्या० रा०, २।४(७७, ७८)
९. रामा० मं०, अयो० कां० (६९६-६९९, ७२४, ७२५)

रामायणमञ्जरी में वर्णित कैकेयी के वरों की संख्या तथा उनको प्राप्त करने के ढंग के विषय में मूलस्रोतों में पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

रामायणमञ्जरी की ही भाँति वाल्मीकिरामायण में भी देवासुर संग्राम में दशरथ की प्राणरक्षा करने के कारण ही कैकेयी दो वरों को प्राप्त करती है तथा बाद में इन्हीं दोनों वरों के बल पर भरत के लिए राज्य तथा राम के लिए १४ वर्ष का वनवास माँगती हैं।[१]

अध्यात्मरामायण में भी किञ्चित् परिवर्तन सहित कैकेयी की वरप्राप्ति का वर्णन मिलता है। मंथरा कैकेयी से कहती है—देवासुर युद्ध में दशरथ के रथ की धुरी टूट गयी थी, उस समय तुमने अपनी अंगुली रथ की धुरी में डालकर दशरथ की प्राण रक्षा की थी। दशरथ ने प्रसन्न होकर तुम्हें दो वर माँगने को कहा।[२]

अध्यात्मरामायण में वर्णित कैकेयी के वर प्राप्ति की उपर्युक्त घटना ब्रह्मपुराण में भी पायी जाती है।[३]

यद्यपि उपर्युक्त वर्णनों में वर प्राप्ति के ढंग में वैषम्य अवश्य है लेकिन दो वरों की प्राप्ति का उल्लेख ही सब में साम्य है। परन्तु इसके ठीक विपरीत महाभारत के रामोपाख्यान[४] में कैकेयी के केवल एक ही वरप्राप्ति का उल्लेख है तथा इसी एक वर के बल पर वह भरत के लिए राज्य तथा राम का निर्वासन दोनों माँग लेती है।

इससे भी भिन्न ब्रह्मपुराण में कैकेयी के तीन वरों की प्राप्ति का उल्लेख है। इसके अनुसार देवासुर युद्ध में कैकेयी ने अपने हाथ से दशरथ का टूटा हुआ अक्ष सँभाला था। दशरथ केवल वापसी में देखते हैं कि कैकेयी क्या कर रही है। इस पर प्रसन्न होकर दशरथ ने कैकेयी को तीन वर प्रदान किया।[५]

कैकेयी का दोष निवारण—प्रायः सभी रामकथाओं में कैकेयी की निन्दा की गयी है। रामायणमञ्जरी भी इसका अपवाद नहीं है। राजा दशरथ ने कैकेयी को भुजङ्गी, शापपापशङ्किनी तथा किल्विषकारिणी आदि शब्दों के द्वारा कैकेयी की निन्दा की है।[६] भरत ने तो कैकेयी की बहुशः निन्दा करते हुए उससे उत्पन्न अपने को अधम[७] भी माना है जिसके कारण राम, लक्ष्मण एवं सीता आदि का वनगमन तथा पिता

---

१. वाल्मी० रा०, २।८(१५-१७)
२. अध्या० रा० २।२(६६-७०)
३. ब्रह्म० पु०—अध्याय—१२३
४. रामोपाख्यान (३, २६१, २१)
५. ब्रह्म पु०, अध्याय-१२३
६. रामा० मं० अयो० कां० (७३३, ७५४-७५७)
७. रामा० मं० अ० प० (३४-३८,४६)

दशरथ की मृत्यु हो गयी।[१] इसके अतिरिक्त भी परोक्ष रूप में कैकेयी की सभी ने निन्दा की है। परन्तु उल्लेखनीय है कि रामायणमञ्जरी में कैकेयी के मात्र इस निन्दित एवं गर्हित स्वरूप का ही चित्रण नहीं किया गया है अपितु उसके दोषों के निवारण हेतु कवि क्षेमेन्द्र ने दो-एक स्थलों पर कुछ सूचनाएँ भी दी हैं। यथा-मंथरा जब कैकेयी को वरप्राप्ति के विषय में बताती है, उसी समय क्षेमेन्द्र ने एक श्लोक में कैकेयी को 'शाप दोषमोहिता' कहकर उसके सारे दोषों का निवारण कर दिया है। पूर्वकाल में बाल्यावस्था में कैकेयी ने किसी ब्राह्मण की निन्दा की थी, जिसके शाप के कारण ही उसकी मति 'शापदोषमोहित' हो गयी[२], तथा मंथरा की बतायी हुई युक्ति उसे प्रिय लगने लगी। इस प्रसंग के द्वारा ही कैकेयी को राम निर्वासन तथा दशरथ मरण का कारण नहीं मानना चाहिए क्योंकि कैकेयी का इसमें कोई सहज दोष नहीं था अपितु उसने ब्राह्मण शाप के वशीभूत होकर ऐसा किया।

एक दूसरे स्थल पर भी कैकेयी के दोष निवारण हेतु संकेत मिलता है। लक्ष्मण जब क्रोधान्ध होकर, दशरथ की निन्दा करते हुए कहते हैं कि आज मैं अपने बाण से इस कल्प का अन्त कर दूँगा, तो राम उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि इस पर तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिए। इसमें किसी का दोष नहीं है। मेरे प्रवास के कारण को केवल दैव ही जानता है[३]—

दैवमेव विजानीहि प्रवासे मम कारणम् ॥
न हि पौरुषमत्रास्ति किं वृथा कोपसंभ्रमैः ॥

राम के इस वाक्य से यह सूचित होता है कि कैकेयी तथा दशरथ आदि कोई भी मेरे प्रवास के कारण नहीं हैं। अर्थात इन्हें दोषी ठहराना उचित नहीं हैं। इसका कारण केवल दैव जानता है। इस वाक्य से राम प्रवास के द्वारा देवताओं के होने वाले समस्त कार्यों के सिद्धि की ओर लक्ष्य किया गया है। अतः कैकेयी को दोषी ठहराना समीचीन प्रतीत नहीं होता है।

इसी प्रकार अरण्यपर्व के अन्तर्गत भरत जब कैकेयी की निन्दा करते हुए भरद्वाज मुनि से उनका परिचय देते हैं तो भरद्वाज ने भी कैकेयी का दोष निवारण करते हुए कहा[४]—

कारणं दैवमेवात्र न कैकेयीत्यभाषत् ।

---

१. रामा० मं०, अ० प० (२०२)
२. रामा० मं०, अयो० कां० (७०३)
कैकेय्या ब्राह्मणः पूर्वं मूर्खो बाल्ये विडम्बितः ।
तच्छापादभवत्तस्या मतिः कीर्तिपराङ्मुखी ॥
३. रामा० मं, अयो० कां (८५४)
४. रामा० मं, अ० प० (११२)

रामायणमञ्जरी के मूलस्रोतों में भी कैकेयी का जहाँ निन्दित स्वरूप चित्रित है वहीं उसके दोष निवारण हेतु अनेक युक्तियाँ भी दी गयी हैं। **वाल्मीकिरामायण** में भी कैकेयी की दुष्टता और कुटिलता का चित्रण किया गया है। चित्रकूट यात्रा के समय राम आशंका करते हैं कि कैकेयी कहीं भरत को राज्य दिलाने के लिए दशरथ के प्राण न ले ले तथा कौशल्या और सुमित्रा को विष न खिला दे।[1] सीता भी कैकेयी को कलहशीला कहकर उनकी निन्दा करती हैं। इसी प्रकार अन्य पात्रों ने भी स्थल-स्थल पर कैकेयी की निन्दा की है।[2] परन्तु इसके विपरीत कैकेयी के दोष निवारण का भी वाल्मीकिरामायण में प्रयत्न किया गया है। भरद्वाज राम से कहते हैं कि कैकेयी को दोष नहीं देना चाहिए, क्योंकि राम का निर्वासन सभी के लिए हितकारी सिद्ध होगा।[3]

इसी प्रकार चित्रकूट में भरत कैकेयी की भर्त्सना करते हैं तो राम स्वयं कैकेयी का पक्ष लेते हुए भरत को स्मरण दिलाते हैं कि दशरथ ने विवाह के अवसर पर ही कैकेयी के पुत्र को राज्य देने की प्रतिज्ञा की थी। अतः कैकेयी को दोष नहीं देना चाहिए।[4]

अध्यात्मरामायण में कैकेयी को दोषी ठहराने का कोई औचित्य ही नहीं है, क्योंकि प्रारंभ में ही नारद राम के पास आकर उनके अवतार का वर्णन करते हुए भूलोक में उनके द्वारा किए जाने वाले देवताओं के सम्पूर्ण कार्यों को बता देते हैं।[5] अतः देवकार्य के लिए राम का निर्वासन तो पूर्व निर्धारित था, फिर कैकेयी को दोषी ठहराना समीचीन नहीं लगता। इसके अतिरिक्त अभिषेक के समय देवता सरस्वती को मंथरा तथा कैकेयी की बुद्धि में प्रवेश करके अभिषेक कार्य में विघ्न डालने का प्रयत्न करते हैं।[6] अतः इस आधार पर भी कैकेयी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। अध्यात्मरामायण में अनेक स्थलों पर विभिन्न पात्रों द्वारा राम के विष्णु अवतार एवं उनके द्वारा किये जाने वाले देवकार्य को उद्घाटित किया गया है, जिससे यह पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है कि इसमें कैकेयी का कोई दोष नहीं है अपितु ऐसा होना तो पूर्वनिर्धारित एवं सहज था।

जानकीहरण में कैकेयी की इसलिए प्रशंसा की गयी है कि उनके दोष के कारण राक्षसों का नाश हुआ था।[7] **प्रतिमानाटक** में कैकेयी के दोष निवारण हेतु एक अलग ही मार्ग अपनाया गया है। इसके अनुसार ऋषि शाप के फलस्वरूप पुत्रवियोग के कारण

---

१. वाल्मी० रा०, २।५३ (१,७)

२. वाल्मी० रा०, २।५३ (४, ६, ३२)

३. वाल्मी० रा० २।९२ (३१)

४. वाल्मी० रा० २।१०७ (३)

५. अध्या० रा०, २।१ (१–४१)

६. अध्या० रा०, २।२ (४४, ४५)

७. जानकीहरण (१, ४२)

दशरथ की मृत्यु अनिवार्य जानकर कैकेयी ने उस शाप की रक्षा करने के लिए तथा राम को किसी और विकट विपत्ति से बचाने के लिए वशिष्ठ, वामदेव आदि से परामर्श करने के पश्चात राम को वन भिजवाया था। इस पर भरत पूँछते हैं कि आपने १४ वर्ष का वनवास क्यों दिलवाया तो कैकेयी उत्तर देती हैं कि भूल से १४ दिन के स्थान पर १४ वर्ष मुह से निकल गया।[१]

भवभूति के **महावीरचरित** एवं मुरारि कृत **अनर्घराघव** में कैकेयी के किसी दोष का प्रश्न ही नहीं उठता। स्वयंवर के समय शूर्पणखा मंथरा के वेष में मिथिला पहुँच कर दशरथ को कैकेयी का एक जाली पत्र देती है जिसमें वर के बल पर राम का निर्वासन माँगा गया था। फलस्वरूप राम भरत को अपनी पादुकाएँ देकर मिथिला से ही वन के लिए प्रस्थान कर देते हैं।

बालरामायण में महावीरचरित के वृत्तान्त का किञ्चित् विकसित रूप सुलभ है। दशरथ कैकेयी के साथ इन्द्र से मिलने गये थे। इन दोनों की अनुपस्थिति का सुअवसर पाकर मायामय शूर्पणखा तथा एक परिचारिका क्रमानुसार दशरथ, कैकेयी तथा मंथरा का रूप धारण कर लेते हैं और राम निर्वासन का सफल प्रयत्न करते हैं।[२]

मंथरा की कूटनीति—प्रायः सभी रामकथाओं में ऐसी प्रसिद्धि है कि मंथरा द्वारा भड़काये जाने पर ही कैकेयी ने पूर्व प्राप्त वर के बल पर राम का निर्वासन माँगा। इस स्थल पर कैकेयी द्वारा राम निर्वासन का कारण तो समझ में आता है किन्तु प्रश्न उठता है कि आखिर में मंथरा को क्या पड़ी थी कि वह कैकेयी को भड़काकर राम को वन भिजवाती, अथवा राम से उसकी क्या दुश्मनी थी जो उनके विरुद्ध ऐसा घृणित कार्य करती ? प्रायः रामकथाओं में मंथरा द्वारा कैकेयी के भड़काये जाने का कोई विशेष कारण नहीं मिलता, किन्तु महाकवि क्षेमेन्द्र ने रामायणमञ्जरी में इसके कारण का स्पष्ट उल्लेख किया है। रामायणमञ्जरी के अनुसार रामाभिषेक का समाचार सुनते ही मंथरा वज्राहत सी पीड़ित हो उठी, क्योंकि बचपन में राम द्वारा उसके ऊपर किए गये पाद प्रहार का उसे स्मरण हो जाता है[३]—

शैशवे किल रामेण पुरा प्रणयकोपतः।
चरणेनाहता तत्र चिरं कोपमुवाह सा॥

---

१. प्रतिमानाटक—अंक ६

२. बालरामायण—अंक-६

३. रामा० मं, अयो० कां (६६७)

इसी कारण से वह कुटिलाचारिणी मंथरा विष से भरी नागिन के समान अत्यंत कुपित हो, कैकेयी के मन्दिर में पहुँच कर उसे राम के विरुद्ध भड़काती है।[1]

केवल अग्निपुराण को छोड़कर रामायणमञ्जरी के अन्य मूलस्रोतों में मंथरा द्वारा कैकेयी के भड़काये जाने का कोई कारण नहीं प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि क्षेमेन्द्र ने मंथरा द्वारा कैकेयी के भड़काये जाने का उपर्युक्त कारण अग्नि पुराण से ही लिया हो, क्योंकि अग्नि पुराण में भी राम द्वारा मंथरा का उत्पीड़न ही वनवास का कारण बताया गया है[2]—

पादौ गृहीत्वा रामेण कर्षिता ऽपराधतः ।
तेन वैरेण सा रामं वनवासं च कांक्षति ॥

राम की चित्रकूट यात्रा—अयोध्या से वनवास के लिए प्रस्थान करते समय लक्ष्मण एवं सीता सहित राम ने एक रात तमसा के तट पर बितायी। अनन्तर गोमती तथा सरयू नदी को पार करते हुए गंगा तट पर पहुँच कर इंगुदी वृक्ष के नीचे भी एक रात्रि विश्राम किए। इसी स्थल से सुमन्त्र को अयोध्या वापस भेजकर, निषाद राज गुह की पूजा आदि से सेवित, लक्ष्मण तथा राम ने अपनी जटा में न्यग्रोध का दूध लगाकर उसे बाँध लिया। गुह के द्वारा नाव से गंगा पार करके न्यग्रोध के नीचे भी एक रात बितायी। पुनः दूसरी रात गंगा तथा यमुना के संगम पर बिताकर तथा भरद्वाज मुनि द्वारा पूजित एवं उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट चित्रकूट नामक पुण्य तपोवन में पहुँचे।[3]

राम की चित्रकूट यात्रा के इस प्रसंग में विशेष उल्लेखनीय तथ्य निषाद राज गुह का वर्णन है। विभिन्न रामकथाओं में इसका उल्लेख भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया है। महाभारत के **रामोपाख्यान** में तो गुह का वर्णन ही नहीं प्राप्त होता। वाल्मीकिरामायण के अनुसार राम अपने सखा निषादराज (गुह) के यहाँ पहुँचकर एक रात बिताते हैं। गुह, लक्ष्मण तथा सुमन्त्र के साथ रात में सोते हुए राम एवं सीता की रक्षा करता है तथा अगले दिन नौका मँगाकर राम, सीता तथा लक्ष्मण को गंगा के पार पहुँचाता है।[4] इसके अतिरिक्त वाल्मीकिरामायण में गुह से संबन्धित कुछ ऐसे भी तथ्य हैं जो रामायणमञ्जरी में नहीं मिलते हैं। यथा—राम एवं गुह की मित्रता का उल्लेख-तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा। इस स्थल से ऐसा प्रतीत होता है

---

१. रामा० मं, अयो० कां (६६६-६७२)

२. अग्नि पु०, अध्या–५ (८)

३. रामा० मं०, अयो० कां० (८९८-९१२)

४. वाल्मी० रा०, सर्ग(५०-५६)।

कि राम एवं गुह की पूर्व मित्रता थी । पुनः वाल्मीकिरामायण के अनुसार गुह अपने मन्त्री से एक सुन्दर नाव मँगाकर राम को गंगा पार करता है । जबकि रामायणमञ्जरी में वह स्वयं नाव लेकर आता है ।

अध्यात्मरामायण के अनुसार जब राम श्रृङ्गवेरपुर पहुँचते हैं तो वहाँ गंगा तट पर शिंशपा वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं । इसी स्थल पर निषाद राज से भेंट होती है। प्रातः निषाद राज स्वयं नौका ले आते हैं जिस पर पहले सीताजी फिर लक्ष्मण तथा बाद में रघुनाथ स्वयं गुह का हाथ पकड़कर चढ़ते हैं । गंगा को पार कर भरद्वाज मुनि के यहाँ पहुँचते हैं । वहाँ एक रात्रि विश्राम करने के बाद मुनि कुमारों की बनायी हुई डोंगी से यमुना पार कर चित्रकूट पर्वत की ओर चल पड़े । इसके बाद वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचते हैं । वाल्मीकि ने अपना सम्पूर्ण जीवनवृत्त राम को सुनाया तथा शिष्यों द्वारा रामादि के निवास हेतु एक सुविशाल शाला बनवायी ।[१]

अध्यात्मरामायण में वर्णित उपर्युक्त गुहा वृत्तान्त में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया है । किन्तु राम, लक्ष्मण एवं सीता के नाव पर चढ़ने की घटना, मुनि कुमारों द्वारा निर्मित डोंगी, वाल्मीकि का वृत्तान्त तथा उनके शिष्यों द्वारा निर्मित शाला आदि का वर्णन सर्वथा मौलिक एवं रामायणमञ्जरी में अप्राप्य है ।

इसके अतिरिक्त अध्यात्मरामायण को गुहा से संबन्धित दो-एक घटनाएँ और भी हैं जो रामायणमञ्जरी में सुलभ नहीं हैं । बालकाण्ड के अन्तर्गत जब विश्वामित्र के साथ राम मिथिला जा रहे हैं, उस समय गंगा पार करने हेतु नाव पर चढ़ते हुए राम को नाविक रोक देता है । वह तर्क देता है कि आपके चरणों में मनुष्य बना देने वाला कोई चूर्ण है । अतः नौका पर चढ़ने से पूर्व मैं आपका पैर धोऊँगा ।पुनः चरण धोने के बाद केवट उन्हें पार उतारता है ।[२] केवट और राम संबन्धी संभवतः यह सबसे प्राचीन वृत्तान्त है क्योंकि परवर्ती राम कथाओं में इसका वर्णन अनेकशः पाया जाता है । रामायणमञ्जरी में गुह का वर्णन पूर्वोक्त प्रकार से केवल राम की चित्रकूट यात्रा के सन्दर्भ में ही मिलता है ।

अध्यात्मरामायण में रावण वध के बाद रामाभिषेक के अवसर पर गुह की उपस्थिति का भी वर्णन है । राम गुह को विदा करते हुए कहते हैं—मित्र ! अब तुम अपने परम रमणीय श्रृङ्गवेरपुर को जाओ । वहाँ मेरा चिन्तन करते हुए अपने शुभकर्मों से प्राप्त हुए भोगों का उपभोग करो । इसमें संदेह नहीं कि अंत में तुम मेरा ही सारुप्य प्राप्त करोगे । ऐसा कहते हुए राम ने उसे दिव्य आभूषण, बहुत सा राज्य तथा तत्त्वज्ञान

---

१. अध्या० रा०—२।५(६०-७३) एवं २।७ ।

२. अध्या० रा०, १।६(१-५)

का उपदेश दिया। फिर रघुनाथ से आलिङ्गित हो गुह अपने घर को गया।[1] रामाभिषेक के अवसर पर गुह की उपस्थिति सर्वथा मौलिक तथा वाल्मीकिरामायण और रामायणमञ्जरी में अप्राप्य है।

अरण्य पर्व

रामायणमञ्जरी में अरण्य पर्व के अंतर्गत भरत का ननिहाल से आगमन, दशरथ संस्कार, भरत की चित्रकूट यात्रा, राम का चित्रकूट में निवास, काकाक्षिशातनम्, भरत राम-सम्मेलन एवं संवाद, पादुका सहित भरत का अयोध्या प्रत्यागमन एवं व्रतग्रहण, राम का चित्रकूट परित्याग, दण्डकारण्य में प्रवेश, अत्रि, सुतीक्षण तथा अगस्त्यादि ऋषियों का दर्शन, विराधादि राक्षसों का वध शूर्पनखा विरूपण, खर-दूषण वध, सीता हरण तथा सीता खोज आदि उल्लेखनीय घटनाएँ हैं।

रामायणमञ्जरी में अरण्य पर्व का प्रारम्भ, भरत एवं शत्रुघ्न को ननिहाल से अयोध्या वापस लाने के लिए दूतों के संप्रेषण से होता है। यहाँ से लेकर भरत व्रतग्रहणम् तक के वृत्तान्त को क्षेमेन्द्र ने 'भरत पर्व' से संबोधित किया है। चूंकि इसके अन्तर्गत वर्णित लगभग सम्पूर्ण वृत्तान्त भरत से संबन्धित है। अतः कवि द्वारा इस सम्पूर्ण वर्णन को 'भरत पर्व' से संबोधित करना समीचीन लगता है। इसी स्थल पर ध्यातव्य है कि वाल्मीकि एवं अध्यात्मरामायण में रामायणमञ्जरी का सम्पूर्ण भरतपर्व तथा अत्रिदर्शनम् तक का वृत्तान्त अयोध्याकाण्ड में ही वर्णित है, जबकि रामायणमञ्जरी में इसका उल्लेख अरण्य पर्व के अन्तर्गत किया गया है।

रामायणमञ्जरी के अरण्य पर्व में दशरथ संस्कार, राम का चित्रकूट परित्याग सीताहरण तथा सीता की खोज आदि सर्वप्रमुख घटनाएँ हैं। सम्प्रति इन्हीं घटनाओं का रामायणमञ्जरी के मूलस्रोतों के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा।

दशरथ संस्कार—रामायणमञ्जरी में दशरथ संस्कार का उल्लेख दो स्थलों पर हुआ है। सर्वप्रथम, भरत जल आदि अर्पण के द्वारा शास्त्रोचित विधि से दशरथ का देह संस्कार सम्पन्न करते हैं।[2] पुनः भरत द्वारा पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर राम गंगा तट पर जलाञ्जलि देने के बाद इंगुदी तथा बैर की पिण्डी कुश पर रखकर, ध्यानस्थ हो जलाञ्जलि प्रदान करते हैं।[3]

---

१. अध्या० रा०, ६।१६(१८-२१)

२. रामा० मं०, अ० प० (७९, ८०, ८१)

३. रामा० मं०, अ० प० (२१३, १४)

बदरेंगुदिपिण्याकं तत्र दर्भेषु राघवः।

निक्षिप्योवाच निःश्वस्य ध्याञ्जलभृताञ्जलिः॥

वाल्मीकिरामायण में भरत द्वारा पहले दशरथ का दाह संस्कार किया जाता है। पुनः दशाह बीत जाने पर एकादशाह अनुष्ठान तथा १२वाँ दिन आने पर अन्य श्राद्ध कर्म तथा धनादि का दान करते हैं। १३वें दिन अस्थिसंचय का जो शेष कार्य था उसे पूर्णतया संपादित कर भरत ने पिता का विधिवत् श्राद्ध संस्कार किया।[१]

रामायणमञ्जरी में भरत द्वारा किए गए श्राद्ध संस्कार का इतना विशद विवेचन नहीं है। परन्तु चूंकि शास्त्रोचित विधि से संपादित होने का उल्लेख मिलता है, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि वाल्मीकिरामायण में वर्णित विधि के अनुसार ही भरत ने दशरथ का विधिवत् संस्कार सम्पन्न किया होगा। रामायणमञ्जरी की ही भाँति वाल्मीकि रामायण में भी राम द्वारा दशरथ के श्राद्ध संस्कार, पिण्डदान एवं जलाञ्जलि देने का वर्णन प्राप्त होता है।[२]

वाल्मीकिरामायण एवं रामायणमञ्जरी की भाँति अध्यात्मरामायण में भी भरत द्वारा विधिवत् दशरथ संस्कार[3] तथा राम द्वारा पिण्डदान[४] आदि करने का उल्लेख किया गया है।

स्कंद पुराण के प्रभास क्षेत्रमाहात्म्य में दशरथ राम को स्वप्न में दिखाई देते हैं और ब्राह्मणों से परामर्श कर उनके द्वारा पिण्डदान की धर्मक्रिया सम्पन्न करवाते हैं।[५]

गरुण पुराण के अनुसार राम अयोध्या में आने के बाद पितृ कर्म के लिए गयाशिर जाते हैं।[६]

प्रतिमानाटक में दशरथ का श्राद्ध, योग्य रीति से संपादित करने के लिए राम की चिन्ता का उल्लेख है।[७]

राम का चित्रकूट परित्याग—भरत जब पादुका लेकर अयोध्या लौट जाते हैं तो राम भी लक्ष्मण एवं सीता सहित चित्रकूट छोड़कर आगे दण्डकारण्य की ओर चले जाते हैं। रामायणमञ्जरी में राम के चित्रकूट छोड़ने का कारण भी दिया गया है। राम लक्ष्मण से कहते हैं—जिस प्रकार संचरणशील मुनिगण पवित्रता की खोज में एक वन से दूसरे वन को चले जाते हैं उसी प्रकार बहुत समय से इस वन में रहने के

---

१. वाल्मी० रा०, २।७७ (१-४, २२)
२. वाल्मी० रा० २।१०३ (२९)
३. अध्या० रा० २।७(११०-११२)
४. अध्या० रा० २।९ (१८)
५. स्कंद पु० (अध्याय-१११)
६. गरुण पु० (अध्याय-१४३)
७. प्रतिमानाटक, (अंक ५)

बाद अब दूसरे वन में चलना चाहिए, क्योंकि भरत की सेना के द्वारा यहाँ के स्थल एवं मिट्टी को धूसरित कर दिया गया है। घोड़ों के मूत्रादि से जंगल के ये तृण क्लिन्न हो चुके हैं।[1]

इदं च भरतानीकं मदस्यन्दवाजिभिः।
मृदितं तच्छकृन्मूत्रपरिक्लिन्नतृणं वनम् ॥

रामायणमञ्जरी में राम के चित्रकूट से प्रस्थान करने का केवल यही एक कारण बताया गया है, जबकि वाल्मीकिरामायण में इसके दो कारणों का उल्लेख है। राम कहते हैं—एक तो चित्रकूट को देखकर भरत आदि का स्मरण हो आता है तथा दूसरे, भरत की सेना जो इस स्थान को मैला कर दिया है।[2]

महाभारत के रामोपाख्यान में जिस कारण का उल्लेख किया गया है, वह रामायणमञ्जरी एवं वाल्मीकिरामायण से बिलकुल पृथक है। राम इसलिए चित्रकूट छोड़ देते हैं कि जनता उनके पास न आ सके—पुनराशंक्य पौरजानपदागमम्।[3]

रामोपाख्यान से ही मिलता जुलता कारण अध्यात्मरामायण में भी वर्णित है। राम को सीता और लक्ष्मण के साथ चित्रकूट पर विराजमान जानकर आस-पास के नगर निवासी उनके दर्शनों की इच्छा से सदैव आया करते थे। राम ने उस भीड़-भाड़ को देखकर तथा दण्डकारण्य में अपने जाने के कार्य को भी विचार कर उस पर्वत को छोड़ दिया।[4]

सीताहरण—सीताहरण अरण्यपर्व की सर्वप्रमुख घटना है। रामायणमञ्जरी की आधिकारिक कथा से सीधा संबन्ध होने के कारण भी इसका बहुत अधिक महत्त्व है। सर्वप्रथम रामायणमञ्जरी के मूलस्रोतों में इसके मूल कारण का पता लगाना आवश्यक है।

रामायणमञ्जरी[5] में शूर्पणखा के विरूपण को सीताहरण का मूल कारण माना गया है। विरूपित शूर्पणखा खर-दूषण सेना की पराजय देखकर लङ्का के लिए प्रस्थान करती है। वहाँ पहुँचकर रावण को सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाती है। अनन्तर वह राम की वीरता तथा सीता के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहती है कि सीता आपके योग्य है। उनको आपके पास ले आने के प्रयत्न में मुझे अपमानित किया गया—

त्वदर्थं हर्तुमिच्छामि यावत्तां चारुलोचना।
रामानुजादयं तावन्मया प्राप्तः पराभवम् ॥

१. रामा० मं०, अ० प० (३२५-३२७)
२. वाल्मी० रा०, २।११७(२०३)
३. रामोपाख्यान (३, २६१, ३९)
४. अध्या० रा०, २।९ (७७, ७८)
५. रामा० मं, अ० प० (६१५-६५३)

ऐसा सुनते ही रावण सीताहरण के विषय में विचार करते हुए क्रोधपूर्वक मारीच के पास चल दिया।

रामायणञ्जरी में वर्णित सीताहरण का उपर्युक्त कारण वाल्मीकिरामायण[1] में भी प्राप्त होता है। यही कारण प्रायः रामकथाओं में अधिक व्यापक भी है।

महावीरचरित[2] के अनुसार विश्वामित्र के आश्रम में ही राम-लक्ष्मण, सीता तथा उर्मिला को देखकर आकर्षित हो जाते हैं। इसी अवसर पर रावण एक दूत भेजकर सीता को माँगता है तथा यहीं राम द्वारा धनुर्भङ्ग भी किया जाता है।

अनर्घराघव[3] में भी रावण दूत शौष्कल मिथिला में आकर रावण की ओर से सीता को माँगता है तथा रावण को धनुष परीक्षा के अयोग्य बताता है। राम द्वारा धनुर्भङ्ग तथा चारों भाइयों के विवाह का निश्चय हो जाने पर शौष्कल रावण के पास वापस लौट जाता है।

बालरामायण में रावण का विरह प्रधान वर्ण्य विषय है। इसके अनुसार रावण स्वयं सीता स्वयंवर में उपस्थित होता है साथ ही धनुष परीक्षा को अस्वीकार करता है।

बालरामायण की तरह **महानाटक**[4] में भी सीता स्वयंवर के अवसर पर रावण दूत पहुँचता है तथा वहीं राम धनुर्भङ्ग करते हैं।

उपर्युक्त नाटकों की घटनाओं से पता चलता है कि रावण सीता स्वयंवर के समय से ही सीता को पत्नी स्वरूप चाहता है। इसके लिए वह या तो दूत को भेजता है अथवा स्वयं ही पहुँचता है। इन राम कथाओं में शूर्पणखा विरूपण की कथा भी मिलती है लेकिन ऐसे अनेक वृत्तान्त हैं जहाँ स्वयंवर का ही उल्लेख किया गया है।

अध्यात्मरामायण[5] के अनुसार विरूपित शूर्पणखा रावण के पास पहुँचकर कहती है—हे अनघ ! उसे (सीता को) तुम्हारी पत्नी बनाने के लिए मैंने प्रयत्न किया, जिससे राम के भाई लक्ष्मण ने मेरी नाक काट डाली—

आनेतुमहमुद्युक्ता तां भार्यार्थं तवानघ ।
लक्ष्मणो नाम तद्भ्राता चिच्छेद मम नासिका ॥

पुनः रावण को उकसाते हुए कहती है—यदि उसकी स्त्री तुम्हारी भार्या हो जाय तो तुम्हारा जीवन सफल हो जाय।

---

१. वाल्मीं० रा०, अ० कां (सर्ग—३३, ३४, ३५)
२. महावीरचरित (अंक १)
३. अनर्घराघव (अंक ३)
४. महानाटक (१, २१-२२)
५. अध्या० रा० ३।५ (४६–५४)

वाल्मीकि एवं अध्यात्मरामायण में शूर्पणखा द्वारा रावण को उकसाने वाले शब्द प्रयुक्त किए गए हैं, किन्तु रामायणमञ्जरी में इस प्रकार का कोई वर्णन नहीं है।

रामायणमञ्जरी में शूर्पणखा द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त बताने पर काममोहित एवं क्रोधोन्मत्त रावण सीताहरण के लिए प्रस्थान करता है किन्तु अध्यात्मरामायण में ठीक इसके विपरीत रावण का दूसरा ही भाव देखने को मिलता है। वह राम के वैष्णव रूप का ध्यान करते हुए कहता है—यदि मैं परमात्मा द्वारा मारा गया तब तो मैं वैकुण्ठ का राज्य भोगूँगा नहीं तो चिरकाल तक राक्षसों का राज्य भोगूँगा ही। इसलिए मैं राम के पास अवश्य चलूँगा। मैं विरोध बुद्धि से ही भगवान के पास जाऊँगा क्योंकि भक्ति के द्वारा भगवान शीघ्र प्रसन्न नहीं हो सकते[1]—

विरोधबुद्ध्यैव हरिं प्रयामि।
द्रुतं न भक्त्या भगवान प्रसीदेत्॥

अध्यात्मरामायण के इस वृत्तान्त से यह स्पष्ट होता है कि रावण, शूर्पणखा के अपमानित होने के कारण अथवा काममोहित एवं क्रोधोन्मत्त होने के कारण सीताहरण के लिए नहीं प्रेरित होता अपितु वह अपनी जीवन्मुक्ति के लिए सीताहरण करके राम से विरोध करना चाहता है। इसीलिए तो शूर्पणखा द्वारा उकसाने पर वह क्रोधित नहीं होता।

अध्यात्मरामायण[2] में सीताहरण के एक परोक्ष कारण का भी संकेत मिलता है जो रामकथाओं में बहुत व्यापक है। यह परोक्ष कारण सीता के प्रति लक्ष्मण का शाप है। सीता जब लक्ष्मण को धिक्कारते हुए बहुत सी अप्रिय बातें कहती हैं कि मैं तुम्हारा अपराधी मन्तव्य समझ रही हूँ जिसके कारण तुम भाई के विपत्ति में पड़ने पर भी मुझे छोड़कर नहीं जा रहे हो। इस पर लक्ष्मण कहते हैं—हे चण्डि! तुम्हें धिक्कार है। तुम मुझे ऐसी बातें कह रही हो। इससे तुम नष्ट हो जाओगी—**मामेवं भाषसे चण्डिधिक् त्वां नाशमुपैष्यसि।**

वाल्मीकिरामायण में भी लक्ष्मण के इस प्रकार के शाप का संकेत मिलता है। आज विनष्ट होने वाली तुम्हें धिक्कार है, क्योंकि तुम मुझ पर ही शंका कर रही हो[3]—**धिक्त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेव विशंकसे।**

भट्टिकाव्य में लक्ष्मण के शाप का रूप इस प्रकार है—**शत्रुहस्तं त्वं यास्यसि।**[4]

---

१. अध्या० रा० ३।५ (५८–६१)
२. अध्या० रा०, ३।७ (३१–३६)
३. वाल्मी० रा०, ३।४५ (३२)
४. भट्टिकाव्य (५, ६०)

उपर्युक्त लक्ष्मण शाप का वर्णन रामायणमञ्जरी में नहीं मिलता है। सीता के द्वारा लक्ष्मण के प्रति कही गयी अप्रिय बातों का वर्णन अवश्य मिलता है परन्तु लक्ष्मण नम्रतापूर्वक उसे सहन करके राम के पास चले जाते हैं।

सीताहरण के सन्दर्भ में स्वर्णमृग का प्रसंग भी विशेष उल्लेखनीय है। रामायणमञ्जरी के अनुसार काममोहित एवं क्रोधोन्मत्त रावण मारीच के पास जाकर निवेदन करता है कि वह कनकमृग का रूप धारण कर सीताहरण में सहायक बने। मारीच इस प्रस्ताव को राम के पराक्रम का स्मरण कर अस्वीकार करता है। इस सन्दर्भ में वह दो आप बीती घटनाओं का भी वर्णन करता है। अंत में मारीच के बहुत समझाने पर भी रावण उसके सत्परामर्श को ठुकराकर धमकी देता है कि यदि तुम स्वीकार नहीं करते तो मैं तुम्हारा वध कर दूँगा। इस प्रकार जब मारीच को यह जानकारी हो जाती है कि मैं किसी प्रकार से बच नहीं सकता तो उसने शत्रु राम के हाथों ही मरना उचित समझा। इसके बाद रावण सहित मारीच उस जनस्थान में पहुँचकर कनक मृग के रूप में सीता का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता है। सीता उसे देखकर प्राप्त करने हेतु राम-लक्ष्मण से अनुरोध करती हैं। इस पर राम, लक्ष्मण को सीता के रक्षार्थ नियुक्त करके उसके पीछे दूर तक चले जाते हैं। अंत में राम बाण से आहत वह कनक मृग राम की आवाज में लक्ष्मण की पुकार लगाता है। राम को संकट में समझकर सीता लक्ष्मण को भाई के सहायतार्थ जाने के लिए अनुरोध करती हैं। लक्ष्मण पहले तो अस्वीकार करते हैं किन्तु सीता के कटु शब्द सुनने के बाद वनदेवताओं के संरक्षण में सीता को छोड़कर चले जाते हैं। इसी बीच रावण परिव्राजक रूप में पहुँचकर सीता से आतिथ्य सत्कार ग्रहण करने के पश्चात् उनको अपने रथ में बलात् बैठा कर लङ्का की ओर चल देता है।[1]

सीताहरण का यह रूप रामकथाओं में अधिक प्रचलित है। वाल्मीकिरामायण में भी सीताहरण का यही स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।[2] अन्तर केवल इतना ही है कि वाल्मीकिरामायण की तरह रामायणमञ्जरी में लक्ष्मण शाप का उल्लेख नहीं है। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त दोनों ग्रंथों में सबसे बड़ा वैषम्य यह है कि वाल्मीकिरामायण में राम, लक्ष्मण और जटायु के संरक्षण में सीता को छोड़कर जाते हैं।[3] जबकि रामायणमञ्जरी में केवल लक्ष्मण को ही सीता के रक्षार्थ नियुक्त करते हैं।

दामोदर कृत **महानाटक** के अनुसार राम तथा लक्ष्मण दोनों कनकमृग का शिकार करने के लिए जाते हैं तथा आश्रम में अकेली सीता का रावण द्वारा अपहरण होता है।[4]

---

१. रामा० सं, अ० ५० (८५५–८६३)
२. वाल्मी० रा०, अ० कां, (सर्ग ४२–५२)
३. वाल्मी० रा०, ३।४३ (५१)
४. महानाटक (३, २७)

प्रतिमानाटक में सीताहरण का सर्वथा एक नवीन रूप पाया जाता है। दशरथ के वार्षिक श्राद्ध के एक दिन पूर्व राम और सीता सोच रहे थे कि श्राद्ध कैसे योग्य रीति से मनाया जाय? इस पर रावण परिव्राजक का रूप धारण करके आता है और अपना परिचय देकर भिन्न-भिन्न शास्त्रों का उल्लेख करता है जिनका उसने अध्ययन किया था। इनमें से एक है—'प्राचेतसं श्राद्धकल्प'। राम श्राद्ध के विषय में जिज्ञासा व्यक्त करते हैं। तब रावण कहता है कि हिमालय में रहने वाले काञ्चनपार्श्वमृग से पितृ विशेष रूप से प्रसन्न हो जाते हैं। उसी क्षण मारीच इस प्रकार का मृग बनकर दिखाई देता है। लक्ष्मण उस समय आश्रम के कुलपति का स्वागत करने गये थे। अतः सीता को रावण के पास छोड़कर राम मृग के पीछे चले जाते हैं। तब रावण अपना रूप धारण कर सीता को लंका ले जाता है।[1]

नृसिंह पुराण के अनुसार रावण सन्यासी के रूप में आकर सीता से कहता है—भरत आ गये हैं और उन्होंने आपको ले जाने के लिए मुझे भेजा है। राम भी मृग को फँसाकर अयोध्या जा रहे हैं। यह सुनकर सीता विमान पर चढ़ जाती हैं। परन्तु रावण ने यहाँ सीता का स्पर्श नहीं किया है।[2]

मधुसूदन द्वारा सम्पादित महानाटक में राम की सहायता करने जाने के पूर्व लक्ष्मण सीता की रक्षा के लिए कुटी के चारों ओर धनुष रेखा खींचते हैं और शपथ खाकर कहते हैं कि जो कोई इसके भीतर घुसेगा उसका सिर फट जाएगा। बाद में छद्मवेशी रावण सीता को तुलसी देना चाहता है, किन्तु सीता रेखा का उल्लंघन करना अस्वीकार करती हैं। इस पर रावण रेखा को पार कर सीता को ले जाता है।[3]

आश्चर्यचूड़ामणि नाटक में राम और लक्ष्मण के चले जाने के बाद रावण और उसका सारथि क्रमशः राम और लक्ष्मण का रूप धारण कर सीता के पास पहुँचते हैं। रथ को दिखलाकर लक्ष्मण (सारथि) राम (रावण) से कहता है—भरत का राज्य संकट में है। उनकी सहायता करने के लिए तपस्वियों ने यह रथ भेजा है। अनन्तर तीनों रथ पर चढ़कर चले जाते हैं। उधर शूर्पणखा सीता के वेश में राम के साथ बात चीत कर रही है तथा मारीच राम के वेष में लक्ष्मण के साथ।[4]

रामायणमञ्जरी में सीताहरण का जो चित्र खींचा गया है, वह किञ्चित् वीभत्स कहा जा सकता है। क्रोधान्ध रावण हाथ के द्वारा सीता के केश एवं कदली सदृश जंघाओं को खींचकर बलात् अपने रथ पर बैठा लेता है—**'उर्वौ केशेषु चाकृष्य करेण**

---

१. प्रतिमानाटक (अंक ५)

२. नृसिंह पुराण (अध्याय ४९)

३. महानाटक (३, ६९-७२)

४. आश्चर्यचूड़ामणि (अंक १)

कदलीमिव ।' पुनः जटायु वध के बाद भी रावण कुटिल भुजाओं से सीता के केशपाश को निर्दयतापूर्वक खींचता हुआ वेग पूर्वक काल की भाँति चला ।[1]

सीताहरण का यह वीभत्स वर्णन वाल्मीकिरामायण में भी प्राप्त होता है। रावण एक हाथ से सीता के बाल और दूसरे हाथ से उनकी जंघाओं को पकड़कर अपने रथ पर बैठा लेता है ।[2]

उपर्युक्त सीताहरण सम्बन्धी वीभत्स चित्रण के परिमार्जन हेतु कुछ अन्य राम कथा साहित्य में दो अलग-अलग मार्ग अपनाए गये हैं। इसमें सीताहरण के वृत्तान्तों का एक ऐसा समूह मिलता है जिसमें रावण सीता का हरण करते हुए भी उनका स्पर्श नहीं करता है। दूसरा मार्ग यह है कि रावण वास्तविक सीता का हरण न करके सीता की एक छाया मात्र लंका ले जाता है।

सीताहरण के सन्दर्भ में प्रथम मार्ग की पुष्टि हेतु रामायणमञ्जरी के मूलस्रोतों में **नृसिंह पुराण**[3] का वह वर्णन उल्लेखनीय है जिसमें एक युक्ति का सहारा लेकर रावण, सीता को स्वयं रथ पर बैठने के लिए बाध्य कर देता है। इस वर्णन के अंतर्गत रावण सीता का स्पर्श नहीं करता। ठीक ऐसी ही युक्ति का सहारा रावण **आश्चर्य**[4]-**चूड़ामणि** के अंतर्गत भी लेता है जिसमें सीता को रावण के स्पर्श से बचाया गया है। **अध्यात्मरामायण**[5] में तो सर्वथा मौलिक वर्णन पाया जाता है जिसमें रावण पृथ्वी को नखों से खोद कर बिना स्पर्श किये ही भू-भाग के साथ-साथ ले जाता है—

ततो विदार्य धरणीं नखैरुद्धृत्य बाहुभिः ।
तोलयित्वा रथे क्षिप्त्वा ययौ क्षिप्र विहायसा ॥

सीताहरण के दूसरे मार्ग के अनुसार केवल माया सीता का ही हरण होता है। इस प्रकार के हरण का सर्वप्रथम वृत्तान्त **कूर्मपुराण**[6] के पतिव्रतोपाख्यान में मिलता है। निर्जन वन में टहलती हुई सीता रावण को आते देखकर उसका अभिप्राय समझ जाती हैं तथा घर की अग्नि में प्रविष्ट कर वह्न्यष्टक का जप करने लगी—**वह्निमावसथ्यम् ....वह्न्यष्टकं जप्त्वा ।** इस प्रकार आवसथ्य से प्रकट होकर अग्नि ने एक मायामयी सीता का निर्माण कर वास्तविक सीता को छिपा दिया। इसी मायामयी सीता को रावण अपहृत कर लंका ले जाता है। रावण वध के अनन्तर राम उस

---

१. रामा० मं०, अ० प० (८५०-८५३, ९००-९०२)
२. वाल्मी० रा० ३।४८(१६, १७)
३. नृसिंह पुराण—अध्याय-४९
४. आश्चर्यचूड़ामणि (अंक १)
५. अध्या० रा०, ३।७(५१)
६. कूर्मपुराण, उत्तरविभाग (अध्याय ३४)

माया सीता के चरित्र पर शंका व्यक्त करते हैं। फलस्वरूप वह माया सीता अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं। अनन्तर अग्नि वास्तविक सीता को प्रकट करके माया सीता का रहस्य राम को बताती है तथा राम पुनः निष्कलंक सीता को ग्रहण करते हैं—

गृहाण चैतां विमलां जानकीं वचनान्मम्।
पश्य नारायणं देवं स्वात्मानं प्रभवाव्ययम्॥

बालरामायण में सीता और उनकी धात्रेयिका सिन्दूरिका की मूर्तियाँ बनाकर तथा उनके मुँह में सारिकाएँ स्थापित करके माल्यवान विरही रावण का मन बहलाने का प्रयत्न करता है।[1] इसी नाटक में सेतुबन्ध के समय राम को निरुत्साहित करने के लिए सीता का एक मायामय सिर समुद्र तट पर फेंका जाता है।[2]

सीता के मायामय स्वरूप का किञ्चित् चित्रण वाल्मीकिरामायण में भी मिलता है। युद्धकाण्ड के अंतर्गत विद्युज्जिह्व द्वारा राम को एक मायामय सिर दिखलाया जाता है तथा बाद में इन्द्रजित वानर सेना के सामने एक मायामयी सीता का सिर काटता है।[3]

अध्यात्मरामायण में एक मायामयी सीता का विकसित रूप पाया जाता है। इसमें माया सीता का ही रावण हरण करता है। रावण और मारीच का षड्यन्त्र जानकर राम ने एकान्त में सीता से कहा—रावण तुम्हारे पास भिक्षु का रूप धारण करके आयेगा। इसलिए तुम अपनी छाया को कुटी में छोड़कर अग्नि में प्रवेश कर जाओ और मेरी आज्ञा से वहाँ अदृश्य रूप से एक वर्ष रहो। तदनन्तर रावण के मारे जाने पर तुम मुझे पूर्ववत पा लोगी। सीता ने वैसा ही किया।[4] रावण वध के पश्चात् मायामयी सीता अग्नि में प्रवेश करती हैं तथा अग्नि राम को वास्तविक सीता प्रदान करते हैं।[5]

महाभागवत पुराण में भी माया सीता का उल्लेख पाया जाता है। इसके अनुसार सीता अपनी छाया छोड़कर अंतर्धान हो जाती हैं।[6]

रामायणमञ्जरी के मूलस्रोतों में माया सीता का उल्लेख किसी न किसी रूप में अवश्य है परन्तु रामायणमञ्जरी में केवल एक स्थल को छोड़कर अन्यत्र इसकी सूचना

---

१. बालरामायण (अंक ५)
२. बालरामायण (अंक ७)
३. वाल्मी० रा०, ६।३१(४२-४५), ६।३१(४, ५, ६)
४. अध्या० रा०, ३।७(२, ३, ४)
५. अध्या० रा०, ६।१३(१९, २०)
६. महाभागवत पु०, अध्याय—११(१०८)

कहीं भी नहीं मिलता। युद्धकाण्ड में 'मायासीतावधः'[1] के प्रसंग में इन्द्रजित एक माया सीता का वध, राम एवं उनकी सेना के सामने करता है।

सीता की खोज

कनक मृग वध के बाद आश्रम की ओर लौटते हुए राम की रास्ते में लक्ष्मण से भेंट होती है। सीता को अकेली छोड़ देने के कारण राम लक्ष्मण की भर्त्सना करते हैं। आश्रम के पास पहुँचकर राम आश्रम को सीतारहित देखकर अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं। पुनः सीता की खोज में उन्मत राम जंगल-जंगल भटकते हुए पशु-पक्षियों से सीता के विषय में पूँछते हैं। इस खोज में दक्षिण की ओर प्रस्थान करते हुए राम क्रमशः जटायु, कबन्ध तथा शबरी से मिलते हुए पम्पासरोवर के तट पर पहुँचते हैं। बीच-बीच में राम का विलाप तथा लक्ष्मण की सान्त्वना का विस्तार सहित वर्णन है।[2]

रामायणमञ्जरी में वर्णित सीता खोज के उपर्युक्त संदर्भ में जटायु, कबन्ध तथा शबरी का वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सम्प्रति रामायणमञ्जरी तथा उसके मूलस्रोतों में वर्णित इन्हीं घटनाओं का क्रमशः विवेचन किया जा रहा है।

जटायु—कनक मृग वध के बाद राम-लक्ष्मण जब वापस लौटते हैं तो सीता से रहित कुटी को देखकर अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं। पुनः सीता की खोज में निकले हुए राम को यह शङ्का होती है कि सीता को कोई राक्षस मारकर खा गया होगा। इसी बीच एक स्थल पर खून से लथपथ गृध्रराज जटायु दिखाई पड़ता है। जटायु को देखकर राम क्रोधित हो उठे तथा धनुष खींचते हुए लक्ष्मण से कहते हैं—लक्ष्मण। गृध्र रूप धारण किया हुआ निश्चय ही यह कोई घोर राक्षस है, जिसने उस मृगाक्षी (सीता) का भक्षण किया है। इस प्रकार धनुष पर बाण चढ़ाये हुए राम ज्यों ही प्रहार करने के लिए उद्यत होते हैं कि जटायु कह उठता है—हे राम! मैं पापकर्मा निशाचर नहीं, अपितु तुम्हारे पिता का मित्र, वरुण पुत्र, गृध्रराज जटायु हूँ—

> राम राम न नामहं पापकर्मा निशाचरः।
> पुत्रोऽहं ते पितुर्मित्रं जटायुर्वरुणात्मजः॥

ऐसा कहते हुए जटायु, राम को सीताहरण का सम्पूर्ण वृतान्त सुनाकर अपना प्राण त्याग दिया। राम इस मार्मिक वृतान्त से बहुत दुःखी हुए। शोक विह्वल राम ने गंगाजल की अञ्जलि प्रदान करते मृत जटायु का अन्तिम संस्कार किया।[3]

जटायु का उपर्युक्त प्रसंग वाल्मीकिरामायण में भी बहुत अधिक साम्यता के साथ वर्णित है।[4]

---

१. रामा० मं०, यु० कां० (१०५६-१०५८)
२. रामा० मं०, अ० प० (८४५-५८)
३. रामा० मं०, अ० प० (१०४५-१०६६)
४. वाल्मी० रा०, अ० कां० (सर्ग ६८, ६८)

रामोपाख्यान[1] के अनुसार राम और लक्ष्मण कनक मृग वध के बाद वापस आते हुए, जटायु से भेंट करते हैं, जिससे पता चलता है कि रावण सीता का अपहरण करके दक्षिण दिशा की ओर गया ।

भट्टिकाव्य[2] के अनुसार भी सीताहरण के पश्चात ही जटायु का वर्णन मिलता है जिससे सीता के विषय में जानकारी प्राप्त होती है ।

बालरामायण[3] के अनुसार मरणासन्न जटायु ने रत्नशिखंड द्वारा सीताहरण का समाचार अपने सखा दशरथ के पास भेज दिया जिसे सुनकर दशरथ ने आत्महत्या का विचार कर लिया ।

रामायणमञ्जरी[4] में जटायु के प्राण त्याग देने के बाद राम उसके कार्यों की प्रशंसा करते हुए, उसका अन्तिम संस्कार करके धन्य कर दिया—**धन्याय प्रददौ तस्मै ।**

वाल्मीकिरामायण[5] में राम मृत जटायु के प्रति शुभकामना प्रकट करते हैं—

मया त्वं समनुज्ञातो गच्छलोकाननुत्तमान ।

अध्यात्मरामायण[6] के अनुसार राम लक्ष्मण से लकड़ी मँगवाकर जटायु का दाह संस्कार सम्पन्न करते हैं । इसके बाद राम कहते हैं कि जटायो ! तुम मेरे परमपद को जाओ और आज सबके देखते-देखते तुम मेरा सारूप्य प्रात करो । वह तुरन्त ही सुन्दर दिव्य रूप धारण कर सूर्य सदृश एक विमान पर आरूढ़ हो गया ।

रामायणमञ्जरी के अनुसार वरुणपुत्र जटायु दथरश का मित्र था । इस बात की पुष्टि रामोपाख्यान[7] तथा वाल्मीकिरामायण[8] के कई स्थलों से होती है कि जटायु दशरथ का मित्र था ।

कबन्ध—जटायु से मिलने के बाद राम-लक्ष्मण एक घने जंगल में प्रवेश करते हैं । वहाँ, अत्यन्त लम्बी भुजाओं वाला, पर्वताकार एक कबन्ध राक्षस दिखाई पड़ता है जो धृष्टतापूर्वक उनका परिचय पूँछते हुए अपनी भुजाएँ बढ़ाये चला आ रहा था ।

---

१. रामोपाख्यान (३, २६३)
२. भट्टिकाव्य-सर्ग ५
३. बालरामायण (६, ५६)
४. रामा० मं०, अ० प० (१०६४-१०६६)
५. वाल्मी० रा०, ३।६८(३०)
६. अध्या० रा०, ३।८(३७-४१)
७. रामोपाख्यान-३।२६३(१)
८. वाल्मी० रा०—३।१४(३-४), ३।६८(२७), ४।५६(२३), ४।५७(६)

विस्मित एवं दु:खी राम ने उसकी बढ़ती भुजाओं को काट दिया। भुजाएँ कट जाने के बाद निस्सहाय कबन्ध भूमि पर गिर पड़ा। अनन्तर उसने अपने विषय में स्थूलशिरा ऋषि के शाप तथा इन्द्र के वज्रप्रहार का उल्लेख किया, जिसके द्वारा वह कबन्धत्व को प्राप्त हुआ था। पुनः राम से कबन्ध कहता है—आपके द्वारा भुजाएँ काट देने के बाद, इस समय मैं शाप मुक्त हो गया हूँ। इस शरीर का दाह संस्कार कर देने के बाद मैं पुनः पूर्व शरीर प्राप्त कर लूँगा। अनन्तर राम और लक्ष्मण ने उसका दाह संस्कार किया चिता में से एक दिव्य पुरुष उत्पन्न हुआ जो आकाश में एक विमान पर स्थित होकर राम से कहता है—मतंगाश्रम और पम्पासरोवर से होते हुए ऋष्यमूक पर्वतवासी सुग्रीव से मिलकर आप सीता को प्राप्त कर लेंगे।[1]

वाल्मीकिरामायण[2] में कबन्ध की कथा रामायणमञ्जरी की अपेक्षा अधिक विस्तार के साथ वर्णित है किन्तु कथा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है।

रामोपाख्यान[3] के अनुसार भुजाएँ कट जाने के बाद कबन्ध भूमि पर गिर पड़ा। उसके शरीर से तत्काल एक दिव्य पुरुष उत्पन्न हुआ जो आकाश में स्थित होकर अपना परिचय दिया कि मैं विश्वावसु नामक गंधर्व हूँ जो ब्रह्मा के शाप से राक्षस बन गया था। पुनः वह राम से बताया कि रावण ने सीता का हरण कर लिया है। इसके बाद राम को सुग्रीव के पास जाने का भी परामर्श देता है।

अध्यात्मरामायण[4] के अनुसार कबन्ध रूप यौवन दर्पित गन्धर्व राजा था जिसने ब्रह्मा से अवध्यता का वर प्रात कर लिया था। पुनः कबन्ध अष्टावक्र मुनि के शाप तथा इन्द्र के वज्रप्रहार का उल्लेख करता है जिसके द्वारा वह कबन्धत्व को प्रात हो गया था। राम द्वारा उसकी भुजा काटने तथा दाह संस्कार करने के बाद चिता से एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ जो राम की स्तुति करने लगा। राम उसकी भक्ति से संतुष्ट होकर उसे परमधाम भेज दिए। जाते समय कबन्ध ने राम को शबरी के यहाँ जाने का परामर्श दिया।

शबरी—कबन्ध के निर्देशानुसार राम और लक्ष्मण मतङ्ग ऋषि के मनोहारी आश्रम में पहुँचते हैं। जहाँ, अत्यन्त रूप यौवन एवं लावण्य युक्त तपस्विनी शबरी को देखकर राम मुदित हो जाते है। अनन्तर शबरी ने भक्तिपूर्वक राम की पूजा, अर्घ्य एवं

---

१. रामा० मं, अ० प० (१०६७–१०६९)
२. वाल्मी० रा० अ० कां० (सर्ग ६९–७३)
३. रामोपाख्यान—३।२६३ (२५–४३)
४. अध्या० रा० ३।९ (१०–५६), ३।१० (१, ३)

आतिथ्य किया तथा अपने गुरू मतङ्ग का विधिवत् परिचय दिया। शबरी की भक्ति से प्रसन्न होकर राम उसे परमधाम को भेज देते हैं।[1]

वाल्मीकिरामायण के शबरी प्रसंग में उसके वृद्धा तपस्विनी का चित्र वर्णित है[2] जबकि रामायणमञ्जरी में चित्रित शबरी, रूप लावण्ययुक्त तपस्विनी है जिसके शरीर से यौवन एवं तपस्या की स्निग्धता छिटकती है।[3] शेष वृत्तान्त यथावत है।

रामोपाख्यान में शबरी कथा का उल्लेख नहीं किया गया है। भट्टिकाव्य[4] के अनुसार राम शबरी की साधना के विषय में पूछते हैं। शबरी उनका आतिथ्य सत्कार करके क्षत्रिय के रूप में राम की वन्दना करती है तथा यह आश्वासन देकर अन्तर्धान हो जाती है कि सुग्रीव की सहायता से मैथिली को शीघ्र ही प्राप्त कर लेंगे।

अध्यात्मरामायण[5] में राम और लक्ष्मण कबन्ध के निर्देशानुसार शबरी के आश्रम में पहुँचते हैं। शबरी राम-लक्ष्मण का आतिथ्य सत्कार करके अपने गुरु मतङ्ग का परिचय देती है। पुनः अपनी हीनता एवं हेयता का उल्लेख करते हुए राम भक्ति के लिए अपने को अनुपयुक्त बताती है। इस पर राम उसे नवधा भक्ति का उपदेश एवं महत्व सुनाते हैं। सीता के विषय में पूँछने पर शबरी राम को सुग्रीव के पास जाने का परामर्श देती हैं तथा सीता को लङ्का में स्थित बताती है। अंत में शबरी अग्नि में प्रवेश करके, राम के प्रसाद से मोक्ष प्राप्त कर लेती है।

रामायणमञ्जरी में वर्णित शबरी प्रसङ्ग की प्रमुख विशेषता है कि वह राम को न तो सुग्रीव के पास जाने का परामर्श देती है और न ही सीता के विषय में कोई सूचना देती है जबकि इसके मूलस्रोतों में वाल्मीकिरामायण को छोड़कर प्रायः सभी जगह इस तथ्य का किञ्चित् संकेत अवश्य मिलता है।

किष्किन्धा पर्व

रामायणमञ्जरी के अन्तर्गत अरण्यपर्व के बाद २१४ श्लोकों का किष्किन्धा पर्व नामक एक छोटा सा पर्व है। इस छोटे से पर्व में सुग्रीवसख्यम्, वालिवैरोपाख्यानम्, सुग्रीवबालियुद्धम्, बालिवधः, ताराप्रलापः तथा सुग्रीवाभिषेकः आदि शीर्षकों के अन्तर्गत किष्किन्धापर्व की सम्पूर्ण कथावस्तु वर्णित है। सम्प्रति तुलनात्मक अध्ययन के सुविधा

१. रामा० मं, अ० प० (११०१–१११८)
२. वाल्मी० रा० ३।७४ (१०)
शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्यवस्थिता।
३. रामा० मं, अ० प० (११०२–११०८)
४. भट्टिकाव्य—सर्ग ६ (५९–७१)
५. अध्या० रा० ३।१० (५–४४)

की दृष्टि से इस पर्व की कथावस्तु को राम-सुग्रीव मित्रता, वालि सुग्रीव शत्रुता, राम की शक्ति परीक्षा तथा वालिवध आदि शीर्षकों में विभाजित किया जाता है।

राम-सुग्रीव मित्रता—कबन्ध के कथनानुसार राम-लक्ष्मण शबरी के आश्रम से होते हुए ऋष्यमूक पर्वत की ओर चले। पर्वत शिखर पर मन्त्रियों सहित बैठे हुए सुग्रीव राम-लक्ष्मण को देखकर शंका व्यक्त करते हैं कि निश्चय ही इन दोनों वीरों को बालि ने मेरे वध के लिए नियुक्त किया है। अनन्तर सुग्रीव के आदेशानुसार हनुमान ब्राह्मण वेश में उनके पास पहुँचकर परिचय पूँछते हैं, साथ ही सुग्रीव तथा राम अपना परिचय देते हुए परस्पर सख्यभाव का निवेदन भी करते हैं। हनुमान का मन्तव्य जानकर लक्ष्मण राम के आदेश से उन्हें सीताहरण का सम्पूर्ण वृतान्त सुनाते हैं। पुनः पर्वत शिखर पर ले जाकर हनुमान ने राम और सुग्रीव की परस्पर मित्रता करायी। हनुमान तुरन्त अग्नि ले आते हैं तथा पावक साक्षी के समक्ष राम और सुग्रीव मित्रता के लिए वचनबद्ध होते हैं।[1]

वाल्मीकिरामायण और रामायणमञ्जरी के उपर्युक्त प्रसंग में पूर्णरूपेण साम्य है किन्तु अध्यात्मरामायण में कुछ भिन्नता अवश्य पाई जाती है। अध्यात्मरामायण[3] में प्रथमतः राम से भेंट के अवसर पर हनुमान उनके परंतप रूप की चर्चा करते हुए अराधना करते हैं। पुनः हनुमान राम और लक्ष्मण को कंधे पर बैठाकर सुग्रीव के पास गिरि-शिखर पर ले जाते हैं।

बालि-सुग्रीव शत्रुता—राम के सख्यभाव को प्राप्त कर सुग्रीव धन्य हो गया। वह राम को धैर्य बँधाते हुए सीता के पता लगाने का आश्वासन देता है। राम भी मित्र के भाव को समझकर उसके भी कार्य को संपादित करने के लिए आश्वासन देते हैं। राम का आश्वासन पाकर खुशी विह्वल सुग्रीव बालि से अपनी शत्रुता का कारण बताते हुए कहता है—हे राम! अद्भुत पराक्रमी किष्किन्धा नरेश बालि मेरा सगा भाई है। एक रात्रि युद्धार्थी दुन्दुभि दानव किष्किन्धा आकर जोर से गर्जना करने लगा। बालि उसे मारने के लिए घर से अकेले निकल पड़ा। भ्रातृ स्नेह के कारण मैं भी पीछे चल दिया। वह राक्षस एक बड़ी गुफा के अन्दर घुस गया। एक वर्ष बाद गुफा से रक्त की धार निकली किन्तु बालि बाहर नहीं आया। भाई के निधन का अनुमान करके गुफा द्वार को एक शिला से ढक दिया। किष्किन्धा लौटने पर मन्त्रियों ने मुझे राजा बना दिया। कुछ समय बाद बालि वापस आकर राज्य और मेरी स्त्री का अपहरण कर मुझे राज्य से बाहर निकाल दिया। तब से मैं इसी पर्वत पर निवास कर रहा हूँ। इसके बाद सुग्रीव बालि के उस स्थान पर न आने का कारण बताते हुए कहता है—दुन्दुभि को मारने के बाद बालि

१. रामा० मं, कि० कि० प० (१–२५)
२. वाल्मी० रा० कि० कि० कां (सर्ग, २–४)
३. अध्या० रा०, ४।१ (११–१६), (२७–२८)

ने उसके अस्थि कलेवर को पैर के अंगूठे से एक योजन दूर यहाँ फेंक दिया। दुन्दुभि के मुँह से निकले हुए रक्त से मतङ्ग ऋषि का आश्रम दूषित हो गया। अतः मतङ्ग ने शाप देते हुए कहा कि यदि वह यहाँ आएगा तो उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।[1]

रामायणमञ्जरी के उपर्युक्त प्रसंग में विचारणीय तथ्य बालि-सुग्रीव की शत्रुता का कारण है। वाल्मीकिरामायण में बालि-सुग्रीव की शत्रुता का जो कारण वर्णित है वह रामायणमञ्जरी के बहुत निकट होते हुए भी कुछ अंशों में पृथक हैं। यथा—रामायण-मञ्जरी में दुन्दुभि ने ही बालि को युद्ध के लिए ललकारा था तथा बालि ने उसका ही वध करके उसके अस्थि कलेवर को मतङ्गाश्रम के पास फेंका था। किन्तु वाल्मीकिरामायण में मय के ज्येष्ठ पुत्र मायावी ने बालि को युद्ध के लिए ललकार था जिसका उसने वध किया।[2] पुनः सुग्रीव मतङ्ग शाप का उल्लेख करते हुए कहता है कि किसी समय दुन्दुभि नामक एक दानव का वध करके बालि ने उसके अस्थि कलेवर को एक योजन दूर मतंगा-श्रम के पास फेंक दिया था जिसके कारण उसे शाप भाजन बनना पड़ा।[3]

इस प्रकार **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार बालि ने मायावी तथा दुन्दुभि दो दानवों का वध किया था। वाल्मीकिरामायण के उतरकाण्ड में मायावी तथा दुन्दुभि दोनो को मय-हेमा की सन्तान कहा गया है।[4] अतः ये दोनों सगे भाई थे जिसका कि बालि ने वध किया था। वाल्मीकिरामायण में वर्णित यह प्रसंग कुछ समीचीन नहीं प्रतीत होता कि बालि ने एक बार मायावी का वध किया जिसके कारण सुग्रीव से शत्रुता हुई थी तथा दूसरी बार उसने दुन्दुभि का वध किया जिसके कारण उसे मतङ्ग का शाप भाजन बनना पड़ा। इस घटना का औचित्य तभी जान पड़ता है जबकि दोनों स्थलों पर दुन्दुभि का ही प्रसंग हो जैसा कि रामायणमञ्जरी में वर्णित है क्योंकि बालि को युद्ध के लिए जिस दानव ने ललकारा होगा, उसी का वध करके पैर के अंगूठे से उसके कलेवर को एक योजन दूर मतङ्गाश्रम के पास फेंका होगा।

अध्यात्मरामायण में भी सुग्रीव बालि से अपनी शत्रुता का कारण बताते हुए मय दानव के पुत्र मायावी का उल्लेख करता है जिसका कि बालि ने वध किया था।[5] पुनः

---

१. रामा० मं, कि० कि० प० (२७–८१)

२. वाल्मी० रा०, ४।९ (४, ५)

३. वाल्मी० रा०, ४।११

४. वाल्मी० रा०, ७।१२ (१२, १३)

५. अध्या० रा०, ४।१ (४७)

मतङ्ग शाप के सन्दर्भ में बालि द्वारा दुन्दुभि के वध का उल्लेख करता है जिसके कारण बालि को शाप भाजन बनना पड़ा ।[1]

रामायणमञ्जरी तथा उसके मूलस्रोतों में प्रायः तारा ही बालि की पत्नी बताई गयी है तथा बालि ने भाई सुग्रीव की जिस पत्नी का अपहरण किया था वह तारा नहीं अपितु दूसरी कोई अर्थात् रूमा थी जैसा कि रामायणमञ्जरी में वर्णित हैं ।[2] किन्तु महानाटक में इससे सम्बन्धित जो प्रसंग पाया जाता है, उसके अनुसार तारा ही सुग्रीव की पत्नी थी जिसे बालि ने सुग्रीव से छीन लिया था ।[3]

राम की शक्ति परीक्षा—'बालिवैरोपाख्यानम्' के अन्तर्गत सुग्रीव बालि के पराक्रम का वर्णन करते हुए राम को दुन्दुभि का पर्वताकार अस्थि समूह दिखलाता है जिसे बालि ने पैर के अंगूठे से एक योजन दूर फेंक दिया था । इसके बाद सात ताल वृक्षों की ओर संकेत करता है जिसे बालि ने एक ही बाण से वेंध दिया था । पुनः राम से कहता है कि पिता इन्द्र के द्वारा उसे एक स्वर्णमाला भी प्राप्त है जिसके प्रभाव से वह युद्ध में तुरन्त श्रमरहित हो जाता है । हे राम ! ऐसे पराक्रमी बालि को अपने बाणों से आप कैसे जीतने में समर्थ होंगे । सुग्रीव के ऐसे वचन सुनकर राम ने दुन्दुभि के उस शुष्क अस्थि समूह को पैर के अंगूठे से दशयोजन दूर फेंक दिया । राम के इस आश्चर्ययुक्त कार्य को देखने के बाद भी सुग्रीव बालि के पराक्रम की चिन्ता करते हुए पुनः कहता है कि राम मेरे इस वाक्य से खेद न करना । मैं अतिशय प्रेमवश कहता हूँ कि बालि ने तो इसे गीला रहने पर फेंका था और आपने सूख जाने पर । मित्र सुग्रीव के इस अविश्वास युक्त वचनों को सुनकर राम ने एक ही बाण से सात ताल वृक्षों को वेंध कर गिरा दिया । अंत में सुग्रीव को विश्वास हो जाता है कि राम बालि का वध करने में समर्थ हैं ।[4]

वाल्मीकि[5] **एवं अध्यात्मरामायण**[6] में राम के उपर्युक्त दोनों कार्यों दुन्दुभि के अस्थिसमूह को दशयोजन फेंकना तथा सप्त ताल वृक्षों के भेदन का उल्लेख मिलता है । किन्तु रामोपाख्यान में राम के इन दोनों कृत्यों का उल्लेख नहीं किया गया है ।

---

१. अध्या० रा०, ४।१ (६१–६७)

२. रामा० मं, कि० कां (१२५)

३. महानाटक (५, ५१)

४. रामा० मं, कि० कि० प० (८४–८१)

५. वाल्मी० रा०, ४।११ (८४–८५), ४।१२ (३)

६. अध्या० रा०, ४।१ (६१–६७), ४।१ (७३–७५)

नृसिंहपुराण[१] तथा **भट्टिकाव्य**[२] में राम द्वारा सप्त ताल वृक्षों के भेदन का ही उल्लेख है। इन ग्रंथों में दुन्दुभि के अस्थिसमूह के विक्षेपण का वर्णन नहीं मिलता है।

दुन्दुभि के अस्थिकंकाल विक्षेपण में एक नवीन तथ्य **महावीरचरित**[3] तथा **अनर्घराघव**[४] में उद्घटित होता है। इसके अनुसार राम ने दुन्दुभि के अस्थिकंकाल का विक्षेप नहीं किया अपितु लक्ष्मण ने ही उसके अस्थि समूह को दूर तक फेंक दिया था।

ताल वृक्षों के विषय में भी एक रोचक विवरण **नृसिंहपुराण**[५] में मिलता है। इसके अनुसार तालवृक्षों के विषय में एक भविष्यवाणी का उल्लेख है—पुराणज्ञों ने कहा था कि जो इन सात ताल वृक्षों का भेदन करेगा, वही बालि बध करने में समर्थ होगा।

महानाटक[६] के एक स्थल के अनुसार वे सप्त ताल वृक्ष एक सर्प की पीठ पर चक्राकार स्थित थे।

बालि वध—राम की शक्ति परीक्षा लेकर सुग्रीव अत्यन्त लज्जित हुआ। किन्तु राम मित्र के इस भाव को समझकर, उसे क्षमा करते हुए बालि से युद्ध के लिए तुरन्त किष्किन्धापुरी भेजते हैं। राम के आदेश से सुग्रीव किष्किन्धा पहुँच कर बालि से युद्ध के लिए गर्जना करता है। क्रोधित बालि सुग्रीव से आ भिड़ा। दोनों में घमासान युद्ध होता है। बालि के घोर प्रहार से सुग्रीव घायल होकर मूर्छित हो गया। पुनः किष्किन्धा से लौटकर राम से सुग्रीव सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाता है। मित्र के इस कष्ट से लज्जित राम उससे कहते हैं कि तुम दोनों के समान आभूषण, वर्ण आकार आदि के कारण मैं पहचानने में असमर्थ रहा। इसी कारण, तुम्हारे वध के भय से मैंने प्रहार नहीं किया। इसके बाद राम सुग्रीव की पहचान के लिए उज्ज्वल केशर पुष्पों की एक माला सुग्रीव के गले में डालकर पुनः बालि से युद्ध करने के लिए किष्किन्धा भेजते हैं। किष्किन्धा पहुँचने पर दोनों में घमासान युद्ध होता है। इसी बीच राम के एक घोर बाण के संधान से बालि भूमितल पर गिर पड़ा।[७]

इस प्रकार रामायणमञ्जरी में वर्णित बालि वध के प्रसंग में सुग्रीव और बालि के

---

१. नृसिंह पु० (अध्याय—५०)
२. भट्टिकाव्य, सर्ग ६ (१६)
३. महावीरचरित (७, १६)
४. अनर्घराघव (अंक ५)
५. नृसिंह पु० (५०, २२)
६. महानाटक (५, ४४)
७. रामा० मं, कि० कि० कां० (६२–१६३)

दो द्वन्द्व युद्धों का उल्लेख मिलता है। **वाल्मीकिरामायण**[1] तथा **अध्यात्मरामायण**[2] में भी बालि और सुग्रीव के दो द्वन्द्व युद्धों का वर्णन है। किन्तु **रामोपाख्यान** एवं **नृसिंह पुराण** की रामकथा में केवल एक द्वन्द्व युद्ध का उल्लेख किया गया है।

इसी प्रकार रामकथा विषयक नाटकों में भी किञ्चित् परिवर्तन सहित इस द्वन्द्व युद्ध का उल्लेख मिलता है। इन नाटकों में सुग्रीव तथा बालि के द्वन्द्व युद्ध का वर्णन न होकर अपितु राम के साथ बालि के द्वन्द्व युद्ध का उल्लेख किया गया है। **महावीरचरित**[3] में माल्यवान के उभाड़ने पर बालि राम और लक्ष्मण का मार्ग रोक लेता है। पुनः राम द्वारा द्वन्द्व युद्ध में मारा जाता हैं। **अनर्घराघव**[4] में लक्ष्मण दुन्दुभि के अस्थिकंकाल को दूर तक फेंक देते हैं। इस पर बालि आकर युद्ध के लिए ललकारता है तथा राम द्वारा द्वन्द्व युद्ध में मारा जाता है। **महानाटक**[5] तथा **जानकीहरण**[6] में भी बालि का वध द्वन्द्व युद्ध में ही माना गया है।

अध्यात्मरामायण[7] में बालि की मुक्ति प्राप्ति का वर्णन है। बालि राम के नारायण रूप को जानकर उनकी स्तुति करता हुआ परम पद को प्राप्त करता है। रामायणमञ्जरी में बालि के परम पद प्राप्ति अथवा मुक्ति का किञ्चित संकेत अवश्य मिलता है। राम ने बालि के ऊपर घोर संधान करके उसके लिए स्वर्गारोहण की सीढ़ी तैयार कर दी—

स संधायशरं घोरं कालदंष्ट्रोत्कटाननम् ।
स्वर्गारोहण सोपानं विससर्जाशु बालिने ॥

किष्किन्धा काण्ड

रामायणमञ्जरी में किष्किन्धा पर्व के पश्चात् किष्किन्धाकाण्ड की कथा ५७३ श्लोकों में वर्णित है। इस काण्ड की प्रमुख घटना सीता की खोज हेतु वानरों का प्रेषण है। शेष कथानक का संक्षेप इस प्रकार है। काण्ड के प्रारम्भ में प्रावृड् वर्णन, अनन्तर शरद्-वर्णन के प्रारम्भ में सुग्रीव ने हनुमान के अनुरोध से नील सेना को बुलाने का आदेश

---

१. वाल्मी० रा०, ४।१२ (१३–२०), ४।१६ (१५–२५)
२. अध्या० रा०, ४।२ (५–८), ४।२ (४२, ४३)
३. महावीरचरित, अंक (५)
४. अनर्घराघव, अंक–५
५. महानाटक, अंक–५
६. जानकीहरण, अंक–६
७. अध्या० रा० ४।३ (६४–७१)

दिया । विरही राम सुग्रीव के निष्क्रियता की भर्त्सना करते हुए लक्ष्मण को किष्किन्धा भेजते हैं । किष्किन्धा पहुँचकर लक्ष्मण अकृतज्ञ सुग्रीव को धमकी देते हैं । सुग्रीव दीनता पूर्वक लक्ष्मण से क्षमा याचना कर राम के पास आते हैं । राम ने प्रेमपूर्वक सुग्रीव का स्वागत किया तथा सुग्रीव अपने साथ आयी वानरी सेना को दिखाकर उनके प्रेषण हेतु राम से आज्ञा माँगी । सुग्रीव से हनुमान की योग्यता जानकर राम अभिज्ञानस्वरूप उन्हें अपनी अंगूठी देते हैं । तदनन्तर हनुमान अपने साथियों सहित सीता की खोज में निकल पड़े । पुनः स्वयंप्रभा, संपाति, मैनाक, सुरसा एवं सिंहिका के वर्णन से इस काण्ड की कथा समाप्त होती है ।[1]

रामायणमञ्जरी के मूलस्रोतों में किष्किन्धा काण्ड की उपर्युक्त कथावस्तु में संक्षेप अथवा विस्तार की दृष्टिकोण से भले ही कुछ परिवर्तन किया गया हो किन्तु घटनाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया जाता है । इस संदर्भ में राम द्वारा हनुमान को दी गयी अंगूठी से सम्बन्धित कुछ तथ्य अवश्य उल्लेखनीय हैं । रामायणमञ्जरी के अनुसार राम अपनी नामाङ्कित अंगूठी अभिज्ञान स्वरूप हनुमान को देते हैं—**स तस्यै निजनामाङ्क प्रत्याय मृगीदृशः ।**[2] **वाल्मीकिरामायण** में भी राम अभिज्ञान स्वरूप अपनी नामाङ्कित अँगूठी हनुमान को प्रदान करते हैं । किन्तु इस अंगूठी का एक विशेषण **'कोपशोभितं'** दिया गया है जो अन्यत्र नहीं प्राप्त होता है—**स्वनामाङ्कोपशोभितं अँगुलीयम् ।**[3] **रामोपाख्यान** में राम की अंगूठी का कोई उल्लेख ही नहीं है । **अध्यात्मरामायण** में भी राम, हनुमान को अपनी नामाक्षर गुदी हुई अंगूठी देते हैं ।[4]

रामायणमञ्जरी के उपर्युक्त मूलस्रोतों से किञ्चित् भिन्न तथ्य अभिनन्द कृत **रामचरित** में पाया जाता है । इसके अनुसार राम अपनी मुद्रिका के अतिरिक्त सीता का नूपुर तथा स्तनोत्तरीय भी प्रदान करते हैं साथ ही हनुमान को अपनी वंशावली के विषय में बताते हैं ।[5]

रामायणमञ्जरी में वानरों के प्रेषण के समय सुग्रीव समस्त दिशाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए सभी वानरों को भिन्न-भिन्न दिशाओं में भेजते हैं । राम सुग्रीव से उनके इस दिशा ज्ञान का कारण पूछते हैं । सुग्रीव राम को बताते हैं कि दुन्दुभि वध के बाद वापस लौटकर बालि जब मुझे राज्याभिषिक्त देखा तो उस समय मेरे वध के लिए

---

१. रामा० मं, कि० कि० कां (१–५६४)
२. रामा० मं, कि० कि० कां (२४५)
३. वाल्मी० रा०, ४।४४ (१२)
४. अध्या० रा०, ४।६ (२८, २६)
५. रामचरित, सर्ग–८

उसने मेरा पीछा किया। उसके भय से मैं सम्पूर्ण पृथ्वी पर दौड़ता रहा तथा वह मेरा पीछा करता रहा। इसी भ्रमण से मुझे सम्पूर्ण दिशाओं का ज्ञान हो गया।[1]

रामायणमञ्जरी में वर्णित उपर्युक्त प्रसंग वाल्मीकिरामायण[2] को छोड़कर मूल-स्रोतों में अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

स्वयंप्रभा—रामायणमञ्जरी के मूलस्रोतों में स्वयंप्रभा के अन्य नामों का उल्लेख मिलता है। रामोपाख्यान में प्रभावती, नृसिंहपुराण में प्रभा, अग्निपुराण में सुप्रभा आदि नामों का वर्णन है।

स्वयंप्रभा से मिलने के बाद वानर उस गुफा के अन्दर इधर-उधर भटकते रहे किन्तु बाहर न निकल सके। इस बीच सीता खोज हेतु सुग्रीव द्वारा निश्चित उनका एक मास बीत गया। इससे सभी वानर चिन्तित हो गए। अंत में वे पुनः स्वयंप्रभा के पास जाकर निवेदन किए। स्वयंप्रभा आँखें बन्द करने की युक्ति बताकर उन सबको गुफा से बाहर निकाल दी।[3]

रामायणमञ्जरी के उपर्युक्त प्रसंग में एक विचारणीय तथ्य यह है कि स्वयंप्रभा वानरों को आँखें बन्द करने के लिए क्यों कहती है। स्वयंप्रभा के द्वारा कही गयी इस रहस्यमयी युक्ति का वास्तव में रहस्य क्या है। रामायणमञ्जरी में इस समस्या के समाधान का कोई विकल्प नहीं मिलता है। वाल्मीकिरामायण, अध्यात्मरामायण तथा अन्य मूलस्रोतों के इस प्रसंग में किसी कारण का उल्लेख नहीं किया गया है। किन्तु भट्टिकाव्य से जो कारण ध्वनित होता है, उसके अनुसार स्वयंप्रभा वानरों को भुलाने के लिए उनकी आँखें बन्द करने को कहती है; क्योंकि वह दानवी है तथा राक्षसों से मैत्री रखती है।[4]

सुन्दरकाण्ड

रामायणमञ्जरी में सुन्दरकाण्ड के लगभग ७०५ श्लोकों में हनुमान का लंका में प्रवेश तथा सीता की खोज, रावण के अंतःपुर में हनुमान का प्रवेश, रावण का अशोकवन में आगमन एवं सीता दर्शन, रावण-सीता-संवाद, त्रिजटा स्वप्न, हनुमान-सीता संवाद, अशोक वन विध्वंस, रावण के दरबार में उपस्थिति, लंकादहन एवं राम के पास आगमन आदि प्रमुख घटनाएँ वर्णित हैं। सुन्दरकाण्ड के उपर्युक्त प्रसंगों में विचारणीय तथ्य निम्नलिखित हैं।

---

१. रामा० मं०, कि० कि० कां (२४७–२९४)
२. वाल्मी० रा०, ४।४५–४८
३. रामा० मं, कि० कि० कां (३२९–३३१)
४. भट्टिकाव्य (७, ७१)

हनुमान का लङ्का में प्रवेश—रामायणमञ्जरी के अनुसार हनुमान लंका में प्रवेश करते समय संक्षिप्त आकार धारण कर लेते हैं[1]—

स संक्षिप्य वपुः क्षिप्रं महोत्सवमिवाधनः ।
निपपाताशु लङ्कायां चोत्तरद्वारशेखरे ॥

वाल्मीकिरामायण[2] के अनुसार हनुमान ने बिडाल आकार के छोटे बन्दर का रूप धारण कर लङ्का में प्रवेश किया था। अध्यात्मरामायण[3] के अनुसार भी हनुमान संक्षिप्त रूप धारण करके ही लङ्का में प्रवेश करते हैं।

हनुमान के संक्षिप्त आकार धारण करने से सम्बन्धित एक अन्य तथ्य रामायण-मञ्जरी के मूलस्रोतों में मिलता है। इसके अनुसार वाल्मीकिरामायण[4] में एक प्रसङ्ग मिलता है। हनुमान अशोक वन में जब सीता के सामने उपस्थित होते हैं तो चटक पक्षी जैसा रूप धारण कर लेते हैं। महानाटक[5] के अनुसार हनुमान ब्राह्मण के रूप में अशोक वन में प्रवेश करते हैं।

रामायणमञ्जरी के कई मूलस्रोतों में लङ्का देवी या लङ्किनी का उल्लेख प्राप्त होता है जो हनुमान को लङ्का में प्रवेश करने से रोकती है। परन्तु रामायणमञ्जरी में यह प्रसंग नहीं पाया जाता है। वाल्मीकिरामायण के अनुसार लङ्किनी पहले तो हनुमान को लङ्का में प्रवेश से रोकती है परन्तु बाद में हनुमान द्वारा पराजित होने पर उसे ब्रह्मा द्वारा दिया हुआ वरदान स्मरण हो जाता है। पुनः वह ब्रह्मा प्रदत्त वर का उल्लेख करती हुई हनुमान से कहती है—हे कपिश्रेष्ठ मुझे अब राक्षसों का विनाश निश्चित दिखाई पड़ रहा है। अतः आप इस रावणपालित पुरी में प्रवेश कीजिए और यहाँ जो-जो कार्य पूर्ण करना चाहते हों उसे पूर्ण कर लीजिए।[6]

इसी प्रकार अध्यात्मरामायण[7] में भी लङ्किनी हनुमान को लङ्का में प्रवेश करने से रोकती है, तब हनुमान ने एक घूँसे का प्रहार किया जिससे वह रुधिर वमन करते हुए जमीन पर गिर पड़ी। होश में आने के बाद उसने ब्रह्मा द्वारा पूर्वकाल में बतायी हुई रामावतार की घटना का वर्णन किया। अंत में वह हनुमान से कहती है—हनुमन् !

---

१. रामा० मं, सु० कां (५)
२. वाल्मी० रा०, ५।२ (४९)
३. अध्या० रा०, ५।१ (४३)
४. वाल्मी० रा०, ५।३ (२०)
५. महानाटक, अंक–६
६. वाल्मी० रा०, ५।३ (२०–५१)
७. अध्या० रा०, ५।१ (४३–५८)

तुमने लङ्का जीत लिया। बाद में सीता के मिलने का स्थान भी बताती है तथा राम के पावन स्मृति का वर्णन करती हैं।

रावण-सीता-संवाद—रामायणमञ्जरी में इस प्रसंग के अन्तर्गत रावण अत्यधिक मदपान से बेसुध तथा कामवासना से पीड़ित होकर अशोक वन में सीता के पास पहुँचता है। वहाँ अनेक प्रलोभनों के द्वारा रावण सीता को अपनी पत्नी बनाने का असफल प्रयत्न करता है। सीता उसे विभिन्न तर्कों द्वारा उलाहना एवं फटकार देती है।[1]

रामायणमञ्जरी के इस प्रसंग में सर्वप्रथम विचारणीय तथ्य है—रावण के अशोक वन में आगमन का कारण? रामायणमञ्जरी के अनुसार रावण अधिक मदपान तथा कामवासना से पीड़ित होकर ही अशोक वन में पहुँचता है।[2] रावण के अशोक वन में आगमन का यही कारण वाल्मीकिरामायण[3] में भी मिलता है। परन्तु इन सब से पूर्णतया भिन्न एक दूसरा कारण ही अध्यात्मरामायण[4] में मिलता है। इसके अनुसार रावण उत्सुकतापूर्वक राम की प्रतीक्षा करता था, क्योंकि उसे विष्णु के हाथ से मुक्ति की तीव्र अभिलाषा थी। उसी दिन रावण ने स्वप्न में देखा कि राम का संदेश लेकर कोई कामरूपी वानर, वृक्ष की शाखा पर बैठकर सीता को देख रहा है। रावण ने सोचा कि यह स्वप्न संभवतः सच हो। अतः उसने निश्चय किया कि मैं अब अशोक वन जाकर सीता को वाग्वाणों से बेंधकर दुःख पहुँचा दूँ जिससे वानर यह सब देखकर राम को सुनावे तथा मुझे शीघ्र ही मुक्ति मिल जाय।

रामायणमञ्जरी के अनुसार रावण-सीता-संवाद के अंत में रावण की पत्नी पुण्यमालिनी का प्रसंग आता है जो रावण को सीता की तरफ से विरत होने तथा अपनी प्रियतमा में आसक्त होने के लिए कहती है।[5] वाल्मीकिरामायण में पुण्यमालिनी के स्थान पर राक्षसियों की स्वामिनी धान्यमालिनी रावण को सीता से विरत होकर अपने साथ कामक्रीड़ा करने के लिए अनुरोध करती है।[6] अध्यात्मरामायण के इस संदर्भ में मंदोदरी का नामोल्लेख होता है। मंदोदरी पति रावण से कहती है—पति देव! इस दीना, दुखिया, क्षीणा एवं कातर मानवी को छोड़ दीजिए। आपको तो बहुत सी देव, गन्धर्व, यक्षादि की कन्याएं अपने आप ही वरण करना चाहती हैं।[7] इस प्रकार रामायणमञ्जरी

---

१. रामा० मं, सु० कां (१२२–२६६)
२. रामा० मं, सु० कां (१८७–१९१)
३. वाल्मी० रा०, ५।१८ (५)
४. अध्या० रा०, ५।२ (१५–१९)
५. रामा० मं, सु० कां (२६३, २३४)
६. वाल्मी० रा०, ५।२२ (३९, ४०)
७. अध्या० रा०, ५।२ (३८, ३९)

एवं वाल्मीकिरामायण में जहाँ पुण्यमालिनी एवं धान्यमालिनी सीता को हेय दृष्टि से देखते हुए रावण को सीता से विरत करने तथा अपने प्रति कामक्रीड़ा करने के लिए प्रेरित करती है वहीं पर अध्यात्मरामायण में मंदोदरी सीता के प्रति सहानुभूति दिखाती हुई रावण को उससे विरत करती है, साथ ही वह अपने प्रति कामक्रीड़ा करने को नहीं कहती, अपितु वह रावण को यह बताती है कि आपको चाहने वाली बहुत सी देव, गन्धर्व एवं यक्ष महिलाएँ हैं।

रामायणमञ्जरी तथा उसके मूलस्रोतों में सीता-रावण-संवाद के अवसर पर सीता प्रायः तिनके का ओट देकर ही रावण से बात करती है।[1] इसके अतिरिक्त भी रावण प्रायः सीता को दो मास की ही अवधि देता है जिसके बीच वह विचार करके रावण को पति रूप में स्वीकार कर ले।

सीता-हनुमान-संवाद—रावण के अंतःपुर लौट जाने के बाद सभी राक्षसियाँ सीता को अनेक प्रकार से त्रास देने लगी। निःसहाय सीता राम के वियोग दुःख में रोती-विलखती उस कष्ट को सहन करती रही। इसी बीच त्रिजटा नाम की वृद्धा राक्षसी, अन्य सभी राक्षसियों को सम्बोधित करती हुई अपने स्वप्न का वृत्तान्त सुनाती है। इसके अनुसार वह रावण के सद्यःविनाश, राम की विजय तथा विभीषण के राज्याभिषेक की सूचना देती है। अंत में वह सीता को त्रास देने से राक्षसियों को मना करती है। तदनन्तर वृक्ष के शाखा की ओट में बैठे हुए हनुमान राम के पराक्रम एवं वंशावली का वर्णन करते हुए उनके द्वारा प्रदत्त अँगूठी गिरा देते हैं। सीता इसे देखकर विस्मित हो जाती हैं तथा इस सन्दर्भ में नाना प्रकार के उहापोहात्मक तर्क करने लगती हैं। इसी बीच हनुमान वृक्ष की शाखा से उतरकर अपना सम्पूर्ण परिचय देते हुए सीता को आश्वासन देते हैं कि मैं राम दूत हनुमान हूँ। पुनः सीता से अभिज्ञान स्वरूप कुछ देने का अनुरोध करते हैं। इस सन्दर्भ में सीता हनुमान को काक पक्षी का वृत्तान्त राम को स्मरण दिलाने हेतु सुनाती हैं तथा वेणी खोलकर एक सुन्दर मणि हनुमान को प्रदान करती हैं।[2]

सीता-हनुमान-संवाद के उपर्युक्त प्रसंग में प्रथम विचारणीय तथ्य त्रिजटा चरित है। रामायणमञ्जरी के अनुसार वृद्धा त्रिजटा राक्षसी सीता की सहायिका रूप में उसे दो स्थलों पर सान्त्वना देती है। सर्वप्रथम सुन्दरकाण्ड[3] के उपर्युक्त प्रसंग में तथा द्वितीय युद्धकाण्ड[4] के अन्तर्गत इन्द्रजित के साथ रात्रि युद्ध में मूर्छित राम और लक्ष्मण को देखकर विलाप करती हुई सीता को आश्वासन देती है कि तुम्हारा पति जीवित है।

---

१. रामा० मं, सु० कां (२२७), वाल्मी० रा०, ५।२१ (३), अध्या० रा०, ५।२ (३१)
२. रामा० मं, सु० कां, (२६७–३८१)
३. वही (२८१–२८७)
४. रामा० मं, यु० कां (४८१–५११)

वाल्मीकिरामायण में भी त्रिजटा से सम्बन्धित उपर्युक्त दोनों प्रसंग वर्णित हैं। किन्तु वाल्मीकिरामायण और रामायणमञ्जरी के सुन्दरकांड के त्रिजटा प्रसंग में अन्तर केवल इतना है कि वाल्मीकिरामायण में त्रिजटा राक्षसियों को डाँटते हुए सीता से क्षमा माँगने के लिए कहती है तथा बाद में सीता ने उन राक्षसियों को अभयदान भी दिया।[1] रामायणमञ्जरी में ऐसा वर्णन नहीं मिलता।

रामायणमञ्जरी[2] में त्रिजटा को वृद्धा राक्षसी तथा सीता के प्रति स्नेहवत्सला (तत्सतीव्रतवत्सला) कहा गया है। वाल्मीकिरामायण[3] में भी त्रिजटा के उपर्युक्त दोनों स्वरूपों का चित्रण है।

रामायणमञ्जरी में त्रिजटा को 'धर्मज्ञा प्रियवादिनि'[4] कहा गया है जो रामोपाख्यान[5] के 'धर्मज्ञा प्रियवादिनि' से साम्य रखता है।

त्रिजटा के ही सन्दर्भ में रामायणमञ्जरी में वर्णित सीता के अन्य हितैषी राक्षस-राक्षसियों का उल्लेख करना अत्यावश्यक है। रामायणञ्जरी में त्रिजटा के अतिरिक्त सुन्दरकाण्ड में विन्ध्य नामक वृक्ष राक्षस का उल्लेख मिलता है। इसके विषय में सीता हनुमान से कहती हैं—जनस्थान से आए हुए विन्ध्य नामक वृद्ध राक्षस ने राम तथा सुग्रीव की मित्रता के विषय में बताया था।[6]

त्रिजटा तथा विन्ध्य के अतिरिक्त रामायणमञ्जरी के युद्धकाण्ड में सीता की हितैषिणी सरमा का परिचय मिलता है। सीता को विचलित करने के लिए विद्युज्जिह्व द्वारा राम का मायाशीर्ष दिखाया जाता है जिसे देखकर सीता विलाप करने लगती हैं। इसी समय सरमा नाम की राक्षसी सीता को रावण के इस छल-कपट के विषय में बताती है। वह कहती है कि तुम्हारे पति का विनाश नहीं हुआ है तथा राम की सेना राक्षसों के विनाश हेतु आ गयी है।[7]

इस प्रकार रामायणमञ्जरी में सीता के हितैषी रूप में त्रिजटा, सरमा एवं विन्ध्य नामक राक्षसियों एवं राक्षस का उल्लेख मिलता है।

---

१. वाल्मी० रा०, ५।२७ (४–५४)
२. रामा० मं, सु० कां (२८१), यु० कां (५०८)
३. वाल्मी० रा०, ५।२७ (४), ६।४८ (२८)
४. रामा० मं, यु० कां (५०८)
५. रामोपाख्यान—३।२६४ (४)
६. रामा० मं०, सु० कां (३४०)
७. रामा० मं, यु० कां (३५४–३६०)

वाल्मीकीय सुन्दरकाण्ड[१] में विन्ध्य राक्षस के साथ-साथ विभीषण की पत्नी एवं पुत्री का भी वर्णन मिलता है जो सीता की हितैषिणी हैं। सीता हनुमान से कहती हैं कि कला नामक विभीषण की ज्येष्ठा पुत्री ने माता के आदेशानुसार आकर स्वयं बतायी कि रावण विभीषणादि के सत्परामर्शों को ठुकरा दिया। पुनः सीता कहती हैं कि विन्ध्य राक्षस ने बताया कि मैंने रावण को बहुत समझाया, लेकिन वह दुष्ट अपनी कुटिलता नहीं छोड़ा। राम के हाथ से अब राक्षसों के विनाश का समय आ गया है। वाल्मीकीय युद्धकाण्ड[२] में भी सरमा नामक राक्षसी सीता की हितैषिणी के रूप में चित्रित है।

रामोपाख्यान में त्रिजटा स्वप्न के अतिरिक्त एक अन्य स्थल पर भी त्रिजटा का उल्लेख है। इसके अनुसार रावण वध के बाद लङ्का से जाते समय राम ने त्रिजटा को अर्थ और सम्मान प्रदान किया था—**त्रिजटां चार्थमानाभ्यां योजयामास राक्षसीम**।[३]

रामायणमञ्जरी के विन्ध्य वर्णन की तरह रामोपाख्यान में नाम परिवर्तन के साथ अविन्ध्य वर्णन पाया जाता है। सीता हनुमान से कहती हैं कि त्रिजटा ने मुझे अविन्ध्य का यह सन्देश दिया—राम तथा लक्ष्मण सकुशल हैं और वे वानर सेना लेकर तुम्हें छुड़ाने आ रहे हैं। रावण से मत डरना, क्योंकि नलकूबर के शाप के कारण वह तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है।[४]

रघुवंश[५] तथा **सेतुबंध**[६] में सरमा का कोई अलग से वर्णन नहीं प्राप्त होता है, अपितु यहाँ त्रिजटा ही सरमा का स्थान ले लेती है।

वाल्मीकीय युद्धकाण्ड[७] के अनुसार सरमा सीता की गुप्तचर बनकर उन्हें रावण सभा का सम्पूर्ण समाचार दिया था। **बालरामायण**[८] में इसी से सम्बन्धित एक तथ्य त्रिजटा के विषय में मिलता है कि त्रिजटा ने सुमुख तथा दुर्मुख की सहायता से नरांतक वध, कुम्भकर्ण जागरण, तथा इन्द्रजित के निकुंभिला प्रवेश का समाचार सीता को पहुँचा दिया था। रामायणमञ्जरी में त्रिजटा और सरमा का सीता के हितैषिणी के रूप में उल्लेख

---

१. वाल्मी० रा०, ५।३७ (११, १२, १३)
२. वाल्मी० रा०, ६।३३
३. रामोपाख्यान—३।२७५ (३९)
४. रामोपाख्यान—३।२६४ (५८)
५. रघुवंश (१२, ७४)
६. सेतुबंध (सर्ग ११)
७. वाल्मी० रा०, ७।३३, ३४
८. बालरामायण (अंक ८)

अवश्य मिलता है किन्तु वाल्मीकीय युद्धकाण्ड एवं बालरामायण की तरह इतने विश्वस्त गुप्तचर के रूप में उल्लेख नहीं मिलता है।

बालरामायण[१] में एक और प्रसंग मिलता है जिसके अनुसार त्रिजटा ने सीता के साथ पुष्पक पर चढ़कर अयोध्या यात्रा की थी। **रामायणमञ्जरी**[२] में इस प्रकार का कोई वर्णन नहीं है, केवल युद्ध काण्ड के अन्तर्गत सीता के साथ पुष्पक पर चढ़कर कुछ राक्षसियाँ युद्ध भूमि तक गयी थी जहाँ सीता की उपस्थिति का भी संकेत मिलता है।

सीता-हनुमान-संवाद के अन्तर्गत त्रिजटा चरित के अतिरिक्त जो दूसरा विचारणीय तत्त्व है, वह यह कि हनुमान के आगमन से पूर्व राक्षसियों से पीड़ित की जाती हुई सीता, दुःख से अत्यंत उद्विग्न होकर प्राण त्यागने के लिए उत्कण्ठित हो जाती हैं—

दुःसहं चात्मनो दुःखं प्राणत्यागोत्सुकाभवत्।[३]

रामायणमञ्जरी में सीता के इस प्राण त्याग के प्रयास का वर्णन मूलस्रोतों में भी किसी न किसी रूप में वर्णित है। वाल्मीकीय सुन्दरकाण्ड में हनुमान के आगमन के ठीक पूर्व सीता आत्महत्या करने का विचार करती हैं। विष अथवा किसी तीक्ष्ण शस्त्र के अभाव में वह अपनी वेणी से फांसी लगाने के विचार से अशोक वृक्ष के पास जाती हैं। इसकी एक शाखा पकड़कर वह राम-लक्ष्मण तथा अपने कुल के विषय में सोचने लगती हैं, उसी समय उनके शरीर में शुभ लक्षण प्रकट होने लगते हैं।[४]

अध्यात्मरामायण[५] के अनुसार सीता ने जब अपनी वेणी से फांसी लगाने का निश्चय करके, आत्महत्या करने के लिए उद्यत हुई उसी समय हनुमान राम का गुणगान करने लगे। **आश्चर्यचूड़ामणि** में भी सीता द्वारा जल में प्रवेश करके आत्महत्या के प्रयास का उल्लेख प्राप्त होता है।[६]

हनुमान-सीता-संवाद के अन्तर्गत तीसरा विचारणीय तत्त्व सीता द्वारा हनुमान को दिए गए अभिज्ञानों का वर्णन है। रामायणमञ्जरी के इस प्रसंग में सीता द्वारा दिए गए तीन अभिज्ञानों का वर्णन है[७]—मणि, काकवृत्तान्त तथा मैनसिल तिलक का स्मरण।

---

१. वही (अंक १०)
२. रामा० मं, यु० कां० ४६२
३. रामा० मं, सु० कां० (२६८)
४. वाल्मी० रा०, ५।२८ (१७, १८, १९) एवं सर्ग (२९)
५. अध्या० रा०, ५।३ (१, २, ३)
६. आश्चर्यचूड़ामणि (अंक ५)
७. रामा० मं०, सु० कां० (३७०, ७१, ७२, ७३, ७४)

सीता हनुमान से चित्रकूट की उस घटना का वर्णन करती हैं, जब राम सीता को अपनी गोद में बिठाकर मैनसिल से तिलकमञ्जरी बनायी थी। इसी समय काक जयन्त द्वारा मेरे स्तन में आघात करने के कारण राम ने नरकुल के बाण से लीलापूर्वक उसे काना बना दिया। अंत में सीता अपनी वेणी खोलकर एक अत्यंत प्रकाश युक्त मणि हनुमान को प्रदान करती हैं। इस प्रकार रामायणमञ्जरी में तीन अभिज्ञानों का वर्णन है।

महाभारत के रामोपाख्यान में केवल दो अभिज्ञानों का ही वर्णन उपलब्ध है—चूड़ामणि तथा काक वृत्तान्त।[१]

वाल्मीकिरामायण में रामायणमञ्जरी की ही भाँति तीन अभिज्ञानों का वर्णन है। सुन्दरकाण्ड के ३८वें सर्ग में काक वर्णन के बाद सीताजी हनुमान को चूड़ामणि देती हैं। इसके बाद हनुमान जब चलने को तैयार होते हैं तो सीता पुनः एक तीसरे अभिज्ञान का स्मरण करती हुई कहती हैं—मेरी ओर से यह भी कहना कि प्राणनाथ! पहले की उस बात को भी याद कीजिए, जबकि मेरे कपोल में लगे हुए तिलक के मिट जाने पर आपने अपने हाथ से मैनसिल का तिलक लगाया था।[२]

अध्यात्मरामायण में चूड़ामणि तथा काक वृत्तान्त के अभिज्ञान ही वर्णित हैं।[3]

युद्ध काण्ड

रामायणमञ्जरी में १२८८ श्लोकों के अन्तर्गत सम्पूर्ण युद्धकाण्ड की कथावस्तु वर्णित है। युद्धकाण्ड के प्रारम्भ में माता के आदेशानुसार विभीषण द्वारा रावण को संमंत्रणा देना, रावण द्वारा विभीषण पर पाद प्रहार विभीषण की शरणागति, सेतुबंध, वानर सेना का अभियान, रात्रियुद्ध में इन्द्रजित् की विजय, हनुमान आदि वानरी सेना के द्वारा रावण का मानमर्दन, राम के मायाशीर्ष का वृत्तान्त, कुम्भकर्ण वध, इन्द्रजित वध, लक्ष्मण शक्ति एवं रावण-वध आदि इस काण्ड की प्रमुख घटनाएँ हैं। सम्प्रति इन्हीं घटनाओं के आलोक में युद्धकाण्ड की कथावस्तु का संक्षिप्त विश्लेषण किया जा रहा है।

विभीषण की शरणागति—युद्धकाण्ड के प्रारम्भ में विभीषण की वृद्धा मां रावण द्वारा सीताहरण की निन्दा करते हुए विभीषण से कहती है कि रावण यदि सीता को नहीं लौटा देता तो शीघ्र ही उसके राज्य, शक्ति एवं वैभव का विनाश हो जाएगा। अतः तुम शीघ्र ही जाकर भाई को विनाश से बचाओ तथा सीता को वापस लौटाने का अनुरोध करो। माता के आदेशानुसार विभीषण रावण के दरबार में पहुँचकर अनेक

---

१. महाभारत (३, २६६, ६६-६७)

२. वाल्मी० रा०, ५।४० (५)

३. अध्या० रा०, ५।३ (५२–६०)

मंत्रणाओं द्वारा समझाते हुए सीता को वापस लौटाने के लिए निवेदन करता है। किन्तु रावण उसके सत्परामर्शों को ठुकरा देता है। यही नहीं, रावण भाई विभीषण के ऊपर पादप्रहार करके राज्य से बाहर निकाल देता है। विभीषण अपने चार मन्त्रियों सहित राम की शरण में आ जाता है। राम भी शरणागत विभीषण को स्वीकार करके समुद्र जल से उसका अभिषेक कर देते हैं।[१]

काण्ड के प्रारम्भ में वर्णित **'विभीषणमातृवाक्यम्'** का उपर्युक्त प्रसंग रामायण-मञ्जरी के अतिरिक्त भट्टिकाव्य को छोड़कर अन्य किसी मूलस्रोतों में दृष्टिगोचर नहीं होता। **भट्टिकाव्य** के अनुसार भी विभीषण की माँ उससे अनुरोध करती हैं कि वह जाकर रावण को समझावे।[२]

रामायणमञ्जरी तथा **वाल्मीकिरामायण** में वर्णित उपर्युक्त प्रसंग तथा उसके अन्तर्गत रावण सभा की घटनाओं में पूर्ण साम्य है। किन्तु **अध्यात्मरामायण** में इन दोनों से भिन्न, रावण सभा में कुम्भकर्ण की उपस्थिति भी दिखलायी गयी है। कुम्भकर्ण रावण से राम के परमतत्त्व का वर्णन करते हुए सीता को वापस लौटाने को कहता है, साथ ही वह रावण के इस कार्य की कटु निन्दा भी करता है।[३]

विभीषण की शरणागति के विषय में रामायणमञ्जरी तथा उसके सभी मूलस्रोत यही स्वीकार करते हैं कि रावण ने ही उसे निर्वासित किया था शरणागति का समय भी प्रायः रामायणमञ्जरी के ही अनुसार है। किन्तु **महावीरचरित** में शरणागति का समय जो वर्णित है उसके अनुसार विभीषण खर-दूषण वध के बाद ही लङ्का छोड़कर अपने मित्र सुग्रीव के यहाँ रहने लगा था और उसने राम-सुग्रीव मिलन के पूर्व ही राम के पास आत्मसमर्पण का पत्र भेजा था।[४]

रामायणमञ्जरी एवं **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार विभीषण को निष्कासित करते समय रावण ने पादप्रहार भी किया था। पादप्रहार की यह घटना रामायणमञ्जरी के कई मूलस्रोतों में वर्णित है, किन्तु **अध्यात्मरामायण** में इसका उल्लेख नहीं है। इसके अनुसार रावण विभीषण को केवल फटकारता है तथा विभीषण राम की शरण में चला जाता है।[५]

---

१. रामा० मं०, यु० कां० (१–२०४)
२. भट्टिकाव्य—सर्ग १२ (१)
३. अध्या० रा० ६।२ (१३–१८)
४. महावीरचरित (५, ३०)
५. अध्या० रा०, ६।२ (२७–४५)

रामायणमञ्जरी तथा उसके मूलस्रोतों में राम स्वर्गारोहण के समय विभीषण के राज्य के चिरस्थायित्व का आशीर्वाद देते हैं किन्तु **अध्यात्मरामायण** में राम ने इसका वर्णन शरणागति के समय भी किया है। समुद्र जल से विभीषण को लङ्का के राज्य पर अभिषिक्त करते हुए राम कहते हैं कि जब तक सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी की स्थिति है तथा जब तक लोक में मेरी कथा रहेगी तब तक तुम इस लङ्का का राज्य करोगे।[1]

सेतुबंध—विभीषण अभिषेक के बाद सम्पूर्ण हरिवाहिनी समुद्र तट पर पहुँचकर उसको पार करने के विषय में विचार करने लगी। अनन्तर विभीषण के मतानुसार राम-लक्ष्मण सहित सम्पूर्ण सेना तीन रात्रि तक प्रायोपवेशन में संलग्न रहे किन्तु परिणाम कुछ नहीं निकला। अंत में क्रुद्ध होकर राम ने समुद्र को अपने बाणों से क्षुब्ध कर दिया। इस पर समुद्र प्रकट होकर राम से क्षमायाचना करते हुए विनीत भाव से अपना परिचय देता है। पुनः उसने विश्वकर्मा के पुत्र नल द्वारा सेतु निर्माण का सुझाव दिया। राम के आदेश से तुरन्त ही नल के साथ सम्पूर्ण सेना ने मिलकर कुछ ही दिनों में १०० योजन विस्तृत सेतु का निर्माण कर दिया। राम सहित सम्पूर्ण सेना समुद्र पार कर गयी। समुद्र पुनः निवेदन करता है कि राम! विजय के लिए युद्धारम्भ करने वाले आपको यह तापस वेश उचित नहीं है। ऐसा कहते हुए समुद्र ने राम-लक्ष्मण के जटा-वल्कल आदि का परित्याग करवाकर उनको दिव्य कवच एवं आभूषणों से सुसज्जित किया।[2]

सम्प्रति रामायणमञ्जरी में वर्णित सेतुबंध की घटनाओं पर विचार किया जा रहा है।

अभिषेक नाटक के अनुसार राम जब बाण चलाने के लिए उद्यत होते हैं, उसी समय वरुण दिखाई पड़ते हैं और उनकी आज्ञा से समुद्र का जल दो भागों में विभक्त हो जाता है जिससे राम की सेना समुद्र जल से पार हो जाती है।[3]

भट्टिकाव्य के अनुसार राम द्वारा वाण संधान करने के कारण करोड़ों मछलियाँ मर जाती है तथा समुद्र के विनय करने पर राम उन्हें पुनर्जीवित करतें हैं।[4]

रामोपाख्यान के अनुसार राम समुद्र में बाण नहीं चलाते हैं सागर राम को स्वप्न में दिखाई देता है तथा नल द्वारा फेंके हुए पदार्थ न डूबने देने की प्रतिज्ञा करता

---

१. अध्या० रा०, ६।३ (४३, ४४)

२. रामा० मं, यु० कां (२०५–२७८)

३. अभिषेकनाटक (अंक ४)

४. भट्टिकाव्य (सर्ग १५)

है।[१] स्कन्द पुराण में सेतु माहात्म्य के अन्तर्गत भी ठीक इसी प्रकार का वर्णन मिलता है।[२] महानाटक में राम के बाण चलाने का उल्लेख ही नहीं मिलता है।[३]

सेतुबंध[४] तथा बालरामायण[५] में सेतु निर्माण की बाधाओं का भी उल्लेख है। इनके अनुसार मछलियाँ सेतु को नष्ट कर देती हैं।

बालरामायण में सेतु निर्माण के समय कुछ और घटनाओं का उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार रावण सेतु निर्माण के समय विमान पर चढ़कर राम के शिविर के पास पहुँचता है तथा राम के देखते ही एक 'यंत्रजानकी' का वध करके तथा उसका मायाशीर्ष समुद्र तट पर फेंककर लौट जाता है। इसके पश्चात रावण का पुत्र सिंहनाद आकर राम को ललकारता है तथा राम द्वारा युद्ध में मारा जाता है। बाद में प्रभञ्जनी नामक एक राक्षसी सोये हुए राम और लक्ष्मण को मार डालने के लिए आती है किन्तु अङ्गद उसका वध कर देते हैं।[६]

रामायणमञ्जरी एवं वाल्मीकिरामायण के अतिरिक्त कुछ पुराणों एवं अध्यात्म-रामायण में सेतुबंध के अवसर पर शिवलिङ्ग (महादेव) की स्थापना का वर्णन मिलता है। अध्यात्मरामायण में पहले तो सेतुबंध के अवसर पर इसका उल्लेख मिलता है। राम ने सेतुबन्ध के आरम्भ होने पर रामेश्वर महादेव की स्थापना कर उनका पूजन करते हुए इसके महत्त्व का प्रतिपादन किया है।[७] पुनः लङ्का विजय के बाद जब सीता के साथ अयोध्या वापस लौटने लगते हैं, उस समय सीता से उस स्थल का परिचय कराते हुए कहते हैं कि मैंने यहाँ रामेश्वर महादेव की स्थापना की है।[८]

इसी प्रकार स्कंद पुराण[९] में भी सेतुबंध के अवसर पर तथा युद्ध समाप्ति के बाद भी शिव प्रतिष्ठा का उल्लेख मिलता है। किन्तु नारदीय पुराण (उत्तरार्ध, अ०

---

१. रामोपाख्यान—३।२६७ (३२)
२. स्कंद पु० (अध्या० २)
३. महानाटक (अंक ७)
४. सेतुबंध (७, ८)
५. बालरामायण (८, ५२)
६. बालरामायण (७, ७१–८५)
७. अध्या० रा०, ६।४ (१–४)
८. अध्या० रा०, ६।१४ (६)
९. स्कंदपु०, ब्राह्मखण्ड, सेतु माहात्म्य (अध्याय ७ और ४४–४७)

७६), **नृसिंहपुराण** (अ० ५२), **कूर्मपुराण** (अ० २१) तथा **सौरपुराण** (अ० ३०) में युद्ध के बाद ही शिव प्रतिष्ठा का वर्णन मिलता है।

रामायणमञ्जरी के कुछ मूलस्रोतों में राक्षसियों के संभोग का वर्णन सेतुबंध के बाद तथा युद्ध के पूर्व भी प्राप्त होता है, जबकि रामायणमञ्जरी में इसका उल्लेख नहीं मिलता। इसमें सर्वप्रथम सेतुबंध के 'कामिनीकेलि' नामक दसवें सर्ग में तथा जानकी-हरण के १६वें सर्ग में राक्षसियों के केलि का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसी प्रकार रामचरित के १८वें सर्ग (दशाननपानकेलिवर्णनम्) में रावण के सम्भोग का विस्तृत वर्णन किया गया है।

रामायणमञ्जरी में उपर्युक्त शिव प्रतिष्ठा तथा राक्षसियों के केलि वर्णन का प्रसंग सेतुबंध के अवसर पर नहीं मिलता जैसा कि उसके मूलस्रोतों में वह किसी न किसी रूप में अवश्य ही वर्णित है।

राम का मायाशीर्ष—शुक-सारण दूतों के द्वारा राम की शक्ति एवं सेना का समाचार सुनकर रावण अत्यन्त क्रोधित हो गया। इसके बाद वह विद्युज्जिह्व को साथ लेकर सीता के पास पहुँचा। वहाँ पहुँच कर रावण सीता से कहता है—हे सीते! जिस तपस्वी से तुम प्रेम करती हो, वह अपनी सम्पूर्ण वानरी सेना सहित युद्ध में मारा गया। अतः तुम उस तपस्वी की चिन्ता छोड़कर मुझमें अनुरक्त हो जाओ। ऐसा कहते हुए रावण ने विद्युज्जिह्व को राम का मायाशीर्ष दिखाने के लिए संकेत किया। इसे देखकर सीता अत्यन्त दुःख कातर हो रुदन करने लगी। तब सरमा नामक राक्षसी ने सीता को आश्वासन देते हुए कहा कि तुम्हारे पति जीवित हैं। यह तो विद्युज्जिह्व द्वारा निर्मित राम का माया शीर्ष है।[1]

महाभारत के **रामोपाख्यान** और **अध्यात्मरामायण** में राम के मायाशीर्ष का वृत्तान्त नहीं वर्णित है। **वाल्मीकिरामायण**[2] में किञ्चित् परिवर्तन सहित विस्तारपूर्वक इसका उल्लेख किया गया है।

रघुवंश[3] तथा **सेतुबंध**[4] में सरमा के स्थान पर त्रिजटा ही सीता को आश्वासन देती है। **महानाटक**[5] में एक आकाशवाणी सीता को आश्वासन देती है कि यह राम

---

१. रामा० मं०, यु० कां० (३३७–३६५)
२. वाल्मी० रा० ६।३१–६४
३. रघुवंश (१२, ७४)
४. सेतुबंध (सर्ग ११)
५. महानाटक (अंक १०)

का वास्तविक सिर नहीं है। **अभिषेकनाटक**[1] में सीता को राम-लक्ष्मण दोनों के मायामय शीर्ष दिखलाए जाते हैं।

महानाटक[2] में रावण की एक अन्य युक्ति का उल्लेख है। राम का मायामय शीर्ष दिखलाने के बाद रावण राम का रूप धारण कर लेता है तथा रावण दस मायामय शीर्ष हाथ में लिए सीता के पास आता है, किन्तु सरमा सीता को सावधान करती है।

रावण वध—रामायणमञ्जरी में युद्धकाण्ड के अन्तिम १०० श्लोकों के अन्तर्गत राम-रावण का घोर संग्राम, लक्ष्मण शक्ति तथा रावण वध का वर्णन है।[3]

रामायणमञ्जरी में वर्णित रावण वध के उपर्युक्त प्रसंग में लक्ष्मण शक्ति एक उल्लेखनीय घटना है। प्रायः सभी रामकथा ग्रंथों में यह किसी न किसी प्रकार अवश्य ही वर्णित है। किन्तु **रामोपाख्यान** में लक्ष्मण शक्ति का वर्णन नहीं है। **वाल्मीकिरामायण** तथा रामायणमञ्जरी के अन्तर्गत युद्धकाण्ड के अंत में रावण वध के प्रसंग में लक्ष्मण शक्ति का उल्लेख किया गया है। किन्तु **अध्यात्मरामायण** में युद्धकाण्ड के प्रारंभ में ही लक्ष्मण मूर्छा का प्रसंग वर्णित है।[4]

महानाटक[5] में हनुमान पहले रावण की शक्ति रोक लेते हैं किन्तु रावण का अनुरोध मानकर ब्रह्मा नारद को भेज देते हैं कि वह किसी न किसी तरह से हनुमान को रणभूमि से हटा दें। नारद ऐसा ही करते हैं तथा रावण लक्ष्मण को आहत करने में समर्थ हो जाता है।

रामायणमञ्जरी एवं **वाल्मीकिरामायण** के अन्तर्गत राम-रावण के घोर संग्राम एवं रावण वध की घटनाओं में पूर्ण साम्य है। इनसे पृथक कुछ रामकथा वृत्तान्तों में बहुधा रावण के मर्मस्थान अथवा रावण की मृत्यु की किसी गुप्त युक्ति का उल्लेख है। **अध्यात्मरामायण**[6] के अनुसार रावण के नाभि प्रदेश में अमृत रखा हुआ है, विभीषण से यह जानकर राम ने आग्नेयास्त्र से उस अमृत को सुखाया था।

महानाटक[7] के अनुसार राम ने विश्व कल्याण को दृष्टि में रखकर रावण के

---

१. अभिषेक नाटक (अंक ५)
२. महानाटक (अंक १०)
३. रामा० मं, यु० कां (११९०–१२९८)
४. अध्या० रा०, ६।६
५. महानाटक (अंक १३)
६. अध्या० रा०, ६।११ (५३)
७. महानाटक (१४, २६)

वक्षस्थल पर बाण नहीं चलाया । राम जानते थे कि रावण के हृदय में सीता का निवास था । सीता के हृदय में राम तथा राम में समस्त भुवनावली विद्यमान थी ।

रावण वध के सन्दर्भ में **महाभारत** के अनुसार रावण ने अन्तिम युद्ध के समय राम तथा लक्ष्मण का रूप धारण करने वाले बहुत से मायामय योद्धाओं को उत्पन्न किया था ।[1]

महाभारत के ही अनुसार राम का ब्रह्मास्त्र रावण को इस प्रकार जला देता है कि उसका राख भी शेष नहीं रहा ।[2]

रामायणमञ्जरी के अन्तर्गत रावण वध के बाद युद्ध काण्ड की समाप्ति हो जाती है । युद्ध काण्ड की समाप्ति के बाद तथा उत्तरकाण्ड के प्रारम्भ के पूर्व—अन्तःपुरप्रलापः, रावणसत्क्रिया, विभीषणाभिषेकः, वह्निप्रवेशः, महापुरुषस्तवः, लोकपालदर्शनम्, पुनराख्यायिकम्, भरतानन्दः, भरतसमागमः तथा रामाभिषेकः आदि घटनाओं को आचार्य क्षेमेन्द्र ने अलग से प्रस्तुत किया है ।[3] इसे किसी काण्ड के अन्तर्गत नहीं रखा है । जबकि **वाल्मीकिरामायण** तथा **अध्यात्मरामायण** आदि में इन घटनाओं को युद्धकाण्ड के अन्तर्गत ही वर्णित किया गया है । कथानक व्यवस्था सम्बन्धी इस परिवर्तन में कवि की मौलिकता ही दृष्टिगोचर होती है ।

रामायणमञ्जरी की उपर्युक्त घटनाओं का उसके मूलस्त्रोतों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता है । रावणसत्क्रिया के सन्दर्भ में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि रामायणमञ्जरी, **वाल्मीकिरामायण** तथा **अध्यात्मरामायण** आदि में राम के आग्रह पर विभीषण भाई रावण का अन्तिम संस्कार सम्पन्न करते हैं ।

सीता की अग्निपरीक्षा से भी सम्बन्धित एक ध्यान देने योग्य तथ्य है कि जहाँ प्रायः सभी रामकथा ग्रंथों में यह प्रसंग अवश्य ही सुलभ है, वहीं **महाभारत** में सीता की अग्नि परीक्षा का अभाव है । **रामोपाख्यान** के अनुसार विभीषण तथा अविंध्य सीता को राम के पास ले आते हैं और राम सीता की शपथ तथा वायु, अग्नि, वरुण और ब्रह्मा के साक्ष्य से सन्तुष्ट होकर सीता को ग्रहण कर लेते हैं ।[2]

महाभारत के अतिरिक्त हरिवंश, विष्णु, वायु, भागवत तथा नृसिंह आदि प्राचीन पुराणों में भी अग्नि परीक्षा का निर्देश नहीं मिलता ।

---

१. महाभारत (३, २७४, ८)

२. महाभारत (३, २७४, ३१)

३. रामा० मं०, स्फुट खण्ड (१–१९३)

४. रामोपाख्या न (अध्या [illegible] ७५)

उत्तरकाण्ड

रामायणमञ्जरी में १२६३ श्लोकों के अन्तर्गत सम्पूर्ण उत्तरकाण्ड की कथावस्तु वर्णित है। काण्ड के प्रारम्भ में राजा राम के दरबार में आए हुए विभिन्न ऋषियों-मुनियों का आतिथ्य। अगस्त्य द्वारा राम को राक्षसों की उत्पत्ति के विषय में विस्तार-पूर्वक बताना। सर्वप्रथम विश्रवा तथा देवयानी के पुत्र वैश्रवण का चतुर्थ लोकपाल बनना तथा पुष्पक प्राप्त कर लङ्का में निवास करना। प्रहेति तथा हेति वंश में उत्पन्न राक्षसों का निवास तथा विष्णु द्वारा पराजित होने पर उनका पाताल प्रवेश।

विश्रवा-पुष्पोत्कटा से रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण तथा शूर्पणखा का जन्म। रावणादि तीनों भाइयों की वरप्राप्ति। वैश्रवण का लङ्का त्याग तथा कैलाश पर निवास। राक्षसों का लङ्का में प्रवेश। रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण का क्रमशः मंदोदरी, वज्र-ज्वाला तथा सरमा से विवाह। इन्द्रजित्जन्म।

कुबेर को पराजित कर रावण का पुष्पक को प्राप्त करना। रावण को नन्दिशाप रावण का कैलाश को उठाना। देववती का रावण को शाप देना। रावण द्वारा अनेक राजाओं की पराजय तथा अनरण्य वध। कार्तवीर्य अर्जुन द्वारा रावण का ग्रहण एवं मोक्ष बालि द्वारा रावण की पराजय एवं बालि-रावण मित्रता। यमकिंकरों का वध, वरुण की पराजय, निवातकवचों से मैत्री, मान्धातृ युद्ध, सोमलोकगमन।

रावण द्वारा अनेक कन्याओं का अपहरण। शूर्पणखा को खर-दूषण के साथ दण्डकारण्य भेजना। कुंभीनसी द्वारा मधु की रक्षा, नलकूबरशाप। मेघनाथ द्वारा इन्द्र का बन्धन। अहल्या वृत्तान्त। देवताओं से मेघनाथ की वरप्राप्ति।

हनुमान की जन्मकथा और चरित्र। ऋषि, नृप, कपि, ऋक्ष प्रयाण। राम-सीता का अशोक वन में प्रवेश। जनापवाद। सीता त्याग।

नृग, निमि, उर्वशी, ययाति, श्वान, गृध्र तथा उलूक कथा। श्वेतोपाख्यान, सौदा-स्योपाख्यान।

च्यवन ऋषि के आग्रह से राम का शत्रुघ्न को लवण वध हेतु भेजना। लवण वध एवं शत्रुघ्न का मथुरा में प्रवेश। शम्बूक वध की कथा। दण्डशाप। राजसूय यज्ञ का भरत द्वारा विरोध, वृत्तोपाख्यान। अश्वमेध माहात्म्य, इडा वृत्तान्त। राम का अश्वमेध यज्ञ, कुश-लव द्वारा रामायण का गान। सीता का वसुधा प्रवेश। कालवाक्य के अनुसार लक्ष्मण मृत्यु।

राम द्वारा भरत के पुत्रों (तक्ष-पुष्कल) को तक्षशिला तथा पुष्कलावती, लक्ष्मण के पुत्रों (अगद-चन्द्रकेतु) को अंगदीप तथा चन्द्रावती, कुश को कुशावती तथा लव को

श्रावस्ती का राज्य प्रदान किया जाना तथा शत्रुघ्न द्वारा अपने पुत्रों (सुबाहु-शत्रुघाती) को मथुरा और विदिशा का राज्य प्रदान करना।

राम ने हनुमान और विभीषण को अमरत्व प्रदान कर भाइयों, वानरों तथा नगर-वासियों सहित स्वर्ग के लिए प्रस्थान कर दिया।

उपर्युक्त घटनाओं के आलोक में यह कहा जा सकता है कि **वाल्मीकिरामायण** एवं **अध्यात्मरामायण** की तरह रामायणमञ्जरी का उत्तरकाण्ड भी विभिन्न अन्तर्कथाओं का संग्रह है। अतः इस स्थल पर इन अन्तर्कथाओं का विवेचन नहीं प्रस्तुत किया जाएगा अपितु रामायणमञ्जरी की आधिकारिक कथा से सीधा संबंध रखने वाली घटनाओं का वर्णन ही यहाँ विवेच्य विषय है। यथा—सीता त्याग एवं राम का अश्वमेध, इस काण्ड की प्रमुख घटनाएँ हैं।

सीता त्याग—रामायणमञ्जरी के उत्तरकाण्ड में राम अपने मित्रों द्वारा सीता के विषय में लोकापवाद सुनते हैं। इस लोकापवाद से दुःखी राम लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि वे सीता को दूर निर्जन वन में छोड़ दें। राम के इस आदेश पालन में लक्ष्मण को भी असह्य पीड़ा की अनुभूति होती है। तथापि सुमन्त्र के साथ रथ पर सीता को बैठाकर लक्ष्मण उन्हें वाल्मीकि आश्रम के पास निर्जन वन में छोड़ आते हैं। अनन्तर सीता का करुण विलाप सुनकर वाल्मीकि मुनि उन्हें अपने आश्रम ले आते हैं, जहाँ गर्भवती सीता ने कुछ समय बाद लव और कुश यमज पुत्रों को जन्म दिया।[1]

रामयणमञ्जरी में वर्णित सीता त्याग की यह घटना, उसके मूलस्रोतों में किसी न किसी रूप में अवश्य वर्णित हैं, किन्तु महाभारत के **रामोपाख्यान** तथा पुराणों में जहाँ राम कथा मिलती है, सीता त्याग का संकेत मात्र भी नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ—हरिवंश (१, अध्याय ४१), वायु पुराण (अध्याय ८८), विष्णु पुराण (४, ४) तथा नृसिंह पुराण (अध्याय ४७–५२) आदि।

सम्प्रति सीता त्याग के कारणों पर विचार किया जा रहा हैं। यद्यपि राम कथा संबंधी ग्रंथों में सीता त्याग के भिन्न-भिन्न कारणों का उल्लेख किया गया है किन्तु रामा-यणमञ्जरी के मूलस्रोतों में सीता त्याग के कारण रूप में लोकापवाद का ही वर्णन मिलता है। जैसा रामायणमञ्जरी में वर्णित है कि 'भद्र' नामक मित्र से सीता विषयक जनापवाद सुनकर राम ने उनका परित्याग किया था।

रामायणमञ्जरी एवं **वाल्मीकिरामायण**[2] में सीता त्याग संबंधी घटना में कोई

---

१. रामा० मं०, उ० कां० (७९०-८०११, ८६१, ८६२, ८६३)

२. वाल्मी० रा०, (७१४२–५२)

अन्तर नहीं दिखाई पड़ता है। रघुवंश में भी सीता त्याग का उपर्युक्त कारण दिखाई पड़ता है। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ रामायणमञ्जरी एवं **वाल्मीकिरामायण** में भद्र राम का मित्र बताया गया है। वहीं रघुवंश में वह एक गुप्तचर के रूप में चित्रित है।[1] इसी प्रकार **उत्तररामचरित** तथा **कुन्दमाला** में भी उपर्युक्त कारण का ही उल्लेख मिलता है। **उत्तररामचरित**[2] में उस गुप्तचर का नाम दुर्मुख कहा गया है। **अध्यात्म-रामायण**[3] में इसका नाम विजय माना गया है।

अध्यात्मरामायण[4] में भी यद्यपि लोकापवाद के कारण ही सीता का त्याग होता है किन्तु इसके अनुसार सीता त्याग वास्तविक नहीं कहा जा सकता है। इसमें देवताओं ने सीता के पास आकर कहा—यदि तुम पहले बैकुन्ठ चली जाओ तो रघुनाथ भी वहाँ आकर हमें सनाथ करेंगे। सीता से देवताओं की प्रार्थना सुनकर राम ने कहा—मैं यह सब जानता हूँ। मैं लोकापवाद के बहाने तुम्हें त्याग दूँगा। वाल्मीकि के आश्रम में तुम्हारे दो पुत्र होंगे। बाद में तुम मेरे पास आकर लोगों को विश्वास दिलाने के लिए शपथ करोगी और पृथ्वी में प्रवेश करके बैकुण्ठ चली जाओगी।

रामाश्वमेध—रामायणमञ्जरी के अन्तर्गत उत्तरकाण्ड के अन्त में राम के अश्वमेध यज्ञ का विस्तृत वर्णन मिलता है। राम ने पहले राजसूय यज्ञ सम्पन्न कराना चाहा किन्तु भरत ने इससे भावी विनाश की सूचना देते हुए इसका विरोध किया। इसके बाद लक्ष्मण ने अश्वमेध यज्ञ का माहात्म्य बताते हुए इन्द्र के ब्रह्महत्या दोष निवारण तथा इडा का वृत्तान्त सुनाया। पुनः नैमिष तटपर यज्ञ भूमि की तैयारी, सीता की हेममयी मूर्ति के निर्माण द्वारा अश्वमेध यज्ञ का प्रारम्भ। इसी अवसर पर कुश और लव का रामायण गान तथा राम का लव-कुश एवं सीता से परिचय और सीता का वसुधा प्रवेश भी वर्णित है।[5]

वाल्मीकिरामायण और रामायणमञ्जरी की उपर्युक्त घटना में कोई वैषम्य नहीं है। **अध्यात्मरामायण** में राम के अश्वमेध का वर्णन तो है लेकिन भरत द्वारा राजसूय यज्ञ का विरोध एवं लक्ष्मण द्वारा अश्वमेध यज्ञ के माहात्म्य के वर्णन में वृत्रोपाख्यान एवं

---

१. रघुवंश (१४।३१, ३२)

२. उत्तररामचरित (अंक १)

३. अध्या० रा०, ७।४ (४७, ४८)

४. अध्या० रा०, ७।४ (३२–४४)

५. रामा० मं०, उ० कां० (१०६८–१२१६)

इडा वृत्तान्त नहीं वर्णित है। रघुवंश सहित उपर्युक्त सभी ग्रंथों में अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर सीता की स्वर्णिम मूर्ति का उल्लेख किया गया है।[1]

रामाश्वमेध के विषय में **अग्निपुराण** के अन्तर्गत एक रोचक वर्णन मिलता है। इसके अनुसार राम ने अश्वमेध यज्ञ के द्वारा अपनी ही आराधना की—**वासुदेवं स्वमात्मानमश्वमेधैरथाजयत्**।[2]

रामायणमञ्जरी के प्रायः सभी मूलस्रोतों में राम के ब्रह्महत्यादोष का निर्देश नहीं मिलता किन्तु **स्कन्दपुराण** में राम की ब्रह्महत्या का उल्लेख किया गया है।[3]

रामायणमञ्जरी में वर्णित रामाश्वमेध के सन्दर्भ में कुश-लव से संबंधित कुछ घटनाओं पर विचार करना अत्यावश्यक है जिनका कि रामायणमञ्जरी में वर्णन नहीं है।

महाभारत, हरिवंश पुराण एवं नृसिंह पुराण में कुश-लव से संबंधित किसी घटना का उल्लेख नहीं मिलता।

रामायणमञ्जरी के मूलस्रोतों के अन्तर्गत **उत्तररामचरित** में कुश-लव के जन्म का किञ्चित् परिवर्तित रूप मिलता है। लक्ष्मण के चले जाने के बाद परित्यक्ता सीता वन में प्रसव पीड़ा का अनुभव करने लगीं। उस पीड़ा से निराश होकर वह आत्महत्या के विचार से गंगा में कूद पड़ी। जल ही में उन्होंने दो पुत्रों को जन्म दिया। अनन्तर पृथ्वी तथा गङ्गा देवियाँ सीता को पुत्रों के साथ रसातल ले गयीं। बड़े हो जाने पर गङ्गा ने दोनों पुत्रों को शिक्षार्जन के लिए वाल्मीकि के हाथों सौंप दिया। इस वर्णन के अनुसार कुश तथा लव अपने माता-पिता के विषय में कुछ नहीं जानते हैं। अंतिम अंक में वाल्मीकि की आज्ञा से सीता प्रकट होकर राम के साथ अयोध्या लौटती हैं।[4]

कुछ राम कथाओं में कुश-लव के राम की सेना तथा राम से भी युद्ध करने का वर्णन मिलता है। उस युद्ध के भिन्न-भिन्न कारण प्रचलित हैं किन्तु सर्वाधिक प्रचलित कारण यह है कि कुश-लव ने राम के अश्वमेध के घोड़े को बाँध लिया था। उत्तररामचरित में यज्ञाश्व के कारण सीता के पुत्रों के युद्ध का उल्लेख किया गया है। इसके

---

१. रामा० मं०, उ० कां० (११६८), वाल्मी० रा०, ७।९१ (२४), अध्या० रा० ७।६ (३४), रघुवंश (१४, ८७)।

२. अग्निपुराण (१०, ३३)

३. स्कन्दपुराण—सेतु माहात्म्य (अध्याय २४, ४४)

४. उत्तररामचरित (अंक ५, ६)

अनुसार लव पहले यज्ञाश्व की रक्षा करने वाली राम सेना से तथा बाद में लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु से युद्ध करता है। राम पहुँच कर लव-चन्द्रकेतु का युद्ध बन्द करते हैं और लव तथा कुश से मिलकर उनका परिचय प्राप्त करते हैं। अन्त में वह सीता को पुनः ग्रहण करते हैं।[1]

रघुवंश में कुश द्वारा अयोध्या के जीर्णोद्धार एवं उनके राज्य वैभव का विस्तृत वर्णन भी मिलता[2] है साथ ही कुश और कुमुद्वती के विवाह का भी उल्लेख है।[3]

रामकथा विषयक क्षेमेन्द्र की मौलिकताओं का विवेचन

संस्कृत रामकथा वाङ्मय में क्षेमेन्द्र विरचित रामायणमञ्जरी का महत्त्वपूर्ण योगदान एवं स्थान है। यद्यपि रामायणमञ्जरी वाल्मीकिरामायण का अति संक्षिप्त रूप है जिसमें कवि क्षेमेन्द्र ने वाल्मीकीय कथा का ही अक्षरशः अनुकरण किया है। तथापि ग्रंथ के आद्योपान्त अनुशीलन से पता चलता है कि इसमें कवि ने यत्र-तत्र किञ्चित् सूक्ष्म परिवर्तन भी किया है जो वाल्मीकि रामायण से सर्वथा पृथक एवं नवीन है तथा जिससे कवि की मौलिकता का परिचय प्राप्त होता है। रामायणमञ्जरी में वर्णित क्षेमेन्द्र की मौलिकताओं का विवेचन अधोलिखित है।

सर्वप्रथम ग्रंथ की कथानक व्यवस्था में ही कवि की मौलिकता का दर्शन होता है।[4] ग्रंथकार ने बालकाण्ड के प्रारम्भ तथा अयोध्याकाण्ड की समाप्ति का केवल उल्लेख करके इन दोनों काण्डों को एक ही में जोड़ दिया है। जहाँ अन्य रामायण ग्रंथों में अरण्यकाण्ड का उल्लेख मिलता है वहीं रामायणमञ्जरी में अरण्यपर्व के नाम से संबोधित किया गया है। पुनः इसके अंतर्गत भी भरत से संबंधित घटनाओं को भरतपर्व से संबोधित किया गया है। अनन्तर किष्किन्धाकाण्ड को भी किष्किन्धा पर्व तथा किष्किन्धाकाण्ड में विभाजित किया गया है। इसके अतिरिक्त युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड के बीच में रावणसत्क्रिया, विभीषणाभिषेक, सीता की अग्नि परीक्षा, राम का अयोध्या आगमन एवं अभिषेक आदि कुछ घटनाओं को अलग से वर्णित किया गया है जिसे किसी काण्ड के अन्तर्गत नहीं रखा गया है।

---

१. उत्तररामचरित (अंक ६)

२. रघुवंश—सर्ग १६

३. रघुवंश—सर्ग १६ (८५, ८६, ८७)

४. कथानक व्यवस्था सम्बन्धी मौलिकता के लिए सविस्तार द्रष्टव्य—शोधप्रबन्ध, अध्याय ३, पृ० सं० (७८–८१)

रामायणमञ्जरी के शबरी प्रसंग में क्षेमेन्द्र की एक मौलिकता दर्शनीय है। वाल्मीकिरामायण प्रभृति प्रायः सभी रामकथा साहित्य में शबरी एक वृद्धा तपस्विनी के रूप में चित्रित है किन्तु रामायणमञ्जरी में चित्रित शबरी रूप लावण्ययुक्त तपस्विनी है—

स श्री सुतोपदिष्टेन वर्त्मना शनकैर्व्रजन् ।
ददर्श सिद्धशबरीं मूर्तामिव तपःश्रियम् ॥

स्फाटिकेनाक्षसूत्रेण विभूषितकुचस्थलाम् ।
मुखेन्दुश्रुतलावण्यबिन्दुमालाङ्कितामिव ॥

ललाटफलकालीनपुण्यभस्मात्रिपुण्ड्रकाम् ।
शुभ्रां धवलसंपृक्तचन्द्रामिव विभावरीम् ॥

तां वल्कलव्रतीं दिव्यप्रभापटलपल्लवाम् ।
कल्पवल्लीमिवालोक्य क्लमं तत्याज राघवम् ॥[1]

इस प्रकार रामायणमञ्जरी के रूप लावण्ययुक्त तपस्विनी शबरी का चित्रण अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है।

युद्धकाण्ड के अन्तर्गत सेतुबंध के प्रसंग में समुद्र और दशरथ की मित्रता का उल्लेख भी कवि की एक अन्य मौलिकता से ही परिचय कराता है। इस संदर्भ में समुद्र राम से कहता है—

ततो जलनिधिः प्रीत्या काकुत्स्थमवदत्पुनः ।
राजा दशरथो नाम ममाभूद्दयितः सुहृत् ॥

पुरा देवासुरे युद्धे स चाहं च समागतौ ।
एकीभावमिवापन्नौ सुरसाहाय्यकर्मणि ॥

स निर्जितामररिपुर्वरं लेभे सुरेश्वरात् ।
कुलचूडामणेर्यस्य त्वज्जन्म प्रथमं फलम् ॥

अयोध्यायां गृहे तस्य मासमध्युषितः सुखम् ।
सौहार्दप्रीतिसर्वस्वैरुपचारैरकृत्रिमैः ॥

सोऽहं तव पितुर्मित्रं तत्स्नेहे निष्प्रतिक्रियः ।
मन्ये कृतघ्नमात्मानं स्पृष्टं पापशतैरपि ॥[2]

---

१. रामा० मं०, अ० प० (११०२–११०५)

२, रामा० मं०, यु० कां० (२४४–२४८)

इस प्रकार रामायणमञ्जरी के उपर्युक्त दोनो वर्णन अन्य किसी रामकथा में नहीं मिलते। किन्तु इसके अतिरिक्त दो प्रसंग ऐसे हैं जो वाल्मीकिरामायण में नहीं मिलते हैं। यथा रामायणमञ्जरी में कवि ने मंथरा द्वारा कैकेयी के भड़काये जाने के कारण का उल्लेख किया है। इसके अनुसार राम के राज्याभिषेक का समाचार पाते ही मंथरा वज्राहत सी पीड़ित हो उठी, क्योंकि बचपन में राम के द्वारा उसके ऊपर पादप्रहार का उसे स्मरण हो जाता है—

शैशवे किल रामेण पुरा प्रणयकोपतः।
चरणेनाहता तत्र चिरं कोपमुवाह सा ॥[1]

इसी कारण से वह कुटिलाचारिणी मंथरा विष से भरी नागिन के समान अत्यंत कुपित हो कैकेयी के मंदिर में पहुँचकर उसे राम के विरुद्ध भड़काती है। इसके अतिरिक्त केवल **अग्निपुराण** में राम द्वारा मंथरा का उत्पीड़न ही कैकेयीं के भड़काने तथा राम के वनवास का कारण बताया गया है।[2]

इसी प्रकार युद्धकाण्ड के प्रारम्भ में 'विभीषणमातृवाक्यम्' का प्रसंग वर्णित है, जिसके अनुसार विभीषण की वृद्धा मां विभीषण से अनुरोध करती है कि वह जाकर रावण को समझाये कि सीता को वापस कर दे, वरना रावण सहित लंका का शीघ्र ही विनाश हो जाएगा।[3] **भट्टिकाव्य** के अतिरिक्त अन्य किसी रामकथा ग्रंथ में यह प्रसंग नहीं वर्णित है। इसके अनुसार भी विभीषण की माँ उससे अनुरोध करती है कि वह जाकर भाई रावण को समझावे।[4]

यद्यपि उपर्युक्त दोनो प्रसंग अन्य स्थलों पर वर्णित होने के कारण सर्वथा मौलिक नहीं कहे जा सकते। किन्तु जिस रामायणमञ्जरी की सम्पूर्ण कथावस्तु **वाल्मीकिरामायण** पर आधारित हो उसमें वर्णित उक्त दोनों प्रसंग **वाल्मीकिरामायण** में सुलभ न होने के कारण उन्हें क्षेमेन्द्र की मौलिकता के रूप में माना जा सकता है।

उपर्युक्त मौलिकताओं के अतिरिक्त रामायणमञ्जरी में कवि द्वारा किए गए कुछ नामों में परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होते हैं जो क्षेमेन्द्र की मौलिकता का ही स्पष्ट परिचय

---

१. रामा० मं०, अयो० कां० (६६७)
२. अग्निपुराण, अध्याय ५ (८)
३. रामा० मं०, यु० कां० (१–१८)
४. भट्टिकाव्य, सर्ग १२ (१)

प्रस्तुत करते हैं। यथा—अयोध्याकाण्ड के अंतर्गत अंधमुनि पुत्र के रूप में 'यज्ञदत्त' का उल्लेख,[1] अरण्यपर्व में पंचाप्सर वर्णन के प्रसंग में 'दमकर्णि' ऋषि का उल्लेख[2], रावण की माँ के रूप में पुष्पोत्कटा का उल्लेख[3] तथा उत्तरकाण्ड के अंतर्गत 'देववती'[4] नामोल्लेख आदि। प्रायः रामकथाओं में अंधमुनि पुत्र अथवा श्रवण कुमार का उल्लेख मिलता है किन्तु रामायणमञ्जरी में उसका नाम 'यज्ञदत्त' ही वर्णित है। पंचाप्सर के प्रसंग में प्रायः माण्डकर्णि का उल्लेख मिलता है किन्तु रामायणमञ्जरी में 'दमकर्णि' ही वर्णित है। रावण की माँ का नाम सर्वत्र कैकसी ही उल्लिखित है किन्तु रामायणमञ्जरी में पुष्पोत्कटा वर्णित है। इसी प्रकार जहाँ सभी रामकथाओं में उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत 'वेदवती' प्रसंग मिलता है वहीं रामायणमञ्जरी में नाम परिवर्तन के साथ 'देववती' प्रसंग वर्णित है।

तृतीय अध्याय समाप्त

---

१. रामा० मं०, अयो० का० (६३५–६७४)

२. रामा० मं०, अ० प० (४३४–४४१)

३. रामा० मं०, उ० कां० (१२५)

४. रामा० मं०, उ० कां० (३०६–३२)

अध्याय ४

पात्र समीक्षा

रामायणमञ्जरी का नायक

मुनिश्रेष्ठ नारदजी से रामकथा के श्रवण, क्रौंच पक्षी के करुण शोक तथा ब्रह्मा की प्रेरणा से महर्षि वाल्मीकि ने जिस लोकप्रिय, सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय, स्वतः स्फूर्त काव्य की सर्जना की, वह न केवल आदि काव्य के रूप में ही प्रतिष्ठित हुआ अपितु परवर्ती साहित्य जगत के शास्त्रीय पक्ष के लिए भी मील का पत्थर बन गया। महर्षि के इसी काव्य के आधार पर साहित्य में सर्वप्रथम महाकाव्य के लक्षणों का परिज्ञान हुआ। किंवा, वाल्मीकि द्वारा चित्रित रामचरित का विश्लेषण करके ही साहित्य जगत में नायक तथा उसके सात्त्विक गुणों की कल्पना का भी प्रथम प्रबोध हुआ। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण जहाँ एक तरफ महाकाव्य की कल्पना का उद्भव स्थान है, वहीं दूसरी तरफ नायक के गुणों का स्वरूप जानने की कुञ्जी भी है। भरत मुनि ने संभवतः इसी आधार पर नाट्य शास्त्र में श्रेष्ठ नायक के आठ सात्त्विक गुणों का भी विश्लेषण किया है। अब चूंकि रामायणञ्जरी एक उपजीवी काव्य है जिसके नायक (राम) आदिकाव्य के ही नायक हैं। अतः उनमें भी श्रेष्ठ नायक के सभी गुणों का पूर्ण सामञ्जस्य है, जिसका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

नायक के लक्षण—साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार त्यागी (दानशील, दाता) कृती (वीर, कृतकार्य अथवा विद्वान्, पुण्यात्मा), कुलीन (सत्कुलोत्पन्न), लक्ष्मीवान् अथवा शोभा सम्पन्न, रूप, यौवन और उत्साह से युक्त, दक्ष (क्षिप्रकारी) जिसमें प्रजाएँ अनुरक्त हों (Popular), तेजस्वी, चतुर और शीलवान् (इन गुणों से युक्त) नेता या नायक होता है।[1]

नायक के सात्विक गुण—आचार्य धनञ्जय ने नायक के सात्विक गुणों का वर्णन करते हुए कहा है कि—शोभा, विलास, मधुरता, गम्भीरता, स्थिरता, तेजस्विता, लालित्य और उदारता—ये आठ पुरुषों (नायकों) के गुण हैं।[2]

---

१. साहित्यदर्पण—आचार्य विश्वनाथ ३।२०

२. दशरूपक—आचार्य धनञ्जय २।१०

रामायणमञ्जरी के नायक राम में उपर्युक्त लक्षणों एवं सात्विक गुणों का पूर्ण सामञ्जस्य है। इसका सोदाहरण स्पष्टीकरण उनके चरित्र-चित्रण में दर्शनीय है।

राम का चरित्र-चित्रण

राम के उज्ज्वल चरित्र की आभा से रामायणमञ्जरी का स्थल-स्थल चमत्कृत दिखाई पड़ता है। उनके चरित्र में निहित सद्‌गुणों की ही छटा सर्वत्र दर्शनीय है। राम सद्‌गुणों के समुद्र हैं। मातृ-भक्ति, पितृ-भक्ति, गुरु-भक्ति, भ्रातृ-स्नेह, सखा-स्नेह एक-पत्नीव्रत, प्रजारञ्जकता, शरणागत वत्सलता, धर्म परायणता, मर्यादा संरक्षण, साधु संरक्षण दुष्ट-दलन, प्रतिज्ञापालन, सत्य, सौहार्द, दया, क्षमा, मृदुता, धीरता, वीरता, गम्भीरता पराक्रम, विनय, शान्ति आदि अनेकानेक सद्‌गुणों का समावेश राम के चरित्र में विद्यमान है। संसार में एक साथ इतने महान गुण एक व्यक्ति में कहीं नहीं पाये जाते। केवल राम ही एक मात्र ऐसे आश्रय स्थान हैं जिनके चरित्र में उपर्युक्त सभी गुणों का मंजुल समन्वय देखा जा सकता है। सम्प्रति रामायणमञ्जरी के विभिन्न उद्धरणों से उपर्युक्त गुणों के आलोक में राम का चरित्रांकन किया जा रहा है।

मातृ भक्ति—राम की मातृ भक्ति विलक्षण है। जन्मदात्री माँ कौशल्या को तो उन्होंने स्वर्ग से भी बढ़कर स्थान दिया है, साथ ही साथ अन्य माताओं (कैकेयी एवं सुमित्रा) के प्रति भी उनका वही भाव एवं स्नेह देखने को मिलता है। पुत्र अपनी माँ से एक पल भी दूर नहीं रहना चाहता किन्तु किन्हीं परिस्थितियों वश यदि उसे अलग होना पड़ा तो तज्जन्य वियोग-दुःख अत्यंत असह्य होता है। ठीक ऐसी ही स्थिति वन गमन के समय राम के समक्ष उपस्थित हो जाती है। राम माँ कौशल्या के पास पहुँचकर उनके चरणों में गिरकर विलाप करने लगते हैं।[1] यद्यपि राम को वनवास का अधिक कष्ट नहीं है परन्तु इस स्थल पर माँ के चरणों में गिरकर राम का विलाप करना केवल स्नेहासिक्त माता कौशल्या से विक्षोह का ही परिणाम है। राम का वनगमन तथा कौशल्या से विक्षोह तो निश्चित ही है तथापि माँ के वियोग दुःख को विस्मृत कराने तथा उनकी सेवा सुश्रूषा हेतु सीता को यहीं (अयोध्या में) रहने के लिए कहते हैं।[2] राम की मातृ भक्ति का तो यह अनुपम उदाहरण है। इस स्थल पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि राम अपनी माँ के सुख-दुःख एवं सेवा सुश्रूषा के विषय में कितने अधिक चिन्तित हैं, अंत में माता कौशल्या को संतोष देते हुए राम कहते हैं—वात्सल्य स्नेह में विह्वल हे माता व्यर्थ में दुःखी मत हो। वनवास की अवधि समाप्त होने पर मैं पुनः तुम्हारा दर्शन करूँगा।[3]

---

१. रामा० मं०, अयो० का० (श्लोक सं० ८८१, ८६४)

२. वही (८६८)

३. वही (८४५)

लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न से अधिक राम को प्यार करने वाली माँ सुमित्रा के प्रति राम की असीम भक्ति होना स्वाभाविक है। जिसने अपने पुत्र लक्ष्मण को राम एवं सीता के रक्षार्थ वन जाने में जरा भी संकोच नहीं किया अपितु स्वयं तथा पुत्र को धन्य माना उस ममतामयी माँ के प्रति राम की भक्ति एवं स्नेह के विषय में कहना ही क्या।

माता कौशल्या तथा सुमित्रा के प्रति राम की भक्ति होना स्वाभाविक ही है किन्तु सर्वजननिन्द्य माता कैकेयी जिसके कारण उन्हें वनवास दुःख, पिता की मृत्यु तथा जन्मदात्री कौशल्या से विछोह प्राप्त हुआ उसके प्रति भी राम के मन में असीम स्नेह एवं भक्ति ही देखने को मिलती है। माँ कैकेयी के मुँह से अपने वनवास को सुनकर तथा तज्जन्य पिता की दुरवस्था को देखते हुए भी राम के मन में कैकेयी के प्रति किसी प्रकार का विकार नहीं उत्पन्न होता, अपितु हर्ष गद्‌गद वाणी में ही वे उनका उत्तर देते हैं।[1] किंवा, कैकेयी के इस कुकृत्य की प्रायः सभी ने निन्दा की। यहाँ तक कि स्वयं उसके पुत्र भरत ने भी कई अपमानित शब्दों द्वारा उसको धिक्कारा है।[2] किन्तु राम ने किसी भी स्थल पर न तो उन्हें दोषी ठहराया और न ही उनकी निन्दा की, अपितु सभी स्थलों पर उनकी प्रशंसा करते हुए उनके दोषमार्जन का ही प्रयास किया है। यह कैयेयी के प्रति उनकी भक्ति एवं स्नेह का ही परिचय है।

पितृ भक्ति—महाराज दशरथ के प्राणप्रिय राम की पितृ भक्ति भी अनूठी है। पिता की स्पष्ट आज्ञा के पालन की बात ही क्या, उनका संकेत मात्र पाकर राम ने प्रसन्नता पूर्वक १४ वर्ष की अवधि के लिए अयोध्या का परित्याग कर वनवास स्वीकार किया। दशरथ ने वनगमन के लिए उन्हें स्पष्ट शब्दों में आज्ञा नहीं दी थी, अपितु माता कैकेयी के द्वारा ही पिता की मौन सम्मति का पता लग गया था, उसी को राम ने सहर्ष अङ्गीकृत किया। भारी से भारी विपत्ति को सम्पत्ति मानकर शिरोधार्य कर लिया। कैकेयी के द्वारा पिता के दुःख का कारण तथा अपने वनवास को जानकर राम हर्ष पूर्वक कहते हैं कि पिता के शासन को निःसंकोच शिरोधार्य करके मैं वन जाने के लिए तैयार हूँ किन्तु एक ही बात मेरे हृदय को विदीर्ण कर रही है कि पिताजी मेरे वियोग कष्ट के कारण कुछ बोल नहीं रहे है।[3] यह राम की अनुपम पितृ भक्ति का ही उदाहरण है कि कैकेयी के द्वारा ही पिता की आज्ञा का संकेत पाकर वनगमन के लिए तैयार हो जाते हैं, साथ ही दशरथ के कष्ट का संकेत भी इस स्थल पर राम की पितृ भक्ति ही प्रस्तुत करता है।

---

१. रामा० मं०, अयो० कां० (८१६, १७, १८, १९)
२. रामा० मं०, अ० प० (३४–३७)
३. रामा० मं०, अयो० कां० (८२०, २१, २२)

इसी प्रकार राम के भावी वियोग दु:ख से दु:खी माता कौशल्या जब वात्सल्या-सिक्त होकर राम को पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन कर वन न जाने के लिए कहती हैं तो राम धर्म एवं कर्तव्य का आश्रय लेकर उनको समझाते हुए कहते हैं—महान कुल में उत्पन्न मेरे लिए पिता की आज्ञा कठिक से कठिन परिस्थितियों में भी शिरोधार्य है। हे माँ ! आपको इसके लिए कष्ट का अनुभव नहीं करना चाहिए। वनवास की अवधि पूर्ण करके मैं पुनः तुम्हारे दर्शन करूँगा।[1] इस स्थल पर कौशल्या वात्सल्यासिक्त होकर राम को पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन करने के लिए भी कह देती हैं परन्तु धर्मधुरीण, पितृभक्त राम पिता की आज्ञा को सर्वोपरि सिद्ध करते हुए उन्हें सान्त्वना देते हैं। यह उनकी अनुपम पितृभक्ति ही है वरना, माता की आज्ञा को ही सर्वोपरि मानकर राम यदि वन को न जाते तो भी किसी मर्यादा का विशेष अतिक्रमण न होता। क्योंकि शास्त्रों में माँ का स्थान पिता से भी श्रेष्ठ कहा गया है। परन्तु राम ऐसा न करके अपनी अनुपम पितृभक्ति का परिचय देते हुए (माता, पिता) दोनों के प्रति धर्म, कर्तव्य एवं आज्ञा पालन का सुन्दर एवं समन्वित रूप प्रस्तुत करते हैं।

इसी प्रकार क्रोधावेश में लक्ष्मण जब पिता के लिए अपमान जनक शब्दों का प्रयोग करते हुए कहते हैं कि स्त्री के वशीभूत पिताजी ने बिना विचारे ही भरत को यदि राज्य प्रदान कर दिया है तो आज मेरा धनुष सम्पूर्ण कल्प का अंत कर देगा। ऐसी परि-स्थिति में राम ने लक्ष्मण को धर्म कर्तव्य एवं श्रेष्ठ की आज्ञा पालन का महत्व समझाते हुए उनके मन को शीतल किया।[2] यह राम की पितृ भक्ति ही है कि लक्ष्मण के मन में निर्दोष पिता के प्रति उत्पन्न कालुष्य को पल भर में ही भस्म करके उन्हें शीतल बना दिया।

अरण्य पर्व के अन्तर्गत भरत जब राम से अयोध्या वापस चलकर राज्य स्वीकार करने के लिए निवेदन करते हैं तो उस समय राम उन्हें विस्तृत उपदेश देते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार पिता की आज्ञा से मैं वन में निवास कर रहा हूँ उसी प्रकार तुम भी उनकी आज्ञा का पालन करते हुए अयोध्या का राज्य संचालन कर उनके सत्य की रक्षा करो। राम द्वारा भरत को दिए गए विस्तृत उपदेश के उक्त प्रसंग में सर्वदा उनकी पितृ भक्ति ही दिखाई पड़ती है।[3]

राम के पितृ भक्ति की पराकाष्ठा उस समय दर्शनीय है जब उन्हें भरत से यह समाचार मिलता है कि पिताजी उनके वियोग शोक में प्राण त्याग दिए। यह सुनते ही

---

१. रामा० मं०, अयो० कां० (८४३, ४४, ४५)

२. रामा० मं०, अयो० कां० (८४६–८५७)

३. रामा० मं०, अ० प० (२५२–२५७)

वज्राहत राम पृथ्वी पर उसी प्रकार गिर पड़े जैसे जड़ कटा हुआ वृक्ष कबैले जल में गिर जाय। थोड़ी देर के लिए वे संज्ञा शून्य हो गये। पुनः कुछ चेतना प्राप्त होने पर विलाप करते हुए कहते हैं—हे पिताजी आप हमें छोड़कर कहाँ चले गये। मेरे कारण आपने शरीर त्याग दिया, मैं आपको जलाञ्जलि भी न दे सका। हे लक्ष्मण ! तुम्हारे पिताजी, हे वैदेही ! तुम्हारे श्वसुर जीं स्वर्ग सिधार गए, इत्यादि कथनों के द्वारा राम बार-बार विलाप करते रहे।[1]

गुरु भक्ति—गुरु के प्रति कैसी आदर बुद्धि, कितना विश्वास, उनकी सेवा में कैसी प्रसन्नता और उनके साथ बोल-चाल में कैसी विनम्रता होनी चाहिए इन सब आदर्शों का मंजुल समन्वय राम की गुरु भक्ति में दर्शनीय है। मुनि विश्वामित्र राम के शिक्षा गुरु हैं। राम ने उनसे विविध विद्याओं की शिक्षा ग्रहण की है। इसीलिए विश्वामित्र के प्रति राम की असीम गुरु भक्ति देखने को मिलती है। ताटका वध के लिए गुरु से आदेश मांगते हुए राम कहते हैं—हे भगवन् ! मैं पिता के द्वारा आपके आदेश पालन हेतु नियुक्त किया गया हूँ, इसलिए आपके द्वारा आदेश किया हुआ कार्य मेरे द्वारा भली प्रकार से पूर्ण होना चाहिए।[2] प्रस्तुत प्रसङ्ग से ही राम की गुरु के प्रति आदर बुद्धि, विश्वास, विनम्रता एवं आज्ञा पालन स्वयमेव स्पष्ट हो जाता हैं।

विश्वामित्र के साथ वन में रहते हुए राम की गुरु भक्ति स्थल-स्थल पर दर्शनीय है। गुरु के आदेशों का सम्यक् निर्वाह करते हुए राम उनके विश्राम करने पर विश्राम करते, शयन करने पर शयन करते तथा चलने पर अनुगमन करते थे।[3] निष्ठापूर्वक गुरु-भक्ति में संलग्न राम विश्वामित्र के साथ मिथिला पहुँचते हैं। वहाँ जनक यज्ञ में भी गुरु विश्वामित्र से आज्ञा प्राप्त करके ही धनुर्भङ्ग करते हैं।[4]

शिक्षा गुरु विश्वामित्र के प्रति राम की भक्ति तो अनुपम ही है साथ ही साथ कुलगुरु वशिष्ठ के प्रति भी उनका आदर-भाव, उनकी विनम्रता, आज्ञाकारिता एवं असीम भक्ति रामायणमञ्जरी के विभिन्न संदर्भों से सूचित होती है। अरण्य पर्व के अन्तर्गत भरत के साथ आये हुए गुरु वशिष्ठ के प्रति आदर भाव राम के वचनों में दर्शनीय है।[5] रामा-

---

१. रामा० मं०, अ० प० (२०७–२१२)

२. रामा० मं०, बा० कां० (१४१)

३. रामा० मं०, बा० कां० (श्लोक सं० १७०, १८५, १८६, १८८, २०७, २०८, २७३, ३१४, ३१७, ४७८, ४८०)

४. रामा० मं०, बा० कां० (४६८, ५००, ५०१)

५. रामा० मं०, अ० प० (२१८, २२१, २२५, २८३, २८८, ३०३, ३०६, ३०७)

भिषेक[1] तथा उत्तरकाण्ड के अनेक स्थलों में राम की गुरु वशिष्ठ के प्रति भक्ति दर्शनीय है।[2] इन स्थलों में राम की आज्ञाकारिता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। गुरु वशिष्ठ से सभी कार्यों में परामर्श लेना राम का धर्म एवं कर्तव्य था।

भ्रातृ-स्नेह—राम का भ्रातृस्नेह भी अतुलनीय था। बचपन से ही राम अपने भाइयों से बहुत प्रेम करते थे। सदा उनकी रक्षा करते और उन्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे। यद्यपि राम का सभी भाइयों के साथ समान भाव से पूर्ण प्रेम था, उनके मन में कोई भेद नहीं था, तथापि लक्ष्मण के प्रति उनका कुछ विशेष अनुराग ही दिखाई पड़ता है।[3] यही कारण है कि लक्ष्मण भी जन्म से लेकर स्वर्गारोहण तक एक पल के लिए भी राम से अलग नहीं रहना चाहते। राम के सुख में सुखी तथा दुःख में परम दुःखी अनुभव करना लक्ष्मण का जैसे धर्म, कर्तव्य एवं परम लक्ष्य था। राम के अतिरिक्त उनके मन में किसी आश्रय, सुख या शान्ति का कोई स्थान नहीं था। इसलिए राम को वे प्राणों से भी अधिक प्रिय थे। युद्ध काण्ड के अन्तर्गत इन्द्रजित के साथ रात्रि युद्ध में आहत एवं रक्त से सने हुए, संज्ञा शून्य लक्ष्मण को देखकर राम जो हृदय विदारक करुण विलाप करते हैं, उसमें भाई लक्ष्मण के प्रति उनका अप्रतिम स्नेह दर्शनीय है[4]—

विलोक्य लक्ष्मणं दीनं शयानं रूधिरौक्षितम्।
वाष्पव्याप्तमुखो रामः क्षामस्वरमभाषत॥

हा सुखभ्रष्टसौमित्रे मदर्थे त्यक्तजीवित।
भूमिमालिङ्ग्य सुप्तोऽसि कथं मम पराङ्मुखः॥

सर्वत्र सुहृदः सन्ति सन्तिसंबन्धवान्धवाः।
अभिन्नजन्मदेहस्य दुर्लभः स सहोदरः॥

मन्त्री बन्धुः सुतः शिष्यः सुहृद्योधः पथानुगः।
लक्ष्मणेन समो भ्राता भाग्यहीनैर्न लभ्यते॥

भग्नाभिमानसर्वस्वः कथं जीवितुमुत्सहे।
छिन्नोऽयं यस्य सौमित्रिर्दक्षिणो दक्षिणो भुजः॥

भ्रातः सीतावियोगेऽपि नोक्तोऽसि परुषं मया।
समन्युरिव मां कस्मान्न कस्यान्नाभिभाषसे॥

---

१. रामा० मं०, रामाभिषेकः (१७१, १७८)
२. रामा० मं० उ० कां० (२–७)
३. रामा० मं०, बा० कां० (७८)
४. रामा० मं०, यु० कां० (५१३–५२०)

क्वासौ मदाज्ञाप्रणयी मयि सेवारसस्तव ।
सुखसुप्तो यदद्यापि निर्भयो न विवध्यसे ॥

लक्ष्मण के प्रति राम के उक्त करुण विलाप में अनुपम भ्रातृ स्नेह की पराकाष्ठा का परिचय मिलता है । इन्द्रजित वध के बाद आहत लक्ष्मण को गोद में लेकर उनका शरीर चूमते हुए अश्रुपूरित नेत्रों से युक्त राम के करुण विलाप में भी भ्रातृ स्नेह देखा जा सकता है ।[1] लक्ष्मण शक्ति के समय तो राम भाई को देखकर रोते हुए मूर्छित हो जाते हैं ।[2] जिस प्राणप्रिय भाई लक्ष्मण के लिए राम ने इतना विलाप किया तथा जो यावत् जीवन अहर्निश एक पल के लिए भी राम से अलग न रहा, उसी का कालवाक्य की प्रतिज्ञा में बँध जाने के कारण आपको परित्याग करना पड़ा ।[3] राम के लिए लक्ष्मण का यह वियोग दुःख इतना असह्य हो गया कि उन्हें दशों दिशाएँ शून्य सी प्रतीत होने लगी—

रामोऽपि तद्विरहितः शून्या मेने दिशो दश ।[4]

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिस व्यक्ति के मन में किसी दूसरे के प्रति जितनी श्रद्धा एवं भक्ति होती है उतनी ही दूसरे के मन में भी उसके प्रति होती है । भरत के मन में राम के प्रति अपार श्रद्धा एवं भक्ति का स्पष्ट एवं विशद परिचय भरत पर्व में मिलता है ।[5] राम वनवास का कारण अपने को जानकर भरत बार-बार विलाप करते हुए भूमि पर मूर्छित हो गिर पड़ते हैं । राम के प्रति अपार श्रद्धालु, विनयी, सत्यव्रती, भरत को यद्यपि सभी की शङ्का का पात्र बनना पड़ा किन्तु उनके उज्ज्वल चरित्र में निहित राम भक्ति की दिव्य ज्योति से रामायणमञ्जरी का एक-एक स्थल प्रकाशित है । राम का अन्तः इस तथ्य को भली-भाँति जानता है । इसीलिए तो निर्दोष एवं प्रिय भरत की उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है । भरत की सेना को आते देखकर शङ्का करते हुए लक्ष्मण क्रोधावेश में आ जाते हैं । लक्ष्मण के इस क्रोध और शङ्का का निवारण करते हुए राम कहते हैं—"हे लक्ष्मण ! उच्चकुलोत्पन्न, बुद्धिमान, वृद्धजनसेवी व्यक्तियों के मन में विकार नहीं उत्पन्न होते । भरत मुझमें नित्य भक्ति, विशद आशय वाला धीर तथा सद्वृत्ति युक्त है । अतः उसके विषय में इस प्रकार की तुम्हारी शङ्का व्यर्थ ही है । फिर यदि तुम्हें राज्य की इच्छा है तो निसंदेह भरत मेरी आज्ञा से तुम्हें सौंप देगा ।"[6] राम की इस उक्ति में भरत के प्रति उनके स्नेह भाव का प्रत्यक्ष दर्शन होता है ।

---

१. रामा० मं०, यु० का० (११५७, ११५८)
२. रामा० मं०, यु० का० (१२२३, १२२४, १२२५)
३. रामा० मं०, उ० कां० (१२४०, ४१, ४२)
४. रामा० मं०, उ० कां० (१२४५)
५. रामा० मं०, अ० प० (भरतपर्व, १–३८)
६. रामा० मं०, अ० प० (१६३–१६७)

पुनः जब भरत राम के पास पहुँचते हैं तो चीर जटा धारण किए हुए भाई राम को देखकर विलाप करते हुए मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ते हैं। मूर्छा से गिरे भरत को भुजाओं के सहारे उठाकर राम उन्हे गोद में ले लेते हैं तथा प्रेम पूर्वक उनके सिर को सहलाते हुए राम के विलापाश्रु की धारा दुर्दिन जल धारा की भाँति प्रवाहित होने लगी।[1] राम के अद्‌भुत एवं प्रगाढ भ्रातृ स्नेह का परिचय इस स्थल से प्राप्त होता है।

अंत में भरतादि द्वारा विविध प्रकार से निवेदन करने पर भी राम जब अयोध्या लौटना स्वीकार नहीं किये तो वज्राहत भरत—भाई राम के पैरों में गिर कर विलाप करते हुए बार-बार निवेदन किए। भरत की यह दशा देखकर राम उन्हें अङ्क में लेकर वात्सल्याश्रु से अभिषेक करते हुए कहते हैं—हे भरत तुम्हारे इस अगाध स्नेह को देखते हुए भी मेरा मन इस महान कुल धर्म के सत्य को त्यागने में असमर्थ है।[2]

इसी प्रकार 'रामाभिषेक' के अन्तर्गत राम के भ्रातृ स्नेह का परिचय एक और स्थल पर मिलता है। लङ्का विजय के बाद अयोध्या लौटते समय राम हनुमान के द्वारा अपने आगमन की पूर्व सूचना भरत के पास भेजते हैं।[3] पुनः अयोध्या में पहुँचने पर दीर्घ प्रवास के बाद सम्मिलन की उत्सुकता में राम पुष्पक पर से ही भाई भरत को अपनी बाँहों में खींचकर बार-बार आलिंगन करने लगे।[4] उक्त दोनों स्थलों में भी राम के असीम एवं अनुपम भ्रातृस्नेह का दर्शन होता है।

इसके बाद राम का अभिषेक हुआ। राज्य करते समय भी राम प्रत्येक कार्य में अपने भाइयों का परामर्श लिया करते थे। जिस किसी प्रकार से उनको सुख पहुँचाने एवं प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे।

लक्ष्मण और भरत के प्रति तो राम का असीम स्नेह विदित ही है, शत्रुघ्न के प्रति भी उनके अनुपम भ्रातृस्नेह का दर्शन होता है। एक समय जब लवणासुर के अत्याचारों से घबराये हुए ऋषियों ने उसके वध हेतु राम से प्रार्थना की तो इस कार्य के लिए सूक्ष्म-दर्शी भ्रातृस्नेही राम ने लक्ष्मण और भरत को आदेश न देकर शत्रुघ्न को नियुक्त किया।[5]

---

१. रामा० मं०, अ० प० (१७६–१७९)
२. रामा० मं०, अ० प० (२९९, ३००, ३०१)
३. रामा० मं०, रामाभिषेक (१५९, १६०)
४. वही (१७०)
५. रामा० मं०, उ० कां० (९४४, ९४५)

उक्त स्थल से राम के भ्रातृस्नेह में सूक्ष्मदर्शिता का भी परिचय मिलता है। सूक्ष्मदर्शी राम इस बात को जानते हैं कि शत्रुघ्न कहीं ऐसा न सोच बैठे कि भाई भरत तथा लक्ष्मण राम के आदेशों का पालन करते हुए उनकी भक्ति में संलग्न रहे किन्तु इस निमित्त मुझे ही कोई अवसर नहीं प्राप्त हुआ। इसीलिए राम ने उन्हें लवणासुर के वध हेतु नियुक्त किया। यही नहीं राम ने उन्हें मथुरा के राज्य पर अभिषिक्त भी कर दिया— **कालेन मथुरामेव जगाम भ्रातुराज्ञया।**[१] यद्यपि भाई राम से अलग रहकर मथुरा का राज्य स्वीकार करना शत्रुघ्न को अच्छा न लगा किन्तु बड़े भाई की आज्ञा शिरोधार्य करना उनका परम कर्तव्य था।

पत्नी प्रेम—सीता के प्रति राम का आदर्श प्रेम उनके महान एकपत्नीव्रत का साक्षात् उदाहरण है। यदि सम्पूर्ण रामकथाओं का स्थूल रूप से अनुशीलन किया जाय तो पता चलता है कि सीता के ही कारण राम ने रावण से युद्ध कर उसका वध किया। प्रत्येक राम कथा की शेष घटनाएँ भी इसी हेतु के इर्द-गिर्द घूमती हैं। इस तथ्य के द्वारा सीता के प्रति राम को अनुपम प्रेम का ही संकेत प्राप्त होता है। ठीक यही बात रामायण-मञ्जरी के विभिन्न स्थलों में भी दर्शनीय है। रामायणमञ्जरी में राम का पत्नी प्रेम दो रूपों में देखा जा सकता है। प्रथम तो सम्भोगश्रृंगार के वर्णन में विवाह के अवसर पर[२], विवाहोपरान्त अयोध्या आगमन पर,[३] चित्रकूट में त्रिपथगातीर[४] पर, काकाक्षिशातनम्[५] के प्रसंग में तथा लङ्का विजय के पश्चात् अयोध्या में निवास करते समय[६] सीता के प्रति राम के पत्नी स्नेह का अनुपम दर्शन होता है।

इसमें भी अरण्य पर्व के अन्तर्गत त्रिपथगातीर पर बैठे हुए राम का मैनसिल के पार्श्व भाग पर अंगुली रगड़कर सीता के ललाट पर तिलक लगाना तथा उनको अङ्क में लेकर अपलक नेत्रों से मुख रस का पान करना आदि राम के पत्नी प्रेम का ही उदाहरण है।[७]

इसके बाद काक द्वारा प्रिया सीता के स्तन पर चोंच मार देने से राम को सीता के कष्ट एवं काक की धृष्टता से तीव्र क्रोध उत्पन्न हो गया। फलस्वरूप राम के एक

---

१. रामा० मं०, उ० कां० (८८८)
२. रामा० मं०, बा० कां० (५५७–५६३)
३. रामा० मं०, अयो० कां० (६३१–६३४)
४. रामा० मं०, अ० प० (१३१, ३२, ३३)
५. रामा० मं०, अ० प० (१४३–१४६)
६. रामा० मं०, उ० कां० (७३३–७४०)
७. रामा० मं०, अ० प० (१३१–१३३)

ईषिका बाण ने उसकी एक आंख वेध दी तथा उसे त्रिलोकी में कहीं शरण भी न मिली। उक्त प्रसंग से राम का अद्भुत पत्नी प्रेम ही लक्षित होता है।

उपर्युक्त प्रकार से संभोग श्रृङ्गार के अन्य स्थलों पर भी राम का पत्नी प्रेम देखा जासकता है।

यह सत्य ही है कि नायक-नायिका के प्रेम की पराकाष्ठा का निदर्शन विप्रलम्भ श्रृङ्गार के अन्तर्गत ही होता है। वियोग में ही दोनों के सम्मिलन की उत्सुकता एवं प्रतीक्षा में किए गए वाचिक, कायिक एवं मानसिक व्यापारों से प्रेम भाव स्पष्टरूपेण प्रदर्शित होता है। संयोग में तो दोनों के सम्मिलन एवं आत्मसात से प्रेम के वियोग पक्ष का वह भाव समाप्त हो जाता है। अतः वास्तविक रूप से प्रेम का दर्शन विप्रलम्भ श्रृंगार में ही संभव है। रामायणमञ्जरी में भी राम के पत्नी प्रेम का उत्कृष्ट दर्शन सीताहरण के बाद उनकी विरह दशा में ही मिलता है। प्रिया विहीन राम, सीता के विषय में पशु-पक्षियों से पूँछते तथा विलाप करते हुए घने जंगल में खोयी हुई हथिनी के वियोग में कृश हाथी की भाँति भटकते रहे।[१] इसके बाद **'पम्पासरोदर्शनम्'**[२] तथा **'वसन्तवर्णनम्'**[३] के प्रसंग में सीता-विरह से तप्त राम का कारुण्य विलाप कठोर से कठोर हृदय को विदीर्ण कर देने वाला है।

किष्किन्धापर्व के अन्तर्गत—आकाश पथ से गिराए हुए सीता के वस्त्राभूषण सुग्रीव से प्राप्त होने पर भी राम उसे हृदय से लगाकर पुनः विलाप करते हैं। बहुत देर तक संज्ञाशून्य एवं वाष्पपूरित नेत्रों से युक्त वे निश्चेष्ट पड़े रहे।[४] किष्किन्धा पर्वत पर निवास करते हुए राम को वर्षाऋतु[५] का आगमन तो और भी व्यथित कर देता है। वर्षा के बादल चारों तरफ छाये हैं, मार्ग जलाप्लावित एवं दुर्गम हो गये हैं। इस सम्पूर्ण दृश्य को देखकर विरह व्यथित राम कहते हैं कि—प्रिया वियोग में यह दुर्दिन जब मुझसे नहीं सहा जा रहा है तो अन्य जीवों की क्या गति होगी।[६] पुनः वर्षा ऋतु के बीत जाने पर शरद ऋतु का आगमन भी राम को वियोग दुःख में पीड़ित करने लगा[७]—

---

१. रामा० मं०, अ० प० (९६१–१०६७)
२. रामा० मं०, अ० प० (१११९–११३८)
३. रामा० मं०, अ० प० (११३९–११५९)
४. रामा० मं०, कि० प० (३३, ३४, ३५)
५. रामा० मं०, कि० का० (१४–२५)
६. वही (२०)
७. वही (४२–५६)

अथ गौरीपतिगलश्यामले जलदागमे ।
वृत्ते बभूव रामस्य शरद्विरहशोकदा ।।

उपर्युक्त स्थलों में प्रिय पत्नी (सीता) के बिछुड़ जाने से राम की विरहावस्था का चित्र उनके स्निग्ध एवं अनुपम पत्नी प्रेम की पराकाष्ठा का स्वरूप प्रस्तुत करता है ।

सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत हनुमान सीता से राम का समाचार बताते हुए कहते हैं[1]—हे सीते ! तुम्हारे स्मरण और ध्यान में लगे, तुम्हारी कथाओं का पुनः पुनः कथन करने वाले, विरह के व्रत में स्थित राम वन में कुशलपूर्वक हैं । कमलदलों के समान नेत्रों वाले, सिंह के समान स्कंध वाले, विशाल भुजाओं से युक्त राम तुम्हारे लिए पूर्णिमा की रात्रि से रहित चन्द्रमा के समान दुर्बलता को प्राप्त हो गये हैं । हनुमान द्वारा चित्रित राम की इस विरहावस्था में उनका पत्नी प्रेम ही लक्षित होता है ।

उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत जानकी के पातिव्रत धर्म के गौरव को और भी उज्ज्वल करने के लिए प्रजारञ्जन के व्याज से राम उन्हें वन भेज देते हैं । तदनन्तर अश्वमेध यज्ञ का आयोजन करते हैं जिसमें प्रिया सीता की स्वर्णप्रतिमा[2] बनवाकर राम अपने अद्वितीय पत्नी प्रेम एवं एक पत्नीव्रत का बड़ा ही पवित्र एवं स्निग्ध पूर्ण आदर्श उपस्थित करते हैं ।

तत्र हेममयी सीता कुशलैः शिल्पिभिः कृताः ।
शुशुभे राघवप्रीत्या वनात्स्वयमिवागता ।।

इसी प्रकार सीता के वसुधा प्रवेश के समय राम के मानव सुलभ रोदन एवं क्रोध में भी पत्नी सीता के प्रति प्रेम की पराकाष्ठा का ही दर्शन होता है[3]—

स कोपादवदद्देवी मही सीतां प्रयच्छतु ।
श्वश्रूर्नमैषा न रुषा जीवितं हन्तुमर्हति ।।

ममापि विवरं भूमिर्ददातु दयितार्थिनः ।
पत्नीं वा भूमिरहितं करोमि जगदन्यथा ।।

सखा स्नेह—यों तो राम सभी के परम सुहृद तथा स्वाभाविक मित्र हैं, परन्तु लीला में वे मित्रों के साथ कैसा आचार-व्यवहार करते हैं—रामायणञ्जरी के विभिन्न संदर्भों में दर्शनीय है । मनुष्यों को तो सभी अपना मित्र बनाते हैं, किन्तु राम ने राक्षस और वानर-भालुओं तक को अपना सखा बना कर धन्य कर दिया । हनुमान की प्रेरणा से

---

१. रामा० मं०, सु० कां० (३२८, ३३१)

२. रामा० मं०, उ० कां० (११६९)

३. रामा० मं०, उ० कां० (१२०६–१२०९)

दुःख में डूबे हुए सुग्रीव को राम अपना परम मित्र बनाते हैं। जिस समय सुग्रीव सौगन्ध खाकर मित्रता निभाने के लिए राम का हाथ पकड़कर विश्वास दिलाते हैं तो राम भी अग्नि को साक्षी बनाकर अपनी मित्रता का विश्वास दिलाते हैं।[1]

राम अच्छे सुहृद के लक्षण का उल्लेख करते हुए सुग्रीव को बालि वध के लिए आश्वासन देते हैं।[2] यही नहीं! सुग्रीव के सुख के लिए बड़े से बड़ा उलाहना सहकर भी राम उसके शत्रु भाई का वध करके तथा अपने ही हाथों उसे राज्याभिषिक्त कर सख्यभाव का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

राम के सख्य भाव में ऊँच-नीच का कोई भेद भाव नहीं है। यही कारण है कि निषादराज गुह से भी सखाभाव से मिलने में वे तनिक भी संकोच नहीं करते—**प्रीत्या गुहं समामन्त्र्य सुहृदं धृतिसागरः**।[3] उनके इसी पवित्र सुहृद्भाव के कारण ही तो भरतादि ने भी गुह से उसी भाव में मिलने में तनिक भी संकोच न किया।

लङ्का विजय के उपरान्त अयोध्या लौटने पर राम अपने वानर-भालु मित्रों को दिव्य वस्त्राभूषण आदि प्रदान कर उन्हें उनकी पुरी भेजते हैं।[4] राम की मित्रता का मापदण्ड अद्भुत एवं अनुपम है। सुग्रीव आदि प्रमुख वानरों के विरोध करने पर भी परम शत्रु राक्षसराज रावण के सहोदर भ्राता विभीषण को अपना मित्र बनाने में राम तनिक भी संकोच नहीं करते[5] और तत्काल समुद्र जल से विभीषण का अभिषेक भी कर दिया।[6]

उपर्युक्त वानर-भालु एवं राक्षस मित्रों के अतिरिक्त भी राम के अयोध्या निवासी नौ मित्रों का उल्लेख उत्तरकाण्ड में मिलता है, जिनसे घिरे हुए वे हास-परिहास तथा कथा आदि में आनन्द लेते थे। ये मित्र राम को प्राणों से भी अधिक प्रिय थे।[7]

> अथ कथान्तरं रामो गत्वान्तःपुरमन्दिरम्।
> नानाकथाभिश्चित्राभिश्चिरं तस्थौ सुहृद्वृतः॥
>
> विजयो मधुमान्भद्रः कश्यपः पिङ्गलः कुरुः।
> सुराजको वज्रदन्तो मागधश्च मनीषिणः॥

---

१. रामा० मं०, कि० प० (२३, २४, २५)
२. वही (४५–४८)
३. रामा० मं०, अयो० कां० (८०३)
४. रामा० मं०, रामाभिषेक (१८४–१८६)
५. रामा० मं०, यु० कां० (२००, २०१)
६. वही (२०२–२०४)
७. रामा० मं० उ० कां० (७४८, ७४९, ७५०)

फार्म—११

नवैते नन्दसुहृदा रामस्य हृदयप्रियाः ।
परिहासकथाशीलैस्तैः स गोष्ठीरतोऽभवत ॥

प्रजावत्सलता—राम को उनकी प्रजा बहुत ही प्रिय थी। उसके सुख एवं रञ्जन के लिए वे सदा तत्पर रहते थे। प्रजा भी राम को बहुत चाहती थी। अपने सुन्दर बर्ताव एवं वत्सलतापूर्ण क्रियाओं के द्वारा वे प्रजा के प्रेम भाजन बन गये थे। इस बात का स्पष्ट दर्शन तब होता है जब राम के राज्याभिषेक के लिए उत्सुक अयोध्यावासी उस प्रभात की प्रतीक्षा कर रहे हैं जब यह महोत्सव होना है। अंत में प्रजा के प्रतीक्षा की घड़ियाँ समाप्त हुई तथा वह प्रभात आ ही गया। प्रजा में हर्ष का सागर उमड़ पड़ा। चारों तरफ आनन्द छा गया।[1]

अचानक दृश्य बदल जाता है। राम, लक्ष्मण और सीता को साथ लेकर मुनिवेश में वन को पधार रहे हैं। प्रजा इस दृश्य को देख न सकी।[2] उनके वियोग दुःख को सहन करने में अपने को असमर्थ पाकर प्रजा भी उनके साथ हो ली—**रामः प्रतस्थे पौराणां शृण्वन्नाक्रन्दनिःस्वनम**।[3] पुनः प्रजा को अपनी प्रिय वाणी से किसी तरह समझा बुझाकर राम उन्हें वापस भेजते हैं—**पौरान्प्रणयिनः सान्त्वैर्विनिवर्त्य प्रियंवदः**।[4]

राम द्वारा सान्त्वना देकर वापस भेजने पर भी प्रजा का वियोग दुःख और बढ़ ही जाता है। यही कारण है कि भरत जब राम को वापस लाने के लिए वन जाने लगे तो राम के वियोग दुःख में विह्वल प्रजा भी दर्शनौत्सुक्य के कारण उनके साथ चल दी।[5]

लङ्का विजय के बाद राम जब अयोध्या लौटे तो प्रजा के हर्ष का पार न रहा। भरत से सूचना पाने पर समस्त अयोध्या राम के स्वागतोत्सव में अलंकृत हो गयी—**उक्त्वेति सर्वाः प्रकृतीर्नियोज्य पुरोत्सवालंकृतिसत्क्रियासु**।[6] सच पूछिये तो प्रजा के सुख और संतोष के लिए ही राम ने राज्य पद स्वीकार किया। वास्तव में यही आदर्श है, जो प्रजा सुख के लिए राजा बनता है। अवधवासियों के भाग्य का कहना ही क्या जिनके प्रेम-परवश स्वयं विष्णु के अवतार राम राजा बने—**गुणद्विरेफो विरराज राजसद्रुमस्तापहरः प्रजानाम्**।[7]

---

१. रामा० मं०, अयो० कां० (६६१, ६६२)
२. रामा० मं०, अयो० कां० (७८३, ७८४)
३. वही (८८६)
४. वही (९००)
५. रामा० मं०, अ० प० (८४)
६. रामा० मं०, रामाभिषेक (१६८)
७. वही (१८८)

राम की प्रजावत्सलता का एक ऐसा भी उदाहरण मिलता है जिसकी तुलना जगत में कहीं नहीं हैं। जिस प्राणप्रिया सीता के लिए राम ने वन-वन भ्रमण किया, विलाप करते हुए नाना प्रकार के क्लेशों को सहन किया तथा जिसके लिए रावण से घोर युद्ध किया, उसी सीता को निर्दोष समझते हुए भी केवल प्रजारञ्जन के लिए हृदय को अत्यंत कठोर बनाकर वन में भेज दिया[१]—

उन्मत्तेव जगत्यस्मिन्नपवादपिशाचिका ।
अपि प्राणाधिका सीता त्यज्यते तृणवन्मया ॥

इस प्रकार के जनापवाद रूपी वज्रपात को सहन करते हुए राम ने सुमन्त्र और लक्ष्मण को आदेश दिया कि सीता को गंगा के पार विजन वन में वाल्मीकि आश्रम के पास छोड़ दो।[२]

राम प्रजा के हित चिन्तन में सदैव रत थे। वे इस बात के लिए तत्पर रहते थे कि मेरी प्रजा में किसको, कहाँ अन्याय एवं दुःख सहन करना पड़ रहा है। यदि कहीं किसी को किसी तरह का कष्ट दिखाई पड़ता तो राम उसके निदान का तुरन्त प्रयास करते थे। राम की इस प्रजावत्सलता का उदाहरण उस समय दिखाई पड़ता है जब ब्राह्मण अपने मृत पुत्र को लेकर राजा राम के सामने उपस्थित होता है। विलाप करते हुए ब्राह्मण ने राम से कहा—आपके राज्य में कहीं पाप अवश्य हो रहा है जिसके कारण मेरे पुत्र की अकाल मृत्यु हो गयी। ब्राह्मण के कष्ट से दुःखी राम ने तुरन्त मन्त्रियों एवं नारद मुनि से परामर्श लेकर स्वयं पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो इसका पता लगाने के लिए निकल पड़े कि मेरे राज्य करते कौन पाप कर रहा है। अंत में तपस्या करते हुए शूद्र शम्बूक को देख कर राम ने तुरन्त उसका वध करके ब्राह्मण पुत्र को जीवित किया।[3]

राम केवल मानव प्रजा के ही हितचिन्तक नहीं थे अपितु उनसे पशु-पक्षियों के कष्ट भी नहीं सहन किए जा सकते थे। यही कारण है कि कुत्ते ने जब राम से अपना कष्ट सुनाते हुए कहा कि सन्यासी के द्वारा दण्ड प्रहार से मेरा सिर फोड़ दिया गया तो उन्हें पुनः बहुत कष्ट हुआ। इसके बाद राम स्वयं इस घटना के कारण का पता लगाकर कुत्ते को उचित न्याय दिलाते हैं।[४] यह है राम की प्रजावत्सलता। राम के हृदय में उनकी प्रजा के लिए अगाध प्रेम था। इसीलिए राम के स्वर्गारोहण के समय प्रजा भी उनके पोछे चल दी।[५]

---

१. रामा० मं०, उ० कां० (७७१)
२. वही (७७५)
३. वही (९९९–१०४०)
४. वही (९०४–९३६)
५. वही (१२५३, १२५४)

भक्तवत्सलता—क्षेमेन्द्र की दृष्टि में राम एक महामानव ही नहीं अपितु साक्षात् भगवद्वतार हैं। भक्तवत्सलता तो भगवान का विख्यात बाना ही है। ऐसा कोई काम नही जो भगवान अपने भक्त या सेवक के लिए नहीं कर सकते। वस्तुतः भगवान के अवतार का प्रधान हेतु भक्तों पर अनुग्रह करना ही होता है—**परित्राणाय साधूनाम्**। राम अपने भक्तों का बहुत अधिक ध्यान रखते थे। अहल्या, पति गौतम के शाप से शिलावत हो गयी थी। राम की पुकार के लिए भी उसमें शक्ति नहीं थी परन्तु भक्तवत्सल राम स्वयं उस स्थल पर पहुँचकर उसे दर्शन देते हैं जिससे उसका उद्धार हो जाता है।[1]

इसी प्रकार भक्तवत्सल राम ने दण्डकारण्य में पहुँचकर अनेक ऋषियों मुनियों को अपने दिव्य दर्शन से धन्य किया। भक्तवत्सल राम के लिए ऋषि, महर्षि, जड़, चेतन तथा ऊँच, नीच का कोई भेद भाव नहीं है। उनके लिए तो केवल उनका भक्त ही सबसे अधिक प्रिय है। वे भक्त के हित का सदैव ध्यान देते हैं तथा उसकी चिन्ता में सदैव तत्पर रहते हैं। इसीलिए अधम शबरी के भी आश्रम में पहुँचकर राम ने उसे दर्शन दिया जिससे वह दिव्य धाम को प्राप्त हो गयी।[2]

भक्तप्रवर हनुमान का तो वे अपने को ऋणी मानते हैं। उत्तरकाण्ड के अंतर्गत राम हनुमान द्वारा किए गए उपकार, उनके गुण एवं चरित्र की भूरि-भूरि प्रशंसा की है जिससे भक्त हनुमान के प्रति उनका अद्भुत स्नेह लक्षित होता है।[3]

शरणागतवत्सलता—राम की शरणागतवत्सलता भी अनुपम है। वैसे तो रामायणमञ्जरी के विभिन्न स्थलों से उनको शरणागतवत्सलता के कई उदाहरण मिलते हैं किन्तु विभीषण की शरणागति का प्रसंग राम की शरणागतवत्सलता का स्पष्ट, अद्वितीय एवं उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

सुग्रीवादि प्रमुख वानरों द्वारा शरणागत विभीषण के चरित्र पर संदेह प्रकट करने के बाद भी राम विभीषण की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए अपना लेते हैं। इस प्रसंग के अन्तर्गत राम विभीषण के प्रति जो वचन कहते हैं, उसमें उनकी शरणागतवत्सलता के मानदण्ड का स्पष्ट परिचय मिलता है[4]—

सदोषः सगुणो वा न मे त्याज्यो विभीषणः।
अनुरक्तो विरक्तो वा मामुद्दिश्यायमागतः।
वन्ध्यं मनोरथं तस्य न कर्तुमहमुत्सहे।

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (३०६–३१३)
२. रामा० मं०, अ० प० (११०२–१११८)
३. रामा० मं०, उ० कां० (७२४–७३१)
४. रामा० मं०, यु० कां० (१९१–१९५)

परित्यजति निर्लज्जः प्राप्तं यः शरणार्थिनम् ।
मानं धर्मं श्रियं कीर्तिं सर्वत्र स परित्यजति ॥

शरणागतवत्सल राम के उक्त वचनों को सुनकर सुग्रीव आदि वानर शीघ्र ही विभीषण को राम के पास ले आए । विभीषण आते ही राम के चरणों में गिर पड़ा । राम अपनी भुजाओं से उठाकर उसे गले लगाते हुए कहते हैं—रावण के द्वारा अपमानित तुम मेरी शरण में आ गए हो । अतः अब से तुम मेरे परम सुहृद हो । इन बातों के साथ ही, लक्ष्मण द्वारा लाए गये समुद्र जल से राम ने विभीषण का लङ्काधीश के रूप में अभिषेक भी कर दिया[1]—

इत्युक्त्वा लक्ष्मणानीतैः तूर्णं रत्नाकराम्बुभिः ।
सोऽभिषिच्यैव विदधे लङ्काधीशं विभीषणम् ॥

शरणागत के प्रति राम के अगाध प्रेम का यह अनुपम निदर्शन है । प्रथम मिलन में ही उन्होंने अपना सम्पूर्ण न्योछावर कर दिया, यहाँ तक कि लङ्काधीश के रूप में विभीषण का तुरन्त अभिषेक भी कर दिया ।

पराक्रम—सम्पूर्ण रामायणमञ्जरी के अन्तर्गत राम के पराक्रम, वीरता एवं शस्त्रकौशल के अनेक प्रसंग उपलब्ध हैं । विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा करते समय उन्होंने बात की बात में ताड़का[2] और सुबाहु[3] को मारकर मारीच को दिव्यास्त्र के द्वारा सौ योजन दूर समुद्र में फेंक दिया ।[4]

जनकपुर में जिस धनुष को बड़े-बड़े वीर और महाबली राजा अत्यंत परिश्रम करके भी हिला न सके, उसी को राम अनायास ही उठाकर तोड़ दिए ।[5] विष्णु के धनुष पर बाण चढ़ाकर परशुराम का भी तेज नष्ट कर दिए ।[6] पञ्चवटी में चौदह हजार राक्षसों को जरा सी देर में मार गिराए[7]—**चतुर्दश सहस्त्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।** बाली जैसे महायोद्धा को एक ही बाण से मार डाला ।[8] धनुष पर बाण चढ़ाने मात्र से ही समुद्र में खलबली मच गयी और वह सशरीर भयभीत होकर शरण में आ गया ।[9]

---

१. रामा० मं०, यु० कां० (१९८–२०२)
२. रामा० मं०, बा० कां० (१४२–१४९)
३. वही (१७८–१८०)
४. वही (१७६, १७७)
५. वही (४९०–५०७)
६. वही ६०८–६२६)
७. रामा० मं०, अ० प० (५४४–६१३)
८. रामा० मं०, कि० कि० प० (१५७–१६०)
९. रामा० मं०, यु० का० (२१८–२३५)

लङ्का में जाकर भयंकर युद्ध में राक्षसों सहित कुम्भकर्ण तथा रावण का वध करके तीनों लोकों में विजय का डंका बजा दिया ।[1]

क्षमाशीलता—महान पराक्रमी होते हुए भी राम इतने क्षमाशील थे कि वे अपने प्रति किए हुए किसी के अपराध को अपराध नहीं मानते थे । चित्रकूट में आश्रम के पास राम के साथ बैठी हुई सीता के स्तन में काक ने चोंच मार कर घायल कर दिया । इससे क्रोधित होकर राम ने एक ईषिका बाण द्वारा उसकी एक आँख वेध दी । घायल आँख से व्याकुल काक को तीनों लोक में कहीं भी शरण नहीं मिली । अंत में वह पुनः वापस राम के पास आया । राम ने उसके अपराध को क्षमा कर दिया ।[2] उन्होंने जहाँ कहीं भी क्रोध और युद्ध की लीला की है, वह अपने आश्रितों और साधु पुरुषों के प्रति किए हुए अपराधों के लिए दण्ड देने और इसी बहाने दुष्टों को निर्दोष बनाने के लिए ही की है। समुद्र के ऊपर उनका क्रोध इस बात का स्पष्ट प्रमाण है । क्रोध करने के बाद समुद्र की धृष्टता को क्षमा भी कर देते हैं । इसके अतिरिक्त भी मन्थरा जैसी दासी के अपराध का उन्होंने कहीं उल्लेख तक भी नहीं किया ।

कृतज्ञता—वास्तव में देखा जाय तो राम सब कुछ करने में समर्थ थे । उनके पास अपार शक्ति, तेज, पराक्रम एवं शौर्य का आश्रय भण्डार था । वे स्वयं सबको उपकृत्य कर सकते थे, उनका कोई क्या उपकार करता । तथापि अपने आश्रित जनों के प्रेम की वृद्धि के लिए, उनकी साधारण सेवा को भी बड़े से बड़ा रूप देकर उन्होंने अपनी कृतज्ञता प्रकट की है ।

सीता को खोजते-खोजते राम जब रावण द्वारा युद्ध में आहत, खून से लथ-पथ जटायु को देखते हैं तो उन्हें शङ्का होती है कि संभवतः इसी ने सीता का भक्षण किया है । परन्तु मरणासन्न जटायु द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्ञात होने पर शोकविह्वल राम जटायु को गोद में लेकर विलाप करने लगे ।[3] पुनः रावण का परिचय देते हुए तथा उसके द्वारा सीताहरण की बात कहने में ही पक्षिराज के प्राण पखेरू उड़ गये । इसके बाद राम स्वयं अपने ही हाथों उसका दाह संस्कार सम्पन्न करके तथा गङ्गाजी में जलाञ्जलि प्रदान कर जटायु को धन्य कर दिया ।[4]

इसी तरह रामायणमञ्जरी में और भी बहुत से प्रसङ्ग हैं जिनसे राम की कृतज्ञता स्पष्टरूपेण सूचित होती है । वानरों, राजाओं, ऋषियों और देवताओं से बात करते समय

---

१. रामा० मं०, यु० कां० (४०४–१२९८)
२. रामा० मं०, अ० प० (१४७, ४८, ४९)
३. वही (१०५४,१०५५)
४. वही (१०६३–१०६६)

उन्होंने जगह-जगह पर कहा है कि आप लोगों की सहायता और अनुग्रह से ही मैंने रावण पर विजय प्राप्त की।

हनुमान के प्रति तो वे सदैव कृतज्ञ ही हैं। उनके द्वारा किए गए उपकार का बदला चुकाने में अपने को असमर्थ बताकर राम ने अपनी महान कृतज्ञता का जो भव्य निदर्शन कराया है, वह अप्रतिम है।[1]

दयालुता—यदि राम को दया का सागर कहें तो भी उनकी अपरिमित दया का तिरस्कार ही होता है। वे वस्तुतः दयामय ही हैं। उनकी दया के भी कई रूप हैं, कहीं वह प्रेम के रूप में दर्शन देती है तो कहीं दण्ड के रूप में। परन्तु दोनों ही परिस्थितियों में वह श्लाघ्य है। राम की प्रसन्नता तो दिव्य ही है। वह तो जीव को अप्राप्य भी प्राप्त कराता है परन्तु उनका क्रोध या दण्ड भी मुक्ति दिलाने वाला है। उनकी दया के दूसरे स्वरूप दण्ड और क्रोध के रूप का वर्णन भी रामायणमञ्जरी में अत्यंत हृदयग्राही एवं दर्शनीय है। राक्षसों को राम ने मारा यह सत्य है। स्थूल रूप से यदि देखा जाय तो राम ने **'विनाशाय च दुष्कृताम्'** के अनुसार एवं शत्रुतावश ही ऐसा किया। परन्तु यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाय तो उन्होंने राक्षसों को मारा नहीं अपितु तारा है। राम के हाथों से जितने भी राक्षस मरे सबको दुर्लभ गति प्राप्त हुई। ताटका, सुबाहु, मारीच, विराध, कबन्ध, खर-दूषण, त्रिशिरा, कुम्भकर्ण एवं रावण प्रभृति सभी राक्षसों तथा वानरराज बालि एवं शूद्र शम्बूक आदि को राम ने मार कर तार दिया। यह राम की दयालुता ही है कि अधम से अधम राक्षसादि को निज हाथों के वध से परम पद दिलाया।

प्रेम से तो राम ने अनेकों को अपनाया। सारे वानर-भालुओं को जो गौरव प्रदान किया वह बड़े-बड़े ऋषियों-महर्षियों को भी दुर्लभ है। गौतम की पत्नी अहल्या में इतनी शक्ति ही नहीं थी कि बेचारी आर्त होकर राम को पुकार सकती, किन्तु वहाँ पहुँचकर उन्होंने उसका उद्धार किया। दण्डक वन में पहुँचकर राक्षसों के वध द्वारा सभी मुनियों को अभय प्रदान किया।[2] गीधराज जटायु पर जो दया हुई वह तो सर्वथा अनूठी है। दीन सुग्रीव को बाली के महान अत्याचार से बचाया। अङ्गद को दीन जानकर अपनाया तथा युवराज पद दिलाया।

इस प्रकार राम दया के अगाध सागर थे। उन्होंने अपने दया का पात्र बनाने में ऊँच-नीच, उत्तम-अधम आदि का कोई विचार न करके सबके ऊपर समभाव से दया की।

---

१. रामा० मं०, उ० कां० (७२४–७३१)

२. रामा० मं०, अ० प० (४०८)

स्थितप्रज्ञता—अज्ञ मानव तनिक भी सुख से फूले नहीं समाता और थोड़े ही दुःख से उद्विग्न भी हो जाता है। इतना ही नहीं कभी-कभी सुख-दुःख दोनों के उत्कट आघात उसके लिए प्राणघातक भी बन जाते हैं। किन्तु तत्त्वदर्शी पुरुष सुख-दुःख में हर्ष शोक को नहीं प्राप्त होते। ऐसी परिस्थितियों में भी चित्त की साम्यावस्था भङ्ग नहीं होने पाती। राम के जीवन में यह पूर्णरूपेण देखने को मिलता है। उनके मुखारविन्द की शोभा राज्याभिषेक के सुखद समाचार से न तो हर्षातिरेक में खिल उठती है और न ही प्रदीर्घ एवं कष्टप्रद वनवास के दुःखद समाचार से म्लान भाव को ही प्राप्त हो जाती है। अपितु कैकेयी से वनवास का समाचार सुनकर हँसते हुए वन जाने को उद्यत होते हैं।[1]

इसी प्रकार रामायणमञ्जरी में अनेक स्थल हैं जिससे राम की स्थितप्रज्ञता का स्पष्ट ज्ञान होता है। जिस प्राणप्रिया सीता को इतने दुःसह कष्ट सहकर तथा घोर संग्राम के बाद प्राप्त किए उसी को पुनर्ग्रहण के पूर्व अग्नि परीक्षा आदि के बाद ही स्वीकार किए। यही नहीं, विभीषण द्वारा सीता को पालकी में बिठा कर लाते समय भी पालकी से नीचे उतरकर पास तक आने का आदेश दिया। यह राम की स्थितप्रज्ञता ही तो है।[2] वरना इतने कष्ट के बाद तो सुख सम्मिलन ही साधारण मानव की दृष्टि में अत्यंत श्लाघ्य है। परन्तु राम ने ऐसा न करके अपने धैर्य को मर्यादित रखते हुए अभूतपूर्व स्थितप्रज्ञता का दृष्टान्त प्रस्तुत किया। प्रायः साधारण मानव अपने किसी प्रिय से ऐसी परिस्थिति में मिलने पर आत्मविभोर हो मुहुरालिङ्गन से ही तुष्ट होता है।

राम की स्थितप्रज्ञता का परिचय परशुराम के तेज भंग के समय भी मिलता है। क्रोधान्ध परशुराम को आते देखकर दशरथ जैसे धीर, वीर सम्राट तथा वशिष्ठ प्रभृति ज्ञानी महर्षि भी भयार्त हो गये। इससे भी अधिक दुःखी एवं भयभीत वे सभी तब होते हैं जब परशुराम राम को वैष्णव चाप भङ्ग करने तथा युद्ध के लिए आमंत्रित करते हैं। परन्तु स्थितप्रज्ञ राम बहुत ही धीर एवं गम्भीर मुद्रा में वैष्णव चाप को उठाकर भङ्ग कर दिए जिससे परशुराम का तेज भी नष्ट हो गया।[3]

इसके अतिरिक्त रामायणमञ्जरी के अनेक स्थलों में राम के वचनों से उनकी स्थितप्रज्ञता का परिचय मिलता है।

धर्मपरायणता—राम मूर्तिमान धर्म ही हैं। वे मनसा, वाचा, कर्मणा धर्माचरण में ही प्रवृत्त थे। इसीलिए तो राम मानव तन धारण करके अपने उपदेशों तथा प्रत्यक्ष

---

१. रामा० मं०, अयो० कां० (८१९, ८२०)
२. रामा० मं०, वह्निप्रवेशः (५०–१०४)
३. रामा० मं०, बा० कां० (५७०–६२६)

आचरण द्वारा धर्माचरण की सीख देते हैं। अरण्य पर्व के अन्तर्गत जब जावालि ऋषि धर्म की ओट लेकर राम को नास्तिकता का उपदेश करने लगे तो राम ने इसके महा-भयंकर परिणामों को दिखाकर जाबालि की कठोर शब्दों में भर्त्सना करते हुए उनकी आँखें खोली। पुनः धर्म का महत्व बतलाते हुए कहा की यह धर्म सत्य से अभिन्न है तथा सत्य से श्रेयस्कर और कुछ भी नहीं है। इसके बाद वशिष्ठ मुनि राम को समझाते हुए कहते हैं कि हे राम ! जाबालि मुनि प्रजा के हित के लिए ऐसा सब कुछ कह रहे थे। वे सनातन धर्म को नहीं जानते हैं—नहि जानाति धर्मस्य गतिमेष सनातनीम।[1]

राम धर्म धुरीण थे। वे सदैव धर्म के विरुद्ध कुछ भी आचरण नहीं करते थे। प्रातः से लेकर निद्रा तक उनके अनुसार आचरण करना ही धर्माचरण है। इस धर्माचरण का जीवन व्यापी, सक्रिय, प्रत्यक्ष आचरण हमें राम के जीवन में देखने को मिलता है। प्रातःकाल से निद्रा तक और बाल्यकाल से लगाकर उनके लीला-संवरण तक हम राम के जीवन में धर्म तत्व को साकार हुआ पाते हैं। राम का मातृप्रेम तो अनुपम है। मां कैकेयी के एक कथन मात्र से ही इतना कष्ट उठाने पर भी राम ने उनके लिए कहीं कुछ भी अपमानजनक शब्द नहीं प्रयुक्त किए अपितु प्रशंसा ही की है। जन्मदात्री मां कौशल्या और हृदय से भी अधिक प्रिय भाई लक्ष्मण की मां सुमित्रा के प्रति राम के स्नेह के विषय में कहना ही क्या। उनकी पितृ भक्ति तो सदा ही श्लाध्य है। पिता के मुंह से आदेश न सुनकर भी केवल माता कैकेयी से ही पिता के आदेश को जानकर राम ने जो वनवास कष्ट उठाया वह तो विदित ही है। गुरु के प्रति राम का विनीत भाव देखते ही बनता है। विश्वामित्र के साथ रहते हुए उनके वचनों का अक्षरशः पालन करते थे। छोटे से लेकर बड़े तक सभी कार्यों में उनके आदेश की प्रतीक्षा अत्यंत आवश्यक समझते थे। एक तरफ मिथिला में धनुर्भङ्ग के लिए गुरु विश्वामित्र के आदेश की आवश्यकता समझते हैं तो दूसरी तरफ वन में विश्वामित्र के साथ रहते हुए बिना उनके आदेश के शयन नहीं करते। यह है राम की अनुपम गुरु भक्ति। भ्रातृप्रेम का तो ऐसा उदाहरण ही अन्यत्र उपलब्ध नही है जैसा कि राम के चरित्र में देखने को मिलता है। इस प्रकार मातृदेव, पितृदेव तथा आचार्य देव की भक्ति के रूप में राम सदैव धर्माचरण ही करते थे। धर्म के विरुद्ध इन पूज्य लोगों के प्रति राम कोई भी आचरण नहीं करते थे। भ्रातृ स्नेह में तो राम के धर्माचरण की पराकाष्ठा ही दर्शनीय है।

यह तो पारिवारिक स्तर पर राम का धर्माचरण था। इसके अतिरिक्त भी राम सदैव सचेष्ट रहते थे कि उनका कोई भी कार्य ऐसा न हो जो धर्म के प्रतिकूल एवं सामाजिक तथा राजनीतिक स्तर पर निन्द्य तथा गर्ह्य हो। इसीलिए तो लङ्का विजय के बाद

---

१. रामा० मं०, अ० प० (२५६–२८४)

उन्होंने सीता को पालकी से उतार कर ले आने की आज्ञा विभीषण को दी। सीता इतने दिनों रावण के महल में रही। अतः समाज में उनके सतीत्व पर शङ्का उठ सकती है, इसलिए उनकी अग्नि परीक्षा हुई। पुनः विश्वस्त प्रमाणों के बाद ही सीता को वापस स्वीकार किये। किन्तु इतने पर भी जब प्रजा में सीता विषयक अपवाद राम ने सुना तो तुरन्त ही प्राणप्रिया गर्भवती सीता का त्याग करने में भी संकोच नहीं किया। यह सब राम का महान धर्माचरण ही तो है। वास्तव में राम पूर्णतया धर्ममय, धर्मरक्षक, धर्म-धुरीण एवं धर्म के मूर्तिमान रूप ही थे।

कला प्रेम—राम के जीवन चरित के विविध आयामों पर दृष्टिपात करने से उनके विविध कला ज्ञान का परिचय मिलता है। रामायणमञ्जरी के प्रारम्भ में ही उनके विविध कलाओं के विशद ज्ञान का उल्लेख किया गया है[1]—

शस्त्रास्त्र ग्रामशिक्षाणां विद्यानां विशदाशयः।
कलानां च बभुवुस्ते संक्रान्तिमणिदर्पणाः॥

सम्प्रति उनके इस कला ज्ञान का व्यवहारिक पक्ष जिससे उनका कला प्रेम सूचित होता है, का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

राम की दृष्टि में सम्पूर्ण संसार कला का गढ़ है। प्राकृतिक सुषमा या सौन्दर्य कला का पर्याय है। कला का तात्पर्य है—जो सुख प्रदान करे (**कं सुखं लाति ददाति इति**)। इस आधार पर प्रकृति की रमणीयता से अन्तः को जो सुखानुभूति हो वह कला है। इस परिवेश में राम के कला प्रेम के बहुत दर्शन होते हैं। सिद्धाश्रम के विषय में विश्वामित्र से पूँछते हुए राम के कला प्रेम का दर्शन होता है।[2] मिथिला की शोभा देख-कर राम के आश्चर्य चकित हो जाने से भी उनका कला प्रेम लक्षित होता है।[3] अरण्य पर्व में तो ऐसे बहुत से स्थल हैं जहाँ के सौन्दर्य को देखकर राम मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। त्रिपथगातीर पर सीता के साथ बैठे हुए राम को वहाँ की प्राकृतिक सुषमा आत्मविभोर कर देती है। वहीं एक शिला के पार्श्व भाग पर ऊँगली रगड़कर राम सीता को बालेन्दु की भाँति तिलक लगाते हैं। यह उनका कला प्रेम ही तो है। सीता हरण के बाद वसन्त, वर्षा एवं शरद ऋतु तथा पम्पासरोदर्शन के वर्णन में राम की कला परख दृष्टि का स्पष्ट दर्शन होता है। उतरकाण्ड के अन्तर्गत सीता के साथ अशोक वन में विहार करते हुए भी राम वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं। यदि राम इतने कला पारखी एवं प्रेमी नहीं होते तो प्रकृति के मनोहर स्वरूप को देखकर इतना अधिक पुलकित एवं विह्वल

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (८०)
२. वही (१६३, १६४)
३. वही (३१६)

न होते। क्योंकि शुष्क या प्राकृतिक कला से प्रेम न करने वाले व्यक्ति के हृदय में ऐसे भाव नहीं उत्पन्न हो सकते हैं। सीता हरण के बाद राम प्रकृति जगत से सीता का पता पूँछते हैं। इसमें उनका कला प्रेम ही भाषित होता है। यह प्रसिद्ध ही है कि प्रकृति के विभिन्न उपकरण नारी शरीर की उपमा के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। राम यहाँ विरही तथा अत्यन्त कामी रूप में ही सही, किन्तु इन प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से सीता के शरीर सौन्दर्य को देख रहे हैं। सीता का शरीर कला की मूर्ति है। सीता निश्चय ही रावण द्वारा अपहृता हैं पर विभिन्न प्राकृतिक उपकरणों के द्वारा उनका शरीर राम के सामने अनायास ही उपस्थित हो जाता है।

वाणी के कुशल प्रयोक्ता के रूप में राम कला प्रेमी की संज्ञा पा सकते हैं। प्रश्नोत्तर यदि कला है तो राम इस कला का सहारा लेकर परशुराम के कोप को शान्त करते हैं। इसके अतिरिक्त भी रामायणमञ्जरी के अनेक स्थलों से राम की वाणी—कला का दर्शन होता है। केश विन्यास यदि कला है तो राम गङ्गा के किनारे राजसी वस्त्रों को उतार कर अपने केश में न्यग्रोध वृक्ष के दूध लगाकर गूँथते हैं। शिकार खेलना यदि कला है तो राम ने मृग का शिकार किया। तीर चलाना यदि कला है तो राम इस कला में प्रवीण थे। ताड़का वध से लेकर रावण वध तक इस कला के साक्षात दृष्टांत हैं। वैसे भी राम विभिन्न अस्त्र-शस्त्रादि के प्रयोग की कला में पर्याप्त निपुण थे। इसका उदाहरण उनके द्वारा किए गए समस्त युद्ध के प्रसङ्ग एवं गुरु विश्वामित्र द्वारा दिए गए सभी अस्त्र-शस्त्र हैं—**भृशाश्वास्त्रादि रामाय ददौ सर्वायुधैः सहः।**[1] तात्पर्य यह है कि शास्त्र वर्णित लोक कलाएँ, व्यवहार कलाएँ तथा उपयोगी कलाएँ राम की दृष्टि में अपरिचित नहीं थी। उत्तरकाण्ड के अन्त में राम के संगीत कला प्रेम का भी दर्शन होता है। वाल्मीकि मुनि के साथ आये हुए दो बालक (लव-कुश) जब स्वर, ताल, लय आदि के साथ वीणा बजाते हुए रामायण गान करने लगे तो राम, उसे सुनकर मंत्रमुग्ध हो गये।[2]

इस प्रकार यद्यपि कि राम स्थूल रूप में कला निकाय के प्रतिष्ठाता तो नहीं कहे जा सकते, परन्तु विभिन्न उपयोगी ललित कलाओं के समर्थक अवश्य सिद्ध किए जा सकते हैं। उनका गुरुजन, पुरजन, परिजन प्रेम, विद्या प्रेम एवं कला प्रेम आदि सभी वास्तव में विचार, विश्लेषण तथा श्लाघा के विषय हैं।

राम का परब्रह्मत्व—राम साक्षात् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा भगवान विष्णु के अवतार थे। सम्पूर्ण रामायणमञ्जरी में इस तथ्य के संकेत कई स्थलों पर प्राप्त होते हैं। जब पृथ्वी

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (१५२)

२. रामा० मं०, उ० कां० (११७५)

पर रावण का अत्याचार एवं उपद्रव बढ गया तो समस्त देवता और ऋषिगण बहुत दुःखी हो गये। तदनन्तर सभी लोग ब्रह्मा के पास जाकर इस दुःख निवारण हेतु प्रार्थना की। पितामह ब्रह्मा सब को धैर्य बंधाकर विष्णु के पास ले गए वहाँ देवताओं ने विष्णु से निवेदन किया कि आप दशरथ के पुत्र रूप में प्रकट होकर तीनों लोकों का कण्टक दूर करें[1]—

अवध्यः सर्वभूतानां स मनुष्यादृते युधि ।
तस्याद्दशरथस्याद्य भगवन्व्रज पुत्रताम ॥

चतुर्धा योगमास्थाय विभज्यात्मानमात्मना ।
अवतीर्य धरां विष्णो जहि त्रैलोक्यकण्टकम् ॥

देवताओं के निवेदन के अनुसार भगवान विष्णु ने राम के रूप में अवतार लिया।

विवाहोपरान्त अयोध्या लौटते समय मार्ग में जब राम ने परशुराम द्वारा दिए गए वैष्णव चाप का भंजन कर उनका तेज नष्ट कर दिया तो तेज विहीन परशुराम को राम के परब्रह्मत्त्व का ज्ञान हो गया। तुरन्त राम की स्तुति करते हुए परशुराम कहते हैं[2]—

धनुषोऽयं निजं नाथं त्वां विष्णुमच्युतम् ।
नीता मधुमुखा येन दैत्याः क्रोधोपहारताम् ॥

इच्छामात्रेण जगतां प्रलयोदयकारिणा ।
न मे त्वया जितस्यापि लज्जाधूसरमाननम् ॥

इसी प्रकार युद्धकाण्ड के अन्तर्गत इन्द्रजित के साथ रात्रि युद्ध में लड़ते हुए लक्ष्मण शस्त्र प्रहार से संज्ञा शून्य हो पृथ्वी पर गिर जाते हैं। निश्चेष्ट भाई लक्ष्मण को गोद में लेकर राम करुण विलाप करते हैं। इसी समय नारद वहाँ पहुँच कर राम को समझाते हुए उनके परब्रह्मत्त्व का वर्णन करते हैं[3]—

रामरामाविरामस्त्वं युद्धे त्रिदशविद्विषाम् ।
देवो नारायणः श्रीमान्परमात्मा सनातनः ॥

भगवन्भुवनारम्भव्यापारेषु प्रजासृजः ।
त्वदनुप्राणिता शक्तिः संहारेषु हरस्य च ॥

हिरण्याख्यवधे व्यस्ता वराहेण वराहवे ।
त्वया वसुन्धरोद्धारधीरेण धरणीधराः ॥

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (६८, ६९)
२. वही (६१२, ६१३)
३. रामा० मं०, यु० कां० (५५२–५६५)

त्वया दैत्या द्विपेन्द्रस्य लीलाकेसरिणा नखैः ।
यशांसि मौक्तिकानीव लुण्ठितानि सहासुभिः ।।

त्रैलोक्याक्रान्तिविभवः प्रययौ बलिसंयमे ।
ब्रह्माण्डमण्डपे दण्डपादस्थे मानदण्डताम् ।।

ज्वालाजालजटालस्ते परशुर्भार्गवाकृतेः ।
जजृम्भे क्षत्रियवने दीर्घदावाग्निलीलया ।।

सर्वदेवमयात्मा त्वं सर्वयज्ञमयः प्रभुः ।
सर्वदेवमयाकारः पुरुषः सर्वलोककृत ।।

वैकुण्ठस्त्वमकुण्ठश्रीः पद्मनाभो नभः प्रभः ।
केशवः केशहर्ता च शेषशायी नरेश्वरः ।।

स्मरस्व सचिवं देव गरुडं गरुड़ध्वज ।
भुजङ्गपञ्जरं घोरं स क्षिप्रं क्षपयिष्यति ।।

रावण-वध के बाद सीता की अग्नि परीक्षा के समय सभी देवता फूलों की वर्षा करते हुए आकाश में स्थित हो गए । इन्द्र से प्रेरित दशरथ सीता के सतीत्त्व की विश्वसनीयता दिलाते हुए राम के परब्रह्मत्त्व का वर्णन करते हैं । वे कहते हैं—राक्षसों का विनाश करने वाले प्रजानाथ ! आप क्यों अपरिचित व्यक्ति की भाँति निर्दोष सीता का परित्याग करते हैं । क्या अपने अच्युत स्वरूप को नहीं जानते । हे जगन्निवास ! क्या आप अपने प्रभाव को भूल गये हैं ।[१] पुनः इन्द्र से प्रेरित ब्रह्मा भी राम को उनके परब्रह्मत्त्व का स्मरण कराते हैं[२]—

देवो नारायणः श्रीमन्पद्मनाभो विभुर्भवान् ।
स्वेच्छामात्रसमुन्मेषो यस्यायं विश्वसंभ्रमः ।।

चराचरस्य स्रष्टारं भ्रातारं जगतामपि ।
संहर्तारं च पर्यन्ते त्वामाहुः कारणं त्रिधा ।।

सर्वयज्ञमयं धाम सर्वदेवमयं वपुः ।
सर्वदेवमयश्चात्मा कस्यान्यस्य यथा तव ।।

पराकाशावकाशेऽस्मिन्नेकोऽर्कस्त्वं सदोदितः ।
हंसो हिरण्यवर्ण्यश्च मानसोरुसरोरुहे ।।

---

१. रामा० मं०, महापुरुषस्तवः (१०५–१०८)

२. वही (११०–११६)

पुरुषस्याप्रमेयस्य शाश्वतस्य प्रजापतेः ।
स्तुतौ शक्तात्र नैवैषा तावती यदि भारती ।।

सर्वावतारलीलासु तव विस्रम्भसाक्षिणी ।
लक्ष्मीः क्षिति समुद्भूता सती जनकनन्दिनी ।।

इसके अतिरिक्त और भी कई स्थलों पर ब्रह्मादि देवतागण तथा अगस्त्यादि अनेक ऋषियों-महर्षियों ने भी राम के परब्रह्मत्त्व एवं अमितप्रभाव का यथासाध्य वर्णन ग्रंथ में किया है। कवि क्षेमेन्द्र ने बालकाण्ड, सुन्दरकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड के प्रथम श्लोकों में भगवान का ही यशोगान किया है—

जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा ।
अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना ।।

अंत में सम्पूर्ण लीला संवरण करके परमधाम को पधारने के प्रसङ्ग में भी यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि राम साक्षात् पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर थे।[1] इशके पूर्व काल-वाक्य से भी राम के परब्रह्मत्त्व की सूचना मिलती है।[2]

यः स ते नाभिनाज्जातः पद्मनाभसरोरुहात् ।
कृतकृत्यं जगत्कार्ये त्वामाह स चतुर्मुखः ।।

कैटभारे जगद्भारं हरता रक्षितं त्वया ।
विलुण्ठ्यमानं रक्षोभिर्देवानां विशदं यशः ।।

एकादशसहस्राणि वर्षाणां राज्यमूर्जितम् ।
कृतं तद्वैष्णवं धाम निजमासाद्यते न किम् ।।

शक्तिर्विश्वपरित्राणे विश्वनिर्माणशालिनी ।
सुरकार्यैकनिरता न त्वया रहितस्य मे ।।

भरत

सात्त्विक प्रवृत्तियों के उन्नायक एवं प्रतीक भरत का चरित्र सर्वोपरि है। यद्यपि रामायणमञ्जरी में अनेक चरित्रवान पात्रों के दर्शन होते हैं तथापि भरत का चरित्र उनमें अनूठा, सर्वाङ्ग सुन्दर चित्रित किया गया है। अनेक संघर्षमयी परिस्थितियों की कसौटी पर भरत अपने अदम्य साहस, अटूट धैर्य एवं अविकम्पित शक्ति द्वारा पूर्णरूपेण खरे उतरते हैं। प्रलोभनों का विशाल जाल चतुर्दिक फैला हुआ है, दशरथ मरण, राम वनवास,

---

१. रामा० मं०, उ० कां० (१२५५–१२६२)
२. रामा० मं० उ० कां० (१२२७–१२३०)

आत्मग्लानि, जनसाधारण की उनके प्रति आशंकित दृष्टि इत्यादि असंख्य एवं विशाल गर्जन करती हुई उर्मियों के आवर्त में भी भरत का धैर्य, भक्ति-स्नेह एवं कर्तव्यनिष्ठ रूप अडिग एवं अचल है।

रामायणमञ्जरी में भरत चरित्र के चित्रांकन के प्रमुख स्थल हैं—कैकय देश से प्रत्यावर्तन पर भरत की दशा, चित्रकूट प्रसङ्ग, अवध में निवास स्थिति तथा राम के अयोध्या लौटने पर उनका अप्रतिम रूप। भरत चरित्र से संबन्धित इन स्थलों में प्रमुख रूप से उनकी पितृ भक्ति एवं आद्योपान्त भाई राम के प्रति उनकी असीम भक्ति, स्नेह एवं स्वामिधर्मिता का स्वरूप चित्रित है। इन्हीं प्रसङ्गों में निहित भरत चरित्र के अन्य सद्गुणों का भी प्रचुर एवं विलक्षण विकास हुआ है।

रामायणमञ्जरी में भरत की अनुपम पितृ भक्ति का दर्शन होता है। ननिहाल से वापस अयोध्या लौटने के बाद माता कैकेयी से पिता के स्वर्गवास का समाचार पाने पर, शोक के कारण इनकी जो दशा हुई तथा उन्होने पिता के लिए जिस प्रकार बार-बार विलाप किया उससे उनके श्रद्धा समन्वित सच्चे पितृ स्नेह का परिचय मिलता है।[1] माँ से राम वन गमन एवं पिता की मृत्यु का कारण जानकर भरत कैकेयी को धिक्कारते हुए तथा स्वयं को दोषी ठहराते हुए माता कैकेयी की बार-बार निन्दा करते हैं।[2] इस स्थल पर पिता की मृत्यु का कारण कैकेयी को जानकर उन्हें धिक्कारने तथा स्वयं को दोषी ठहराने में भी भरत की पितृ भक्ति ही लक्षित होती है। तदनन्तर भरत कौशल्या से मिलते हैं। उनके समक्ष पिता की मृत्यु तथा भाई के वनगमन का कारण स्वयं को मानकर वे शोक विह्वल विलाप करते हुए मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। भूमि पर पड़े-भरत ने वह रात बितायी। पुनः वशिष्ठ तथा मंत्रियों के परामर्श से शोकाग्नि से तप्त भरत ने पिता का दाह संस्कार आदि पूर्ण किया। दशरथ संस्कार को पूर्ण करते-करते भरत पुनः शोक मूर्छित हो जाते हैं।[3] इन स्थलों से भरत की अनुपम पितृभक्ति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। पिता की मृत्यु का समाचार सुनने से लेकर उनके दाह संस्कार तक भरत के आँसुओं की निर्झर धारा अजस्र बहती रही। इस बीच शोकावस्था में न जाने कितनी बार वे मूर्छा को प्राप्त हुए।

भरत की मातृ भक्ति अनुपम है। भरद्वाज मुनि से माताओं का परिचय कराते समय माता कौशल्या तथा सुमित्रा के प्रति उनके आदर भाव, स्नेह एवं भक्ति का परि-

---

१. रामा० मं०, अ० प० (२४, २५)

२. रामा० मं०, अ० प० (३२–३७)

३. रामा० मं०, अ० प० (७८, ७९, ८०, ८१)

चय दर्शनीय है। आर्य राम की माता कौशल्या के यश और तेज की तुलना करने वाली कोई भी माँ इस लोक में नहीं है[1]—

इयमार्यस्य कौशल्या माता जिष्णोरिवादितिः ।
माता यस्य न लोकेऽस्ति यश सामथ तेजसाम ।।

इसी प्रकार वीर लक्ष्मण और शत्रुघ्न की उदारचित्त वाली माँ सुमित्रा के विषय में भी भरत अपनी आदर बुद्धि प्रकट करते हैं[2]—

इयं सुमित्रा भगवन्नीरवृत्तिरिवोचिता ।
यस्या लक्ष्मणशत्रुघ्नौ वीर्यौदार्यचितौ सुतौ ।।

कौशल्या और सुमित्रा के प्रति उनकी भक्ति एवं स्नेह का परिचय रामायणमञ्जरी में तो प्राप्त होता है किन्तु निज जननी कैकेयी के प्रति उनकी आदर बुद्धि का एक भी स्थल नहीं दिखाई पड़ता। इसका कारण तो सर्वविदित ही है।

भरत के भ्रातृ स्नेह के विषय में जितना कुछ कहा जाय वह अल्प ही है। उन्होंने तो भ्रातृप्रेम का अद्वितीय मानदण्ड ही स्थापित कर दिया। आज भी यदि कहीं भाई-भाई से स्नेह की पराकाष्ठा का निदर्शन देना होता है तो लोग भरत के अतुलनीय, अनुपम एवं अद्वितीय भ्रातृप्रेम को ही उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं। भरत शत्रु को बहुत प्रेम करते थे। बचपन से ही शत्रुघ्न छाया की भाँति भरत का अनुगमन करते हैं।[3] विवाहोपरान्त भरत के साथ वे ननिहाल जाते हैं। पुनः अयोध्या लौटकर पिता की मृत्यु तथा राम वन गमन से शत्रुघ्न भी भरत की भाँति दुःखी हो जाते हैं। भरत के साथ राम को वापस लाने के लिए शत्रुघ्न वन गए तथा वापस लौटकर भरत के साथ नन्दिग्राम में रहते हुए उनकी सेवा एवं भक्ति में संलग्न, उनके आदेशानुसार राज्य कार्य का संचालन करते हैं। इस प्रकार शत्रुघ्न भाई भरत के सुख एवं दुःख में अहर्निश साथ रहे। ऐसे विनीत, सेवा परायण शत्रुघ्न के प्रति भरत के असीम स्नेह का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इसी प्रकार लक्ष्मण के प्रति भी भरत के अपरिमित स्नेह का परिचय रामायणमञ्जरी में मिलता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि यद्यपि लक्ष्मण ने उनकी माँ कैकेयी की निन्दा की तथा यहाँ तक कि उनके चरित्र पर भी आशङ्का व्यक्त की किन्तु भरत इतने पर भी लक्ष्मण के प्रति असीम स्नेह रखते हुए उन्हें राम भक्ति में संलग्न समझ कर ही धन्य माना।

---

१. रामा० मं०, अ० प० (१०९)

२. रामा० मं०, अ० प० (११०)

३. रामा० मं०, बा० कां० (७८)

राम के प्रति उनकी अनुपम भक्ति, स्नेह एवं सेवापरायणता तो सर्वोत्कृष्ट है। वास्तव में राम भक्त के रूप में ही भरत चरित्र के सभी अंशों का पूर्ण विकास रामायण-मञ्जरी में देखने को मिलता है। राम के वन गमन का समाचार पाते ही भरत बार-बार करुण विलाप करते हुए परशु से काटे गए ताड़ के जड़ की भाँति भूमि पर गिर पड़े।[1] पुनः विलाप करते हुए भरत ने कैकेयी द्वारा किए गए इस गर्हित कार्य की घोर निन्दा की तथा राम को अयोध्या वापस लाने के लिए वन जाने को उद्यत हो गए। भ्रातृ वियोग में दुःखी भरत वन जाते समय भाई राम के प्रति जो वचन कहते हैं, उसमें उनकी अनुपम भक्ति एवं स्नेह का दर्शन होता है।[2] इन वचनों को कहते हुए वे बार-बार विलाप करते हैं। पुनः वन के लिए प्रस्थान करते हैं।

वन गमन के समय मार्ग में निषादराज से राम द्वारा चीर एवं जटा धारण की बात सुनने पर उनका महाशोक पुनः नये भाव को प्राप्त हो गया। वे व्यथित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।[3] तदनन्तर भरद्वाज ऋषि से राम के चित्रकूट निवास की बात सुनकर भी भरत अत्यन्त दुःखार्त हो जाते हैं।

निरन्तर भ्रातृ वियोग में दुःखी एवं रास्ते भर विलाप करते हुए भरत किसी प्रकार चित्रकूट में आश्रम के नजदीक पहुँचते हैं। उस मनोहर आश्रम के पास लक्ष्मण सहित राम को वल्कल एवं जटा धारण किए हुए देखकर तथा इस विपत्ति का कारण अपने को जानकर भरत अश्रुवाष्प गद्‌गद वाणी में विलाप करने लगे। पुनः भाइयों के जटा आदि धारण से उत्पन्न कष्ट एवं लज्जा तथा मिलने की उत्सुकता से उत्पन्न हर्ष आदि कई भावों से युक्त विलाप करते हुए तथा विचलित होते हुए पैरों वाले भरत भाई के पास पहुँचे। आँसुओं से रुधी दृष्टि, कृश एवं म्लान मुख से आर्य! केवल इतना ही कहकर भरत भूमि पर गिर पड़े। इस प्रकार शोक मूर्छित एवं भूमि पर गिरे हुए भाई भरत को बाहों के सहारे अङ्क में भरकर राम विलाप करने लगे।, प्रीतिपूर्वक उनके सिर को सहलाते हुए तथा उनके स्नेह एवं भक्ति की प्रशंसा करते हुए राम समाचार पूँछने लगे।[4] इस स्थल पर भी भ्रातृ स्नेह एवं भक्ति का दर्शन होता है।

दूसरे दिन वशिष्ठ आदि प्रमुख लोगों सहित भरत राम से अयोध्या वापस चलने के लिए निवेदन करते हुए कहते हैं—आर्य! मैं सहज भक्ति के कारण ही आपके सामने बोलने की इच्छा कर रहा हूँ, वैसे तो यह मेरी प्रगलभता ही है। पिताजी के बाद इस

---

१. रामा० मं०, अ० प० (२२, २३, २४)

२. वही (८३–८८)

३. वही (१०२)

४. वही (१७२–१७९)

पृथ्वी का भार वहन करने में आप ही समर्थ हैं। यदि स्त्री के वशीभूत होकर पिताजी ने यह भार मुझे सौंप दिया तो इसमें मेरी बुद्धि का विप्लव क्या है। हे राम! यह क्रमागत राज्य आप ही का है। मुझे राज्य प्राप्ति की कोई इच्छा नहीं है। सच कहता हूँ कि मुझे केवल आपके चरणों की सेवा ही चाहिए। लोकप्रिय उन महाराज के बाद हे आर्य! प्रजा आप जैसे सूर्य के उदय की प्रतीक्षा कर रही है। फिर यदि आपने पिताजी के आदेश से राज्य त्याग कर दिया है तो यह दास उसे किस तरह ग्रहण कर सकता है। हे प्रभु! प्रसन्न होवें तथा राजा के वियोग से व्यथित इस प्रजा की विपत्ति को विस्मृत कराकर स्वामीविहीन पृथ्वी का पालन करें।[1] भरत के उपर्युक्त वचनों से उनका अपरिमित त्याग, भाई राम के प्रति निष्ठा, स्नेह एवं भक्ति का दर्शन होता है।

तदनन्तर राम ने बहुत सी शास्त्रोक्त बातें कहते हुए तथा पिता की आज्ञा का महत्त्व दिखाकर भरत को भली-भाँति समझाया। किन्तु भरत को सन्तोष कहाँ? वे पुनः शोक में डूबे हुए तथा नेत्रों से नीर बहाते हुए राम से निवेदन करते हैं—आर्य प्रसन्न हों, तथा मुझ पातकी का कैकेयी द्वारा डाले गए पापपङ्किल से उद्धार करें। आप द्वारा प्रशस्त मार्ग मेरे लिए अत्यन्त कुटिल जान पड़ता है। अपने जैसे पापी के बंधन से प्रजा को मुक्त करने के लिए मैं अब इस निर्जन वन में आपके व्रत का पालन करूँगा।[2]

पुनः राम ने भरत को बहुविध समझाया। इस प्रकार वार्तालाप के फलस्वरूप जब राम ने अपनी स्वीकृति नहीं दी तो भरत पुनः बहुत दुःखार्त होकर कहने लगे—जब तक मेरे स्वामी प्रसन्न होकर ज्येष्ठ क्रमागत राज्य नहीं स्वीकार करेंगे तब तक मैं बिना खाए-पीए इस आश्रयविहीन जंगल में तापस जीवन व्यतीत करूँगा। ऐसा कहते हुए सुमन्त्र को दर्भासन लगाने का इशारा करते हैं। तदनन्तर स्वयं ही दर्भासन बिछाकर बैठ गये।[3]

राम फिर भरत को समझाते हुए कहते हैं कि हे वत्स! रघुवंश की कुलसम्पदा नष्ट मत होने दो। मेरी आज्ञा से जाकर धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा करो। मुनियों ने भी भरत को समझाते हुए कहा कि हे भरत! सत्यप्रतिज्ञ राम को बाध्य न करके तुम राज्य स्वीकार कर लो। राम तथा मुनियों के इन वचनों को सुन कर तथा मन में यह निश्चय करके कि राम राज्य नहीं स्वीकार करेंगे; भरत पुनः वज्राहत हो भाई के चरणों में गिरकर विलाप करने लगे। राम उन्हें अङ्क में भरकर प्रेमाश्रुओं से अभिषेक करते हुए बोले, "हे वत्स! तुम्हारे महान सत्य एवं अत्यन्त स्नेह को देखते हुए मैं कुल धर्म के

---

१. रामा० मं०, अ० प० (२२८–२३५)
२. वही (२४६–२४९)
३. वही (२८९–२९३)

कारण सत्य का त्याग करने में असमर्थ हूँ। दुःखी मत होओ। मेरी आज्ञानुसार अयोध्या वापस जाकर सात समुद्रों से युक्त पृथ्वी का पालन करो।[1]

सत्यप्रतिज्ञ राम के प्रेम और शिक्षापूर्ण वचन सुनकर तथा उनकी दृढ़ता देखकर, मुनियों के आदेश से राम की चरणपादुका लेकर भरत अयोध्या की ओर चल दिए। अयोध्या पहुँचने पर भू-भार की चिन्ता हृदय में रखकर मुनियों के परामर्श से राम के आगमन की अवधि तक शत्रुघ्न सहित नन्दिग्राम में रहने का निश्चय कर लिया। फिर सिंहासन पर चरणपादुका रखकर पूजा तथा छत्र-चामर से उसकी सेवा करते हुए, भरत जटावल्कल युक्त, ब्रह्मचारी के वेश में फलाहार करते हुए पृथ्वी का भार वहन करने लगे।[2]

लङ्का विजय के बाद हनुमान द्वारा राम के आगमन तथा उनकी कुशलता का समाचार पाकर भरत हर्षातिरेक से विह्वल हो गये। थोड़ी देर के लिए इस सुखद समाचार से भरत निश्चल मूर्ति सा बन गये। पुनः धीरे-धीरे थोड़ा धैर्य प्राप्त करके हर्षाश्रुपूर्ण नेत्रों के आँसुओं को हाथ के अग्रभाग से पोंछते हुए हनुमान से बोले, "आपके मुख से भगवान की कुशलता के प्रिय समाचार से बहुत ही सुखानुभूति हो रही है। ऐसा कहते हुए भरत ने सहस्र करोड़ मुद्राएं हनुमान को प्रदान की। पुनः सभी पुरवासियों को नगर अलंकृत करने की सूचना देते हुए मन्त्री, नौकर तथा माताओं सहित बड़े भाई की अगवानी करने चल दिए।[3] यह भरत का राम के प्रति अपरिमित स्नेह ही है कि उनके आगमन की सूचना मात्र से ही वे हर्षातिरेक में फूले नहीं समाते।

विमान पर स्थित अनन्तवीर्य राम को देखकर भरत अत्यन्त हर्ष के कारण दूर से ही प्रणाम करते हैं। दीर्घ प्रवास से उत्पन्न सम्मिलन की उत्सुकता से राम भरत को विमान से उतरने के पूर्व ही बाहों में भरकर आलिङ्गन करने लगे। फिर भरत हर्षपूर्वक राम को उनका धरोहर राज्य वापस कर दिये। सभी लोग इस सौजन्य पूर्ण वातावरण की साधुवाद कहने लगे। भरत के गुणों की लोगों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।[4]

रामायणमञ्जरी के उपर्युक्त स्थलों के आलोक में निसंदेह यह कहा जा सकता है कि भरत की राम भक्ति जगत के इतिहास में अद्वितीय है। इनका त्याग, संयम, व्रत, नियम सभी सराहनीय और अनुकरणीय है। इनके चरित्र में स्वार्थ त्याग, विनय, सहिष्णुता

---

१. रामा० मं०, अ० प० (२९५–३०२)
२. वही (३२१–३२५)
३. रामा० मं०, भरतानन्दः (१६४–१६८)
४. वही (१६९–१७३)

गम्भीरता, सरलता, क्षमा, वैराग्य और स्वामिभक्ति आदि गुणों का पूर्ण परिपाक रामायणमञ्जरी के उपर्युक्त सन्दर्भों से स्पष्ट ध्वनित होता है। भक्तिसहित निष्काम भाव से गार्हस्थ्य में रहते हुए प्रजापालन का ऐसा सुन्दर उदाहरण अन्यत्न मिलना कठिन है।

इस प्रकार भरत यद्यपि सर्वथा साधु, निर्दोष एवं अनुपम भ्रातृस्नेही थे तथापि उनको सबके सन्देह का पात्न बनना पड़ा। अयोध्या में पिता की मृत्यु तथा भाई के वियोग दुःख से विह्वल, वाष्पपूरित नेत्नों से युक्त, लज्जा से म्लान मुख कान्ति वाले भरत जब मां कौशल्या से मिलकर कैकेयी तथा अपने दोष को सुनाते हैं तो कौशल्या भरत को शंकालु दृष्टि से देखते हुए कहती हैं[1]—

गतस्ते जनकः स्वर्गं यातः काननमग्रजम् ।
भजतामधुना राज्यं जनन्या समुपार्जितम् ।।

माता कौशल्या की ऐसी बातें सुनकर भरत का हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया। फिर वे सत्य का आश्रय लेकर भाई राम के प्रति अपने असीम अनुराग का वर्णन करते हैं। भरत के ऐसे निर्दोष विचारों को सुनकर कौशल्या उनके गुणों की प्रशंसा करती हैं जिससे भरत चरित्न में निहित स्थिर संकल्प, साधुता, विशुद्धता, विवेकशीलता तथा सत्व बुद्धि आदि सद्गुणों का परिचय मिलता है[3]—

पुत्र जानामि ते भावं शपथं मा कृथाः परम् ।
साधोर्विशुद्धसत्वस्य सदा तव विवेकिनः ।
दोषपङ्क इव व्योम्नः कदा केनानुमीयते ।।

भरत स्थिर संकल्प वाले थे। इसीलिए उन्होंने राम को वापस लाने के लिए वन को प्रस्थान किया। किन्तु वन जाते समय उनकी चतुरङ्गिणी सेना को देखकर निषादराज के मन में भी सन्देह उत्पन्न होता है कि निश्चय ही वैभव लोलुप भरत राम के वध हेतु आ रहे हैं—**नूनं विभवलुब्धोऽयं रामं हन्तुमागतः**। परन्तु बाद में भरत के स्थिर संकल्प को जानकर उसकी भी शङ्का निर्मूल हो गयी। उसने प्रणाम करके भरत का विधिवत सत्कार भी किया।

इसी प्रकार चित्नकूट में सेना सहित भरत को देखकर लक्ष्मण उनके प्रति संदेह प्रकट करते हुए बहुत ही कठोर वचन कहते हैं।[3] भरत के प्रति लक्ष्मण की शङ्कालु बातें सुनकर राम भरत के सद्गुणों की प्रशंसा करते हुए लक्ष्मण की शङ्का का समाधान करते

---

१. रामा० मं०, अ० प० (५३)

२. वही (६३, ६४)

३. वही (१५८–१६२)

हैं। राम भरत की प्रशंसा करते हुए उनके जिन सद्‌गुणों की चर्चा करते हैं, उसके अनुसार भरत उच्चकुलोत्पन्न, विकारहीन, बुद्धिमान, वृद्धजनसेवी, आज्ञाकारी, धीर एवं सद्‌वृत्ति युक्त हैं। राम कहते हैं—लक्ष्मण ! उच्चकुलोत्पन्न, बुद्धिमान तथा वृद्धजनसेवी व्यक्तियों के मन में विकार नहीं उत्पन्न होता है। धीर एवं सद्‌वृत्ति युक्त भरत मुझमें विशद आशय के साथ भक्ति रखता है। अतः उसके विषय में व्यर्थ ही शङ्का मत करो। फिर यदि तुम्हें राज्य की इच्छा हो तो निःसन्देह भरत मेरी आज्ञा से तुम्हें राज्य सौंप देगा।[1]

इस प्रकार भरत के सदृश सर्वथा निःस्पृह धर्मात्मा एवं त्यागी महापुरुष का सबके सन्देह का शिकार बनना जगत के इतिहास में अनोखी बात है। इतने पर भी भरत सब कुछ सहन करते हैं। राम के प्रति भरत की अनन्य निष्ठा, भक्ति स्नेह एवं सेवापरायणता का सर्वोत्कृष्ट मापदण्ड यही है कि जब स्वयं राम ही उनके सद्‌गुणों तथा पावनचरित्र की निजमुख से प्रशंसा कर दिए तो इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं कि भरत का चरित्र कितना महान, पावन एवं उज्ज्वल है।

लक्ष्मण

रामायणमञ्जरी में रामसेवाव्रती लक्ष्मण का चरित्र बड़ा ही अनुपम है। अनेक बातों में समान होते हुए भी लक्ष्मण राम और भरत से भिन्न हैं। यद्यपि उन्हीं की भाँति वे भी सत्यप्रिय, सरल, विनम्र, कर्तव्यपरायण और दृढ़ हैं, किन्तु वे उनकी भाँति समाज धर्मी नहीं स्वामिधर्मी हैं। यह बात रामायणमञ्जरी में आद्योपान्त वर्णित लक्ष्मण के चरित्र से स्वतः स्पष्ट हो जाती है। सम्पूर्ण ग्रंथ में जन्म से लेकर स्वर्गारोहण के पूर्व तक लक्ष्मण राम की ही सेवा भक्ति में संलग्न रहते हैं। वे मनसा, वाचा और कर्मणा राम में ही अनुरक्त दिखलाई पड़ते हैं। बालकाण्ड के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि क्रीड़ा, विद्या, विनयशीलता आदि गुणों में लक्ष्मण नित्य प्रति राम का ही अनुकरण करते हैं।[2] बाल्यावस्था में तो लक्ष्मण रामानुकर्णी थे ही, बाद में भी विश्वामित्र की यज्ञरक्षा में राम के साथ जाकर दिन-रात उन्हीं के साथ रहने में ही उन्हें सुख मिलता है।

लक्ष्मण की स्वामिधर्मिता का तो सम्पूर्ण ग्रंथ में वर्णन सुलभ ही है, परन्तु यह सबसे अधिक आकर्षक उनके स्वामी राम के साथ वन चलने वाले आग्रह से प्रमाणित होती है। अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत वनगमन के समय राम लक्ष्मण को नीति सम्मत बातों के द्वारा समझाते हुए कहते हैं—"तुम भरत के साथ यहाँ रहते हुए माता-पिता की सेवा में संलग्न रहो तथा समस्त विकारों को त्याग कर मेरे आदेशानुसार इस पृथ्वी का पालन

---

१. रामा० मं०, अ० प० (१६४–१६७)

२. रामा० मं०, बा० कां० (८३)

करो ।''[1] राम के ऐसे वचन को सुनकर, वनगमन के लिए उद्यत, सत्य एवं धैर्य सम्पन्न, वीर लक्ष्मण राम से कहते हैं, "आर्य ! मैं सदैव छाया की भाँति आपका अनुगमन करने वाला हूँ । आपको छोड़कर एक पल भी मैं कैसे रह सकता हूँ ।''[2]

तत्पश्चात लक्ष्मण के दृढ़ आग्रह को जानकर राम उन्हें साथ चलने की अनुमति दे देते हैं । पुनः वनवास की सम्पूर्ण अवधि में लक्ष्मण सेवाव्रत का पालन करते हुए विनय पूर्वक एक दास की भाँति स्वामी राम एवं सीता के प्रति अहर्निश कर्तव्य पालन में जुटे रहे ।

लक्ष्मण राम के सेवक ही नहीं अपितु भाई भी थे । लक्ष्मण तो स्वामी राम का सेवक की तरह आदेश पालन करते थे परन्तु राम लक्ष्मण से सदैव एक छोटे भाई की तरह समझाते-बुझाते एवं प्रेम करते थे । राम एवं लक्ष्मण में परस्पर असीम स्नेह का भी यही रहस्य जान पड़ता है । राम सदैव भाई लक्ष्मण की विनम्रता, सरलता तथा कर्तव्यपरायणता आदि से आर्द्र रहते थे । लक्ष्मण उनको प्राणों से भी अधिक प्रिय थे । तभी तो रावण के शक्ति बाण से मूर्छित हो जाने पर राम का करुण विलाप इतना असह्य एवं हृदय-विदारक है । राम विलाप करते हुए कहते हैं, "हा लक्ष्मण ! तुमने मेरे लिए सुखों का परित्याग किया, फिर क्यों मुझसे विमुख हो, भूमि का आलिङ्गन कर सो रहे हो। सब जगह बन्धु-बान्धव और मित्र हैं किन्तु अभिन्नजन्मदेह वाला वह सहोदर तो दुर्लभ हो गया । मन्त्री, बन्धु, पुत्र, शिष्य एवं मित्रादि के रहते हुए भी लक्ष्मण के समान भाई भाग्यहीनों को नहीं मिलता । मेरा सर्वस्व अभिमान भग्न हो गया, मैं कैसे जीवित रह सकता हूँ । लक्ष्मण जो मेरी दाहिनी भुजा था वह कट गया ।''[3] इन वाक्यों को कहते हुए राम भाई लक्ष्मण के लिए बार-बार विलाप करते हैं ।

इसी प्रकार काल वाक्य की प्रतिज्ञा में बँध जाने पर जब राम को अपने प्रिय भाई लक्ष्मण का त्याग करना पड़ा तो उस समय भी उनके कष्ट का पार न रहा । पुनः जब लक्ष्मण का स्वर्गारोहण हो जाता है तब तो लक्ष्मण से हीन राम की मानों दशों दिशाएँ ही शून्य हो गयी ।[4] यही नहीं उन्होंने भरत एवं शत्रुघ्न को बुलाकर राज्य आदि सभी पुत्रों को सौंप कर अपने भी स्वर्गारोहण की तैयारी कर लेते हैं ।

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (८५६)

२. वही (८५८, ८५९)

३. रामा० मं०, यु० कां० (५१४-५१७)

४. रामा० मं०, उ० कां० (१२५५)

उपर्युक्त स्थलों से स्पष्टतः लक्षित होता है कि लक्ष्मण का अपने स्वामी एवं भाई राम के प्रति असीम स्नेह, भक्ति एवं विनम्र व्यवहार था तभी तो राम की, लक्ष्मणशक्ति एवं लक्ष्मण त्याग के समय यह करुण दशा देखने को मिलती है।

कर्तव्याकर्तव्य के विचार में लक्ष्मण की नम्रता एवं विनयशीलता कभी भङ्ग नहीं होती। अरण्य पर्व[1] के अन्तर्गत राम के बाण से आहत मायामृग जब हा! लक्ष्मण, कहते हुए आर्तनाद करता है तो सीता पति को विपत्ति ग्रस्त जानकर लक्ष्मण को उनके पास जाने को कहती हैं। इस पर लक्ष्मण सीता को भली प्रकार समझाते हुए कहते हैं— बहुत से भयंकर राक्षसों से युक्त इस जङ्गल में मैं आपको छोड़कर कैसे जा सकता हूँ जब कि राम ने मुझे आपके रक्षार्थ नियुक्त किया है। पुनः आप राम के पराक्रम को जानती हैं, कोई भी शत्रु उनके बाण से नहीं बच सकता है। लक्ष्मण के इन वाक्यों को सुनकर सीता शङ्कालु दृष्टि से देखती हुई लक्ष्मण से कहती हैं—तुम्हारे मन में मेरे प्रति जो मिथ्या प्रणय प्रयास है उसे मैं समझ रही हूँ। यही कारण है कि तुम प्रिय भाई के विनाश की प्रतीक्षा कर रहे हो।"[2] सीता के मुंह से ऐसे अप्रिय एवं कलङ्क युक्त वचनों को सुनकर लक्ष्मण डर गये तथा उनका हृदय जैसे वज्र से विदीर्ण कर दिया गया। लक्ष्मण हाथ जोड़कर बोले, "हे सीता! तुम मेरी माता के समान हो, तुमने कैसे अपने इस वाग्बाण से मुझे बेंध दिया? हे माता! अब मैं शीघ्र ही राम को देखने जा रहा हूँ तुम्हारी दुरुक्ति के साक्षी ये वनचर हैं तथा वन देवता तुम्हारी रक्षा करें।[3]

इस प्रकार लक्ष्मण; ऐसे धर्म संकट में भी मर्यादा का अतिक्रमण न करके अपनी विनयशीलता का ही परिचय देते हैं। सीता द्वारा अनेक कटूक्तियों से चरित्र को लांक्षित करने पर भी वे उनसे हाथ जोड़कर क्षमायाचना करते हैं साथ ही उनके रक्षार्थ वन देवताओं की प्रार्थना करते हुए अपने कर्तव्य का पालन करते हैं।

स्वामी तो स्वतन्त्र होता है लेकिन सेवक परतन्त्र। कभी-कभी ऐसे क्षण भी आते हैं जबकि स्वामिधर्मी धर्मसंकट में पड़कर अत्यन्त कष्ट की अनुभूति करता है किन्तु फिर भी स्वामी का आदेश पालन तो उसका चरम लक्ष्य होता ही है। ठीक ऐसे ही धर्मसंकट में लक्ष्मण भी रामायणमञ्जरी में एक-दो स्थलों पर दिखाई पड़ते हैं। रावण वध के बाद जब विभीषण द्वारा सीता राम के सामने लायी जाती हैं तो राम बहुत से अपमान-सूचक शब्दों द्वारा सीता के चरित्र पर आक्षेप करते हैं। पुनः लज्जा, अपमान एवं कष्ट

---

१. रामा० मं०, अ० प० (७६१–७८०)

२. वही (७७३, ७७४)

३. वही (७७५–७७६)

से युक्त सीता लक्ष्मण को चिता लगाने के लिए आदेश करती हैं।[1] ऐसी परिस्थिति में जबकि एक तरफ स्वामी राम ने सीता को बहुत अधिक अपमानित किया तथा दूसरी तरफ सीता ने लक्ष्मण को चिता लगाने का आदेश दिया, दोनों ही लक्ष्मण के लिए अत्यंत कष्टदायी सिद्ध हो ा है। तथापि लक्ष्मण ने सारे कष्टों को सहते हुए अपने कर्तव्य को निभाया।

ठीक ऐसी ही परिस्थिति लक्ष्मण के समक्ष तब उत्पन्न होती है जब राम लोकापवाद के कारण सीता को गङ्गा के पार दूर निर्जन वन में छोड़ने का आदेश देते हैं। राम के इस आदेश पालन में लक्ष्मण को अत्यंत कष्ट होता है। वे इस नृशंस एवं क्रूर आचरण को शोकाग्नि में संतप्त होते हुए भी करने के लिए उद्यत हैं। इस घृणित कार्य से वे अपना जीवन ही व्यर्थ समझते हैं।[2]

उपर्युक्त स्थलों से यह विदित होता है कि लक्ष्मण सीता की इन दुःखद परिस्थितियों में काफी उद्विग्न हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे न चाहते हुए भी स्वामी के आदेशों का पालन करते हैं। प्रायः इस प्रकार के कर्तव्याकर्तव्य के बवन्डर प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आते रहते हैं और ऐसी स्थिति में साधारण मानव स्वामी या बड़े की आज्ञा का उल्लङ्घन भी कर देता है। परन्तु अद्भुत धैर्य सम्पन्न लक्ष्मण असह्य कष्ट को वज्र प्रहार की भाँति सहन करते हुए भी मर्यादा एवं कर्तव्य की रक्षा करते हैं।

लक्ष्मण अद्भुत पराक्रमी एवं कुशल योद्धा थे। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त राम के साथ रहते हुए उन्होंने अनेक राक्षसों का वध किया। युद्ध काण्ड के अन्तर्गत तो उनके बाणों से राक्षसराज रावण के कई सेनापति मारे गये। युद्ध स्थल में राक्षसी सेना के उन्होंने छक्के छुड़ा दिए। उनके पराक्रम एवं शक्ति की पराकाष्ठा तो उस समय देखने को मिलती है जब उन्होंने ब्रह्मा से वर प्राप्त एवं इन्द्र आदि देवताओं को जीतने वाले इन्द्रजित का वध किया।[3]

यह स्पष्ट ही है कि लक्ष्मण सत्य प्रिय, सरल, विनम्र, कर्तव्य परायण, धीर, वीर एवं गम्भीर हैं। किन्तु उनके चरित्र में धैर्यसम्पन्नता का जो गुण है उसका अपवाद भी रामायणमञ्जरी के कई स्थलों पर प्राप्त होता है। इन स्थलों में लक्ष्मण चरित्र का एक दूसरा ही रूप उद्घटित होता है—यह है उनकी उग्रवादिता उनका क्रोधी स्वभाव। लक्ष्मण सत्यप्रिय हैं, वे असत्य एवं अन्याय को किसी स्तर पर किसी प्रकार भी सहन करने

---

४. रामा० मं०, रामाभिषेक: (७०–१००)
२. रामा० मं०, उ० कां० (७८६–७८८)
३. रामा० मं०, यु० कां० (११४८–११५२)

में समर्थ नहीं हैं। फिर अपने स्वामी एवं बड़े भाई राम जिसके लिए उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ही न्योछावर कर दिया, के प्रति किसी प्रकार के अन्याय को कैसे सहन कर सकते हैं। यही कारण है कि लक्ष्मण जब भाई राम के वन गमन हेतु पिता दशरथ को जान जाते हैं तो वे क्रोधावेश में राजा दशरथ को व्यसनी, स्त्री के वशीभूत आदि अपशब्दों से संबोधित करते हुए सम्पूर्ण कल्प का अन्त करने के लिए भी उद्यत हो जाते हैं।[१] परन्तु बाद में राम द्वारा समझाने पर उनका क्रोध शान्त हो जाता है।

इसी प्रकार अरण्य पर्व में भी लक्ष्मण भरत की सेना को आते देखकर क्रोधित हो उठते हैं। लक्ष्मण राम से कहते हैं—निश्चय ही कैकेयी पुत्र भरत राज्य वैभव के अभिमान के कारण राज्य भ्रष्ट आपके समूल नाश हेतु युद्ध करने के लिए आ रहा है।[२] पुनः कोप संतप्त लक्ष्मण की शङ्का का राम निवारण करते हैं।

किष्किन्धाकाण्ड के अन्तर्ग सुग्रीव जब राज्य एवं स्त्री को वापस पाकर विषयासक्त हो, रामकार्य को भूल गया तो उस समय भी लक्ष्मण के क्रोध का पार न रहा। क्रोधान्ध लक्ष्मण सुग्रीव की नगरी में पहुँचकर इस प्रकार की गर्जना की मानों उनका बाण उस समय सम्पूर्ण सृष्टि को ही भस्म करने वाला हो। वे सुग्रीव सहित समस्त वानरों के विनाश के लिए उद्यत थे।[3] परन्तु हनुमान आदि के द्वारा उनका क्रोध शान्त किया गया।

इस प्रकार लक्ष्मण के चरित्र का एक अंग उनका क्रोधी स्वभाव भी दिखलाई पड़ता है। ऐसे ही स्थलों पर लक्ष्मण का धैर्य एवं गाम्भीर्य विनष्ट हो जाता है तथा उनके उग्रवादी एवं क्रोधी व्यक्तित्व का परिचय मिलता है।

रामायणमञ्जरी में लक्ष्मण प्रायः विनयशील, सत्यप्रिय, स्वामि भक्त तथा कतिपय स्थलों पर उग्रवादी के रूप में दिखाई पड़ते हैं। परन्तु उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत उनके चरित्र का एक और भाग देखा जा सकता है। कालवाक्य की प्रतिज्ञा में बँध जाने के कारण राम अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं। प्राणों से प्रिय भाई लक्ष्मण को अपने मुँह से किस प्रकार प्राण दण्ड की सजा दें। इस पर लक्ष्मण उन्हें जीवन की निःसारता का उपदेश देते हुए कहते हैं—हे देव यदि आप लोक में सत्यव्रती हैं तो मेरे प्रति स्नेह को त्याग दीजिए तथा अपनी प्रतिज्ञा को व्यर्थ मत कीजिए। स्नेह में बँधे हुए शरीरधारियों का यह प्रेम मिथ्या है क्योंकि काल की निःसार तरल गति इसी प्रकार ही होती है।[४]—

१. रामा० मं०, अयो० कां० (८३६–८४१)
२. रामा० मं०, अ० प० (१५७–१६२)
३. रामा० मं०, कि० कि० कां० (८२–८२)
४. रामा० मं०, उ० कां० (१२४१, ४२)

तं लक्ष्मणोऽवदद्देव प्रतिज्ञां मा वृथा कृथाः ।
जहि मां स्नेहमुत्सृज्य लोके सत्यव्रतो ह्यसि ।।

स्नेहानुबद्धो मिथ्यैव सर्वत्रायं शरीरिणाम् ।
एवंरूपैव कालस्य निःसारतरला गतिः ।।

सम्पूर्ण रामायणञ्जरी में लक्ष्मण के इस प्रकार के वचन कहीं भी ध्वनित नहीं होते । यह उनके चरित्र का एक अलग अंश ही प्रकट करता है जिससे उनका सत्यप्रतिज्ञ एवं दार्शनिक स्वरूप स्पष्ट होता है ।

शत्रुघ्न

रामायणमञ्जरी में शत्रुघ्न के चरित्र से सम्बन्धित विशेष विवरण नहीं मिलता परन्तु जो कुछ वर्णन सुलभ है, उसी से इनकी महत्ता का आकलन किया जा सकता है । वे राम के दासानुदासों में अग्रगण्य, मौनकर्मी, सदाचारी, मितभाषी, सत्यवादी, विषय विरागी, सरल, प्रेमी, तेजःपूर्ण, गुरुजन अनुगामी, वीर एवं कुशल योद्धा थे ।

शत्रुघ्न बाल्यकाल से ही सदैव भरत के साथ रहते थे,[१] अतः भरत और उनका चरित्र साथ-साथ विकसित होता है । इसीलिए रामायणमञ्जरी में उनके विषय में कोई विशेष बात अलग से नहीं कही गयी है । उनके गुण और चरित्र का आकलन भरत के ही चरित्र से किया जा सकता है ।

विवाहोपरान्त अयोध्या आने के कुछ ही दिन पश्चात् भरत को उनके मामा युधाजित अपने देश ले जाने लगे, उस समय शत्रुघ्न भी उनके साथ ननिहाल चले गए ।[२] ध्यातव्य है कि भरत के प्रेम में उन्होंने माता-पिता, भाई-बन्धु तथा नवविवाहिता स्त्री का कुछ भी मोह न करके भाई भरत के साथ रहना अपना परम कर्तव्य समझा । यह उनके प्रेमी व्यक्तित्व का ही द्योतक है ।

शत्रुघ्न मौनकर्मी, मितभाषी तथा सदाचारी थे । ननिहाल से अयोध्या वापस लौटने पर सारा वृत्तान्त जानने के बाद भी वे कुछ नहीं बोलते, किन्तु भाई राम का वनवास तथा पिता की मृत्यु उनके लिए असह्य हो गयी जिसके फलस्वरूप मौनकर्मी शत्रुघ्न मन्थरा को देखते ही आग बबूले हो जाते हैं । दुःख और क्रोध में भरे शत्रुघ्न मन्थरा के केश पकड़कर जमीन पर घसीटने लगे । उसका सम्पूर्ण शरीर धूलधूसरित हो गया, आभूषण टूटकर जमीन पर चारों तरफ बिखर गया । इसके बाद सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रथम निन्दनीय

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (७८)

२. रामा० मं०, अयो० कां० (६३५)

तथा सभी पापों की एकमात्र स्थान यही है, ऐसा कहते हुए उसे छोड़ दिए। वह जाकर दूर गिर पड़ी।[१] अन्याय, पाप एवं दुराचार के विरुद्ध शत्रुघ्न द्वारा किया गया यह कर्म उनके सदाचारी व्यक्तित्व का भी बोध कराता है।

इसके बाद शत्रुघ्न भरत के साथ राम को वापस लाने के लिए वन जाते हैं, तथा राम से पादुका लेकर भरत के साथ ही अयोध्या वापस आए। अयोध्या आने के बाद वे राम के आने की अवधि तक नन्दिग्राम में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए भरत के आज्ञानुसार राज्य और परिवार की सेवा करते रहे। इस स्थल पर शत्रुघ्न के चरित्र में निहित उनका विषय विरागी रूप भी स्पष्ट हो जाता है।

शत्रुघ्न महान पराक्रमी, परम तेजस्वी एवं कुशल योद्धा भी थे। ऋषियों के आग्रह तथा राम के आदेश से वे लवणासुर के वध हेतु उसकी राजधानी में पहुँचते हैं। वहाँ उसके साथ युद्ध करते हुए शत्रुघ्न ने अपने अतुलित पराक्रम, तेज एवं युद्ध कौशल द्वारा लवणासुर का वध किया। लवणासुर के वध पर देवताओं ने शत्रुघ्न की प्रशंसा करते हुए जय दुन्दुभि बजाई।[२]

प्रतिनायक रावण

धीरोद्धत, अधर्माचारी, व्यसनी (मनु द्वारा प्रतिपादित १८ प्रकार के व्यसनों में से किसी भी एक व्यसनवाला) नायक का प्रतिपक्षी प्रतिनायक कहलाता है[३]—**धीरोद्धतः पापकारी व्यसनी प्रतिनायकः**। रामायणमञ्जरी में वर्णित रावण के चरित्र में प्रतिनायक के उपर्युक्त सभी लक्षण घटित होते हैं। अतः रावण चरित्र की सम्पूर्ण विशेषताओं का वर्णन रामायणमञ्जरी के उद्धरणों से किया जा रहा है।

यद्यपि रामायणमञ्जरी में रावण का चरित्र राजसी एवं तामसी प्रवृत्तियों का प्रतीक, कुटिल राजनीतिज्ञ, महान पराक्रमशाली, कामी एवं अत्यंत क्रोधी अंकित किया गया है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिनायक होते हुए भी रामयणमञ्जरी में रावण का चरित्र परम ऐश्वर्ययुक्त, शोभा सम्पन्न एवं शौर्य पराक्रम से समन्वित चित्रित किया गया है।

जीवन का आदिकाल उसका तपस्वी रूप प्रतिष्ठित करता है।[४] वरदान प्राप्ति द्वारा वह अजेय एवं अमरवत बन गया।[५] तदनन्तर उसका दिग्विजय अभियान प्रारम्भ

१. रामा० मं०, अ० प० (४७, ४८, ४९)
२. रामा० मं०, उ० कां० (९९१–९९८)
३. सा० द० (३।१३०, १३१)
४. रामा० मं०, उ० कां० (१३४–१३८)
५. वही (१३९, १४०, १४१)

होता है। रावण अपने भाई कुबेर के प्रति विनीत होने पर भी अपने नाना सुमाली से प्रोत्साहन पाकर तथा प्रहस्त द्वारा पूर्व वृत्तान्त जानकर उनसे लङ्का का राज्य छीन लेता है।[१] पुनः देव, ऋषि, यक्ष गन्धर्वों पर अत्याचार करने लगा। कैलाश यात्रा करते समय यक्षों से युद्ध किया तथा कुबेर से द्वन्द्व युद्ध करके पुष्पक विमान का अपहरण कर लिया।[२] कैलाश पर्वत तक को अपनी भुजाओं द्वारा उठाकर अपने अतुल पराक्रम का परिचय दिया।[३] तत्पश्चात उशीरवीज देश में राजा मरुत को ललकार कर, यज्ञ में आहूत ऋषिगणों को मारकर उनका रक्त पान किया।[४] अयोध्या नरेश अनरण्य से युद्ध कर उन्हें पराजित किया।[५] नारद की प्रेरणा से यमलोक में यमराज से भिड़ा तथा यमकिङ्करों को परास्त कर अपने को यमलोक का विजयी घोषित किया।[६] तदनन्तर रसातल जाकर वरुणपुत्रों को मारकर वरुण लोक में भी अपनी शूरता की पताका फहराई तथा निवातकवच से मैत्री की।[७] सोम लोक जाकर भगवान शंकर से वर प्राप्त किया।[८] दिग्विजय से लौटते समय वर प्राप्ति के कारण उद्धत उसने अनेक देव, गन्धर्वों की सुललनाओं का अपहरण किया।[९] अपनी बहन कुम्भीनसी को मधु दैत्य द्वारा अपहृत सुनकर मधुपुरी गया परन्तु उससे संधि हो गयी।[१०] इसके पश्चात उसने स्वर्ग विजय के लिए प्रस्थान किया। इन्द्रलोक पहूँचकर इन्द्रजित की सहायता से इन्द्र को बन्दी बनाया।[११]

रावण को उत्तम कुल पुलस्त्य का वंशज कहा गया है।[१२] उसके प्रतापवान पराक्रम युक्त एवं तेजस्वी बनने की प्रेरणास्वरूप उसकी माता का प्रोत्साहन बताया गया है।[१३]

---

१. रामा० मं०, उ० कां० (१५२–१९०)
२. वही (२५२–२७५)
३. वही (२८६–२९६)
४. वही (३२३–३३६)
५. वही (३४४–३४८)
६. वही (४४२–४८०)
७. वही (४८१–५२१)
८. वही (५३१–५४५)
९. वही (५४६)
१०. वही (५७२–५७६)
११. वही (६१९–६३६)
१२. रामा० मं०, सु० कां० (२६८)
१३. रामा० मं०, उ० कां० (१३१, १३२, १३३)

उसके लोकव्यापी आतंक का चित्रण रामायणमञ्जरी में अनेक स्थलों पर विद्यमान है। बालकाण्ड के प्रारम्भ में ही ब्रह्मादि देवताओं द्वारा उसके आतङ्क का संकेत किया गया है।[1] इसके अतिरिक्त समय-समय पर शूर्पनखा, राक्षसियों, प्रहस्त, वज्रदंष्ट्र, इन्द्रजित आदि अनेक पात्रों द्वारा भी उसके लोकव्यापी आतंक का वर्णन किया गया है।[2] रावण स्वयं सीता से अपने आतंक का विवरण देता हुआ स्वप्रभुत्व का परिचय देता है।[3]

रामायणमञ्जरी में उसके परमतेजस्वी रूप का अंकन किया गया है। शूर्पनखा, विभीषण तथा हनुमान द्वारा उसकी तेजस्विता की चर्चा की गयी है।[4] उसके रसिक एवं संगीतज्ञ रूप का भी विस्तृत उल्लेख मिलता है।[5]

उसकी स्नेहशीलता के भी पर्याप्त निदर्शन हैं। बहन शूर्पनखा के विधवा हो जाने पर उसके प्रति उसका यथोचित व्यवहार सराहनीय तथा मानवता का परिचायक है।[6] इसी प्रकार बहन कुम्भीनसी के साथ भी उसकी स्नेहशीलता एवं उचित व्यवहार का दर्शन होता है।[7] सहोदर भ्राता कुम्भकर्ण तथा प्राणप्रिय पुत्र इन्द्रजित की मृत्यु के उपरान्त उसके करुण विलाप में भाई तथा पुत्र के प्रति अद्भुत स्नेह का दर्शन होता है।[8]

रावण की कामुकता का भी विस्तृत उल्लेख रामायणमञ्जरी में मिलता है। देववती तथा अप्सरा रम्भा के प्रसङ्ग एवं उनके कारण प्राप्त शाप इसके पर्याप्त उदाहरण हैं।[9]

उसके सभी रूपों में राजा तथा राजनीतिज्ञ रूप विशिष्ट है जिसका व्यापक उल्लेख मिलता है। राजा रूप में वह परम तेजस्वी, दिग्विजयी, सार्वभौमवशवर्ती सम्राट की भाँति अपने सम्पन्न राज्य में शासन करता है। उसके राज्य की कुशलता का प्रमाण उसके प्रजा की धन-धान्य एवं ऐश्वर्य सम्पन्नता है। उसके राज्य में निर्माणकला अपनी

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (६६–६८)
२. रामा० मं०, अ० प० (६४७–६५०), सु० कां० (२६८–२७३), यु० कां० (४६–५१, ६०–६३, ११६–१२१)
३. रामा० मं०, अ० प० (८००–८०७, ८१८–८२३)
४. रामा० मं०, अ० प० (६१६–६६२), सु० कां० (४८७–४८०), यु० कां० (२०–२६)
५. रामा० मं०, सु० कां० (५२, ८४), उ० कां० (५८७, ५८८)
६. रामा० मं०, उ० कां० (५५०–५५८)
७. वही (५७२–५७६)
८. रामा मं०, यु० कां (८७८–८८०, ११६१–११६८)
९. रामा० मं०, उ० कां० (२८८–३२२, ५८८–६१८)

चरमसीमा पर प्रतिष्ठित थी। उसकी नगरी समृद्धि एवं शोभा में स्वर्गलोक के समकक्ष थी। हनुमान द्वारा सुन्दरकाण्ड के प्रारम्भ में लङ्कापुरी का वर्णन इसका स्पष्ट उदाहरण है।[1]

इसके अतिरिक्त वह अत्यन्त व्यवहारकुशल एवं वाग्म्यकोविद राजा की भाँति मंत्रिमण्डल से सदैव आवश्यक समयों पर परामर्श किया करता था।[2] इसका अनेक स्थलों पर विवरण दिया गया है। यही कारण था कि उसके मन्त्री भी अत्यन्त निर्भीकता से उचित मन्त्रणा देने में संकोच नहीं करते थे तथा समय पड़ने पर राजा की इच्छा के विरुद्ध भी उचित मत दिया करते थे।[3] राजा सूक्ष्म बुद्धि द्वारा उन पर विचार करके उस मन्त्रणा के अनुसार आचरण भी करता था। उदाहरणार्थ—नागपाशबद्ध हनुमान के प्रति दण्ड के लिए विभीषण की मंत्रणा का पालन करना।[4]

भेद नीति का अवलम्ब लेकर वह मारीच के पास अत्यन्त विनीत रूप से जाकर शरणागत भाव से सारी बातें कहता है। इतना ही नहीं वाग्म्यविशारद की भाँति निज स्वार्थसिद्ध हेतु मारीच की चाटुकारी भी करता है।[5] यह उसकी नीतिनिपुणता और कार्यसाधक रूप की ओर ही संकेत करता है। परन्तु उसके हठधर्म ने मारीच के प्रति दण्डनीति के लिए भी विवश कर दिया तथा मारीच के हितवार्ता की अवहेलना करा दी।[6] उसके इसी हठधर्म ने अनेक स्थानों पर प्रबल रूप धारण कर लिए जिसने उसके राजनीति कौशल चन्द्र में कलंक का स्थान ग्रहण किया तथा इसी की प्रेरणा वश उसने अनेक बार हित मन्त्रणाओं का तिरस्कार किया और दुष्परिणाम भोगी बना। मारीच, विभीषण, अतिकाय तथा माल्यवान आदि के हित मन्त्रणाओं की अवहेलना इसके स्पष्ट प्रमाण हैं।

उसके सभी गुणावगुणों में सबसे अधिक प्रबलतम रूप वर्णित है उसका अहं भाव जिसका अनुभव है उसकी आत्मश्लाघा। स्वपराक्रम पर गर्व है क्योंकि उसे यह आत्मविश्वास है कि त्रैलोक्य में उसका प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। अतएव उसे स्वाभिमान होना स्वाभाविक है। इसीलिए वह किसी भी परिस्थिति से भयभीत नहीं होता अपितु सभी चुनौ-

---

१. रामा० मं०, सु० कां० (२–१३६)

२. रामा० मं०, यु० कां० (४५–१६६, २८०–३३४, ३६६–३८०, ७४८–७८०, ८९२–९००, ११७२–११८९)

३. वही (२६–३७, ३६६–३८०, ७४८–७८०, २८४–३००, ३३२, ३३३, ३३४)

४. रामा० मं०, सु० कां० (५३२–५३६)

५. रामा० मं०, अ० प० (६७०–६७९)

६. वही (७११–७२१)

तियों को सहर्ष स्वीकार कर संघर्ष करता है। उसकी गर्वोक्तियाँ इसी मनःस्थिति की प्रतीक हैं। रामायणमञ्जरी के अनेक स्थलों पर उसके अहं भाव को देखा जा सकता है।

उसकी मानवोचित दुर्बलताओं का भी दिग्दर्शन रामायणमञ्जरी में कराया गया है। भ्रातृ शोक एवं पुत्र शोक से व्यथित हृदय का भी मार्मिक चित्रण कवि ने मनोवैज्ञानिक रीति से किया है।[1] वह चिन्ताकुल भी होता है।[2] भाई विभीषण की हितवार्ता को न मानकर पश्चाताप भी व्यक्त करता है।[3] कवि ने उसकी अवधानता एवं अदूरदर्शी स्वरूप की निन्दा भी प्रजा द्वारा करवाई है।[4] राक्षस होने के कारण उसकी हिंसात्मक एवं घृणात्मक प्रवृत्ति को दर्शाया गया है।[5] उसका गर्व उसे प्रतिशोध के लिए विवश करता है।[6] मायाजाल का भी विस्तार करता है।[7]

रामायणमञ्जरी में रावण के चरित्र का स्वाभाविक विकास वर्णित हुआ है। उसमें राम के समकक्ष प्रतिनायकत्त्व विद्यमान है। वह दीप्ति, ऐश्वर्य, शक्ति एवं शौर्य समन्वित है। राजा रूप में वह किसी भी भाँति ऐश्वर्य एवं अनुशासन में राम से कम नहीं है। युद्ध कौशल की सभी विधियों में वह निष्णात है। इसीलिए वह देवताओं से अवध्य, दुर्दमनीय एवं लोक कण्टक सिद्ध हुआ। परन्तु देववती एवं रम्भा आदि के शाप के कारण उसकी कामुक उच्छृङ्खलता का भीषण परिणाम उसे प्राप्त हुआ जिसका कि वह पात्र एवं अधिकारी था।

सहनायक सुग्रीव

सहनायक के लक्षण—नायक के बहुदूरव्यापी (अत्यन्त विस्तार पाने वाले) प्रासङ्गिक इतिवृत्त में उस नायक के सामान्य गुणों से कुछ न्यून गुणों वाला (प्रायः नायक की तरह गुणवान) नायक का 'पीठमर्द' नायक (कार्यविशेषेऽधिकृतत्वात्पीठं मृदनातीति पीठमर्दः इत्यन्वर्थ संज्ञा) सहायक होता है।[8] इस प्रकार सहनायक को 'पीठमर्द' भी

---

१. रामा० मं०, यु० कां० (८७८–८८०, ११६१–११६८)
२. वही (२८०–२८५, ५६८–५७३, ७२१–७३०, ८८८–८६७, ६५१–६५५, ११६१–११७७)
३. वही (८८८, ८८०)
४. रामा० मं०, यु० कां० (२–१८, ३५५–३६५)
५. रामा० मं०, उ० कां० (३२३–३३६)
६. रामा० मं०, अ० प० (६५५–६७८)
७. रामा० मं०, यु० कां० (३३४–३४५)
८. सा० द० ३।३८

कहा जाता है। यथा—रामायणमञ्जरी में सुग्रीव प्रासङ्गिक इतिवृत्त के नायक हैं और नायक राम के सुदूरवर्ती चरित (रावणवधादि) में सहायक हैं। राम के कई गुण न्यूनाधिक मात्रा में सुग्रीव में विद्यमान हैं। अतः ये 'पीठमर्द' नामक सहायक हैं।

सुग्रीव का चरित्र चित्रण

रामायणमञ्जरी में सुग्रीव चरित का प्रथम निदर्शन उसके सखा भाव रूप में होता हैं। राम सुग्रीव की मैत्री का लक्ष्य विशेषतः राजनीतिक है। क्योंकि **अग्निसाक्षी**[४] के **सम्मुख** मित्रता के ग्रंथि बन्धन के पश्चात ही राम और सुग्रीव के आवश्यक कार्य सम्पादित होते हैं।

रामायणमञ्जरी में सुग्रीव का मैत्री भाव अत्यन्त दृढ़ एवं स्वाभाविक चित्रित किया गया है। राम के सख्य भाव को प्राप्त करके सुग्रीव धन्य हो गया। मित्र राम को धैर्य बँधाते हुए कहता है—"प्रिया वियोग में तप्त आपके दुःसह दुःख को मैंने स्थायी रूप से अपने हृदय में स्थापित कर लिया है। अब यदि आपको मेरे ऊपर विश्वास हो तो अपने शोक को त्याग कर इस कार्य का भार मेरे कन्धों पर रख दीजिए। सच कहता हूँ, इस पृथ्वी तथा रसातल में जहाँ कहीं भी सीता होंगी उनका पता लगाऊँगा।"[१] ऐसा कहते हुए सुग्रीव ने राम को सीता के वस्त्र आभूषण दिखाए। उसे देखकर राम वियोग दुःख से व्याकुल हो जाते हैं। सुग्रीव मित्र राम को धैर्य बँधाते हुए पुनः कहता है—"आकाश, पाताल, पृथ्वी अथवा जल में जहाँ कहीं भी रावण सीता को अपहृत किए होगा, मेरी सेना उसे पता लगाने में समर्थ है। यह पराक्रम का समय है न कि शोक का। यदि आप जैसे लोग इस प्रकार शोक करेंगे तो हम लोगों की क्या गति होगी।"[२] मित्र सुग्रीव के ऐसे वचन सुनकर राम उसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—"भाई तुम सच में ही मेरे अच्छे मित्र हो, जो इस प्रकार के मित्र कार्य के लिए तत्पर हो। यह सत्य ही है कि हृदय की तरह प्रिय, मित्र दुःख में विवेकपूर्ण तथा सुख में विनय युक्त वाणी बोलते हैं। इस समय, देवता तथा राक्षसों से भी कठिनता से किए जाने वाले कार्य को शीघ्र करने के लिए तत्पर तुम्हारे जैसे प्रिय मित्र के मैं अधीन हूँ।"[३]

राम द्वारा सुग्रीव की प्रशंसा में कहे गए उक्त वचनों से उसके सख्य भाव का स्पष्ट परिचय प्राप्त हो जाता है। साथ ही साथ उसके चरित्र में निहित विवेक, विनय, साहस एवं कार्य-कुशलता आदि सद्गुणों का भी ध्वनन होता है।

---

१. रामा० मं०, कि० कि० प० (२४, २५)

२. वही (२७–२९)

३. वही (३७–४२)

४. वही (४४, ४५, ४६)

मित्र कार्य के लिए सुग्रीव की तत्परता देखकर राम भी उसके कार्य को पूर्ण करने के लिए वचनवद्ध होते हैं।[1] किन्तु बालि के भीषण पराक्रम से त्रसित सुग्रीव को राम की शक्ति के प्रति शङ्का होती है जो स्वाभाविक ही है। सुग्रीव कहता है—भगवान ! मित्र प्रेम के कारण मैंने अपना वृत्तान्त कह दिया लेकिन इतने बलशाली, पराक्रमी बालि को आप कैसे जीत पाएँगे ? इस पर राम ने सुग्रीव की शङ्का निर्मूल करने हेतु दुन्दुभि के अस्थि विक्षेप तथा सात ताड़ वृक्षों को वेध कर विश्वास दिलाया। राम के इस अद्भुत कार्य से प्रसन्न होकर सुग्रीव उनके चरणों में गिर पड़ा। हाथ जोड़कर इस परीक्षा के लिए क्षमा याचना करता हैं।[2]

इस स्थल पर सुग्रीव की शङ्का में उसके चरित्र की स्वाभाविकता एवं यथार्थता का अंकन किया गया है। पुनः विश्वास हो जाने पर उसकी सहज प्रसन्नता तथा क्षमा याचना आदि से उसकी विनम्रता भी लक्षित होती है।

राम बालि का वध करके सुग्रीव को राज्याभिषिक्त करते हैं। बालि वध के अनन्तर सुग्रीव चरित्र की मानवीय दुर्बलता का चित्रण रामायणमञ्जरी में दर्शाया गया है। राज्य तथा स्त्री वापस पाकर सुग्रीव विषयासक्त हो जाता है। इस प्रसङ्ग में सुग्रीव का अत्यन्त विलासी, कामुक एवं मद्यप रूप देखने को मिलता है।[3] विषयासक्त सुग्रीव रामकार्य को भूल गया है, ऐसा विचार करके क्रोधान्ध लक्ष्मण उसका वध करने हेतु किष्किन्धापुरी पहुँचते हैं। परन्तु मन्त्रियों तथा तारा आदि के समझाने पर उनका क्रोध शान्त हो जाता है। लक्ष्मण के क्रोध को शान्त करते हुए तारा सुग्रीव के विषय में कहती है—सुग्रीव न तो असत्यवाकी है न शठ है न कृतघ्न है और न ही दुर्जन है अपितु राम-कार्य में वह योगी की तरह ध्याननिश्चल है। हे प्रभो ! निश्चय ही वह युद्ध में रावण का वध करके दुर्लभ सीता को राम के पास ले आएगा[4]—

नासत्यवादी न शठो न कृतघ्नः न दुर्जनः।
सुग्रीवो रामकार्ये तु योगीव ध्याननिश्चलः॥

हत्वा दशास्यं समरे सीतामाहृत्य दुर्लभाम्।
एष प्रदास्यति क्षिप्रं रामस्य प्रीत्युपायनम्॥

तारा की इस उक्ति से सुग्रीव के चरित्र में निहित सत्यवादिता, सज्जनता प्रत्युपकारिता एवं स्वामिधर्मिता आदि गुणों का परिचय मिलता है।

---

१. रामा० मं०, कि० कि० प० (४७–४८)
२. वही (८५–९५)
३. वही (८७–१४०)
४. वही (१४३–१४८)

इस प्राथमिक वैभव प्राप्ति के मदोन्माद से जागृत होने के पश्चात सुग्रीव के जीवन में गम्भीरता एवं कठोरता का आभास मिलता है। उसकी राजाज्ञा उसके चरित्र की दृढ़ता का परिचायक है। वह एक आदिष्ट कार्य न कर सकने पर कठोर दण्ड भी निर्धारित कर देता है। लक्ष्मण से क्षमा याचना करके क्रोध शान्त करता है, तथा तुरन्त ही हनुमान को आदेश देता है—सभी पर्वतों, समुद्रों, वनों, दिशाओं, द्वीपों, आकाश, पाताल एवं भूमि पर जो भी वानरों का समूह निवास करता हो, दूत भेजकर उनको तुरंत मेरी आज्ञा से बुलाया जाय। राजाज्ञा के दूषक, मद से मोहित जो नहीं आते हैं उन्हें दुःसह कष्ट से शीघ्र ही दण्डित किया जाएगा।[1]

सुग्रीव के आदेश से सम्पूर्ण वानरी सेना एकत्र हो जाती है। इसके बाद सुग्रीव छत्र चामर रहित राम के पास पहुँच कर हाथ जोड़कर प्रायश्चित एवं क्षमा याचना करता है। राम मित्र को भुजाओं में बाँधकर आलिंगन करते हुए क्षमा करते हैं। राम को प्रसन्न जानकर सुग्रीव कहता है—इस समय यह भक्त आपके कार्य हेतु इतने वानर सेवकों सहित उपस्थित है। इस सेना के वीर त्रैलोक्यजयी रावण का वध कर देने में समर्थ हैं। अब इन्हें आज्ञा दीजिए।[2] मित्र सुग्रीव के इस प्रकार के कार्य गौरव को देखकर राम उसके सत्वशाली एवं सद्गुणयुक्त चरित्र की प्रशंसा करते हुए कहते हैं[3]—

नैतच्चित्रं तव सखे गुणिनः सत्त्वशालिनः।
स्वभाव एव महतां परकार्यार्थमुद्यमः॥

द्युतिरिन्द्रो प्रभार्कस्य दीप्तिर्बलेधृतिर्भुवः।
सतां च प्रकृतिः सत्यं परकार्यारतं मनः॥

राम का आदेश पाकर सुग्रीव सम्पूर्ण वानरी सेना को विभिन्न दिशाओं में भेजता है। इस प्रसङ्ग में सम्पूर्ण दिशाओं एवं मार्ग का विवेचन करते हुए उसने समस्त आर्यावर्त के पर्वत, समुद्र, नदी, नद एवं अरण्यारण्य का विस्तृत विवेचन किया है। इससे उसके देश-देशान्तर के पर्यटन तथा विस्तृत एवं सूक्ष्म भौगोलिक ज्ञान का स्पष्ट एवं यथार्थ परिचय मिलता है।[4]

---

१. रामा० मं०, कि० कि० कां० (१६७–१७०)

२. वही (१८६–२००)

३. रामा० मं०, यु० कां० (१८१–१८६)

४. रामा० मं०, कि० कि० कां० (२४७–२८०)

राजनीति की गुप्त चालें सुग्रीव को भली प्रकार अवगत हैं। इसीलिए एक मित्र राजा की भांति वह राम को विभीषणागमन के प्रसङ्ग में समयानुकूल मंत्रणा देकर सचेत करता है।[1]

समुद्र पार करके जब वानरी सेना युद्ध के लिए प्रस्थान करती है उस समय राम एवं सुग्रीव की जय-जयकार से समस्त दिशाएँ निनादित हो गयी। वानरों द्वारा राजा सुग्रीव की इस जय-घोष में उसके चारित्रिक गुणों का भी दर्शन हो जाता है—

जयत्विजितः श्रीमान्सानुजो जानकीपतिः ।
देवः सुग्रीवसाम्राज्यप्रार्थनाकल्पपादपः ॥

राजा जयति सुग्रीवः शुभ्रा विभ्राजते गुणैः ।
रामकीर्तिः पताकेव यस्य श्रीविश्वविश्रुता ॥

इसके बाद समरांगण में राक्षसों के साथ युद्ध करते हुए सुग्रीव के सैन्य संचालन में अद्भुत पराक्रम, शौर्य, शक्ति एवं राम के प्रति स्नेह, भक्ति स्थल-स्थल पर दर्शनीय है। एक कुशल सेनानायक के रूप में सुग्रीव अपने ओजपूर्ण शब्दों द्वारा सम्पूर्ण वानरी सेना में पराक्रम एवं उत्साह का निरन्तर संचार करता है। अपने पराक्रम एवं शक्ति का परिचय देते हुए कुम्भ आदि का वध करके राक्षसी सेना का शक्ति मर्दन करता है। रावण के साथ युद्ध करते हुए भी उसने अपनी अपरिमित शक्ति का परिचय दिया।[2]

इस प्रकार मित्र राम के साथ रावण के विरुद्ध युद्ध करते हुए सुग्रीव ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर उन्हें विजय दिलायी। विजयोपरान्त राम के साथ अयोध्या गये। कुछ दिनों अयोध्या में राम के साथ रहते हुए उनकी स्नेह, भक्ति में संलग्न रहे। इसके बाद राम ने उसे पारितोषिक आदि से प्रसन्न करके उसकी पुरी भेज दिया। भगवान की लीलाओं का स्मरण-कीर्तन करते हुए सुग्रीव अपनी पुरी में रहने लगा। अंत में भगवान राम जब निजलोक पधारने लगे तो सुग्रीव आदि सभी वानर साकेत पहुँचे तथा उन्हीं के साथ वे भी परलोक चले गए[3]—

सुग्रीवप्रमुखास्तेऽपि कृतकृत्या प्लवङ्गमाः ।
अनुजग्मुः प्रजानाथ भूतैः सह चराचरैः ॥

---

१. रामा० मं०, यु० कां० (४०८, ४०९)

२. रामा० मं०, यु० कां० (४०८, ४०९, ४३७–४३९, ५३६–५३८, ६५८–६६१, १००६, १०२५–१०३१)

३. रामा० मं०, उ० कां० (७२२, ७२३, १२५४)

हनुमान

रामायणमञ्जरी में हनुमान एक समर्थ, साहसी, अद्भुत पराक्रमी, वीर, दृढ़ बुद्धिमान, विनयी, जितेन्द्रिय, धीर, गम्भीर, सरल, धर्मबुद्धि सम्पन्न, कुशल राजनीतिज्ञ, निपुण दूत एवं निःस्वार्थ कर्तव्यपरायण सेवक के रूप में कवि द्वारा चित्रित हैं, जो सदैव स्वामी के कल्याण और कार्यसाधन में दत्तचित्त दिखाई पड़ते हैं।

हनुमान प्रारम्भ से ही शौर्य एवं पराक्रम के विधान दिखाई देते हैं। क्योंकि पवन देव की प्रेरणानुसार बुद्धिमान, पराक्रमी, तेजस्वी तथा तीनों लोकों में विश्रुत गुण वाले पुत्र की उत्पत्ति होगी यह उनके जन्म से पूर्व ही निश्चित हो चुका था[1]—

त्रैलोक्यविश्रुतगुणस्तनमस्ते भविष्यति ॥
पवनेति कथिते जातस्त्वं तेजसां निधिः ।
वायु तुल्यगतिः श्रीमान्क्षेत्रे केसरिणः सुतः ॥

जन्म लेते ही बालसूर्य के ग्रहण करने की इच्छा उनकी जन्मजात शौर्य प्रवृत्ति का ही निदर्शन है।[2] उनके इस विक्रमशील स्वरूप की पृष्ठभूमि में ब्रह्मादि प्रमुख देवों के अभय वरदान हैं,[3] जिनका प्रत्यक्षीकरण मारुतिनन्दन ने अपनी जीवनचर्या में कर दिखाया।

सुग्रीव को हनुमान की शक्ति, सामर्थ्य एवं साहस पर पूर्ण विश्वास है, इसीलिए सीता की खोज हेतु वानरों को भेजते समय उन्होंने राम के इस महत् कार्य का भार हनुमान के ही कन्धों पर रखा[4]—**हनुमत्स्कंधविन्यस्तं रामकार्यमिदंमहत्।** राम को भी हनुमान की शक्ति का पूर्वाभास हो गया था। अतः प्रिया लाभ के लिए विश्वस्त होकर उन्होंने निजनामाङ्कित अंगूठी पहचान हेतु हनुमान को ही दी।[5] दुर्लङ्घ्य समुद्र तट पर शोकाकुल अंगदादि वानरी सेना को धैर्य बँधाते हुए जाम्बवान हनुमान के शौर्य, पराक्रम, साहस एवं तेज की प्रशंसा करते हुए उनकी उत्पत्ति कथा सुनाकर उनके अद्भुत तेज को उद्दीप्त करते हैं।[6] इसके बाद तो हनुमान के पराक्रम से संबंधित अनेकों प्रसङ्ग रामायणमञ्जरी में वर्णित हैं जिनका विवरण अधोलिखित है।

---

१. रामा० मं०, कि० कि० कां० (४८७, ४८८)
२. वही (४८९)
३. रामा० मं०, उ० कां० (७०८–७१२)
४. रामा० मं०, कि० कि० कां० (२४३)
५. रामा० मं०, कि० कि० कां० (२४५)
६. वही (४७७, ४७८)

हनुमान द्वारा मुहूर्त भर में समुद्रोल्लङ्घन[1] उनके अद्भुत पराक्रम का अनुपम उदाहरण है। समुद्र पार कर लङ्का में स्थित अशोकवन में सीता के पास पहुँचते हैं। वहाँ सीता से संभाषण के दौरान हनुमान अपने पराक्रम का स्वयं परिचय देते हुए कहते हैं—यदि तुम चाहो तो कंधे और पीठ पर चढ़ी हुई तुमको अभी ले जाकर आकाश में उड़ने वाला मैं समुद्र लाङ्घ कर राम के पास पहुँच जाऊँ।[2] इस पर सीता ने जब व्यंग्य करते हुए कहा कि—कथं नु मुष्टिमात्रस्त्वमितो मां नेतुमर्हसि[3] तो हनुमान ने सीता को अपना विशाल रूप दिखाया।[4] पुनः दाढ़ों से युक्त कराल मुख वाले हनुमान ने त्रिजटा से कहा—मुझे दूसरे के हाथों का तनिक भी सहारा नहीं चाहिए। हे सौम्ये मैं विकट अट्टालिकाओं को ध्वस्त करके लङ्का को भी ले जाने में समर्थ हूँ।[5] हनुमान के इन ओजपूर्ण वचनों को सुनकर सीता क्षमायाचना सहित उनके शक्ति की प्रशंसा करती हुई कहती हैं—जाने त्वां तेजसां राशिं मारुते क्षम्यतां भवान्।[6] पुनः विश्वस्त होकर सीता ने रामकार्य को हनुमान के शक्ति की गोद में सौंप दिया—अधुना त्वत्प्रभावाङ्के रामकार्यं विवर्धते।[7]

इसके बाद शत्रु रावण को अपनी शक्ति का परिचय देने के लिए हनुमान ने उसकी प्यारी अशोक वाटिका का विध्वंस कर डाला। रक्षकों के मना करने पर उनको मार गिराया। रावण द्वारा भेजे गये किङ्कर, जम्बुमालि, मन्त्रितनय, अक्षकुमार एवं दुर्धरादि का वध कर दिया।[8]

रावण के दरबार में भी अपनी साहस एवं दृढ़ता का परिचय देते हुए उसको लज्जित किया। स्वर्णिम लङ्का को भस्म करके राक्षसों को सम्यक् रूपेण अपने अद्भुत तेज एवं पराक्रम से परिचित कराया।[9]

इसी प्रकार युद्धकाण्ड के अन्तर्गत भी हनुमान का पराक्रम, शौर्य, साहस, धैर्य, अमित तेज एवं शक्ति का अनेक स्थलों पर दर्शन होता है। उन्होंने राक्षसी सेना के बड़े-

---

१. रामा० मं०, कि० कि० कां० (५२५–५७३)
२. रामा० मं०, सु० कां० (३५१)
३. वही (३५४)
४. वही (३५५, ३५६)
५. वही (३५७, ३५८)
६. रामा० मं०, सु० कां० (३५९)
७. वही (३७६)
८. वही (३८८–३९२)
९. वही (५००–५३८)

बड़े योद्धाओं—धूम्राक्ष, अत्यकम्पन, देवान्तक, महोदर, त्रिशिरा, महापार्श्व, निकुम्भ आदि का वध किया।[1] राक्षसी सेना के छोटे बड़े योद्धाओं का तो हनुमान के समक्ष कोई अस्तित्व ही नहीं था, जब उन्होंने रावण के साथ युद्ध में उसके छक्के छुड़ा दिए। हनुमान के वज्र की तरह मुष्टि प्रहार से रावण विकल हो गया। वह उनके शक्ति की प्रशंसा करते हुए कहता हैं—तुम्हीं मेरी शत्रुता के योग्य हो। अपनी भुजा की ओर देखते हुए रावण लज्जावश अपने को धिक्कारने लगा[2]—

तलेनाभिहतस्तेन लोलबाहुर्दशाननः।
चचाल व्याकुलतनुर्दशशृङ्ग इवाचलः॥

सोऽवदत्साधु ते वीर्यं कपे योग्योऽसि मे रिपुः।
मे सारणः प्रहारेण येनाऽहमसि कम्पितः॥

धिग्बलं मम पौलस्त्य लोकलज्जाकरं परम्।
यन्न यातोऽसि सन्मुष्टिनिष्पिष्टश्लक्ष्णचूर्णताम्॥

इस प्रकार हनुमान के अद्भुत पराक्रम के सामने रावण सहित समस्त राक्षसी सेना ने घुटने टेक दिए। यही नहीं लक्ष्मण की शक्ति के समय भी हनुमान ने ही पवन वेग से औषधि लाकर उनको जीवन दान दिलाया था। यह भी उनकी शक्ति का एक विशिष्ट उदाहरण है।[3]

रामायणमञ्जरी के उपर्युक्त सभी स्थलों से हनुमान की अलौकिक शक्ति का एक संक्षिप्त परिचय प्राप्त हो जाता है। हनुमान ही मात्र एक ऐसे पात्र हैं जिनके शक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा केवल राम और सीता ही नहीं अपितु समस्त वानर तथा विपक्षी राक्षस गण भी करते हैं।

उनके पराक्रमशील शारीरिक बल के अनुरूप ही उनका तेजस्वी स्वरूप भी है जिसका चित्रांकन रामायणमञ्जरी में अनेक स्थलों पर किया गया है। समुद्रोल्लङ्घन के समय उनका यह विभ्राजमान तेज दर्शनीय है[4]—

मूर्ध्निच्छत्राभिरामैः श्वसनविवलितैः पार्श्वयोश्चामराभैः,
कण्ठे मालायमानैरुरसि तनुतरैरुत्तरीयानुकारैः।

---

१. रामा० मं०, यु० कां० (५८३–५८६, ५८८–६००, ८१५–८२८, ८८४–१००४, १०३७)

२. वही (६७२–६७६)

३. वही (१२२६, १२२७)

४. रामा० मं०, कि० कि० कां० (४८५–५१७, ५६५–५७३)

पृष्ठे लांगूललीलावलनपरिचितैः स्कन्धयोः केशराग्रैः,
शुभ्रै रभ्रै रदभ्रैः किमपि कपिपतिर्वेगगामी रराज ॥

बल के अनुरूप बुद्धि विरले व्यक्तियों में ही होती है। केसरी, मारुत एवं अञ्जना के पुत्र होने के कारण तथा ब्रह्मादि प्रमुख देवों से वर प्राप्ति के कारण हनुमान की प्रखर बुद्धि होना स्वाभाविक है। इसका पर्याप्त विवरण रामायणमञ्जरी में उपलब्ध है। शिक्षा एवं संस्कार के अनुरूप ही हनुमान का विवेक है। वे तत्वज्ञ, व्यवहारज्ञ, अर्थगर्भित रहस्यों के उद्घाटनकर्ता एवं नीतिज्ञ भी है। इसका परिचय हमें तब मिलता है जब वे काञ्चनकामिनी में लिप्त सुग्रीव को राम कार्य का स्मरण कराते हैं। इस प्रसङ्ग में हनुमान बहुत सी नीति एवं शास्त्र सम्मत बातों के द्वारा व्यसनों में लिप्त सुग्रीव को उद्बुद्ध कर रामकार्य के लिए प्रेरित करते हैं।[1]

उनकी प्रखर मेधा उनके द्वारा बोले गये वाक्यों में प्रायः देखने को मिलती है। उनका वाक्चातुर्य, उनकी वाणी की मनोहरता तथा तार्किकता आदि ग्रंथ के अन्तर्गत उनके सम्भाषणों में सुलभ है। इसके स्पष्ट उदाहरण हनुमान-रावण संवाद तथा हनुमान-सीता संवाद प्रमुख रूप से हैं।[2] राम के लिए संदेश कहते समय सीता हनुमान की प्रखर बुद्धि एवं सर्वज्ञता की प्रशंसा भी करती हैं—हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! तुम स्वयं ही सब कुछ जानते हो। शिष्ट, सुन्दर और उचित बातें मेरे पति से कह देना।[3]

वे निपुण राजनीतिज्ञ हैं, इसीलिए वे सचिवोत्तम रूप में समयोचित मंत्रणा भी देते हैं। विभीषण के आगमन पर सुग्रीवादि सभी प्रमुख वानर उसे अस्वीकार करने के लिए राम से कहते हैं किन्तु हनुमान की नीतिमत्ता देखिए, उन्होंने राम से कहा—भगवन्, आप मर्मवेदी हैं। अतः विभीषण को मत त्यागिए। सम्पूर्ण धन-धान्य, राष्ट्र, दुर्ग आदि से युक्त होते हुए भी कुवृत्तियुक्त, दुर्जन भाई रावण को त्याग कर आए हुए ये निश्चित ही सज्जन हैं। दूर से ही देखने से विश्वास होता है कि ये स्वभाव से गुणानुरागी एवं विश्वास करने योग्य हैं।[4] इसी प्रकार युद्ध के प्रसङ्गों में उनकी अनेक उपयुक्त मन्त्रणाएँ रामायणमञ्जरी में वर्णित हैं।

वे कार्य कुशल एवं श्रेष्ठ दूत भी हैं। इस रूप में उनके द्वारा किए गए लङ्का में समस्त कार्य एवं रावण के साथ संभाषणादि उदाहरण हैं।

---

१. रामा० मं०, कि० कि० कां० (२६–४०)
२. रामा० मं०, सु० कां० (५०४–५२६ एवं ३०९–३८१)
३. रामा० मं०, सु० कां० (३८०)
४. रामा० मं०, यु० कां० (१८७–१९०)

हनुमान स्वार्थ त्यागी स्वामिभक्त सेवक हैं। ध्यानपूर्वक उनका सम्पूर्ण चरित देखने पर पता चलता है कि वे सर्वथा निष्काम तथा स्वार्थरहित हैं। प्रारम्भ में ही राम और सुग्रीव की मैत्री में हनुमान की अहं भूमिका है किन्तु यदि देखा जाय तो राम और सुग्रीव की इस मैत्री से उन दोनों की कार्यसिद्धि होती है तथा इसी उद्देश्य से हनुमान ने मैत्री भी करवाई किन्तु हनुमान का तो इससे कोई कार्य या स्वार्थ नहीं सिद्ध होता तथापि निःस्वार्थ भाव से वे राम तथा सुग्रीव की हर स्थिति में सेवा एवं सहायता करते हैं। यही है उनका निःस्वार्थ भाव।

दास्य धर्म में श्रेष्ठ हनुमान स्वामिभक्त सेवक के रूप में ही तो लोक में प्रसिद्ध हैं। उनके प्रत्येक कार्य प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से स्वामी के हित एवं प्रसन्नता के लिए ही होते हैं। हनुमान चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता स्वामिनिष्ठता है। उनके इस रूप का रामायणमञ्जरी में पर्याप्त विकास दिखाई पड़ता है। अशोक वाटिका में वे एक सुयोग्य कार्यकर्ता का लक्षण बताते हुए अपना अर्थसाधक रूप भी प्रमाणित करते हैं। हनुमान कहते हैं—राम का उतना कार्य तो पूरा हो चुका जितने के लिए मैं भेजा गया था। परन्तु अब मेरी इच्छा कहे हुए से भी अधिक करने की है—**तदुक्ताभ्यधिकं कर्तुमधुनामे मनोरथः।**[1] क्योंकि एक कार्य के लिए भेजे हुए परन्तु अनेक कार्यों को पूरा करने वाले सम्मान की वृद्धि करते हुए सेवकों का जीवन स्वामी से प्राप्त सम्मान से सफल हो जाता है।[2]

एककार्यविसृष्टानामनेकार्थविधायिनाम्।
स्वामिसन्मानसफलं जीवितं वर्धमानिनाम्॥

यह है हनुमान द्वारा प्रतिपादित स्वामिभक्त सेवक का उत्कृष्ट मापदण्ड। हनुमान के उपर्युक्त वचनों से उनके दास्य धर्म की श्रेष्ठता एवं स्वामिभक्ति का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

रामायणमञ्जरी में उनके धार्मिक रूप का भी उल्लेख है। तत्कालीन संस्कृति के अनुसार वे विविध वैदिक देवों की आराधना करते हैं। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उनका राम भक्त रूप चित्रित ही नहीं किया गया है अपितु सम्पूर्ण ग्रंथ में समय-समय पर स्थल-स्थल पर हनुमान राम का ध्यान करते दिखाई पड़ते हैं। यही नहीं, हनुमान स्वयं राम से रामचर्चा में अटल भक्ति एवं प्रीति की वरयाचना भी करते हैं तथा राम उनका अभिलषित पूर्ण करते हैं।[3]

---

१. रामा० मं०, सु० कां० (३८३)

२. वही (३८४)

३. रामा० मं०, उ० कां० (७२४–७३१)

इस प्रकार हनुमान की राम में अनन्य भक्ति स्वयं सिद्ध हो जाती हैं साथ ही साथ उनके चरित्र का सम्पूर्ण आकलन भी हो जाता है।

समुद्र लङ्घन के समय हनुमान इन्द्र, विष्णु, रुद्र, सूर्य, ब्रह्मा, पवन देव, पर्वत, सागर, सरिता तथा सभी भूतों के साथ राम एवं लक्ष्मण को मनसा प्रणाम करते हैं।[1] इससे उनका वैदिक देवों की आराधना का स्वरूप भी स्पष्ट हो जाता है।

हनुमान के चरित्र में व्यवहारकुशलता की दृढता भी देखने को मिलती है। मित्र, मन्त्री, सेवक, भक्त तथा दूत आदि विविध रूपों में वे सुदृढ़ एवं सर्वत्र व्यवहारकुशल पाये जाते हैं। उनके विविध रूपों में कहीं कोई दोष नहीं दिखाई पड़ता। सर्वत्र उनके साफ-सुथरे एवं उत्तम आचरण का ही दर्शन होता है।

वे धैर्य एवं गम्भीर्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। वे अनावश्यक प्रलाप के बजाय चुप रहना अधिक पसन्द करते हैं। विपत्तियों एवं सङ्घर्षों से टक्कर लेना उनका स्वभाव है। अतः धीरता एवं गम्भीरता उनके विशिष्ट सद्गुण हैं। हनुमान के इस स्वरूप का एक उदाहरण दर्शनीय है। दुर्लङ्घ्य समुद्र तट पर सम्पूर्ण वानरी सेना अपनी-अपनी शक्ति का वर्णन करते हुए समुद्र पार करने में असमर्थता प्रकट करती है किन्तु धैर्य और गाम्भीर्य के सागर हनुमान कुछ भी नहीं बोलते।[2] अंत में सभी वानरों की असमर्थता जानकर अंगद बहुत चिन्तित हो जाम्बवन्त से कहते हैं कि निस्सन्देह समुद्र पार करने में असमर्थ हम सभी सुग्रीव के द्वारा मारे जाएँगे। अंगद की चिन्ता को देखकर जाम्बवान कहते हैं कि एक महासत्त्वशाली व्यक्ति को मैं जानता हूँ जो समुद्र पार करने में समर्थ है किन्तु मोहवश हम लोग उसे नहीं जान पाए।[3] इस प्रसङ्ग से हनुमान की धीरता एवं गम्भीरता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

रामायणमञ्जरी में अनेक स्थलों पर उनका नैतिक रूप भी वर्णित है जिसमें हनुमान का जितेन्द्रिय रूप विशेष उल्लेखनीय है। रावण के अंतःपुर में मद्यपान से बेसुध, संभोग श्रम से क्लान्त एवं निर्वस्त्र कामिनियों के दर्शन मात्र के पाप से वे चिन्तित हो जाते हैं तथा कहते हैं[4]—

अहो नु हेलयावाप्तः कियान्किल्बिषसंचयः।
मया विवसनः स्पष्टं पश्यता परयोषितः॥

---

१. रामा० मं०, कि० कि० कां० (५१८–५२१)

२. रामा० मं०, कि० कि० कां० (४७१)

३. वही (४७७, ४७८)

४. रामा० मं०, सु० कां० (८६–८८)

संकल्पेनाप्यसंस्पृष्टायोषितो ब्रह्मचारिणः ।
कथ ममापि निर्वस्त्रपरस्त्रीदर्शनोद्यमः ।।

उन्मूलिता हि मर्यादाः प्रच्छन्नछिन्नपौरुषाः ।
सद्वृत्तिपरिपन्थिन्यो जयन्ति विधिवामता ।।

हनुमान के उक्त कथन से उनके जितेन्द्रिय (ब्रह्मचारी) स्वरूप का भी स्पष्ट परिज्ञान हो जाता है।

इतने विशाल व्यक्तित्व से युक्त होने पर भी विनम्रता, निराभिमानता, दीनता, वाणी की मनोहरता, कृतज्ञता आदि सत्त्वगुण उनकी महानता में स्वर्ण-सुगन्धि संयोग प्रस्तुत करते हैं।

समस्त वानर सेना के एकमात्र आधार, सेना के प्रमुख एवं एकमात्र नेता तथा वानर सैन्य को सतत् प्रोत्साहन एवं प्रेरणा प्रदान करने वाले हनुमान का अप्रतिम चरित वस्तुतः अनुकरणीय है।

'पुण्यपुञ्ज पवन कुमार' रामायणमञ्जरी में निष्काम भक्त एवं दास्यधर्म के श्रेष्ठ अनुयायी, उज्ज्वल आदर्श हैं जिनके प्रति जगदाधार राम एवं जगदीश्वरी भी अपनी कृतज्ञताञ्जलि के भाव पुष्प ही अर्पित करते हैं।

विभीषण

रामायणमञ्जरी में विभीषण का स्वरूप पूर्ण राजनीतिज्ञ का है। विभीषण के चरित्र-चित्रण में उनके दोनों पक्षों का निरूपण किया जाता है—घर का भेद देने वाले कुटिल राजनीतिज्ञ तथा भक्त रूप।

विभीषण सुमन्त्रणा देने में नितान्त पटु हैं क्योंकि राजनीति के रहस्य उन्हें भली प्रकार विदित हैं। जिस किसी भी पक्ष को वे मन्त्रणा देते हैं, वह उसी पक्ष के लिए परमहितकारिणी होती है। कथानक के दोनों पक्षों को उन्होंने सदैव अनुकूल मन्त्रणा देकर पूर्ण सहायता की है। रामायणमञ्जरी में उनका यह मन्त्री पद विस्तृत रूप ण उल्लिखित है। यही नहीं, उनकी मन्त्रणा की गम्भीरता पर पूर्ण विश्वास कर दोनों पक्ष उसे पूर्णरूपेण ग्राह्य भी मानते हैं।

हनुमान के नागपाशाबद्ध हो जाने पर विभीषण रावण को मन्त्रणा देते हुए कहता है—'दूत वध वर्जित है' अतः इसे कोई अन्य दण्ड दिया जाय। पुनः उस दण्ड के स्वरूप का भी उल्लेख विभीषण ने किया है।[1] उनकी इस मन्त्रणा को परम अभिमानी रावण

---

1. रामा० मं०, सु० कां० (५३२, ५३३, ५३४)

ने भी स्वीकार किया किन्तु जब उसने बाद में बल, दर्प के कारण उसकी मन्त्रणा का तिरस्कार एवं अवहेलना की तभी उसका सर्वनाश भी हुआ।

विभीषण एक सुयोग्य मन्त्री के लक्षणों को भली प्रकार जानते हुए तथैवाचरण भी करते हैं। उनकी मन्त्रणा में सारगर्भित तत्त्वों का पूर्णतः समावेश भी दर्शनीय है।[1]

बिभीषण परम निर्भीक होकर चाटुकार मन्त्रियों का कटु विरोध करते हैं।[2] राम की शक्ति का उन्हें पूर्ण परिचय प्राप्त था। अतएव वे अत्यन्त दृढ़ता से रावण को राम की शक्ति का परिचय देकर प्रबोधित करते हैं।[3]

द्वितीय पक्ष में आकर भी विभीषण ने अपनी सम्मन्त्रणा को नहीं त्यागा। तत्त्व-ग्राही राजनीतिनिपुण राम ने भी सभी योग्य महान व्यक्तियों की अपेक्षाकृत विभीषण को ही सचिवोत्तम का स्थान दिया है। रामायणमञ्जरी में अनेक स्थलों पर इसके प्रमाण मिलते हैं कि विभीषण ने अपनी उपयुक्त मन्त्रणा द्वारा राम की क्रियाशीलता में सहयोग दिया। उदाहरणार्थ—जलधिलङ्घन को चिन्ता से चिन्तित राम को सामनीति का परामर्श दिया,[4] रावण पक्ष के गुप्त भेदों को बताना,[5] उसके सैन्य बल का पूर्ण परिचय देते रहना,[6] रावण के गुप्तचरों का पता लगाना,[7] मेघनाथ के यज्ञ की सूचना देकर उसको विध्वंस कराने की प्रेरणा देना[8] तथा रावण के वध का वास्तविक उपाय बताना आदि।

परन्तु राम तो उसके भाई रावण के विपक्षी थे। अतः राम को उचित मन्त्रणा देना सांसारिक रीति से विभीषण के चरित्र पर लांछन ही है। अतएव आलोचकों ने उन्हें घर का भेदी, कूटनीतिज्ञ एवं स्वार्थी भी कहा है। लौकिक दृष्टि से विभीषण द्वारा रावण पक्ष के उपर्युक्त रहस्योद्‌घाटन से ही राम को विजय प्राप्ति में विशेष सरलता एवं सुविधा प्राप्त हुई।

विभीषण के इस रूप की निन्दा के निराकरण का एक प्रबल तर्क यह है कि उन्होंने असत्य एवं अन्यायी पक्ष का अवलम्ब त्याग कर सत्य, न्याय एवं सदाचार के पक्ष

---

१. रामा० मं०, सु० कां० (५२६–५३४, यु० कां० २८–३७, ७५–८४, १२२–१३२ १४५–१५१)
२. रामा० मं०, यु० कां० (७७–८०, १५०, १५१)
३. रामा० मं०, यु० कां० (८१, ८२, ८३, ८३, ८४, १२५–१२८, १४६–१४८)
४. रामा० मं०, यु० कां० (२०६, २०७)
५. वही (३८४)
६. वही (३८८, ६३५–६४८, ८३१–८३५, ७४७–७५३)
७. वही (३०१)
८. रामा० मं०, यु० कां० (११००–११०४)

का आश्रय लिया। इससे विभीषण के चरित्र में निहित सत्यनिष्ठा, न्यायप्रियता, सदाचारिता आदि का स्पष्ट परिचय मिलता है जिसका कि रामायणमञ्जरी के अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है। रावण द्वारा अपमानित गुणानुरागी विभीषण स्वयं अपने इस चारित्रिक रहस्य का उद्घाटन वानरों के समक्ष करता है।[१] इसके बाद हनुमान भी विभीषण के चरित्र की प्रशंसा करते हुए शरणागतवत्सल राम से उसे स्वीकार करने का अनुरोध करते हैं।[२] पुनः गुणग्राही राम ने तो निःशङ्क होकर विभीषण को स्वीकार करके तुरन्त समुद्र जल से राज्याभिषेक भी कर दिया।[३] स्वयं रावण भी बुद्धिमान तथा विनयी भाई विभीषण की नीतियुक्त बातें न मानकर तथा उसको निष्कासित कर देने पर चिन्ता व्यक्त करता है।[४] विभीषण चरित्र की सात्त्विक पुष्टता एवं सदाचारप्रियता का उस समय स्पष्ट प्रमाण दर्शनीय है जब राम के कहने पर भी वह, दुष्ट, दुराचारी भाई रावण का दाह संस्कार करना अस्वीकार कर देता है।[५]

रामायणमञ्जरी में विभीषण का सामाजिक रूप भी उल्लिखित है। उसमें अनेक मानवीय संवेदनाओं और कर्मशीलता का भी प्रदर्शन किया गया है। वे स्वयं वीर सैनिक बनकर मित्र राम की तन-मन से सहायता करते हैं। राम सैन्य को विचलित देखकर समय-समय पर आश्वासित एवं प्रोत्साहित करते रहते हैं।[६] सकल वानर सैन्य का सम्यक् देख-रेख करते हैं। ब्रह्मास्त्र से पीड़ित वानर सेना को पुनर्जीवित होने का ढाँढ़स बँधाते हैं। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम को धैर्य बँधाते हुए युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं। स्वयं गदा धारण कर सेना में उत्साह का संचार करते हैं।[७] राम को शक्ति लगने पर अधैर्य विकल एवं निःसहाय समझकर करुण विलाप भी करते हैं।[८] वे समय पड़ने पर राम को जयसूचक आशीर्वाद देते हैं तथा मानवोचित सहानुभूति भी दर्शाते हैं।

---

१. रामा० मं०, यु० कां० (१७९, १८०)

२. वही (१८७–१९०)

३. वही (१९१–२०४)

४. वही (८८९, ८९०)

५. रामा० मं०, 'रावणसत्क्रिया' (२३–२७)

६. रामा० मं०, यु० कां० (४८२–४८९, ९७५–९७७, ९८१–९८४)

७. वही (५२२–५२७, १०८६–१०८७, ११०५, ११०६, ११२०–११२७, ११२९–११४५)

८. वही (५२७–५३५)

रामायणमञ्जरी में विभीषण के दो रूप प्रधान है—धार्मिक एवं नीतिज्ञ। जन्म से ही उनका धर्मनिष्ठ एवं गुणवान रूप व्यक्त होता है। उनके जन्म के पूर्व ही मुनि विश्रवा ने अपनी पत्नी की इच्छानुसार भविष्यवाणी की थी[1]—

तामुवाच मुनिः प्रीत्या पश्चिमस्ते भविष्यति ।
असूत तनयं श्यामं मणिवाक्योर्जिताशयम् ।
ब्रह्मण्यो गुणवान्पुत्रः सदाचारो वरानने ॥

पुनः मुनि के कथनानुसार वह गुणवान पुत्र पैदा हुआ[2]—

पश्चिमोऽप्यभवत्तस्या यथोक्तो मुनिनासुतः ।
सदाचार इव श्लाध्यः सत्वशीलो विभीषणः ॥

इसके बाद तपस्या के द्वारा ब्रह्मा का दर्शन पाकर विभीषण ने अपनी धर्मनिष्ठता को दृढ़ रूप देने की वर याचना की—धर्मे मे रमतां बुद्धिरित्युवाच विभीषणः ।[3] उनकी इसी धार्मिक निष्ठा से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हें अमरत्व भी प्रदान कर दिया—

अमरत्वं ददौ तस्मै धर्मप्रीत्या पितामहः ।[4]

इस प्रकार विभीषण प्रारम्भ से ही सात्त्विक, गुणानुरागी, सदाचारी एवं धर्माचरण में प्रवृत्त दिखाई पड़ते हैं। उनके धार्मिक रूप में सुवर्ण सुगन्धि उपस्थित करने वाला तत्त्व उनका नीतिज्ञ रूप है। उनके मैत्रीत्व रूप में उनका नैतिक रूप प्रदर्शित किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त स्थल-स्थल पर उनकी नैतिक सूक्तियों में भी उनके इस रूप की झलक दिखाती हैं।

उक्त विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायणमञ्जरी में उनका तेजस्वी, धर्मज्ञ, राजनीतिज्ञ, वीर, बुद्धिमान, कर्मठ एवं व्यवहारकुशल रूप प्रमुखतः अंकित है।

कुम्भकर्ण

रामायणमञ्जरी में वर्णित कुम्भकर्ण के चरित्र में उसके महाबलाढ्य, तेजस्वी, युद्ध कौशल में निष्णात तथा कुशल राजनीतिज्ञ आदि रूपों का चित्रण किया गया है। उसका बाह्य आकार अत्यन्त विशाल, भीषण एवं भयोत्पादक है। लङ्का से उठते हुए ब्रह्माण्ड मण्डप की ओर अग्रसर, विन्ध्य पर्वत की आकृति सदृश, मानस्तम्भ से शोभायमान उसकी

---

१. रामा० मं०, उ० का० (१२५)
२. वही (१२६)
३. वही (१४२)
४. वही (१४३)

अद्भुत आकृति को देखकर आश्चर्यचकित राम विभीषण से उसके विषय में पूँछते है ।[1] पुनः विभीषण उस अद्भुत आकृति एवं शौर्य तथा शक्ति सम्पन्न, तीनों लोकों को नाश करने में समर्थ तथा ऐरावत हाथी के मुख से दाँत खींच लेने वाले कुम्भकर्ण का परिचय देते हैं ।[2]

कुम्भकर्ण के आकृति की विशालता, भीषणता एवं भयोत्पादकता का परिचय उसके जागरण के समय भी दर्शनीय है । विशाल भवन में शयन करते हुए पर्वताकार कुम्भकर्ण की गुफा सदृश नासा के श्वास-प्रश्वास से जगाने के लिए नियुक्त राक्षसगण तृण की भाँति दूर फेंक दिए जाते थे । शङ्ख, भेरी आदि सहस्त्रों वाद्य यन्त्रों की ध्वनि का उसकी निद्रा पर कोई असर नहीं था । पुनः रथ, हाथी, घोड़े तथा सहस्त्रों राक्षसों द्वारा उसके विन्ध्य पर्वत के तट सदृश वक्ष को कुचलने पर भी उसने निद्रा को नहीं त्यागा । इसके बाद सुर, किन्नर, गन्धर्व की कामिनियों के पीन स्तन के स्पर्श, दिव्य चन्दन की सुरभि तथा मधुर एवं कोकिल कण्ठों के गीतों से कुम्भकर्ण की निद्रा भङ्ग हो गयी । पाताल की तरह विशाल मुख वाले स्तम्भ के सदृश भुजाओं वाले उस कुम्भकर्ण ने नेत्र खोलते हुए जँभाई ली । स्नान करके हाथी, भैसें तथा मनुष्यों का भक्षण करके सहस्त्रों घड़े उनका रुधिर पान भी किया ।[3]

इस प्रकार की विशाल एवं भीषण आकृति वाले कुम्भकर्ण में अपार शक्ति थी । उसकी शारीरिक शक्ति के निदर्शन युद्ध स्थल के अनेक प्रसङ्ग हैं । वही एक महारथी है जिसने हनुमान, नील, अंगद, सुग्रीव, लक्ष्मण तथा राम सभी के साथ युद्ध कर अपनी अप्रतिम वीरता एवं युद्ध कौशल को प्रमाणित किया । अपने वज्र सदृश शरीर से अपने ऊपर फेंकी गयी शिलाओं और वृक्षादि को चूर्ण करता हुआ वानर सैन्य का मन्थन कर डाला तथा सभी महारथियों को आहत भी कर दिया । राम द्वारा प्रक्षिप्त बाणों को जल-धार के समान पान करते हुए अपने अद्भुत बल का परिचय दिया तथा घनघोर युद्ध में तत्पर रहा । युद्ध के समय हर पल उसका आतंक वर्णित है ।[4]

वह राजनीति विशारद है । उसने राजनीति की दण्ड एवं भेद नीति दोनों का ही प्रयोग किया है । वह अपने भाई रावण का हितचिन्तन स्नेह भाव से करता है । इसी कारण भाई रावण के दोषों की आलोचना भी निर्भीक भाव से की है ।[5] परन्तु अन्ततोगत्वा कोई उपाय न देख उसने अपने अनुपमेय पराक्रम का ही परिचय दिया ।

---

१. रामा० मं०, यु० कां० (७४७–७५०)
२. वही (७५०–७५३)
३. वही (७३३–७४४)
४. वही (७६२–८७८)
५. वही (७६०–७७१)

दशरथ

दशरथ चरित्र में प्रमुख रूप से उनकी सत्यनिष्ठा, पुत्र प्रेम, पत्नी प्रेम, कामुक प्रवृत्ति तथा राजनीतिज्ञ आदि अंगों का विशेष विकास रामायणमञ्जरी में देखने को मिलता है। इसमें भी दशरथ का राजनीतिज्ञ राजा का रूप अधिक प्रधान है। वे समय-समय पर मन्त्रियों से परामर्श लेते हैं तथा उनकी सम्मति प्राप्त करने हेतु अपने प्रस्ताव रखते हैं। प्रारम्भ में ही मन्त्रिवर सुमन्त्र की परामर्श के अनुसार ऋष्यश्रृङ्ग को बुलाकर पुत्रेष्टि यज्ञ करते है।[1] रामाभिषेक के समय भी मन्त्रियों की सभा में राम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव रखते हैं। पुनः मन्त्रिमण्डल का अनुमोदन प्राप्त करके राज्याभिषेक की तैयारी करते हैं।[2]

वे परमतेजस्वी राजाधिराज हैं जिनके राज्य, राजधानी एवं पुरवासियों की सम्पन्नता तथा मन्त्रिपरिषद की योग्यता का समुचित एवं विस्तृत उल्लेख मिलता है।[3]

राजा दशरथ के समुद्रपर्यन्त शासन एवं सुसमृद्ध राज्य के विकसित अंगों-उपाङ्गों से उनके चक्रवर्ती सम्राट होने का चित्र ही उपस्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त वे राम से राजोचित कर्तव्य पालन का उपदेश देते हैं जिससे स्वयं उनके उच्च व्यक्तित्व का आभास होता है।[4]

सामाजिक क्षेत्र में उनकी कर्तव्यपरायणता, व्यवहारकुशलता एवं शिष्टाचार भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दशरथ गुरु एवं ब्राह्मणों को सर्वोपरि मान्यता देते हैं। इसी कारण वे वशिष्ठ के प्रति अधिक श्रद्धालु हैं। उनका प्रत्येक कार्य गुरु की आज्ञा एवं प्रेरणा से सम्पादित होता है। चाहे पुत्रेष्टि यज्ञ का प्रसङ्ग हो, चाहे मिथिलापुरी में राम के विवाह का अथवा चाहे रामाभिषेक का, सभी स्थलों पर गुरु वशिष्ठ की आज्ञा प्रथम एवं सर्वोपरि दर्शनीय है।[5] विश्वामित्र की अभ्यर्चना उनके आतिथ्य धर्म का प्रतीक है।[6] वे अत्यन्त दानशील भी है[7]

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (४५–६२)
२. रामा० मं०, अयो० कां० (६४५, ६४६, ६४७)
३. रामा० मं०, बा० कां० (३२–४४)
४. रामा० मं०, अयो० कां० (६५१–६५८)
५. रामा० मं०, बा० कां० एवं अयो० कां० (६२, ५१५, ५३२, ५३३, ६५६)
६. रामा० मं०, बा० कां० (८१–९०)
७. रामा० मं०, बा० कां० (५५३)

इन विविध विशेषताओं के अतिरिक्त दशरथ चरित्र में मानव रूप अधिक प्रबल है। रामायणमञ्जरी में उनका यह मानवत्व यथार्थरूपेण चित्रित हुआ है। यद्यपि दशरथ को सभी पुत्र प्रिय थे किन्तु उनमें भी राम सर्वाधिक प्रिय हैं—**रामः सर्वगुणग्रामरमणीयोऽधिकं पितुः।**[1] वे राम का राज्याभिषेक करते समय शीघ्रता करते हैं। यहाँ तक कि भरत और शत्रुघ्न की अनुपस्थिति को वे अपने कार्य सिद्धि में सहायक ही मानते हैं।[2] इस प्रकार अपने ही अन्य पुत्रों पर वे सन्देह करते हैं। यह है उनके दुर्बल, संशयशील मानव हृदय की झांकी।

इसी प्रकार उनकी दूसरी प्रमुख दुर्बलता है उनकी कामुक प्रवृत्ति। रामायणमञ्जरी में इस दुर्बलता से अभिशप्त दशरथ की कटु आलोचना अनेक पात्रों ने की है। उदाहरणार्थ लक्ष्मण राजा दशरथ के इस प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए कहते हैं[3]—

व्यसिनीस्थविरो राजा यदि स्त्रीवश्यतां गतः।
तदस्माकं किमायातं ये त्यजामः स्वकं पदम्॥

बलिनोऽपि धियाहीना मत्तप्राया नृपद्विपाः।
करिणीनामिव स्त्रीणां वश्या यान्ति पराभवम्॥

इसी प्रकार भरत भी दशरथ के उपर्युक्त प्रवृत्ति की आलोचना करते हैं।[4]

रामायणमञ्जरी में उनकी अन्य दुर्बलताओं पर भी दृष्टिपात किया गया है, जैसे—कैकेयी के पैर छूना,[5] उनके वशीभूत हो राम को वनवास देकर कौशल्या के साथ दुर्व्यवहार करना आदि।

कवि ने दशरथ की मनोवैज्ञानिक दशाओं एवं मनोभावों का भी यथार्थ चित्रण किया है। कैकेयी के प्रति दशरथ अपने हृदय की भर्त्सना से फुफकार उठते हैं, शाप देते हैं, कटु वचन कहते हैं।[6] राम वियोग में उनका विक्षिप्त, क्षुब्ध रूप एवं अस्त-व्यस्त स्थिति भी अत्यन्त मार्मिक, स्वाभाविक एवं यथार्थ रूपेण अंकित है।[7]

---

१. रामा० मं०, अयो० कां० (६३८–६४५)
२. वही (६३८)
३. वही (८३८, ८३९)
४. रामा० मं०, अ० १० (२३०)
५. रामा० मं०, अयो० कां ७३९)
६. रामा० मं०, अयो० कां (७३१–७३९)
७. वही ९७५–९८७)

इस भीषण कांड का आधार है पुत्र प्रेम के साथ-साथ उनका सत्य प्रेम जो कि प्रथम की अपेक्षा कम वर्णित है। परन्तु उनके जीवन का संक्षिप्त सार ही यही है कि अपनी स्त्री प्रेम एवं पुत्र प्रेम दुर्बलता तथा सत्यनिष्ठा की प्रबल वेगमयी धाराओं में उन्हें बहना ही पड़ता है। उनकी सत्यनिष्ठा के उदाहरण रामायणमञ्जरी के कई स्थलों पर दर्शनीय हैं। वशिष्ठ उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाते हुए राम को विश्वामित्र को समर्पित करने के लिए प्रेरित करते हैं।[1] कैकेयी भी इसी प्रकार उनकी सत्यनिष्ठा का स्मरण दिलाते हुए वचनों को पालन करने के लिए बाध्य करती हैं।[2] ऐसी परिस्थितियों में दशरथ अपने सभी मोह तथा प्रेम का परित्याग कर सत्यप्रेम को ही सर्वोपरि स्थान देते हुए तदनुसार कार्य करते हैं। अंत में यही स्त्रीपरवशता, पुत्र मोह एवं सत्यनिष्ठा ही उनका प्राणघातक बन जाता है तथा वे अत्यन्त भीषण संघर्षों के मध्य आँधी के वृक्ष की भाँति धराशायी हो जाते हैं ?

जनक

मिथिलाधिपति जनक का चरित्र रामायणमञ्जरी में परम तेजस्वी, सत्यवानों में श्रेष्ठ, रूप में चित्रित किया गया है। वे परम तेजस्वी उत्तम कुल के वंशज हैं। विख्यात धर्मात्मा, सत्व युक्त सुवर्णरोमा के सुपुत्र हैं[3]—

देवरातो निमेः षष्ठो जनकानामभून्नृपः ।
सुवर्णरोमा तस्याभूद्वंशे महति भूपतिः ॥

वे योग्य न्यायप्रिय शासक हैं। राजा सुधन्वा के साथ युद्ध करके उसे वीरगति प्राप्त कराना उनकी वीरता का प्रमाण है।[4]

वे परमतेजस्वी भी हैं। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर देव वर्ग तक उनकी सहायता करने को प्रस्तुत हो जाते हैं जिससे वे युद्ध में विजयी होते हैं।[5]

ततः संवत्सरे पूर्णे क्षीणसैन्याब्धिना मया ।
देवतानां वरात्प्राप्तं चतुरङ्गं महद्बलम् ॥

तेन ते विदिताः सर्वे छिन्नच्छत्ररथध्वजाः ।
स्वपुराणि ययौ भूपा ध्वस्तमानमनोरथाः ॥

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (१०५)
२. रामा० मं०, अयो० कां० (७२३, ८८७, ८८८, ८८९)
३. रामा० मं०, अयो० कां (१६४–१६८)
४. वही (५४७–५५०)
५. वही (४९१–४९५)

वे सत्यप्रतिज्ञ हैं। अपने वीर स्वभाव के अनुरूप ही अपनी वीर्यशुल्का कन्या सीता के लिए उपयुक्त 'वीर' वर के अन्वेषणार्थ प्रतिज्ञाबद्ध हो उठते हैं[१]—

अधिज्यं धूर्जटिधनुः शौर्यस्य निकषोपम ।
यः करिष्यति स श्लाघ्यां सीतां कीर्तिमिवाप्स्यति ।

उनके गुणों में उनकी व्यवहारकुशलता, विनयशीलता, शिष्टाचार, गुणग्राहकता, तथा कृतज्ञादि परमश्लाघ्य है। वे विश्वामित्र के प्रथम दर्शन पाते ही उनके प्रति अपनी श्रद्धा अर्पण करते हैं। उनका विधिवत् पूजन आदि जनक के आतिथ्य धर्म का प्रतीक है। उनके दर्शनों द्वारा अपने को धन्य मानना जनक की कृतज्ञता है। उनके गुणों की सराहना करके वे अपनी गुणग्राहकता का भी परिचय देते हैं। इस प्रकार विश्वामित्र[२] तथा दशरथ[३] का स्वागत, अनुकूल शिष्टाचार द्वारा जनक सम्पादित करते हैं।

उनकी भावनाएँ अत्यन्त उदार हैं। अपने भाई कुशध्वज के प्रति भ्रातृस्नेह से सदैव आप्लावित होकर उनके प्रति कर्तव्यशीलता का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। सुधन्वा का विजित राज्य स्वयं न ग्रहण कर कुशध्वज को देना उनकी उदारहृदयता का सूचक है[४]—

तं निहत्य सुधन्वानं सांकाश्यं नाम तत्पुरम् ।
कुशध्वजाय दत्त्वाहं हतारिर्निवृतोऽभवम् ॥

उनकी पुत्री के वरचिन्तन का भार अपने ही ऊपर वहन करते हैं।[५]

इस प्रकार मन, वचन एवं कर्म सभी तरह से जनक नृपोत्तम एवं मानवोत्तम प्रमाणित होते हैं।

अंगद

रामायणमञ्जरी में अंगद का चरित्र यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रित किया गया है। अपने पितृहन्ता सुग्रीव के प्रति उसका क्षोभ नितान्त स्वाभाविक है। वह सुग्रीव की कटु आलोचना करता है, उन पर पूर्णतः अविश्वास करता है।[६] इसी कारण वह उनके दुःखमय बन्धन की अपेक्षा मृत्यु को श्रेयस्कर समझते हुए मरने के लिए तत्पर हो जाता है।[७]

---

१. रामा० मं०, अयो० कां० (४६०)
२. वही (३१८–३२३)
३. वही (५१७–५२१)
४. वही (५५०)
५. वही (५५१)
६. रामा० मं०, कि० कि० कां० (३१०, ३११, ३४७–३६७)
७. वही (३८७–३९२)

अंगद का बुद्धिकौशल प्रशंसनीय है। बुद्धिप्रवर हनुमान स्वयं उसके बुद्धि की प्रशंसा करते हैं।[1] उसकी बुद्धिमत्ता के आधार पर ही विभीषण की परामर्श के अनुसार राम उसे दूत कार्य के लिए नियुक्त करते हैं। विषम परिस्थितियों में भी उसकी विवेकशीलता एवं वाक्चातुरी का परिचय मिलता है। जब सम्पाती वानरों का आहार करने का संकल्प करता है तब उसके भाई जटायु का वृत्तान्त सुनाकर उसकी सहानुभूति प्राप्त करने का श्रेय अंगद को ही है।[3]

वह कुशल सेनानायक है। समस्त सेना उसके प्रति स्नेह एवं श्रद्धार्पण करती है तथा समय-समय पर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी करती है। उसके द्वारा प्रचण्ड राक्षसी सेना का संहार एवं नरान्तक जैसे भीषण दानवों का वध करना उसकी युद्ध वीरता के निदर्शन हैं।[4] देवान्तक, त्रिशिरा एवं महोदर तीनों राक्षसों ने एक साथ ही अंगद पर आघात किया किन्तु महातेजस्वी एवं प्रतापी अंगद तनिक भी व्यथित नहीं हुआ।[5]

रामायणमञ्जरी की नायिका 'सीता'

नायिका नायक के सामान्य गुणों से यथासंभवयुक्त हुआ करती है—**यथोक्तसंभवे नायक सामान्यगुणयोगिनी नायिकेति**।[6] रामायणमञ्जरी के नायक राम की धर्मपत्नी सीता उनके गुणों से युक्त हैं। अतः सीता ग्रंथ की नायिका हैं। जिसका स्पष्ट विवरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है। नायिका सीता अपने गुणों एवं चरित्र के आधार पर स्वकीया हैं। स्वकीया नायिका पतिव्रता, सरला, लज्जावती तथा पति की सेवा में निपुण होती है—**स्वीया शीलार्जवादियुक्**।[7] नायिका सीता के चरित्र में स्वकीया के सभी गुण निहित हैं।

नायिकालङ्कारों का विवेचन[8]—नायिकाओं के अङ्गज, अयत्नज और स्वभावज इन तीन प्रकार के अलङ्कारों का वर्णन किया जा रहा है।

नायिकाओं के यौवनावस्था में २८ प्रकार के सत्त्वोगुणोत्पन्न अर्थात् सात्विक (रजोगुण, तमोगुण को तिरस्कृत करके उत्पन्न होने वाले सात्विक) अलङ्कार होते हैं।

१. रामा० मं०, कि० कि० कां० (३६८–३८६)
२. रामा० मं०, यु० कां० (३८८–४३०)
३. रामा० मं०, कि० कि० कां० (३९३–४००)
४. रामा० मं०, यु० कां० (९०६–९१०)
५. वही (९०४, ९०५)
६. दशरूपक, २।१४
७. वही, २।१५
८. सा० द० ३।८८–९३

उनमें से (२८ प्रकार में से) १—हाव, २—भाव, ३—हेला। ये तीन अलङ्कार 'अङ्गज' होते हैं।

१—शोभा, २—कान्ति, ३—दीप्ति, ४—माधुर्य, ५—प्रगल्भता, ६—औदार्य और ७—धैर्य। ये सात 'अयत्नज' होते हैं। ये विना यत्न के पैदा होने वाले हैं, अर्थात अकृतिम हैं।

१—लीला, २—विलास, ३—विच्छति, ४—विव्वोक, ५—किलकिञ्चित, ६—मोट्टायित, ७—कुट्टमित, ८—विभ्रम, ९—ललित, १०—पद, ११—विहृत, १२—तपन १३—मौग्ध्य, १४—विक्षेप, १५—कुतूहल, १६—हसित, १७—चकित, १८—केलि। ये १८ अलङ्कार स्वभावसिद्ध हैं (किन्तु कृतिसाध्य होते हैं)।

इन परिगणित अलङ्कारों में से 'भाव' से लेकर 'धैर्य' तक दस अलङ्कार नायकों के भी होते हैं। किन्तु ये सभी (२८ प्रकार के अलङ्कार) नायिका का आश्रय लेकर ही विलक्षण वैचित्र्य की पुष्टि करते हैं।

उनमें अङ्गज अलङ्कारों में से—जन्म से लेकर निर्विकार चित्त में उद्‌बुद्ध मात्र (स्पष्ट प्रतीत होने वाला नहीं) काम विकार को भाव कहते हैं।

नायिका सीता का चरित्र-चित्रण

सीता के जीवन का मूलाधार उनका अटल पातिव्रत धर्म है जिसका व्यापक उल्लेख रामायणमञ्जरी में किया गया है। इसके कुछ निदर्शन इस प्रकार हैं।

वनगमन के समय राम द्वारा सीता को साथ चलने से मना करने पर क्रोध और दुःख से संतप्त सीता अश्रुशीकरों को निरन्तर कुचस्थल पर गिराते हुए अपने पातिव्रत धर्म के विषय में कहती हैं—हे आर्य ! आप अपनी प्राणप्रिया सती का कैसे परित्याग कर रहे हैं। हर्ष की अनुभूति करने वाले मेरे पिताजी ने मोहवश व्यर्थ में ही परिणय सम्पन्न किया क्योंकि अपनी कीर्ति सदृश मुझे स्वामी परित्याग कर रहे हैं। पिता-माता तथा पुत्रादि सभी अपने भाग्य के भागीदार होते हैं किन्तु पुरुषों के भाग्य की सर्वथा एकमात्र भागीदार भार्या ही होती है। नारी के लिए उनके पति का जीवन ही एकमात्र रूप, वय, कान्ति, सौभाग्य सुख एवं प्राण होता है। सुख-दुःख में अनुगमन करने वाली, वैर, केलि एवं विस्रम्भ की साक्षी तथा आपके चित्त-वृत्ति का अभिन्न मैं परित्याग के योग्य नहीं हूँ। जिस प्रकार त्याग विहीन सम्पदा, सत्य रहित वाणी तथा शान्ति से हीन विद्या शोभित नहीं होती, उसी प्रकार पति के बिना स्त्री भी शोभायमान नहीं होती।[1]

---

१. रामा० मं०, अयो० कां० (८७०-८७६)

नारी धर्म की उन्हें सम्यक् शिक्षा प्राप्त है। बाद में कौशल्या एवं अनसूयादि[१] योग्य गुरुजनों की शिक्षा द्वारा उनकी यह शिक्षा दृढ़तम् हो जाती है। इसका व्यवहारिक प्रत्यक्षीकरण उनके वन्य जीवन में पूर्णरूपेण निखर उठता है। अनसूया उनके सतीत्व की भूरि-भूरि प्रशंसा करती है[२]—

> दिष्ट्या पुत्रि त्वया प्राप्तं सतीव्रतपवित्रितम्।
> सद्यशस्त्रिदशश्लाघ्यं वने पत्युः सपर्यया॥

अशोक वाटिका में स्थित जानकी को हनुमान केवल उनके पातिव्रत धर्म के कारण ही पहचान लेते हैं, जब वे सीता को राम का अखण्ड चिन्तन करते हुए पाते हैं[3]—

> यदि चिन्ताकुला नेयं रतिः प्रोषितभर्तृका।
> तत्सैव निश्चितं कान्ता राममानसमानसी॥

सीता के पातिव्रत धर्म का ज्वलन्त उदाहरण वह दृश्य है जहाँ विषम परिस्थिति में भी उनकी सुरक्षा का आल-बाल भी उनका सतीत्व है। चतुर्दिक विकृताननना राक्षसियों के मध्य निर्भीक सीता स्वयं अपनी दृढ़ता का निदर्शन करती हैं।[४] इसके अतिरिक्त रावण सम्भाषण के समय तिनके की ओट देकर बात करना तथा रावण को अपमानित करते हुए अपने पातिव्रत की गर्वोक्ति सीता द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।[५] इसी प्रकार हनुमान के साथ सम्भाषण में भी सीता के पातिव्रत की गर्वोक्ति दर्शनीय है।[६]

हनुमान द्वारा लङ्कादहन के समय राक्षसियाँ सीता को सूचना देती हैं कि वह वानर आग की लपटों में जल रहा है। शोकाभिभूत सीता इस समाचार को सुनते ही नेत्रों से नीर बहाते हुए हनुमान की अग्नि शान्ति के लिए कहती हैं[७]—

> सतीवृत्तेन यदि मे किंचिदस्ति तपःफलम्।
> तेनास्तु भगवान्वह्निमारुतैः शशीशीतलः॥

सीता के ऐसा कहते ही हनुमान की अग्नि वायु के द्वारा हिमखण्ड सदृश शीतल हो गयी। सहसा वे अपने भुजबन्धनों को तोड़कर सभी पाशों से मुक्त हो गए।[८]

---

१. रामा० मं०, अ० प० (३३६–३४०)
२. वही (३३५)
३. रामा० मं०, सु० कां० (१३८–१६१)
४. वही (२७६–२८०)
५. वही (२२८–२४३, २५५–२६१)
६. वही २६३–२८१)
७. वही (५३८–५४२)
८. वही (५४३, ५४४, ५४५)

यह है सीता के सत्य, तप, सतीत्व एवं पातिव्रत धर्म का माहात्म्य जो स्वयं उनका तथा हनुमान का रक्षक कवच सिद्ध होता है।

अग्नि परीक्षा के प्रसंग में सीता स्वयं राम के प्रति अपनी अनन्यनिष्ठा का प्रमाण देती हैं। उन्हें अपने शुद्धाचरण एवं राम के प्रति अनन्य भक्ति भावना का गर्व है, अटल आत्मविश्वास है जिसके दृढ़ अवलम्ब से ही वे अग्नि को साक्षी बनाकर उनसे दाहक बनने के स्थान पर रक्षक बनने की प्रार्थना करती हैं[1]—

मनोवाक्कायचेष्टाभिर्यथाहं राघवात्परम् ।
दैवतं नाभिजानामि तेन मां पातु पावकः ॥

स्वयं अग्नि देव साकार रूप में प्रकट होकर सीता के पतिपरायणता की साक्षी देते हुए उन्हें राम को समर्पित करते हैं।[2] सर्वदर्शी राम भी ओजपूर्ण स्वर से अपने प्रति सीता की अनन्यता तथा उनके शुद्धाचरण को स्वीकार करते हैं[3]—

इत्युक्ते वह्निना रामस्तमुवाच कृताञ्जलिः ।
गृहीतेयं मया देव वैदेही तव शासनात् ॥
शुद्धस्वभावां सततं ननु जानामि जानकीम् ।
किं त्वस्या विहिता शुद्धिर्लोकप्रत्ययकारिणी ॥

इसी प्रकार दशरथ भी सीता के सतीत्व, पवित्रता एवं शुद्धाचरण के विषय में राम से कहते हैं[4]—**स्नुषा चेयं सती सूता पावकी कुलसंततेः ।**

यद्यपि राम सीता के आचरण एवं अन्तरात्मा को भलीभाँति जानते हैं, तथापि जनापवाद से प्रेरित होकर अपनी प्राणप्रिया का परित्याग करना ही पड़ता है। उस स्थिति में भी वह राम में अनन्य भक्ति ही अर्पित करती हैं तथा अपने पति के अपवाद पर अपना परित्याग भी सहर्ष स्वीकार कर लेती हैं। वे लक्ष्मण से कहती हैं[5]—

निर्दोषैर्यद्गुणोदारैर्धर्मदारैर्वियुज्यते ।
तदाज्ञां कुरु सौमित्रे त्यज मां दुःखभागिनीम् ॥

यहीं तक नहीं, रामायणमञ्जरी में सीता का वह मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी चित्र भी प्रस्तुत है, जहाँ वे अपनी अनन्यता एवं पातिव्रत धर्म की कसौटी पर खरी उतरती हुई

---

१. रामा० मं०, वह्निप्रवेशः (१०२, १०३, १०४)
२. रामा० मं०, महापुरुषस्तवः (११७, ११८)
३. वही (११९–१२०)
४. वही (१२४)
५. रामा० मं०, उ० कां० (७८८)

अपने को बलिदान तक कर देती हैं। अन्तिम क्षण तक उनके मुख से यही ओजपूर्ण वचनावली निःसृत एवं गुञ्जरित होती है[1]—

यथा मे राघवादन्यो न संकल्पेन दैवतम्।
तेन सत्येन विवरं भूतधात्री ददातु मे॥

मनोनयनवाक्यचेष्टास्वप्नैरव्यभिचारिणी।
यद्यहं रघुनाथस्य तन्मे रन्ध्रं ददातु भूः॥

सीता धर्मज्ञा हैं—रामायणमञ्जरी में उनके धार्मिक स्वरूप का संकेत मिलता है। रावण द्वारा अपहृत सीता वन में विलाप करती हुई वनदेवता, गोदावरी तथा पर्वतों को हाथ जोड़कर अभ्यर्चना करती हैं—**गोदावरी नमामि त्वां गिराणामयमञ्जलिः।**[2] गुरुजनों एवं वृद्धजनों का पूजन उनका आदर्श है अतएव अनसूया का वे पूजन करती हैं।[3] इसके अतिरिक्त वन में अनेक ऋषियों मुनियों का भी पूजन करती हैं—**सत्वेभ्यश्च मुनिभ्यश्च नमः कीर्तिप्रयातु वः।**[4] बहुरूपधारी रावण का आतिथ्य सत्कार उनके अतिथि धर्म का निर्णायक है।[5]

रामायणमञ्जरी में उसके धार्मिक व्यक्तित्व की ही भाँति सामाजिक व्यक्तित्व की विशेषताएँ भी दर्शनीय हैं। सीता सब प्रकार की रीतियों से भिज्ञ हैं। कुलरीति, राजनीति, तथा नीति के सभी तत्वों का उन्हें सम्यक् ज्ञान है जिसका उल्लेख ग्रंथ में अनेक स्थलों पर किया गया है। यावज्जीवन वे कर्तव्यपरायणा एवं कुशल राजवधू हैं। इसका प्रत्यक्षीकरण अवधनारियों का सीता के प्रति अनुरक्ति के प्रसङ्ग में दर्शनीय है।[6] दशरथ भी इसकी प्रशंसा करते हैं।[7]

वे नारी सुलभ लज्जा से समन्वित,[8] सुशीलता,[9] मृदुलता[10] की प्रतीक स्वरूपा हैं। वे त्यागमयी रमणी हैं जिसका प्रत्यक्ष निदर्शन सीता का परित्यक्ता स्वरूप है।

---

१. रामा० मं०, उ० कां० (१२०१, १२०२)
२. रामा० मं०, अ० प० (८६०)
३. वही (३३०, ३३३, ३३४)
४. वही (८६१)
५. वही (७८७, ७८८)
६. रामा० मं०, अयो० कां० (६२८, ६२९, ६३०, ८२९) एवं अ० प० (३२३)
७. रामा० मं०, महापुरुषस्तवः (१२४)
८. रामा० मं०, अयो० कां० (५५७–५६४)
९. रामा० मं०, अ० प० (४२४)
१०. रामा० मं०, उ० कां० (७८७, ७८८)

एक वीर क्षत्राणी हैं, अपने वर्णानुकूल राम को वन प्रदेश में क्षत्रिय धर्म का स्मरण कराती हैं।[1]

वे परम विवेकशीला हैं। जन्मजात बुद्धिकौशल के साथ-साथ समय-समय पर सदुपदेश ग्रहण की प्रवृत्ति एवं जिज्ञासु भाव उनकी प्रज्ञा को विशेष कान्ति प्रदान की है। वे परम तार्किक हैं, किन्तु सुतर्क करती हैं कुतर्क नहीं।[2]

सीता के चरित्र में कुछ विशिष्ट नैतिक गुणों का भी समावेश है। वे सच्चरित्रशीला हैं, दृढ़ संकल्पा हैं, वे दृढ़, साहसी, निर्भीक हृदय एवं गौरवशीला हैं। वे भाग्यवादिनी तथा शक्तिशालिनी भी हैं। वे सुव्रता एवं सुधर्माचारिणी हैं। उनमें अटूट धैर्य एवं स्थिर बुद्धि हैं। वे कर्ममीमांसक तथा परम त्यागमयी हैं। राग द्वेष से रहित शरणागतवत्सलता से भी अभिप्रेत हैं। वे जितेन्द्रिय तथा परम तेजस्विनी भी हैं। रामायणमञ्जरी में आद्योपान्त सीता चरित्र के उपर्युक्त समस्त नैतिक गुण सम्यक्रूपेण उल्लिखित हैं। वन प्रसङ्ग से लेकर हरण के प्रसङ्ग तक उनके चरित्र में, अग्नि परीक्षा काल में, ब्रह्मादि देवों, अग्निदेव तथा दशरथ द्वारा उनको निर्दोष सिद्ध करने वाली उक्तियों में, उनके परित्यक्ता स्वरूप में तथा विशेष रूप से रावण तथा हनुमान के साथ सम्भाषण के अन्तर्गत उनके चरित्र में निहित समस्त नैतिक गुणों का अवलोकन किया जा सकता है।

कवि ने सीता चरित्र के अधिक मार्मिक हृदयस्पर्शी, स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक प्रसङ्ग भी चित्रित किए हैं। उनकी करुणा 'हरण प्रसङ्ग' में अत्यन्त मार्मिक एवं हृदय विदारक है।[3] अशोकवाटिका में स्थित जानकी की वियोग व्यथा अत्यन्त हृदय द्रावक है।[4] उनकी इस करुण दशा का चित्रण कवि ने अत्यन्त विशद एवं हृदयस्पर्शी किया है। वे वहाँ भी रावण से धमकायी जाने के पश्चात वन में परित्यक्त कन्यावत विलाप करती हैं। इन सभी दृश्यों में सबसे अधिक मार्मिक दृश्य सीता का 'वसुधा प्रवेश' है।[5] जिसने पाठकों एवं अवधपुरवासियों को ही द्रवीभूत एवं मर्माहत नहीं किया अपितु अत्यन्त सहनशीला पृथ्वी का हृदय भी विदीर्ण कर दिया।

सीता के चरित्र-चित्रण में 'दोष दर्शन' का विवादग्रस्त प्रसङ्ग मारीच वध के समय का है। इस स्थल पर सीता का अत्यन्त उग्र, चपल, आतुर एवं कटुभाषिणी रूप

---

१. रामा० मं०, अ० प० (४१५–४२४)

२. रामा मं०, अयो० कां (८७०–८७८) एवं अ० प० (४१५–४२४)

३. रामा० मं०, अ० प० (८५५–८६२)

४. रामा० मं०, सु० कां० (२००–२०४, २७६–२८०, २८८, ३७७, ३७८, ३७९)

५. रामा० मं०, उ० कां० (१२०१–१२०५)

दर्शाया गया है ।[1] किन्तु इस प्रसङ्ग में कवि का चरित्राङ्कन अधिक मनोवैज्ञानिक, स्वाभाविक एवं न्याय संगत जान पड़ता है । अपने एक मात्र आश्रय राम को संकटग्रस्त देखकर आतुर एवं अस्त-व्यस्त हो जाना स्वाभाविक था । उस भीषण संकटमयी परिस्थिति में उनका कटु भाषण करना पूर्णतः यथार्थ ही प्रतीत होता है ।

इसी प्रकार सीताहरण के प्रसङ्ग में सीता रावण के प्रति क्रोधावेश से उबल पड़ी तथा उसे ललकारने लगी ।[2] यह क्रोधोद्गार उनकी क्रोधी प्रकृति को नहीं अपितु समयानुकूल साहसी एवं वीर निर्भीक क्षत्राणी रूप को प्रमाणित करता है ।

सत्पथावलम्बिनी सीता रामायणमञ्जरी में असत्य का प्रयोग भी करती हैं । कवि ने जीवन का सूक्ष्म अध्ययन किया । अतएव परिस्थिति के अनुसार सीता द्वारा हनुमान के विषय में असत्य भाषण भी करवाया है । अशोकवाटिका विध्वंस के उपरान्त पर्वत तुल्य अतिकाय वानर को देखकर भयभीत राक्षसियाँ सीता के पास पहुँचकर अपने शरीरों को विकृत बनाकर बोलीं, "वृक्षों को उखाड़ने वाला यह कौन है जिसके साथ तुमने स्वतन्त्रतापूर्वक वातचीत की । इस पर सीता ने उत्तर दिया, "मैं इस तेजस्वी को नहीं जानती । मायावी व्यक्ति की गति को तुम लोगों के जैसे मायावी ही जानते हैं ।"[3]

इस प्रसङ्ग में सीता का असत्य भाषण ही राजनीति, धर्मनीति के अनुकूल एवं मनोवैज्ञानिक था ।

सीता के आन्तरिक आदर्श चरित की भाँति उनका बाह्य रूप भी अलौकिक, अनुपमेय, दिव्य, सर्वाङ्ग सुन्दर एवं सर्वोपरि चित्रित किया गया है । उसकी एक झलक का दर्शन कर लेना यहाँ असङ्गत न होगा ।

रामायणमञ्जरी में कवि ने राम के दिव्य सौन्दर्य तथा शारीरिक सम्पत्ति का समग्र वर्णन बड़ी पूर्णता, स्निग्धता तथा वैशद्य के साथ स्थल-स्थल पर किया है। परन्तु आश्चर्य है कि उसने सीता के दैहिक सौन्दर्य का वर्णन कहीं भी नहीं किया । महाकवि उसकी अगाधता, गम्भीरता तथा अनाख्येय सौन्दर्य की वह अपनी शाब्दिक शक्ति के द्वारा आख्या देना उचित नहीं समझता । इसका तात्पर्य यह नहीं कि रामायणमञ्जरी में जानकी के रूप भङ्गिमा की छवि शब्दों के माध्यम द्वारा वर्णित नहीं होती ? होती है, किन्तु कवि द्वारा नहीं अपितु जानकी द्वारा ही अथवा अन्य पात्रों के द्वारा । युद्ध काण्ड के अन्तर्गत माया द्वारा निहत राम को पुष्पकारूढ़ सीता अपने नेत्रों से देखने के बाद दुःख संतप्त हो स्वयं

---

१. रामा० मं०, अ० प० (७६१–७८०)

२. वही (८०८–८१७, ८२४–८३४)

३. रामा० मं०, उ० कां० (७२४–७३१)

निज रूप सौन्दर्य का वर्णन करती हैं—कन्या लक्षणवेत्ताओं ने जीवित भर्तृत्व के जो लक्षण बताए हैं, वे कैसे मिथ्या हो सकते हैं ? वे सभी तो मेरे पास हैं। मेरे सिर के बाल महीन बराबर और काले हैं, भौहें परस्पर जुड़ी नहीं हैं, नेत्र शङ्ख के समान, पैर तथा पिण्डलियाँ गोल-गोल एवं रोमरहित हैं। दाँत परस्पर सटे हुए तथा नख के अग्र भाग अर्धवृत्ताकार हैं। मेरे दोनों स्तन परस्पर सटे हुए एवं स्थूल हैं, इसके अग्रभाग भीतर की ओर दबे हैं। मेरी नाभि भी गहरी है तथा मेरी अङ्गकान्ति स्निग्ध एवं मृदुल है। वैधव्य के जो लक्षण हैं वे मुझमें कहीं भी दिखलाई नहीं पड़ते[1]—

पाणिपदतलाशक्तै रेखाकमलमण्डलैः ।
वैधव्यं सूचितमिदं कथं मे शुभलक्षणैः ॥

ये भर्तृशस्तां मामाहुः कन्यालक्षणकोविदाः ।
ते दैवज्ञा कथं नाम जाता वितथवादिनः ॥

नीलाः केशाः समाः सूक्ष्माः परिच्छिन्ने भ्रुवौ च मे ।
शङ्खो नेत्रे वरौ पादौ गुल्फौ च न शिरोन्नतौ ॥

दन्ताः प्रगुणरामाश्च तनुवृत्तशिखा नखाः ।
स्तनौ सुसंहतो पीनौ सुवृत्तौ मग्नचूचुकौ ॥

गम्भीरो नाभिदेशश्च कान्तिः स्निग्धा च मे मृदुः ।
ममेदं येन वैधव्यं न तत्पश्यामि लक्षणम ॥

अरण्य पर्व के अन्तर्गत शूर्पनखा रावण से सीता के रूप सौन्दर्य की चर्चा करते हुए कहती है—सीता नाम की उसकी (राम की) वधू नव यौवन सम्पन्न, सर्व गुण युक्त, समस्त स्त्रियों में श्रेष्ठ, मनोहारी एवं कान्ति युक्त मुख चन्द्र वाली है। उस सुन्दर नेत्रों वाली सीता को मैं तुम्हारे लिए हरण करवाना चाहती हूँ, जिस राम के छोटे भाई द्वारा मैं अपमानित की गई हूँ।[2]

इसके बाद रावण मारीच के पास पहुँचकर सीता के विषय में कहता है—मन्द मुस्कान वाली, चन्द्र सदृश उसके मुख मण्डल से लावण्य बिन्दु टपकता हुआ सीता नाम की शोभा युक्त उसकी पत्नी है।[3]

पुनः जब भिक्षु रूप में रावण आश्रम में स्थित सीता को देखता है तो वह उनके अद्भुत रूप सौन्दर्य को देखकर चकित हो, अतीव प्रशंसा करते हुए कहता है—करिणी को

---

१. रामा० मं०, यु० कां० (५०१–५०५)

२. रामा० मं०, अ० प० (६५२–६५४)

३. वही (६६७)

शृङ्गार की शिक्षा देने वाली, हरिणी के नेत्रों को चुरा लेने वाली, चन्द्रकान्ति को भी मलिन बनाती हुई लावण्यनलिनी तुम कौन हो ? तुम्हारे ये कमल के समान कोमल हाथ पारिजात वृक्ष के नवकोपलों के सदृश शोभायमान हो रहे हैं। तुम्हारी हारावली के तट-प्रान्त पर चक्रवाक के जोड़े की भाँति दोनों स्तन शोभित हो रहे हैं। हे सुभ्रु ! ऐसा प्रतीत होता है कि विधाता ने तुम्हें कोई संजीवनी औषधि की भाँति ही निर्मित किया है। रक्त अधरपटल, चञ्चल नेत्र, मन्द स्मित्—ये सभी तुम्हारे मुखकमल की कान्ति पर भासित हो रहे हैं। अप्सराओं के रूप की तो इसके सामने तुलना ही नहीं, गन्धर्व स्त्रियों का क्या, विद्याधर की स्त्रियों के सौन्दर्य इसकी समता में बहुत दूर हैं, अन्यों का तो कोई स्थान ही नहीं। विकराल राक्षसों तथा पशु-पक्षियों से युक्त इस घोर जङ्गल में दिन में गिरी हुई चन्द्रबिन्दु के समान तुम कैसे अकेली रहती हो।[1]

पुनः सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत मदपान से उन्मत्त एवं कामान्ध रावण अशोक-वाटिका में पहुँचकर सीता के सभी अवयवों की प्रशंसा करते हुए अपनी पत्नी बनाने का प्रयत्न करता है। इस समय उसके द्वारा प्रयुक्त वाक्यों से सीता के रूप सौन्दर्य की स्पष्ट झलक मिलती है। रावण सीता को वामनयने, सुन्दर मूर्ति, सौन्दर्य से विभूषित, सुन्दर भौहों वाली, सुन्दर नेत्रों वाली एवं सुन्दर नितम्बों वाली आदि संबोधनों द्वारा सीता के अप्रतिम रूप सौन्दर्य का वर्णन करता है।[2]

वस्तुतः यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि अखिल विश्व के स्त्री चरित्रों में राम-प्रिया जानकी का चरित्र सर्वोत्कृष्ट है। रामायणमञ्जरी के सभी स्त्री चरित्रों में तो सीता चरित्र सर्वोत्तम, सर्वथा आदर्श और पद-पद पर श्लाघ्य ही है, भारतीय ललनाओं के लिए सीता का चरित्र सन्मार्ग पर चलने के लिए पूर्ण मार्ग दर्शक है।

सहनायिका तारा

रामायणमञ्जरी की सहनायिका तारा किष्किन्धा नरेश बालि की पत्नी एवं वीरवर अङ्गद की जननी थी। ग्रंथ के अन्तर्गत किष्किन्धा पर्व एवं किष्किन्धाकाण्ड के कुछ स्थलों से ही तारा की चारित्रिक विशेषताओं का परिज्ञान होता है। इन्हीं स्थलों के आधार पर उसकी पतिपरायणता, पुत्र स्नेह, बुद्धिमता वाक्चातुर्य, शास्त्रीय एवं पौराणिक ज्ञान, राजनीति निपुणता, नीति एवं धर्म तत्ववेता स्वरूप का दर्शन होता है।

वह एक बुद्धिमान, नीति, धर्म, शास्त्र, राजनीति तथा व्यवहार को जानने वाली पतिव्रता नारी थी। यही कारण है कि राम का आश्रय पाये हुए सुग्रीव की ललकार से

---

१. रामा० मं०, अ० प० (७८९–७९५)

२. रामा० मं०, सु० कां० (२०६–२२६)

उत्पन्न क्रोध वाले पति बालि को युद्ध न करने के लिए प्रेरित करते हुए कहती है—इस विप्लव क्रोध को त्याग कर धैर्य का आश्रय लेते हुए कार्य करना ही उचित है। इस लोक में नेक विचारों वाले सज्जन लोग न तो किसी से ईर्ष्या रखते हैं और न ही विना परीक्षण किए कोई कार्य ही करते हैं। सामान्य लोगों की तरह सज्जनों में भावावेश के कारण क्रोध एवं अहं नहीं होता। आपके द्वारा निष्कासित, भग्नमनोरथ वाला एवं निराश वह आपका भाई सुग्रीव निश्चय ही किसी धीर एवं बुद्धिमान व्यक्ति का आश्रय पा गया है नहीं तो वह पुनः कैसे यहाँ युद्धार्थ आता ? अङ्गद ने मुझे बताया है कि उसे (सुग्रीव को) दया के सागर, शौर्य एवं शील सम्पन्न धनुर्धारी दशरथनन्दन राम का आश्रय मिला है। अतः सुग्रीव के साथ भाई का बर्ताव करते हुए राम को प्रसन्न कर प्रणाम करें जिससे आपका राज्य वैभव सुरक्षित रह सकता है क्योंकि विजयाभिलाषी, लक्ष्मी को चाहने वाले सदैव बलवान से सन्धि, हीन शक्ति वाले से युद्ध एवं समान बल वाले की उपेक्षा करते हैं। अतः आप युद्ध करके दीपक पर एकाएक गिरे हुए पतंगे की गति (मृत्यु) को न प्राप्त होवें।[1]

इस प्रकार तारा के उपर्युक्त कथनों से पति का हितचिन्तन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है जिससे उसका पतिपरायणा स्वरूप सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त भी उसके चरित्र में निहित अन्य सभी गुणों का स्पष्ट संकेत मिलता है।

तारा के पातिव्रत का चरमोत्कर्ष तो उस समय दिखाई पड़ता है जब उसके लाख समझाने पर भी क्रोधोन्मत्त बालि युद्ध के लिए चल दिया तथा सुग्रीव के साथ घमासान युद्ध करते हुए राम के एक घोर संधान द्वारा उसके स्वर्ग का द्वार खोल दिया गया। पराक्रमी बालि के वध का समाचार पाते ही वह पुत्र अङ्गद को आगे कर विलाप करती हुई शीघ्र ही वहाँ आ पहुँची। पति के पास पहुँचकर दुःख सागर में डूबी हुई तथा आँसुओं की धार पोंछती हुई बोली, "राम के बाण ने आपका जीवन लेकर मुझसे दूर कर दिया। हे नाथ ! दीर्घ प्रवास पर जाते समय एक बार नेत्र खोलकर अपने पुत्र को क्यों नहीं देख लेते ? पुत्र के प्रति तुम्हारा वह वात्सल्य कहाँ गया ? संगमोत्सव के समय मेरे प्रति कही जाने वाली प्रेमामृत वाणी कहाँ गयी ?[2]

इस प्रकार बालि के प्रति विलाप करती हुई तारा सुग्रीव से कहती है, "यदि तुमने अपनी पत्नी रुमा के लिए भाई की हत्या करवाई तो मुझे भी मारकर अग्नि में डाल दो तथा भाई के रक्त से सनी इस पृथ्वी का भोग करो।"[3]

---

१. रामा० मं०, कि० कि० प० (१३५-१४५)

२. वही (१८०–१८५)

३. वही (१८६, १८७)

पुनः राम को उलाहना देते हुए कहती है, "हे राम ! यदि असुरों ने सीता का हरण कर ही लिया तो क्या श्रेष्ठ पराक्रमी बालि आपकी सहायता नहीं कर सकता था। अहो ! रागान्ध हो आपने जो सुग्रीव को आश्रय दिया तथा बालि का वध किया, यह उचित नहीं किया। जिस सीता के वियोग में आप इधर-उधर भटक रहे हैं उसकी प्राप्ति के बाद भी अधिक समय तक उसका उपभोग नहीं कर सकेंगे। अहो ! यह राम का मोह है अथवा बालि का श्रेष्ठ भाग्य कि नीम पर आश्रित लता को रास्ते में फेंके हुए की भाँति अब मैं क्या करूँ। इस प्रकार विलाप करती हुई तारा की अश्रुधारा मुक्ताहार पर गिरते हुए पृथ्वी पर उसी प्रकार गिर रहे थे जैसे आकाश से तारे गिर रहे हों।[1]

बालि के प्रति तारा के उपर्युक्त विलाप एवं कथन में उसके अनुपम पति प्रेम का दर्शन होता है।

पुत्र अङ्गद के प्रति भी उसके असीम स्नेह का परिचय भी उस समय मिल जाता है जब उसे आगे करके वह मृत पति के पास पहुँचकर रोते हुए कहती है कि हे नाथ ! "दीर्घ प्रवास पर जाते समय जरा एक बार नेत्र खोलकर अपने पुत्र को देख लीजिए। अपने पुत्र के प्रति तुम्हारा वह वात्सल्य कहाँ गया।[2]

इसी प्रकार पति की मृत्यु के बाद विलाप करते हुए तारा का वैराग्य भाव दिखाई पड़ता है। वह जीवन से बिलकुल विमुख हो सुग्रीव से कहती है तुम मुझे अग्नि में डाल दो तथा मुझ निर्दोष को मार कर मेरे प्राणों की शुद्धि कर दो।[3]

तारा का पतिहन्ता राम को उलाहना देना मनोवैज्ञानिक, यथार्थ एवं स्वाभाविक है किन्तु राम के प्रति उसकी अटूट श्रद्धा एवं भक्ति का भी निदर्शन होता है। राम के गुणों की प्रशंसा करते हुए बालि से कहती है कि वह उनसे युद्ध न करके प्रणाम कर प्रसन्न करे तथा सुखपूर्वक अपने राज्य वैभव का उपभोग करे।[4]

तारा की बुद्धिमत्ता एवं वाक्चातुर्य का भी निदर्शन रामायणमञ्जरी में पर्याप्त उल्लिखित है। राज्य एवं स्त्री वापस पाकर सुग्रीव विषयासक्त हो राम कार्य को भूल गया इस पर क्रोधान्ध लक्ष्मण किष्किन्धापुरी पहुँचते हैं। इसी बीच तारा वहाँ पहुँचकर लक्ष्मण से मधुर वचनों में बोलती है—सुग्रीव के प्रति आपका यह क्रोध उचित नहीं है। क्योंकि कपिपति सुग्रीव सर्वथा आपका स्नेही है। वह राम कार्य से विचलित नहीं हुआ है। वह न तो असत्यवादी है, न दुष्ट है, न कृतघ्न है और न ही दुर्जन है। वह तो राम-

---

१. रा० मं०, कि० कि० प० (१८८, १८३)
२. वही (१८०, १८३)
३. वही (१८६, १८७)
४. वही (१४२, १४५)

कार्य के प्रति योगी की तरह ध्यान निश्चल है । यद्यपि भोगों के अत्युन्नत होने तथा अन्तः-पुर में आभूषणों से शोभित वक्षःस्थल वाली कामिनियों के रहते हुए भी सुग्रीव राम कार्य में निरन्तर चिन्ता से दग्ध एवं सुखपूर्वक शयन नहीं करता । वह राम के यशःस्तम्भ को मन में स्थायी रूप से स्थापित कर लिया है । पुनः जब विश्वामित्र जैसे जितेन्द्रिय तपस्वी ने मेनका के साथ रमण करते हुए सुदीर्वकाल बिता दिया तथा देवता, मुनियों की जब यह दशा है तो प्रिया समागम में सुग्रीव का मन क्यों न रम जाय ? हे लक्ष्मण ! सुग्रीव रावण को युद्ध में मारकर तथा सीता को वापस लाकर राम को प्रसन्न कर देगा । उसके आदेश से समस्त कपिगण सातों समुद्रों को पार कर सीता का पता लगाकर राम को शीघ्र ही सूचित करेंगे । तारा की ऐसी वाणी सुनकर लक्ष्मण का क्रोध शान्त हो गया ।[1]

यह तारा का बुद्धिकौशल एवं वाणी की कुशलता ही है कि सुग्रीव के वध हेतु आए हुए क्रोधान्ध लक्ष्मण के क्रोध को अपनी मधुर वाणी से शमन कर प्रसन्न कर लिया। तारा के उपर्युक्त कथन में उसके शास्त्रीय एवं पौराणिक ज्ञान का भी परिचय मिलता है तभी तो वह विश्वामित्र और मेनका के रमण सुख का उदाहरण प्रस्तुत करती है ।

कौशल्या

रामायणमञ्जरी में कौशल्या का चरित्र बहुत ही उदार और आदर्श है । ये महराज दशरथ की सबसे बड़ी पत्नी और राम की जननी हैं । ग्रंथ के अन्तर्गत कौशल्या के चरित्र में प्रमुख रूप से उनका पति प्रेम और पुत्र-प्रेम ही वर्णित है । इन्हीं दो रूपों में ही उनके चरित्र के अन्य सद्गुणों का भी विकास दर्शनीय है ।

कौशल्या का अनुपम पुत्र प्रेम राम के राज्याभिषेक के समय दिखाई पड़ता है । राज्याभिषेक की उत्सुकता में कौशल्या देव पूजन एवं व्रत उपवासादि में संलग्न हैं । इसी समय वन गमन हेतु माँ का आदेश प्राप्त करने के लिए राम उनके भवन में पधारते हैं । राम द्वारा वन गमन का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनते ही कौशल्या शोक मूर्छित हो गयी । पुनः थोड़ा सा चैतन्य प्राप्त होने पर अश्रु वाष्प गद्गद वाणी में विलाप करते हुए बोलीं, "अहो ! इस जगत में वन्ध्या स्त्रियाँ ही धन्य हैं जो स्वप्न में भी पुत्र-स्नेह की विषम व्यथा को नहीं जानती । सम्पूर्ण पुण्य गुणों से युक्त पुत्र प्राप्ति के बाद भी इस प्रकार के उग्र वियोग को कैसे सहन किया जा सकता है ।" काँटों से युक्त लता का जीवन अच्छा है किन्तु सर्वदा दुःख भोगने वाली एक पुत्र की माँ का नहीं । राम जैसा पुत्र जिसका निर्जन वन में चला जाय उस दुःखपूर्वक दृढ़ जीवन बिताती हुई स्त्री को धिक्कार है । पिता के द्वारा गुणों के समूह राम निर्वासित कर दिए गये परन्तु माता के जीवित रहने पर उसका

१. रामा० मं०, कि० कि० कां० (१३०–१५०)

स्नेह कहाँ गया। अमृत तुल्य स्नेहसम्पत्ति का खजाना एवं एक मात्र सुख की प्राप्ति-स्थल, मुझ हतभागिनी से दूर हो गया। इस प्रकार विलाप करती हुई कौशल्या भूमि पर गिर पड़ी। पुनः धैर्यसागर राम आश्वासन देते हुए वात्सल्य विकल माता कौशल्या से कहते हैं—माँ खेद मत करो, वनवास की अवधि समाप्त होने पर मैं पुनः मिलूँगा। किसी तरह से पुत्र द्वारा कठिनता से समझाये जाने पर माँ ने आज्ञा प्रदान की।[1]

इसी प्रकार राम को छोड़कर वापस आने पर सुमन्त्र जब सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करते हैं तो कौशल्या पुनः पुत्र वियोग में दुःखी हो जाती हैं।[2] निज पुत्र राम के प्रति उनके अपनत्व एवं अतुलित स्नेह की पराकाष्ठा का दर्शन उस समय भी दिखाई पड़ता है जब वे भरत से कहती हैं कि तुम्हारे लिए ही कैकेयी ने महाराज से मेरे पुत्र को निर्वासन दिलवाया—**त्वदर्थं याचितो राजा मया राम निर्वासनम्।**[3]

राम की माँ कौशल्या की प्रशंसा करते हुए सुमन्त्र राम से कहते हैं[4]—

धन्या ते जननी राम कौशल्या पुत्रमानिनी।
अदितेरपि या शङ्के शक्रमातुः स्पृहास्पदम्॥

इसी प्रकार भरत भी भरद्वाज मुनि से कौशल्या का परिचय कराते हुए उनके गुणों की प्रशंसा करते हैं[5]—

इयमार्यस्य कौशल्या माता जिष्णोरिवादितिः।
माता यस्य न लोकेऽस्ति यशसामथतेजसाम्॥

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कौशल्या की आदर्श पुत्रवत्सलता का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत होता है। राम के प्रति उनके असीम स्नेह के विषय में कहना ही क्या है, जिस भरत के कारण उनके प्रिय पुत्र राम को वनवास मिला उसके प्रति भी कौशल्या का वही स्नेह था। वे राम और भरत में कोई अन्तर नहीं मानती। उनका हृदय विशाल था। यही कारण है कि भरत जब स्वयं को धिक्कारते हुए तथा सारे अनर्थों का कारण अपने को मानते हुए माता कौशल्या के समक्ष फूट-फूट कर रोने लगते हैं तो पहले कौशल्या कुछ अवज्ञापूर्वक बोलती हैं जो स्वाभाविक था, किन्तु बाद में उनका वात्सल्य उमड़ ही पड़ा। पुनः वे भरत को निर्दोष समझते हुए लज्जा युक्त शब्दों में बोली—"पुत्र मैं तुम्हारे भावों को समझती हूँ, शपथ मत खाओ। सदा विवेकी, विशुद्ध सत्त्व

१. रामा० मं०, अयो० कां० (८२९–८३६, ८४५, ८६४)
२. वही (९२९)
३. रामा० मं०, अ० प० (३०)
४. रामा० मं०, अयो० कां० (७९१)
५. रामा० मं०, अ० प० (५४)

युक्त तुम जैसे सज्जन का मन कभी दूषित नहीं हो सकता है।"[१] यह कौशल्या का पुत्र स्नेह ही तो है जो भरत की इस प्रकार प्रशंसा करती हैं। फिर भरत भी तो माँ कौशल्या का बहुत ही आदर करते हैं। कैकेयी को धिक्कारते हुए वे कहते हैं—**एकपुत्रापि कौशल्या न जाने तव कथमास्थिता।**[२]

लक्ष्मण के प्रति भी उनका वही अनुपम स्नेह था। जिस सुमित्रानन्दन ने कौशल्या पुत्र राम के साथ वन जाना सहर्ष स्वीकार किया तथा जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन ही राम की सेवा में न्योछावर कर दिया, उसके प्रति विशाल हृदया कौशल्या का स्नेह होना स्वाभाविक ही है।

पुत्र प्रेम की ही भाँति रामायणमञ्जरी में कौशल्या का वधू प्रेम भी दर्शनीय है। अपनी पुत्रवधू सीता के प्रति कौशल्या के स्नेह का दर्शन तब होता है जब राम, लक्ष्मण के साथ सीता वन चली जाती हैं तथा सुमन्त्र वापस आकर समाचार बताते हैं। उस समय कौशल्या राम और लक्ष्मण के विषय में तो सोचती ही हैं किन्तु जानकी के विषय में विशेष चिन्तन करते हुए वह शोक के कारण आहत हो जाती हैं।[३]

इसी प्रकार चित्रकूट में सीता को वल्कल आदि धारण किए देखकर विचलित धैर्य वाली कौशल्या मूर्छित हो गयी। उन्होंने उन सबके दुःख के विषय में सोचते हुए, आँखों से आँसू बहाते हुए किसी तरह से वह रात्रि वितायी।[४]

साध्वी कौशल्या तो पतिव्रता शिरोमणि हैं। अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत उनका यह स्वरूप दिखाई पड़ता है। पति महराज दशरथ के आदेश से उनके प्राणप्रिय राम और सीता वन चले जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में पति के प्रति कौशल्या का व्यवहार कुछ रूखा हो सकता था, परन्तु नहीं, कौशल्या महाराज को किसी भी प्रकार की उलाहना नहीं देती प्रत्युत शान्त एवं गम्भीर भाव से पुत्र वियोग में दुःखी पति दशरथ को धैर्य ही बँधाती रहती हैं। उनके दुःखी होने पर दुःखी हो जाना, विलाप करने पर विलाप करना तथा दिन-रात उनके ही साथ रहना आदि से उनके पातिव्रत का चरमोत्कर्ष स्पष्ट रूपेण सूचित होता है। इस प्रकार राम वन गमन के बाद पुत्र वियोग में दुःखी महाराज के साथ हर पल रहते हुए कौशल्या ने ६ दिन बिताया। छठवीं रात्रि में शोकमग्न महाराज दशरथ कौशल्या को अपने इस कष्ट के कारण स्वरूप यज्ञदत्त-वध की कथा

१. रामा० मं०, अ० प० (६३, ६४)
२. वही (४१)
३. रामा० मं०, अयो० कां० (५२९)
४. रामा० मं०, अ० प० (२२३, २२४)

सुनाते हैं। कथा की समाप्ति के समय हाय राम ! हाय सीता आदि दु:खपूर्ण वचनों से विलाप करते हुए महाराज दशरथ प्राण त्याग दिए। महाराज को सोया जान कर, उनकी नींद टूटने के भय से कौशल्या शोक में डूबी हुई निःशब्द विलाप करने लगी[1]—

सुप्तं विज्ञाय नृपतिं कौशल्या शोकपातिता।
तन्निद्राभङ्गभीताभून्निःशब्द प्रविलापिनी ॥

प्रातः सेवकों द्वारा जगाने पर महाराज नहीं जगे। इतने में ही उनकी मृत्यु को जानकर कौशल्या सहित सभी रानियाँ विलाप करने लगी[2]—

कौसल्याद्यास्ततो देव्यः प्रलापमुखराननाः ।
चक्रुरश्रुकणैश्छिन्नहारमुक्ताफलप्रभम ॥

उपर्युक्त स्थलों में कौशल्या का अतुलित पति-प्रेम दर्शनीय है। दशरथ राम के वियोग में व्याकुल थे। उनका खान-पान छूट गया था। मृत्यु के चिन्ह उनके शरीर पर प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगे थे। नगर और महलों में हाहाकार मचा हुआ था। ऐसी अवस्था में जिसके पुत्र एवं पुत्रवधू को वनवास हो गया हो तथा पति की ऐसी दयनीय स्थिति हो गयी हो, उस स्त्री की दीन एवं दु:खी दशा का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। किन्तु कौशल्या ने इस विषम परिस्थिति में भी अपने दु:ख को भुलाकर, अपने कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व को समझते हुए, पति को धैर्य बँधाते हुए तथा मृत्युपर्यन्त अहर्निश साथ रहते हुए पातिव्रत का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया।

कैकेयी

कैकेयी अत्यन्त शीलवती, साध्वी, मानिनी एवं पतिपरायणा नारी हैं। राजा दशरथ अपनी सभी रानियों में कैकेयी को सबसे अधिक प्रेम करते थे। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण कोपागार में विक्षिप्त कैकेयी को मनाते हुए पति दशरथ की स्नेह एवं आदर भरी उक्तियाँ हैं। दशरथ यहाँ तक कह देते हैं कि हे देवि ! प्रसन्न होओ और बताओ कि तुम्हारी क्या इच्छा है। तीनों लोकों में ऐसी कोई दुर्लभ वस्तु नहीं जो मैं अपनी प्रिया के लिए उपलब्ध न कर दूँ।[3] इससे स्पष्ट ही है कि कैकेयी राजा दशरथ को प्राणों से भी अधिक प्रिय थी। कैकेयी के पति प्रेम का तो अनुपम उदाहरण यही है कि उसने देवासुर संग्राम में युद्ध करते हुए पति दशरथ को अपने प्राणों की कीमत पर बचाया था।[4] इससे अधिक एक पतिपरायणा के लिए और भी क्या मापदण्ड हो सकता है।

१. रामा० मं०, अयो० कां० (८३२–८८१)
२. वही (८८२–८८५)
३. वही (७०८–७१६)
४. वही (६९६, ६९७, ७१८)

रामायणमञ्जरी में कैकेयी के स्नेहासिक्त, वात्सल्यमयी माँ का स्वरूप भी दर्शनीय है। जिसके लिए सम्पूर्ण लोक में उन्हें दोषभाजन बनना पड़ा, अपार अपयश सहना पड़ा, उस निज पुत्र के प्रति उनके अपरिमित स्नेह के विषय में कहना ही क्या है? भरत से भी अधिक वे राम को प्यार करती हैं। कैकेयी के भाग्य को धिक्कारते हुए तथा राम के विपक्ष में बोलते हुए मन्थरा जब कैकेयी को बताती हैं कि सुबह राम का राज्याभिषेक होने वाला है तो इस सुखद समाचार से हर्ष विह्वल कैकेयी ने मन्थरा को अपना स्वर्णाभूषण पुरस्कार स्वरूप दे दिया। हर्षातिरेक में कैकेयी कहती हैं, "बड़े सौभाग्य की बात है कि जिस गुणशाली पुत्र राम को मैं कई प्रकार से भरत से अधिक मानती हूँ, उसका अभिषेक होने वाला है[1]—

मन्थराया वचः श्रुत्वा कैकेयी हर्षनिर्भरा।
उवाच हेमाभरणं दत्त्वास्यै पारितोषकम् ॥

दिष्ट्याभिषेको रामस्य श्रूयते गुणशालिनः।
स मे बहुमतः पुत्रो मन्थरे भरताधिकः ॥

राम के प्रति कैकेयी के स्नेह का यह कितना सुन्दर, सुस्पष्ट एवं अनुपम उदाहरण है। यही नहीं, मन्थरा का तात्पर्य तो कुछ और ही था किन्तु कैकेयी को इस प्रकार हर्षविह्वल देखकर तथा राम के प्रति उनके इन स्नेहासिक्त वचनों को सुनकर मन्थरा क्रोध एवं कष्ट से कांपते हुए आभूषणों को दूर फेंक दिया। पुनः राम के विरुद्ध बहुत सी बातें बोलना प्रारम्भ किया। मन्थरा की इन बातों को सुनकर भी कैकेयी राम के गुणों की ही बार-बार प्रशंसा करती रही[2]—

वक्रं श्रुत्वेति कुब्जाया वचनं हृदयोपमम्।
चक्रे रामस्य कैकेयी गुणश्लाघ्यां पुनः पुनः ॥

इन थोड़ी सी पंक्तियों से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि कैकेयी को राम कितने प्रिय थे तथा उन्हें राम के राज्याभिषेक में कितनी सुखानुभूति एवं प्रसन्नता थी। तथापि मंथरा के बहकावे में आकर उन्हें राम को अरण्यवास देना पड़ा। यह अस्वाभाविक एवं परम अमङ्गलमय, दुःखद घटना कैसे घट गयी? जो कैकेयी देवासुर संग्राम में अपने पति के प्राणों की रक्षा करके उनकी प्राणप्रिया बनी थी, जो अपने पवित्र रघुवंश की मर्यादा का ध्यान ही नहीं रखती थी अपितु राम को भरत से अधिक प्यार भी करती थी, जो अत्यन्त शीलवती, साध्वी नारी थी, जिसने राम के राज्याभिषेक से मुदित होकर मन्थरा को बहुमूल्य

---

१. रा॰ मं॰, अयो॰ कां॰ (६८१, ६८२)
२. वही (६८०)

आभूषण प्रदान किया, मन्थरा की विपरीत बातें सुनने पर भी राम के गुणों की ही प्रसंशा करती रही, उसके द्वारा ऐसा अनर्थकारी कार्य हो गया, जिससे वे सदा के लिए दुष्टा, पापिनी एवं कलङ्किनी कहलायी। राम के प्रति भरत की अद्भुत, आदर्श प्रीति एवं भक्ति से परिचित होकर भी उन्होंने भरत के लिए राज्य एवं राम के लिए अरण्यवास का वरदान कैसे माँगा ? अन्य रामकथा सम्बन्धी ग्रंथो में इसके कई कारण दिए गये हैं, परन्तु रामायणमञ्जरी में एक ब्राह्मण शाप का उल्लेख मिलता है—बचपन में किसी समय कैकेयी ने किसी ब्राह्मण को मूर्ख कहकर अपमानित किया था तथा उसी के शाप से ही कैकेयी को यह अपयश प्राप्त हुआ[1]—

कैकेय्या ब्राह्मणः पूर्वं मूर्खो बाल्ये विडम्बितः।
तच्छापादभवत्तस्या मतिः कीर्तिपराङमुखी ॥

अतः कैकेयी ने उपर्युक्त ब्राह्मण शाप के कारण ही यह अनिष्ट कार्य किया जिससे उसे सदा के लिए अपयशभाजन बनाना पड़ा। यद्यपि रामायणमञ्जरी के लगभग सभी पात्रों ने कैकेयी के इस कार्य की घोर निन्दा की है, किंवा कुलटा, कलङ्किनी, पापिनी, कठोरहृदये आदि से भी सम्बोधित किया किन्तु राम ने उनके लिए कहीं भी निन्दापरक शब्द नहीं प्रयुक्त किए। लक्ष्मण के क्रोधित होने पर उन्हें समझाते हुए राम कहते हैं कि इसमें कैकेयी का कोई दोष नहीं है अपितु इसे दैव ही जानता है। अतः व्यर्थ में क्रोध करना उचित नहीं है[2]—

मनोरथाप्तिः कैकेय्या यथा नृणां तथा पितुः।
भवत्येव वनं याते मयि पुण्योदयात्परम् ॥
दैवमेव विजानीहि प्रवासे मम कारणम्।
न हि पौरुषमत्रास्ति किं वृथा कोपसंभ्रमैः ॥

इसी प्रकार वन जाते हुए भरत ने जब भरद्वाज मुनि से सभी माताओं का परिचय देते हुए कैकेयी के विषय में कहा कि, यह मेरी जनापवाद जननी कैकेयी हैं जिन्होंने मुझे इस शोक सागर में डाल दिया है।[3] भरत के ऐसा कहने पर भरद्वाज मुनि भी कैकेयी का दोष निवारण करते हुए कहते हैं—इसका कारण दैव ही है अतः कैकेयी को इस प्रकार मत कहिए[4]—कारणं दैवमेवात्र न कैकेयीत्यभाषत।

---

१. रामा० मं०, अयो० कां० (७०३)

२. वही (८४८—८५४)

३. रामा० मं०, अ० प० (१११)

४. वही (११२)

इस प्रकार कैकेयी को लांछित करना अत्युचित नहीं प्रतीत होता है। तथापि कैकेयी के वरदान तथा निष्ठुर भाषण आदि जो कुछ भी कार्य हैं उसमें उनका कोई दोष नहीं अपितु दैव ही दोषी माना जा सकता है। वह तो अत्यन्त शीलवती, साध्वी, पति-परायणा एवं पुत्र राम के प्रति अप्रतिम स्नेह रखने वाली थी।

रामायणमञ्जरी के गौण नारी पात्र

शबरी

रामायणमञ्जरी में शबरी का चरित्रांकन अत्यन्त तपोनिष्ठा श्रमिणी के रूप में किया गया है। उसके दिव्य तपस्विनी रूप की चर्चा स्वयं राम ने भी अपने मुखारविन्द से किया है।[1] उसके तपोनिष्ठ स्वरूप में उसकी अनुपम गुरुभक्ति का भी दर्शन होता है। जिसका ज्वलन्त प्रमाण राम के समक्ष अपने गुरु मतङ्ग ऋषि के विषय में कही गयी उसकी उक्तियाँ हैं।[2] शबरी राम की अनन्य भक्ता भी है। राम के दर्शन से ही अपने जीवन को धन्य मान लेती है तथा उनके प्रसाद से वह दिव्य धाम को चली जाती है।[3] इस प्रकार शबरी को सात्त्विक गुणों की प्रतीक स्वरूपा कहा जा सकता है।

मन्थरा

रामायणमञ्जरी में मन्थरा का चरित्राङ्कन कवि ने कुलटा नारी के रूप में किया है जिसमें स्वाभाविकता एवं मनोवैज्ञानिकता का स्पष्ट दर्शन होता है। बचपन मे राम ने उसके ऊपर पादप्रहार किया था इसलिए अवसर मिलने पर वह अपने अपमान का बदला चुकाने के लिए तत्पर हो जाती है।[4] इसके लिए वह कैकेयी को प्रेरित करके उनके पुत्र भरत को राज्य तथा राम को वनवास दिलाने का प्रयत्न करती है।[5] एक दासी के रूप में वह कैकेयी का हितचिन्तन करती है तथा व्यक्तिगत स्तर पर अपने अपमान का बदला लेती है। किन्तु इन दोनों के बीच उसकी नार्योचित दुर्बलता का ही समावेश है। उसके चरित्र के इसी घृणित एवं गर्हित पक्ष ने शत्रुघ्न को भी उसको पीटने; बाल पकड़कर खींचने तथा घसीटने के लिए विवश कर दिया।[6] उपर्युक्त सन्दर्भों से मन्थरा को राजसी गुणों की प्रतीक स्वरूपा माना जा सकता है।

---

१. रामा० मं०, अ० प० (११०२–११०९)
२. वही (१११३–१११६)
३. वही (१११७, १११८)
४. रामा० मं०, अयो० कां० (६६६, ६६७, ६६८)
५. वही (६७०–७०७)
६. रामा० मं०, अ० प० (४७, ४८, ४९)

शूर्पणखा

रामायणमञ्जरी में शूर्पणखा की कामासक्ति का यथार्थ रूपेण चित्रण हुआ है ।[1] कामुक उच्छृङ्खलता के अतिरिक्त उसके चरित्र में निहित उसका नीतिज्ञा रूप भी अवलोकनीय है जिसमें प्रत्येक प्रकार के आदर्श वर्णित हैं । वह भेदनीति के द्वारा रावण को युद्ध के लिए उद्वेलित भी करती है ।[2] राजनीति के तथ्यों को भी भली भाँति जानती है । शूर्पनखा के सम्पूर्ण चरित्र स्थलों के आधार पर उसका तामसी रूप में मूल्यांकन किया जा सकता है ।

मन्दोदरी

रामायणमञ्जरी में मन्दोदरी के चरित्र का विकास नहीं दिखाई पड़ता । एक स्थल पर ही उसका उल्लेख हुआ है । रावण की मृत्यु के बाद अन्तःपुर की अन्य रानियों के साथ उसका करुण विलाप सुनाई पड़ता है जिससे उसके पति प्रेम का परिचय मिलता है ।[3] इस स्थल के अतिरिक्त सम्पूर्ण रामायणमञ्जरी में मन्दोदरी के चरित्राकन के लिए कोई भी स्थल नहीं है ।

उपर्युक्त नारी पात्रों के अतिरिक्त 'त्रिजटा'[4] तथा 'सरमा'[5] का भी उल्लेख मिलता है । जो प्रमुख रूप से सीता की सहायिका सिद्ध होती हैं । ये दोनों राक्षसी होते हुए भी राम और सीता के प्रति अनन्य भक्ति रखने वाली हैं । लङ्का में सीता के प्रति अनन्य भक्ति रखने वाली हैं । लङ्का में सीता की सुरक्षा एवं सहायता में सतत् संलग्न हैं । इस रूप में दोनो की विनय, नीतिमत्ता एवं बुद्धिमत्ता श्लाघनीय है ।

चतुर्थ अध्याय समाप्त

---

१. रामा० मं०, अ० प० (५३१–५३६)
२. वही (६१५–६५३)
३. रामा० मं०, अन्तःपुरप्रलापः (१–२१)
४. रामा० मं० सु० कां० (२८१–२८७)
५. रामा० मं०, यु० कां० (३५४–३६५)

अध्याय ५

काव्यशास्त्रीय विवेचन

रस

स्वादुपाकेऽप्यनास्वाद्यं भोज्यं निर्लवणं यथा।
तथैव नीरसं काव्यं स्यान्नो रसिकतुष्टये ॥[1]

नीरस काव्य उसी प्रकार रसिकों के लिए तुष्टिप्रद नहीं होता जैसे लवण रहित सुस्वादुपाक। इसीलिए रीति, गुण, अलङ्कार प्रभृति सभी साधन, रस के अनुचर बताए गये हैं। यदि शरीर में आत्मा नहीं है तो स्वयं शरीर या उसके विविध भूषण कुछ भी नहीं हैं। इसी तथ्य के आधार पर आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा कहा है।[2] आचार्य विश्वनाथ तो रसात्मक वाक्य को ही काव्य मानते हैं।[3] इससे स्पष्ट होता है कि सुकवियों के व्यापार के मुख्य विषय रसादि हैं। उनके निबन्धन में उन सत्कवियों को सदैव प्रमादरहित (जागरूक) रहना चाहिए क्योंकि कवि का जो नीरस काव्य है, वह उसके लिए महान अपशब्द है[4]—

मुख्या व्यापारविषयाः सुकवीनां रसादयः।
X X X
नीरस्तु प्रबन्धो यः सोऽपशब्दो महान कवेः ॥

मनुष्य में वासना रूप से वर्तमान रति, हास शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय एवं निर्वेद आदि भाव, रस प्रकरण की शास्त्रीय भाषा में स्थायिभाव कहे जाते हैं। इनमें से किसी भाव को चर्वणा या आस्वाद की दशा में परिणत करने के लिए तादृश विभावों, अनुभावों एवं संचारी भावों का कवि संयोजन करता है कारणभूत नायक, नायिकाएँ या प्रतिनायकादि पात्र तथा उद्दीपन के लिए अनुकूल वातावरणादि विभाव कहे जाते हैं। कार्यभूत भावोद्बोध का अनुभव कराने वाली वाणी या अंगों की सात्विकादि

---

१. रसप्रदीप, पृ० २६
२. का० मी०, पृ० ६
३. सा० द०, १।३
४. ध्व० लो०, ३।१६

चेष्टाएँ अनुभाव कहलाती हैं। रह-रह कर मन में आने वाले मन के आवेग, निर्वेद, दैन्य प्रभृत्ति भाव सहकारी होने से व्यभिचारिभाव कहलाते हैं। इन सब के संयोग के साथ ही साथ अनिर्वचनीय रस चर्वणा होती है।

रस निष्पत्ति का सर्वप्रथम उल्लेख भरतमुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में किया है। वही सारे रस सिद्धान्त की आधारभित्ति है[1]—

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः ।

इसका आशय यह है कि विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से परिपुष्ट रत्यादि स्थायिभाव आस्वादापन्न होकर रस कहलाते हैं। यह भरत का मूल सूत्र सीधा सा जान पड़ता है परन्तु वह बड़ा विवादग्रस्त है। अनेक आचार्यों ने अनेक प्रकार से इसकी व्याख्या की है। अभिनवगुप्त ने भरत नाट्यशास्त्र की 'अभिनवभारती' नामक अपनी व्याख्या में रसोत्पत्ति के विषय में बहुत अधिक विस्तार के साथ विचार किया है। उसमें उन्होंने भट्टलोल्लट-उत्पत्तिवाद, शंकुक-अनुमितिवाद तथा भट्टनायक के भुक्तिवाद पर विचार करने के बाद अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उनके सारे विवेचन का केन्द्र विन्दु सामाजिक की रसानुभूति रही है। इसी कसौटी पर उन्होंने दूसरे मतों के विन्यास के पौर्वापर्य का निर्धारण भी उसी कसौटी पर किया है। जिस प्रकार भट्टलोल्लट ने उत्तरमीमांसा के, श्री शंकुक ने न्याय के और भट्टनायक ने सांख्य के आधार पर अपने मतों की स्थापना की है, उसी प्रकार अभिनवगुप्त ने अपने पूर्ववर्ती अलङ्कार शास्त्र के प्रमुख ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन के आधार पर अपने अभिव्यक्तिवाद का प्रतिपादन किया है। अभिनवगुप्त ने भट्टलोल्लट, शंकुक तथा भट्टनायक के सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए बताया कि भट्टलोल्लट के मत में सामाजिक के रसानुभूति की कोई चर्चा नहीं है, इसलिए खण्डन करने योग्य तथा अनुपादेयता की दृष्टि से उसको सबसे पहले रखा। शंकुक के मत में यद्यपि सामाजिक के साथ रस का सम्बन्ध तो स्थापित किया गया है परन्तु अनुमिति रूप होने से वह साक्षात्कारात्मक नहीं है इसलिए वह अधिक उपादेय नहीं है। भट्टनायक के तीसरे मत में रसानुभूति को सामाजिक के साक्षात्कारात्मक अनुभव के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, इसलिए वह शेष दोनों मतों से अधिक उपादेय है। परन्तु भट्टनायक के मत में जो भावकत्व और भोजकत्व दो नये व्यापार माने गये हैं, उन्हें अभिनवगुप्त अनावश्यक और अप्रमाणिक मानते हैं। वे काव्य से व्यञ्जना व्यापार द्वारा गुण अलङ्कार आदि के औचित्य रूप इति कर्तव्यता से रस को सिद्ध करते हैं। यहाँ साधक काव्य है, साध्य रस। साधन व्यञ्जना व्यापार है और इति कर्तव्यता रूप में गुणालङ्कारादि औचित्य का अन्वय होता है। इस प्रकार भावकत्व और

1. ना० शा०, अध्याय ६

भोजकत्व दोनों को व्यञ्जना रूप मानकर उस व्यञ्जना से सामाजिक में रस की अभिव्यक्ति मानते हैं। अतः उनका मत अभिव्यक्तिवाद है।

आचार्य भरत के पूर्वोक्त नाट्य सूत्र के आधार पर धनञ्जय ने दशरूपक (४।१) में, आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण (३।१) में तथा मम्मट ने काव्यप्रकाश (४।२७-२८) में रस निष्पत्ति तथा उसके कारण, कार्य एवं सहकारी भावादि का वर्णन किया है। सम्प्रति विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी एवं स्थायिभाव का विवेचन तथा इनके द्वारा रस निष्पत्ति की प्रक्रिया आदि का सम्पूर्ण विवरण रामायणमञ्जरी के सन्दर्भ में सोदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

स्थायिभाव—स्थायिभाव मन के भीतर स्थिर रूप से रहने वाला प्रसुप्त संस्कार है जो अनुकूल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्‌बोधक सामग्री को प्राप्त कर अभिव्यक्त हो उठता है तथा हृदय में एक अपूर्व आनन्द का संचार करता है। इस स्थायिभाव की अभिव्यक्ति ही रसास्वादजनक या रस्यमान होने से रस शब्द से बोध्य होती है। इसीलिए—**'व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायिभावो रसः स्मृतः'**[1] कहा गया है। व्यवहारदशा में मनुष्य को जिस प्रकार की अनुभूति होती है उसको ध्यान में रखकर प्रायः आठ प्रकार के स्थायिभाव साहित्यशास्त्र में माने गये हैं। काव्यप्रकाशकार ने रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा तथा विस्मय आदि आठ[2] स्थायिभावों को स्वीकार किया है—

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहो भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः॥

इसके अतिरिक्त निर्वेद को भी नौवाँ स्थायिभाव माना है[3]—

निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः॥

रामायणमञ्जरी में अरण्यपर्व के अन्तर्गत शृङ्गार के विप्रलम्भ पक्ष में—सीता के वियोग में दुःखी राम की विरहावस्था में 'रति' स्थायिभाव दर्शनीय है। पत्नी के वियोग में दुःखी राम की कान्ति पीली पड़ गयी है, ध्यान निश्चल हो गया है तथा रात्रि चन्द्रमाविहीन प्रतीत हो रही है। दिन में उत्फुल्ल नेत्र तथा रात्रि में निशा का साथ देते हुए, पत्नी के ध्यान में निश्चल, राम को सीता का वियोग असह्य सा हो गया।[4] यहाँ उद्दीपन रूप-सीता का ध्यान तथा वातावरणादि, राम के मन में 'रति' स्थायिभाव को उद्‌बुद्ध करता है।

---

१. का० प्र०, ४।२८
२. का० प्र०, ४।४५
३. का० प्र०, ४।४७
४. रामा० मं०, अ० प० (७३५, ३६)

विभाव—इन स्थायिभावों को उद्‌बुद्ध करने वाली सामग्री मुख्यतः दो प्रकार की होती है—एक आलम्बन और दूसरा उद्दीपन। नायक और नायिकादि के आलम्बन से स्थायिभाव उद्‌बुद्ध होते हैं, यथा—रामायणमञ्जरी के पूर्वोक्त उदाहरण में सीता विषयक ध्यान से राम के मन में रति उत्पन्न होती है तथा उन श्लोकों के श्रवण एवं अध्ययन से सामाजिक के मन में रस की उत्पत्ति होती है। आलम्बन से तात्पर्य है जिसे आलम्बन करके या विषय बनाकर रस की उत्पत्ति होती है। यहाँ पर सीता आलम्बन हैं। अरण्य पर्व का तत्कालीन वातावरणादि उद्दीपक होने से उद्दीपन सामग्री में आते हैं। आलङ्कारिकों ने इस द्विविध उद्‌बोधक सामग्री को 'विभाव' नाम से निर्दिष्ट किया है।[1]

अनुभाव—मन के भीतर स्थायी रूप से विद्यमान रत्यादि वासनाओं या स्थायिभावों का इस आलम्बन तथा उद्दीपन विभावों से उद्‌बोधन होता है। इस प्रकार जब इस सामग्री से स्थायिभाव उद्‌बुद्ध हो जाते हैं तो उनका प्रभाव बाहर दिखाई देने लगता है। मनोगत उद्‌बुद्ध वासना के अनुसार ही मनुष्य की चेष्टा आकार भङ्गी आदि में भेद हो जाता है। इसी को आलङ्कारिक लोग अनुभाव कहते हैं। विभाव तो स्थायिभाव के उद्‌बोध के कारण हैं और अनुभाव उनके कार्य हैं। इसीलिए इनको 'अनु पश्चात् भवन्तीति अनुभावाः' अनुभाव कहते हैं। ये अनुभाव प्रत्येक स्थायिभाव के अनुसार अलग-अलग होते हैं। युद्धकाण्ड के अन्तर्गत पुत्र इन्द्रजित के वध का समाचार सुनकर रावण न कुछ सुना और न कुछ देखा, कटे हुए सिर की भाँति गिर पड़ा। शोक के कारण उसकी इन्द्रियाँ शीघ्र ही निश्चेष्ट एवं संज्ञाशून्य हो गयी। शोक तथा क्रोध से संतप्त गर्म उच्छ्‌वासों से युक्त रावण विलाप करने लगा—हे पुत्र! इस विषम परिस्थिति में मुझे छोड़कर तुम क्यों चले गये।[2] यहाँ आलम्बन—इन्द्रजित, उद्दीपन—उसका वध, अनुभाव—रावण का संज्ञाशून्य होना, इन्द्रियों का निश्चेष्ट होना, गर्म उच्छ्‌वासों का लेना तथा विलाप करना आदि, स्थायिभाव शोक।

सात्त्विक भाव—भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत बताया है कि सत्त्व मन से उत्पन्न होने वाली यह एक विशिष्ट अवस्था है। वह मन के एकाग्र होने पर उत्पन्न होता है। इस मन का सत्त्व यही है कि खिन्न एवं अत्यन्त प्रसन्न मन के कारण सहृदय के द्वारा अश्रु तथा रोमाञ्च आदि निकाले जाते हैं। उस सत्त्व से उत्पन्न होने के कारण वे भाव सात्त्विक कहलाते हैं तथा उनसे उत्पन्न होने के कारण अश्रु आदि भी भाव कहे जाते हैं।

---

१. सा० द०, ३।२८, ३१

२. रामा० मं०, यु० का० (११६१–११६३)

दूसरी ओर अश्रु आदि दुःखादि भावों के सूचक विकार कार्य होने के कारण अनुभाव भी कहे जाते हैं। इस तरह इन अश्रु आदि भावों की द्विरूपता है अर्थात ये सात्त्विक भाव तथा अनुभाव दोनों कहे जाते हैं। सात्त्विक भावों की संख्या ८ है। अनुभावों में इन आठ सात्त्विक भावों के प्रधान होने के कारण अलग से गिनाया गया है—स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय आदि[1]

स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथवेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टो सात्त्विकाः स्मृताः॥

रामायणमञ्जरी में उपर्युक्त सात्त्विक भाव एक ही स्थल पर सुलभ नहीं हैं अपितु प्रसङ्गानुसार विभिन्न स्थलों पर इनके उदाहरण उपलब्ध हैं। यथा—अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत कैकेयी द्वारा वर माँगने पर वज्राहत राजा दशरथ की अवस्था विशेष में और पुनः उनके पुत्रवियोग की दशा में इन सात्त्विक भावों का संक्षिप्त परिचय मिलता है।[2]

व्यभिचारिभाव—स्थायिभाव के ठीक विपरीत व्यभिचारिभाव कहलाता है। उसको सञ्चारिभाव भी कहते हैं। स्थायिभाव का स्थायित्व ही उसकी विशेषता है तथा व्यभिचारिभाव का अस्थायित्व उसकी विशेषता है। व्यभिचारिभाव रसों में नाना रूप से विचरण करते हैं तथा रसों को पुष्टकर आस्वादन के योग्य बनाते हैं। इन व्यभिचारिभावों की संख्या ३३ मानी गयी है। निर्वेद, ग्लानि, शङ्का, श्रम, धृति, जड़ता, हर्ष, दैन्य, उग्रता, चिन्ता, त्रास, ईर्ष्या, अमर्ष, गर्व, स्मृति, मरण, मद, सुप्त, निद्रा, विबोध, व्रीड़ा, अपस्मार, मोह, मति, आलस्य, आवेग, वितर्क, अवहित्था, व्याधि, उन्माद, विषाद, औत्सुक्य तथा चपलता आदि।[3]

निर्वेदग्लानिशङ्काश्रमधतिजडताहर्षदैन्योग्र्यचिन्ता—
स्त्रासेर्ष्यामर्षगर्वाः स्मृतिमरणमदाः सुप्तनिद्राविबोधाः।
व्रीडापस्मारमोहाः समतिरलसता वेगतर्कावहित्था,
व्याधुन्मादौ विषादोत्सुकचपलयुतास्त्रिंशदेते त्रयश्च॥

सम्प्रति रामायणमञ्जरी के अन्तर्गत उपर्युक्त ३३ व्यभिचारिभावों की सोदाहरण पुष्टि करने का प्रयास किया जा रहा हैं।

---

१. सा० द०, ३।१३५

२. रामा० मं०, अयो० कां० (७२६, ८२७, ८१८)

३. दशरूपक, ४।८

१—निर्वेद—तत्व ज्ञान, आपत्ति तथा ईर्ष्या आदि के कारण अपना तिरस्कार करना ही निर्वेद है । इसमें चिन्ता, अश्रु, निःश्वास, वैवर्ण्य, उच्छ्वास तथा दीनता लक्षित होती है ।[3]

अरण्यपर्व के अन्तर्गत भरत के व्रतग्रहण के सन्दर्भ में निर्वेद नामक व्यभिचारि-भाव दर्शनीय है । राम वनवास, पिता की मृत्यु तथा माता कौशल्यादि के कष्ट से पीड़ित होकर, भरत वल्कल वस्त्र धारण कर, राम की पादुका सिंहासन पर रखकर, नन्दिग्राम में निवास करते हुए मन्त्रियों तथा गुरुओं की सहायता से राज्य सञ्चालन करने लगे ।[2] इस स्थल पर भरत, पिता की मृत्यु तथा राम वनवासादि आपत्तियों से निर्वेद भाव को प्राप्त होते हैं, जिसके फलस्वरूप वल्कलादि धारण करने से उनकी दीनता लक्षित होती है ।

२—ग्लानि—रमण क्रिया की थकान, प्यास तथा भूख के कारण होने वाली शक्तिहीनता ही ग्लानि है ।।इसमें रंग फीका पड़ना, कम्पन, अनुत्साह, शरीर, वचन और क्रिया की शिथिलता आदि अनुभाव पाये जाते हैं ।[3]

सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत रात्रि के समय हनुमान जब रावण के अन्तःपुर में पहुँचते हैं तो वहाँ की सभी स्त्रियाँ रमण क्रिया की थकान के कारण चित्रलिखित सी गाढ़निद्रा में सो रही थी । उनके शरीर, जङ्घा, जघनस्थल एवं यौवन को देखकर हनुमान आश्चर्य-चकित हो गए । उनके स्तन, अधर तथा मुख रमणक्रिया के समय पति के नखों द्वारा क्षत हो गये थे । पति के द्वारा बलात् खींची हुई वेणी विखर गयी थी । रति से खिन्न उनका उत्तरीय अधोवस्त्र हट गया था, मोतियों के हार टूट कर विखरे हुए थे तथा शरीर पर पसीने की बूँदे शोभायमान हो रही थी ।[4] यहाँ रावण के अन्तःपुर की स्त्रियों में रमण क्रिया की थकान से होने वाली शक्तिहीनता, ग्लानि व्यभिचारिभाव को सूचित करती है ।

इसी प्रकार उत्तरकाण्ड के 'श्वेतोपाख्यान' सन्दर्भ में राजा श्वेत का भूख तथा प्यास के कारण उद्विग्न होकर ब्रह्मा के आदेशानुसार अपने शरीर के भक्षण करने में भी उनका ग्लानि भाव ही सूचित होता है ।[5]

---

१. दशरूपक, ४।९

२. रामा० मं०, अ० ५० (३२०–३२३)

३. दशरूपक, ४।१०

४. रामा० मं०, सु० कां० (६४–७०)

५. रामा० मं०, उ० कां० (१०७२–१०७५)

३—शङ्का—दूसरे की क्रूरता अथवा अपनी दुर्नीति के कारण होने वाली अनर्थ की आशङ्का ही शङ्का कहलाती है। इसमें शरीर का कम्पन या सूखना, इधर-उधर देखना, रङ्ग एवं स्वर का परिवर्तन आदि अनुभाव पाये जाते हैं।[1]

अरण्यपर्व के अन्तर्गत भरत की सेना को दूर से ही देखकर लक्ष्मण राम से कहते हैं—यह शस्त्रादि से सुसज्जित, सम्पूर्ण वन में फैली हुई सेना निश्चय ही भरत का आगमन सूचित कर रही है, क्योंकि राज्य वैभव से मत्त यह उन्ही के रथ का ध्वज दिखाई पड़ रहा है। यह कैकेयी पुत्र हमें राज्य से निर्वासित करके, अब अपने कण्टक के उन्मूलन हेतु हमसे युद्धार्थ आ रहा है।[2] यहाँ भरत की सेना को आते देखकर लक्ष्मण उसकी क्रूरता के कारण होने वाले अनर्थ (युद्धादि) की आशङ्का करने लगते हैं जिसमें लक्ष्मण का शङ्का व्यभिचारिभाव लक्षित होता है।

इसी प्रकार किष्किन्धापर्व के प्रारम्भ में पर्वतशिखर पर बैठे हुए सुग्रीव राम और लक्ष्मण को देखकर आशङ्का व्यक्त करते हैं कि निश्चय ही ये दोनों वीर बालि द्वारा मेरे वध के लिए भेजे गए है। छिद्रान्वेषी बालि सब प्रकार से हमें निश्चिन्त नहीं रहने देना चाहता, क्योंकि राज्य का पालन करने में राजा की नीति बहुत ही कर्कश एवं कुटिल होती है। इसलिए हे हनुमान ! तुम जाकर इनके विषय में पता लगाओ।[3] यहाँ बालि की दुर्नीति के कारण होने वाले अनर्थ (निजवध) की आशङ्का में भी सुग्रीव का शङ्का व्यभिचारिभाव दर्शनीय है।

४—श्रम—मार्ग में चलने तथा रति आदि के कारण होने वाली थकान को श्रम कहते हैं। इसमें पसीना आना तथा अङ्गों का मलना आदि अनुभाव पाये जाते है।[4]

सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत रावण के अन्तःपुर की रमणियों का रति की थकान के कारण अधोवस्त्र का असंयत हो जाना, मोतियों के हार का टूट कर बिखर जाना, अधर, मुख तथा स्तनों पर नखक्षत, शरीर पर पसीने की बूँदें तथा गाढानिद्रा में शयन आदि से श्रम व्यभिचारिभाव सूचित होता है।[5]

५—धृति—ज्ञान और शक्ति के कारण होने वाला सन्तोष ही धृति है। वह व्यग्रतारहित भोग कराने वाली है।[6]

---

१. दशरूपक, ४।११
२. रामा० मं०, अ० प० (१५८–१६१)
३. रामा० म०, कि० कि० प० (१–५)
४. दशरूपक, ४।१२
५. रामा० मं०, सु० कां० (६८)
६. दशरूपक, ४।१२

बालकाण्ड के प्रारम्भ में दशरथ के राज्य वैभव एवं शक्ति के वर्णन में धृति व्यभिचारिभाव दर्शनीय है।[1] इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत, रामादि पुत्रों के विवाहोपरान्त, योग्य मन्त्रियों, गुरु एवं राज्य वैभव से सम्पन्न, अप्रतिहत शक्ति वाले महाराज दशरथ के द्वारा अपने योग्य पुत्र राम के राज्याभिषेक की इच्छा में उनका धृति व्यभिचारिभाव ही दिखाई पड़ता है।[2]

६—**जड़ता**—प्रिय अथवा अप्रिय के दर्शन या श्रवण से कर्तव्य एवं अकर्तव्य का ज्ञान न रहना अर्थात् किंकर्तव्यविमूढ़ता ही जड़ता है। इसमें पलक बिना गिराए देखना तथा चुप हो जाना आदि अनुभाव पाये जाते हैं।[3]

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत कैकेयी द्वारा वर माँगने पर वज्राहत सिर वाले राजा दशरथ—यह क्या हुआ? ऐसा विचार करते हुए चक्र पर आरूढ़ की भाँति शीघ्र ही विनष्ट मूल वाले वृक्ष की तरह पृथ्वी तल पर मूर्छित होकर गिर पड़े।[4] यहाँ अप्रिय श्रवण से दशरथ की जड़ता दर्शनीय है।

इसी प्रकार युद्धकाण्ड के अन्तर्गत लक्ष्मण सहित राम को जीवित हुआ सुनकर—शीघ्र ही विवर्णवदन, बोलने में असमर्थ, कार्य के विचार करने में सन्देह के झूले पर आरूढ़ तथा टूटे हुए धैर्य वाला रावण आवेग और क्रोध को प्राप्त हो गया।[5] यहाँ राम लक्ष्मण के जीवित होने का अप्रिय समाचार सुनकर रावण थोड़ी देर के लिए जड़ता को प्राप्त हो गया था।

७—**हर्ष**—उत्सव आदि से होने वाली मन की प्रसन्नता ही हर्ष है। इसके अनुभाव हैं—आँसू आना, पसीना होना तथा वाणी में कम्पन आना।[6] इसी प्रकार प्रिय अथवा प्रिया के आगमन तथा पुत्रोत्पत्ति के उत्सव आदि विभावों से होने वाली चित्त की प्रसन्नता भी हर्ष है।

रामायणमञ्जरी (भरतानन्दः) के प्रसङ्ग में भरत को जब हनुमान से राम के अयोध्यागमन की सूचना मिलती है तो वे हर्षविह्वल हो जाते हैं। उनकी आँखों से आनन्दाश्रु टपकने लगे। वन की तपस्या पूर्ण करके आते हुए भ्रातृ मिलन के लिए उत्पन्न

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (३२–४४)

२. रामा० मं०, अयो० कां० (६५३–६५५)

३. दशरूपक, ४।१३

४. रामा० मं०, अयो० कां० (७२६, ७२७)

५. रामा० मं०, यु० कां० (५६८, ५७०)

६. दशरूपक, ४।१४

नवीन हर्ष से भरत निस्पन्द हो गए, उनकी वाणी निरुद्ध हो गयी। यहाँ प्रिय भाई राम के आगमन के समाचार से भरत में उत्पन्न हर्ष व्यभिचारिभाव दर्शनीय है।[1]

८—**दैन्य**—दरिद्रता आदि के कारण निस्तेज होना ही दैन्य है। इसमें शरीर का मुर्झा जाना तथा अस्वच्छता आदि अनुभाव पाये जाते हैं। अर्थात् दरिद्रता तथा तिरस्कार आदि विभावों से चित्त में तेजस्विता का अभाव हो जाना ही दैन्य है। इसमें शरीर का काला पड़ जाना, वस्त्रों तथा दाँतों की मलिनता आदि अनुभाव पाये जाते हैं।[2]

सुन्दरकाण्ड में सीता अपनी दैन्यावस्था का वर्णन करते हुए कहती हैं—राम की प्रिय रानी मुझको, मैले अङ्गों वाली, भूमि पर शयन करने वाली, दीन और राक्षसों द्वारा सताई जाती हुई देख लीजिए।[3] यहाँ तिरस्कार के कारण सीता में तेजस्विता का अभाव तथा शरीर की मलिनता आदि से उनका दैन्य भाव सूचित होता है।

९—**उग्रता**—अपराध, दुर्मुखता अर्थात् अनुचित एवं अप्रिय बात बोलना तथा क्रूरता आदि के कारण दुष्ट के ऊपर अत्यन्त क्रोध करना ही उग्रता है। उसमें पसीना आना, सिर को हिलाना, धमकाना तथा पीटना आदि अनुभाव पाये जाते हैं।[4]

अरण्य पर्व के अन्तर्गत दुर्मुखता तथा क्रूरता के कारण दुष्ट रावण के प्रति क्रोधित सीता का उग्रभाव दर्शनीय है। रावण की वाणी सुनकर विलोलाक्षी, क्रोध से कम्पित तथा प्रज्वलित अग्निशिखा की भाँति सीता रावण से कहती हैं—तुम्हारा तथा राक्षसों का विनाश सर्वथा उपस्थित हो गया है। संसार में ऐसे दुराचारियों का जीवित रहना धिक्कार है जिसके कारण निर्दोष सेवक भी विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। हे रावण! परस्त्री के विषय में इच्छा रखना छोड़ दे। राम के दर्शन के विषय में क्यों नहीं सोचते जिनकी भुजाओं से छोड़े गये बाण से शीघ्र ही तुम्हारे जैसे दुष्ट विनाश को प्राप्त हो जाएँगे। राम द्वारा छोड़े गये बाण से तुम्हें माँ के उदर में भी स्थान नहीं मिलेगा।[5]

इसी प्रकार सुन्दरकाण्ड में भी दुर्मुख एवं क्रूर रावण के प्रति सीता के क्रोध में उनका उग्र भाव दिखाई पड़ता है। क्रोध से सन्तप्त, मृत्यु की इच्छा करती हुई तथा राक्षसों के द्वारा देख लिए जाने के कारण दूषित शरीर को छिपाती हुई सीता निर्भय होकर बोली—हे पापी। इस प्रकार प्रलाप करने वाली तेरी जिह्वा फट क्यों नहीं जाती?

---

१. रामा० मं०, भरतानन्दः (१६४, १६५)
२. दशरूपक, ४।१४
३. रामा० मं०, सु० कां० (२६४)
४. दशरूपक, ४।१५
५. रामा० मं०, अ० प० (८२४–८३०)

दूसरों की पत्नी को चुराने वाले तेरे प्राणों को दण्ड मिलना उचित है। सेना, राष्ट्र, धन, दुर्ग, मित्रों तथा श्रेष्ठ मन्त्रियों पर झूठा विश्वास मत करो। राम के क्रोध की अग्नि असह्य है।[1]

१०—चिन्ता—अभीष्ट की प्राप्ति न होने के कारण उसका ध्यान करना ही चिन्ता है। शून्यता (बुद्धि तथा इन्द्रियों की जड़ता), श्वास का बढ़ जाना तथा ताप आदि अनुभावों को यह करने वाली है।[2]

सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत हनुमान लङ्का में विभिन्न स्थलों तथा रावण के अन्तःपुर में सीता को खोजने के उपरान्त, पता न लगने से निष्फल परिश्रम वाले वे दुःखी एवं चिन्तित हो विचार करने लगे। राजभवन, गृहोद्यान एवं सम्पूर्ण लङ्कापुरी में सीता को खोजने के बाद मेरी बुद्धि मूढ़ता को प्राप्त हो गयी है। यह मेरी उद्योग शक्ति दुष्टों की सेवा की भाँति असफलता को प्राप्त हो रही है। फल की प्राप्ति तथा असफल परिश्रम के विषय में उतना कष्ट अब नहीं हो रहा है जितना कि स्पष्ट रूप से उत्साह से विमुख होना।[3] इस स्थल पर सीता को खोजने में असफल हनुमान का चिन्ता भाव बढ़ जाता है तथा बुद्धि शून्यता को प्राप्त होने लगती है।

११—त्रास—(बादलों के) गर्जन आदि से उत्पन्न होने वाला मन का क्षोभ ही त्रास कहलाता है।[4]

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत राम द्वारा धनुर्भङ्ग करने पर धनुष्टंकार से स्वर्गोद्यान में नाचते हुए मयूरों का जैसे ताण्डव नृत्य प्रारम्भ हो गया। उस घोर निर्घोष से सागर विक्षुब्ध हो गया, पर्वत के टुकड़े खण्ड-खण्ड होकर गिरने लगे। धनुर्भङ्ग की ध्वनि भुवन-त्रय को चीरती हुई शक्राणी को कल्पान्त का भय दिखाने लगी। धनुष्टंकार से मन्दराचल में आवाज होने लगी, वसुधारूपी बहू के मेखलास्वरूप सातों समुद्र कम्पित हो गये।[5] यहाँ धनुर्भङ्ग की ध्वनि से त्रैलोक्य की समस्त वस्तुओं में उत्पन्न त्रास भाव दर्शनीय है।

इसी प्रकार अरण्यपर्व में रावण द्वारा सीताहरण के समय भी पर्वत, वन, नदियों तथा सभी चर-अचर में त्रास भाव देखा जा सकता है।[6]

---

१. रामा० मं०, सु० कां० (१५७–१६०)
२. दशरूपक, ४।१६
३. रामा० मं०, सु० कां० (६५–१०५)
४. दशरूपक, ४।१६
५. रामा० मं०, अयो० कां० (५०४–५०७)
६. रामा० मं०, अ० प० (८५१)

१२—असूया—दूसरे के उत्कर्ष को न सह सकना ही असूया है। यह (असूया) गर्व, दुर्जनता तथा कोप से उत्पन्न होती है दूसरे के दोषों का कथन, अवज्ञा, भौंहें चढ़ाना, शोक एवं क्रोध की चेष्टाएँ आदि इसके अनुभाव होते हैं।[1]

युद्धकाण्ड के अन्तर्गत विभीषण जब राम के शौर्यादि की प्रशंसा करते हुए रावण से सीता को वापस लौटाने के लिए कहता है तो रावण उनकी प्रशंसा सुनकर क्रोधित हो उठता है। वह अवज्ञापूर्वक राम के दोषों का कथन करता है—उन वियोगियों की क्या प्रशंसा करते हो, जिस दुर्मति का पूर्व एवं पर का आचार ही विरुद्ध है। कहाँ वे जङ्गल में मृगादि समूहों के बीच भूमि पर शयन करने वाले, कहाँ बजते हुए मणिमय नूपुर वाली रमणियों के बीच (शयन करने वाला मैं)। कहाँ वे पंगु मनोरथ वाले वन-वासी तथा कहाँ युद्ध यात्रा और रथादि सेना से युक्त (मैं)। कहाँ शौर्य, कहाँ जटाबन्धन, कहाँ शस्त्र, कहाँ वल्कल। सब प्रकार से उन तापसियों का आचरण विपरीत है।[2] इस स्थल पर विभीषण द्वारा राम के शौर्यादि की प्रशंसा करने पर रावण उसे सहन नहीं कर पाता है। अतः उसने अवज्ञा पूर्वक राम के दोषों का कथन प्रारम्भ कर दिया जिसमें उसका असूया भाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

१३—अमर्ष—तिरस्कार (अधिक्षेप) तथा अपमान आदि से उत्पन्न होने वाला अभिनिवेश (दृढ़ आग्रह) अमर्ष कहलाता है। उसमें पसीना आना, सिर को हिलाना, तर्जना (धमकाना) तथा ताड़न आदि अनुभाव पाये जाते हैं।[3]

अरण्यपर्व के अन्तर्गत राम-लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के विरूपण तथा खर-दूषण के वध का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर रावण क्रोध एवं अमर्ष से व्याकुल हो उठता है, भ्रू-भंगिमा कम्पित हो उठी। यह राम कौन है, इसका क्या धर्म, कैसा पराक्रम है? इस प्रकार के क्रोधयुक्त शब्द से सम्पूर्ण सभामण्डप निनादित हो गया। बहन शूर्पणखा के द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदित किए जाने के बाद रावण विषाद एवं अमर्ष से युक्त हो गया, पसीने से शरीर गीला हो गया, श्वास दीर्घ होने लगी। क्षण भर सोचकर, क्रोध के कारण कुण्डलों को कम्पित करता हुआ सम्पूर्ण सचिवों को छोड़कर रावण घुड़साल में प्रवेश किया। वहाँ पिशाचवदन वाले घोड़े से युक्त रथ पर आरूढ़ होकर मेघ की गर्जना करता पल भर में ही आकाश में पहुँचा।[4] यहाँ राम-लक्ष्मण द्वारा तिरस्कृत एवं अप-मानित हुए रावण का अमर्ष भाव लक्षित होता है। क्रोध के कारण सिर को हिलाने से

---

१. दशरूपक, ४।१७
२. रामा० मं०, यु० कां० (१०१–१०८)
३. दशरूपक, ४।१८
४. रामा० मं०, अ० प० (६५५–६०)

कुण्डलों का हिलना, शरीर में पसीना तथा कम्पन होना और राम-लक्ष्मण के वध तथा सीताहरण का दृढ़ आग्रह आदि अनुभाव रावण में पाया जाता है।

१४—गर्व—महान कुल, सुन्दरता, बल तथा ऐश्वर्य आदि से उत्पन्न होने वाला मद ही गर्व है। दूसरे को परेशान करना (आधर्षणा), तिरस्कार करना तथा विलासपूर्वक अपने अङ्गों को देखना आदि इसके अनुभाव हैं।[1]

उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत पौलस्त्य वंश में उत्पन्न, शंकर तथा ब्रह्मादि देवताओं का वरदपुत्र, शक्ति एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न, स्वर्णिम लङ्कापुरी का स्वामी रावण गर्व से युक्त होकर त्रैलोक्य को परेशान एवं पीड़ित करने लगा। इसी दर्प के प्रभाव में बड़े भाई कुबेर से पुष्पक छीन लेना, देववती का केशग्रहण करना, चारों दिकपालों को पराजित्त करना तथा यक्ष, किन्नर, गन्धर्व देवता एवं ऋषियों की कन्याओं का बलपूर्वक हरण कर पत्नी बना लेना आदि उसके दर्प भाव को ही सूचित करता है। मरुत के साथ युद्ध में उसका दर्प भाव दर्शनीय है। वह मरुत से कहता है—क्या तुमने रावण को देखा नहीं या रावण को तुम जानते नहीं ? आश्चर्य है कि पौलस्त्य वंश में उत्पन्न धन कुबेर के भाई रावण को तुम जानते नहीं हो।[2] यहाँ रावण का गर्व भाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

१५—स्मृति—सदृश वस्तु के ज्ञान अथवा चिन्तन आदि के कारण संस्कार के जाग्रत होने से स्मृति होती है। इसमें 'मैंने पहले देखा या सुना है' इस रूप में यह वस्तु का (स्मृति) भास कराती है। भौंहों का ऊपर सिकोड़कर चढ़ाना आदि इसमें अनुभाव पाये जाते हैं।[3]

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत पुत्रवियोग दुःख से पीड़ित राजा दशरथ को 'यज्ञदत्त वध' की घटना का स्मरण हो जाता है, जिसे कौशल्या से कहते हुए वे चिन्ता व्यक्त करते हैं कि उसी के परिणाम स्वरूप मुझे यह दुःख भोगना पड़ रहा है।[4] यहाँ राजा दशरथ का पुत्रवियोगज दुःख उन्हें यज्ञदत्त वध की घटना का स्मरण कराता है, जिसमें उनका स्मृति भाव दर्शनीय है।

१६—मरण—सुप्रसिद्ध होने तथा अनर्थ रूप होने से मरण का लक्षण नहीं कहा जा रहा है।[5]

---

१. दशरूपक (४।१९)
२. रामा० मं०, उ० कां० (३२९)
३. दशरूपक (४।२०)
४. रामा० मं०, अयो० कां० (९३५)
५. दशरूपक (४।२०½)

रामायणमञ्जरी का अङ्गीरस करुण होने से ही विदित होता है कि सम्पूर्ण ग्रंथ में मरणादि के कई प्रसङ्ग उपलब्ध हैं। यथा—बालकाण्ड एवं अयोध्याकाण्ड में—ताटका, सुबाहु, यज्ञदत्त तथा दशरथ आदि का मरण। अरण्यपर्व में—विराध, जटायु, खर-दूषण, मारीच, कबन्ध आदि का मरण। किष्किन्धापर्व एवं किष्किन्धाकाण्ड में—बालि तथा सिंहिकादि का मरण। सुन्दरकाण्ड में—किंकर, जम्बुमालि, मन्त्रितनय, दुर्धर तथा अक्षयादि का मरण। युद्धकाण्ड में—धूम्राक्ष, अत्यकम्पन, प्रहस्त, कुम्भकर्ण, नरान्तक, देवान्तक, त्रिशिरा, महोदर, महापार्श्व, अतिकाय, कुम्भ, निकुम्भ, मकराक्ष, इन्द्रजित तथा रावणादि राक्षसों का मरण। उत्तरकाण्ड में—मालि, सुमालि, अनरण्य, लवणासुर तथा शम्बूक आदि का मरण भाव सम्पूर्ण ग्रंथ में दर्शनीय है।

१७—मद—मद्य पान से होने वाली हर्ष की ऐसी उत्कृष्टता, जिसमें कि अङ्ग एवं वचन की गति लड़खड़ाने लगे, मद कहलाती है। इसमें उत्तम, मध्यम तथा अधम व्यक्तियों में क्रम से निद्रा, हँसना तथा रुदन अनुभाव पाये जाते हैं।[1]

सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत मद्य पान किए हुए रावण का मद भाव दर्शनीय है—नीरव अर्धरात्रि में अत्यधिक मदिरा का उत्कट पान किए हुए कामरूपी सर्प द्वारा सन्दंष्ट रावण जागकर जँभाइयाँ लेते हुए निःश्वासपूर्वक तथा सुन्दर कटे हुए नाखूनों को चमकाते हुए मानों प्रणाम करने वाले दीपकों से प्रकाश आ रहा था। उठकर पैरों के लड़खड़ाने के कारण ढीले हुए माल्य और श्रेष्ठ वस्त्रों वाले निद्रा से कषायित नेत्रों वाले उसने क्षण भर सीता के विषय में सोचा।[2] यहाँ आलम्बन–रावण, उद्दीपन–उत्कट मदिरा पान, अनुभाव–पैरों का लड़खड़ाना तथा निद्रा एवं व्यभिचारिभाव मद स्पष्टतः प्रतीत होता है।

१८—सुप्त—निद्रा से उत्पन्न होने वाला भाव सुप्त कहलाता है। इसमें उच्छ्वास की क्रिया मुख्य रूप से होती है और ये ही इसके अनुभाव हैं।[3]

युद्धकाण्ड के अन्तर्गत रावण जब कुम्भकर्ण को जगाने के लिए आदेश देता है तो राक्षस उसके शयनागार में प्रवेश करके पर्वत की शोभा वाले, विशालकाय कुम्भकर्ण को रत्नजटित फर्श पर सुप्तावस्था में देखे। उसकी नासिकागुहा के गर्भ से निकलने वाली श्वास-प्रश्वास के समक्ष पहुँचने पर राक्षस तृण के समान शीघ्र ही दूर जाकर वापस चले आते थे।[4] यहाँ कुम्भकर्ण की सुप्तावस्था के चित्रण में उसके श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया अनुभाव तथा सुप्त व्यभिचारिभाव है।

---

१. दशरूपक (४।२१)

२. रामा० मं०, सु० कां० (१८७–१९०)

३. दशरूपक (४।२२)

४. रामा० मं०, यु० कां (७३४, ७३५)

१६—निद्रा—चिन्ता, आलस्य तथा थकान आदि के कारण मन का सम्मिलन अर्थात् इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध होना ही निद्रा है। उसमें जँभाई का आना, अँगड़ाई लेना, आँखों का मूँदना तथा सोने की अवस्था में बड़बड़ाना आदि अनुभाव होते हैं।[1]

सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत, रति से उत्पन्न थकान के कारण मुंदे हुए नेत्रों वाली चित्रलिखित सी, गाढ़निद्रा में सोती हुई कान्ताओं को हनुमान ने रावण के अन्तःपुर में देखा। वे स्त्रियाँ निर्वस्त्र हो गयी थी, मोतियों के हार टूट कर विखरे हुए थे। निद्रा से निमीलित नेत्रों वाली उन रमणियों के कर्णफूल क्षण भर के लिए अपनी कान्ति के कारण वन में कमल के समान शोभित हो रहे थे।[2] यहाँ रावण के अन्तःपुर की रमणियों का रति से उत्पन्न थकान के कारण निद्रा भाव दिखाई पड़ता है। उन रमणियों के निद्रा से निमीलित नेत्र, निर्वस्त्र होना तथा हारों एवं केशों का विखरा होना आदि इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध न होने का परिचायक है।

२०—विबोध—परिणाम आदि (अवस्था परिवर्तन) के कारण विबोध (जागरण) उत्पन्न होता है। जँभाई लेना तथा आँखे मलना आदि उसमें अनुभाव पाये जाते हैं।[3]

युद्धकाण्ड के अन्तर्गत निद्रा निमग्न कुम्भकर्ण को जगाने के लिए यक्ष, किन्नर, गन्धर्व तथा विद्याधर की स्त्रियाँ गीत तथा वाद्यादि के मधुर ध्वनि के साथ उसके शयनागार में प्रवेश की। उनके पीन स्तनों के स्पर्श, दिव्य चन्दनादि की सुगन्ध तथा मधुर गीतों की ध्वनि से कुम्भकर्ण जागरण अवस्था को प्राप्त हुआ। इसके पश्चात नेत्रों को थोड़ा सा खोलकर, पाताल के समान विस्तृतायत मुख वाले तथा वज्र के समान भुजाओं को कम्पित करते हुए कुम्भकर्ण ने जँभाई ली।[4] यहाँ कुम्भकर्ण का विबोध भाव स्पष्टतः लक्षित होता है। नेत्रों को थोड़ा खोलना तथा जँभाई लेना आदि अनुभाव हैं।

२१—व्रीडा—बुरे आचरणों द्वारा जो प्रगल्भता का अभाव होता है, उसे व्रीडा कहते हैं। एक ओर मोड़कर मुख को छिपाना, मुख के रङ्ग का फीका पड़ना तथा मुख को नीचा कर लेना आदि अनुभावों के द्वारा यह प्रकट किया जाता है।[5]

बालकाण्ड के अन्तर्गत इन्द्र जब छल के द्वारा अहल्या का शीलहरण करते हैं तो उनकी प्रगल्भता विनष्ट हो जाती हैं। गौतम को आते देखकर लज्जा के कारण लम्बे डग

---

१. दशरूपक (४।२३)
२. रामा० मं०, सु० कां० (६४–७०)
३. दशरूपक (४।२३½)
४. रामा मं०, यु० कां० (७४०–७४३)
५. दशरूपक (४।२४)

भरते हुए वे वहाँ से चले जाते हैं।[१] यहाँ बुरे आचरण के द्वारा इन्द्र का प्रगल्भ विनष्ट होना उनके व्रीडा भाव का उदाहरण है। पुनः गौतम को देखकर लज्जा के कारण लम्बे डग भरते हुए जाना अनुभाव है।

इसी प्रकार उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत राजा दण्ड द्वारा गुरु शुक्राचार्य की पुत्री अरजा के साथ बलात्कार करने पर जब शुक्राचार्य आश्रम में पहुँचते हैं तो अरजा को अश्रुपूरित नेत्रों तथा नीचे मुख किए हुए भूमि पर पड़ी देखते हैं।[२] इस स्थल पर भी अरजा का व्रीडा भाव ही द्योतित होता है।

२२—अपस्मार—ग्रहों के प्रभाव तथा दुःख आदि के कारण मन का विक्षिप्त होना ही मनोविक्षेप है। इसमें यथायोग्य जमीन पर गिरना, काँपना, पसीना आना, मुँह से लार तथा फेन निकलना आदि अनुभाव पाये जाते हैं।[३]

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत सुमन्त्र जब राम, लक्ष्मण और सीता को वन में छोड़कर वापस राजा दशरथ के पास पहुँचते हैं तो सुमन्त्र को देखकर राजा विलाप करते हुए जमीन पर गिर पड़े। वे पुत्रस्नेह के कष्ट से शीघ्र ही व्यथित एवं संज्ञा शून्य हो गये तथा गद्‌गद स्वर में सुमन्त्र से राम का समाचार पूंछने लगे।[४] यहाँ राजा दशरथ का अपस्मार भाव पुत्रस्नेह में व्यथित होने के कारण लक्षित होता है, जिसमें विलाप करना, संज्ञाशून्य होना तथा भूमि पर गिरना आदि अनुभाव पाये जाते हैं।

२३—मोह—भय, दुःख, मनोविक्षेप तथा शोक के कारण होने वाली मूर्छा ही मोह है। इसमें दिखाई न पड़ना, चक्कर आना, धड़कन का होना, लड़खड़ना आदि अनुभाव पाये जाते हैं।[५]

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत कैकेयी द्वारा वर माँगने पर वज्राहत सिर वाले राजा दशरथ, यह क्या हुआ? ऐसा विचार करते हुए चक्र पर आरूढ की भाँति शीघ्र ही विनष्ट मूल वाले वृक्ष की तरह मूर्छित होकर गिर पड़े।[६] यहाँ कैकेयी द्वारा वर माँगने पर पुत्र वियोग से उत्पन्न दुःख एवं शोक के कारण राजा दशरथ मोह भाव को प्राप्त होते हैं।

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (३०२, ३०३)
२. रामा० मं०, उ० कां० (१०८५)
३. दशरूपक (४।२५)
४. रामा० मं०, अयो० कां० (८१७, ८१८)
५. दशरूपक (४।२६)
६. रामा० मं०, अयो० कां० (७२६, ७२७)

२४—मति—शास्त्र आदि से उत्पन्न होने वाला तत्त्व ज्ञान ही मति है। यह भ्रम के विनाश तथा शिष्य आदि के प्रति कहे गये उपदेश से युक्त होती है। अर्थात भ्रम निवारण तथा उपदेश देना इसके अनुभाव हैं।[1]

रामायणमञ्जरी में मति व्यभिचारिभाव के अनेक उदाहरण कहीं किसी भ्रम के निवारण में अथवा कहीं उपदेशार्थ में प्रसङ्गानुसार पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ—अरण्य पर्व में राम द्वारा भरत के भ्रम निवारण में शास्त्र सम्मत उपदेश देना, मारीच द्वारा रावण को समझाना, युद्धकाण्ड में विभीषण की माँ द्वारा विभीषण को उपदेश देना, विभीषण द्वारा रावण को समझाना आदि। इसी प्रकार उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत कालवाक्य के अनुसार लक्ष्मण जब शरीर त्याग के लिए उद्यत होते हैं तो राम उन्हें देखकर दुःखी हो जाते हैं। इसके बाद लक्ष्मण उनके भ्रम का निवारण करते हुए कहते हैं—शरीरधारियों के द्वारा सर्वत्र स्नेह में बँध जाना, मिथ्या है क्योंकि काल की यह गति स्वाभाविक है।[2]

२५—आलस्य—परिश्रम तथा गर्भधारण आदि के कारण होने वाली पूर्ण शिथिलता ही आलस्य कहलाती है। इसमें जँभाई लेना तथा एक जगह बैठे रहना आदि अनुभाव पाये जाते हैं।[3]

रामायणमञ्जरी में इसका उदाहरण नहीं मिलता। किन्तु उत्तरकाण्ड के एक स्थल पर सीता के गर्भधारण की बात सूचित होती है जिसमें आलस्य का किञ्चित संकेत लक्षित होता है[4]—

अपाण्डुरमुखे सुभ्रू सचन्द्रेव विभावरी।
दृश्यसेऽभिनवारम्भगर्भाविर्भूतलक्षणा॥

२६—आवेग—ससम्भ्रम (जल्दबाजी या घबराहट) को आवेग कहते हैं। इसमें कारण और अनुभाव भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। जैसे—(१) किसी के आक्रमण करने पर शस्त्र तथा हाथी आदि की तैयारी की जाती है, (२) झंझावात तथा धूलि से पीड़ित व्यक्ति जल्दी-जल्दी पैर उठा कर चलता है, (३) वर्षा से होने वाले आवेग में व्यक्ति अपने अङ्गों को सिकोड़ता है, (४) वज्रपात आदि उत्पात से होने वाले आवेग में व्यक्ति के अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, (५) शत्रु (अहित) के द्वारा होने वाले आवेग में शोक तथा मित्र (हित) से

---

१. दशरूपक (४।२७)
२. रामा० मं०, उ० कां० (१२४२)
३. दशरूपक (४।२७)
४. रामा० मं०, उ० कां० (७४३)

होने वाले आवेग में प्रसन्नता होती है, (६) आग से होने वाले आवेग में व्यक्ति का मुख आकुल हो उठता है तथा (७) हाथी से होने वाले आवेग के पश्चात् भय, स्तब्धता (कम्प) तथा भागना आदि अनुभाव हुआ करते हैं।[1]

इसमें प्रथम प्रकार—किसी के आक्रमण करने पर शस्त्र तथा हाथी आदि की तैयारी युद्धकाण्ड में दर्शनीय है। राम की वानरी सेना द्वारा समुद्र पार कर लङ्का घेर लिए जाने पर रावण द्वारा युद्ध की तैयारी तथा राक्षसों को युद्ध के लिए आदेश देने में आवेग भाव प्रदर्शित होता है। वानरी सेना द्वारा लङ्का की प्राचीर पर चढ़कर चारों तरफ से घेर लिया गया। उसे रोकने के लिए रावण ने राक्षसों को युद्ध का आदेश दे दिया। इसके बाद प्रलयङ्कारी राक्षसी सेना अत्यन्त भय उत्पन्न करती हुई युद्ध के लिए प्रस्थान कर दी। उस सेना के चलने से हाथियों में बँधे घण्टों की टंकार ने दिशाओं को बधिर बना दिया।[2]

२७—**वितर्क**—संदेह से उत्पन्न होने वाला विचार वितर्क कहलाता है। इसमें भृकुटियों की वक्रता, सिर का हिलाना तथा अँगुली का घुमाना आदि अनुभाव होता है।[3]

सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत—वृक्ष के पत्तों में छिपे हनुमान के द्वारा रामविषयक अमृतमय वाणी सुनने पर सीता विभिन्न प्रकार से वितर्क करती हैं। कानों से इस अमृतमय वाणी को सुनकर उस चञ्चल नेत्रों वाली ने अपनी चञ्चल दृष्टियों से दिशाओं को बिखरे हुए कमलदलों से युक्त कर दिया। यह क्या है? यह सोचकर सीता भ्रम में पड़ गई। 'सत्य है' यह समझकर उसे प्राण प्राप्त हो गये। 'यह माया है', यह सोचकर असूया से भर गयी और 'यह झूठ है' यह सोचकर मूर्छित हो गयी। 'यह स्वप्न है', यह सोच कर वह अवहेलना करने लगी। 'मैं सोई हुई हूँ' यह सोचकर आदर से युक्त हो गयी। 'ऐसा हो जाय' यह सोचते हुए वह उत्कंठित होने लगी। इस प्रकार सीता किसी निश्चय पर न पहुँच सकी।[4] यहाँ सीता के सन्देह से उत्पन्न होने वाले विचार में वितर्क दर्शनीय है। नेत्रों तथा भृकुटियों को इधर-उधर घुमाना अनुभाव है।

२८—**अवहित्था**—लज्जा आदि के कारण मुख पर झलकने वाले मन के विकारों को छिपाना ही अवहित्था है। अंगों में होने वाले विकार ही अनुभाव हैं।[5]

---

१. दशरूपक (४।२८)

२. रामा० मं०, यु० कां० (४०४, ४०५)

३. दशरूपक (४।२९)

४. रामा० मं०, सु० कां० (३१६–३१९)

५. दशरूपक (४।२९)

सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत रावण को देखकर सीता एकाएक कम्पित होती हुई, तुषारयुक्त वायु के वेग से भग्न की जाती हुई कमलिनी की भाँति आहत हो गयी। संकोचपूर्वक नीचे को मुख करके, उदर को जाँघों से ढककर, बाहुओं को परस्पर बाँधकर, उनसे पयोधरों को छिपाकर, एक ही साथ भय, शोक और अपमान के वश में होकर लज्जा के कारण पृथ्वी से दरार माँगती हुई अपने शरीर में ही प्रविष्ट होने लगी।[१] यहाँ सीता का लज्जा के कारण पृथ्वी से दरार माँगना तथा अपने ही शरीर में प्रविष्ट होना आदि आङ्गिक क्रियाएँ उनके अवहित्था भाव को ही सूचित करती हैं।

'वह्निप्रवेश:' के अन्तर्गत भी राम द्वारा तिरस्कृत तथा अपमानित किए जाने पर सती सीता कष्टयुक्त हो, लज्जा के कारण मानो अपने ही अंगों में प्रविष्ट होने लगी।[२] यहाँ भी सीता का अवहित्था भाव द्योतित होता है।

इसी प्रकार अरण्यपर्व में लक्ष्मण द्वारा भरत के प्रति की गई शङ्का का निवारण करते हुए राम जब उन्हें समझाने लगते हैं तो लक्ष्मण उनके वचनों को सुनकर लज्जा के कारण मुख नीचे किए हुए मानों पृथ्वी में प्रविष्ट होने के लिए विवर माँगने लगे।[३] यहाँ लक्ष्मण का अवहित्था भाव सूचित होता है।

२९—व्याधि—सन्निपात आदि व्याधियाँ हैं।[४] इसका उदाहरण रामायणमञ्जरी में नहीं मिलता।

३०—उन्माद—सन्निपात तथा ग्रह आदि के प्रभाव के कारण बिना विचारे कार्य करने की अवस्था को उन्माद कहते हैं। इसमें रोना, गाना, हंसना तथा बैठे रहना आदि अवस्थाएँ अनुभाव होती हैं।[५]

युद्धकाण्ड के अन्तर्गत कुम्भकर्ण वध के बाद विलाप करते हुए रावण कहता है कि अपनी ही दुर्नीति का फल मैं भोग रहा हूँ जो भाई विभीषण द्वारा कही गयी हितकारी बातों को नहीं सुना। उस बुद्धिमान विनयी एवं भक्त भाई विभीषण की बातों का अतिक्रमण करने तथा निर्वासित कर देने के कारण ही मैं आज पराभव को प्राप्त हो रहा हूँ।[६] इस स्थल पर रावण द्वारा उन्माद वश बिना विचारे कार्य करने का उल्लेख है तथा विलाप करना अनुभाव है।

---

१. रामा० मं०, सु० कां० (२००–२०२)
२. रामा० मं०, 'वह्निप्रवेश:' (७८)
३. रामा० मं०, अ० प० (१७८)
४. दशरूपक (४।२९)
५. दशरूपक (४।३०)
६. रामा० मं०, यु० कां० (८८९, ८९०, ८९१)

३१—विषाद—आरम्भ किए गये कार्य की असफलता के कारण सत्त्व (बल या उत्साह) का क्षीण हो जाना ही विषाद है। लम्बी-लम्बी श्वास छोड़ना और लेना, मन का सन्ताप तथा सहायकों का अन्वेषण इसके अनुभाव हैं।[१]

सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत हनुमान द्वारा लङ्कापुरी एवं रावण के अन्तःपुर में सीता को खोजने के बाद असफल हो जाने पर उनका विषाद दर्शनीय है। स्वयं अपने मन के सन्ताप तथा क्षीण सत्त्व का स्पष्ट उल्लेख करते हैं।[२]

३२—औत्सुक्य—किसी मनोहर वस्तु की अभिलाषा, प्रगाढ़ प्रेम तथा घबराहट के कारण समय के विलम्ब को न सहन कर सकना ही औत्सुक्य है। उसमें लम्बी-लम्बी श्वासें छोड़ना, जल्दबाजी करना, लम्बी-लम्बी श्वासें लेना, हृदय का सन्तप्त होना आदि अनुभाव पाये जाते हैं।[३]

रामायणमञ्जरी के बालकाण्ड में इन्द्र द्वारा कौशल्या का छलपूर्वक शील हरण करने में सुरतौत्सुक्य दर्शनीय है।[४] ठीक इसी प्रकार उत्तरकाण्ड में भी गुरु शुक्राचार्य की पुत्री अरजा के द्वारा बार-बार पिता का भय दिखाने पर भी काम के वशीभूत राजा दण्ड घबराहट एवं जल्दबाजी में उसके साथ बलात्कार करते हैं।[५] यहाँ भी दण्ड का सुरतौत्सुक्य दर्शनीय है।

३३—चपलता—मात्सर्य, द्वेष तथा राग आदि के कारण चित्त का स्थिर न रहना चपलता है। उसमें डाँटना, निष्ठुरता दिखलाना तथा मनमानी आचरण करना आदि अनुभाव होते हैं।[६]

युद्धकाण्ड के अन्तर्गत विभीषण जब रावण को शास्त्र सम्मत बातों के द्वारा समझाकर सीता को वापस करने के लिए कहता है तो रावण क्रोधित होकर सिंहासन से उठा तथा विभिन्न प्रकार से डाँटते हुए उस पर पाद प्रहार कर दिया। इसके पश्चात् तलवार खींचते हुए, हिल रहे कुण्डलों वाले, पसीने से युक्त, लम्बी साँसे लेते हुए रावण ने आदेश दिया कि इसे शीघ्र ही यहाँ से बाहर कर दो।[७] यहाँ मात्सर्य तथा राग-द्वेष आदि के कारण रावण की चपलता दर्शनीय है।

---

१. दशरूपक (४।३१)
२. रामा० मं०, सु० कां० (१०३–१०८)
३. दशरूपक (४।३२)
४. रामा० मं०, बा० कां० (३०१–३०४)
५. रामा० मं०, उ० कां० (१०८३, १०८४)
६. दशरूपक (४।३३)
७. रामा० मं०, यु० कां (१५२–१५७)

रामायणमञ्जरी में भाव, भावाभास, रसाभास, भावसन्धि एवं भावशबलता

भाव—आचार्यों ने काव्य वृक्ष में रस को बीजस्थानीय तथा भावों को पल्लव-शाखादि स्थानीय माना है। इसी भाँति नटों के अभिनय को फूलों की भाँति और सामाजिकों के रसास्वाद को फलतुल्य कहा है।[1] भावों की रमणीय वर्णना या अभिनय से ही सम्यक् रस-निष्पत्ति होती है। कहीं-कहीं तो देवादिविषयिणी रति के वर्णन को व्यभिचारी के ही मुख्यत: व्यङ्ग्य होने को स्वातन्त्र्येण भावध्वनि नाम दिया जाता है। अत: काव्य वृक्ष में अन्तर्नियामक रस की ही भाँति भावों का भी वैशिष्ट्य होता है। आचार्य मम्मट के अनुसार भाव का लक्षण अधोलिखित है—

रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाऽञ्जित: ॥
भाव: प्रोक्त:।[2]

अर्थात् देव आदि विषयक रति आदि स्थायिभाव और व्यंग्य व्यभिचारिभाव 'भाव' कहलाते हैं। यहाँ आदि शब्द से मुनि, गुरु, राजा तथा पुत्रादिविषयक रति का संग्रह होता है। पुरुष तथा स्त्री विषयक रति को छोड़कर अन्यों के प्रति जो रति है, वह सब 'भाव' पदवाच्य है। स्त्री विषयक रति व्यक्त होने पर शृङ्गार कहलाती है।

रामायणमञ्जरी में भाव अर्थात् मुनि, गुरु, राजा, देवता तथा पुत्रादि विषयक रति के उदाहरण अनेकश: मिलते हैं जिनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

बालकाण्ड के अन्तर्गत जिस समय महर्षि विश्वामित्र राजा दशरथ के पास राम और लक्ष्मण को उनसे माँगने के लिए आते हैं, राजा दशरथ उन्हें देखकर हर्षविह्वल हो जाते हैं। विश्वामित्र की प्रशस्ति एवं गुणकीर्तन करते हुए दशरथ उनके दर्शन से अपने को धन्य मानते हैं।[3] इस स्थल पर दशरथ का मुनि विश्वामित्र के प्रति रति भाव दर्शनीय है।

इसी प्रकार उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत रावण विजय के बाद राम के दर्शनार्थ आए हुए अत्रि, वशिष्ठ, च्यवन, पराशर, विश्वामित्र जाबालि, भरद्वाज, शौनक, विप्पलाद, कपिल, कौशिक तथा शृंगि आदि मुनियों के प्रति राम का रति भाव भी देखा जा सकता है।[4]

---

१. ना० शा० (६।३८)
२. का० प्र० (४।३५)
३. रामा० मं०, बा० कां० (८६–९८)
४. रामा० मं० उ० कां० (३–७)

राजा विषयक रति के सन्दर्भ में उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत एक उदाहरण दर्शनीय है। जिस समय राम लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि लक्ष्मण देखो! दरवाजे पर कोई कार्यार्थी अथवा याचक तो नहीं खड़ा है। इस पर लक्ष्मण उत्तर देते हैं—देव! कोई कार्यार्थी अथवा याचक नहीं दिखाई पड़ रहा है। आपके शासन करते हुए प्रजा में किसी प्रकार का कष्ट नहीं हैं। आपके शासन करते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी पर किसी प्रकार का दैहिक, दैविक एवं भौतिक ताप मनुष्यों में नहीं है।[1] यहाँ लक्ष्मण द्वारा कही हुई बातों के अन्तर्गत राजा राम के प्रति उनका रति भाव प्रदर्शित होता है।

गुरु विषयक रति के सन्दर्भ में अरण्य पर्व के अन्तर्गत शबरी का अपने गुरु मतङ्ग के प्रति रति भाव दर्शनीय है। राम-लक्ष्मण से अपने गुरु मतङ्ग तथा उनके आश्रम के विषय में शबरी कहती है—यह आश्रम परमसिद्धि को प्राप्त, ज्ञानी तथा मेरे गुरु मतङ्ग ऋषि का है। न मुरझाए हुए पुष्प, नुकीले अग्रभाग वाले कुश वृक्ष तथा यह सम्पूर्ण प्रदेश उन्ही के प्रसाद से हरा-भरा दिखाई पड़ रहा है। जिनकी चिन्ता करते हुए सातों समुद्र तथा सभी तीर्थों के जल उनकी आज्ञा से यहाँ रहते हैं। जहाँ वे अपने वल्कलादि वस्त्रों को रखकर स्नानादि करते थे, देखिए! आज सैकड़ों वर्ष बीत जाने के बाद भी वे सूखे नहीं हैं।[2] इस स्थल पर शबरी के कथनों से गुरु मतङ्ग के प्रति उसका रति भाव सूचित होता है।

देवादि विषयक रति की गणना साहित्यशास्त्र में भावों के अन्तर्गत ही की गयी है। उसे रस नहीं माना गया है, किन्तु गौणीय वैष्णव उसको अलग रस ही नहीं अपितु सर्वश्रेष्ठ रस मानते हैं। रूपगोस्वामी ने अपने ग्रंथों में भक्ति रस का प्रतिपादन बड़े विस्तार के साथ किया है। वे देवताविषयक रति को साहित्यशास्त्रियों के समान भाव ही कहते हैं किन्तु भक्ति रस का स्थायिभाव केवल श्रीकृष्ण विषयक रति को ही मानते हैं। श्रीकृष्ण के साथ-साथ राम को भी देवता नहीं अपितु भगवान मानते हैं। इसलिए तद्-विषयक रति देवविषयक रति से सर्वथा भिन्न हैं। अतः भक्ति रस भाव के अन्तर्गत नहीं अपितु स्वतन्त्र रस है, ऐसा उनका मत है।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए देव विषयक रति उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत शङ्कर के प्रति रावण की देखने को मिलती है। कार्तवीर्य अर्जुन से युद्धाकांक्षी रावण जब उसे उसकी राजधानी में न पाकर नर्मदा के किनारे पहुँचता है तो नर्मदा नदी की शोभा को देखकर उसके मन में शंकर के प्रति रति भाव उत्पन्न हो जाता है। वह कहता है—जो भगवान शंकर की अर्चना में लीन एक व्यापार वाले हैं, ऐसे व्यक्ति इह-

---

१. रामा० मं०, उ० कां० (८००-८०२)
२. रामा० मं०, अ० प० (१११३-१११६)

लोक तथा परलोक में उनके प्रसाद से अच्छे परिणाम प्राप्त करने वाले होते हैं। भगवान शंकर कल्पवृक्ष के समान विपुल ऐश्वर्य को प्रदान करने वाले हैं। ऐसा कहते हुए भगवान शंकर की बालू से एक मूर्ति बनाकर, पुष्पादि के द्वारा विधिवत् पूजन किया।[१] यहाँ रावण की देवताविषयक (शंकर विषयक) रति स्पष्टतः भासित होती है।

पुत्र विषयक रति के उदाहरण में अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत राजा दशरथ की राम के प्रति दर्शनीय है। रामाभिषेक के पूर्व राजा दशरथ राम के गुणों की प्रसंशा करते हुए उन्हें अपना सबसे अधिक प्रिय पुत्र कहते हैं तथा राम को राज्य का कार्य-भार सौंपने के लिए उपयुक्त समझते हैं।[२] यहाँ राजा दशरथ की राम के प्रति कही गयी उक्तियों में उनका पुत्र विषयक रति भाव लक्षित होता है।

इसी प्रकार स्त्रीविषयक रति को छोड़कर अन्यों के प्रति रति में 'भाव' ध्वनित होता है।

भावाभास—रस तथा भावों का अनुचित रूप से वर्णन 'रसाभास' तथा 'भावाभास' कहलाता है।[३] सर्वप्रथम यहाँ भावाभास का उल्लेख किया जा रहा है।

अनौचित्येन प्रवृत्त लज्जा आदि व्यभिचारियों की प्राधान्येन अभिव्यक्ति होने पर भावाभास होता है। जैसे—वेश्यादि में लज्जा की अभिव्यक्ति भावाभास का विषय है। क्योंकि कुलाङ्गनाओं में लज्जा भाव का होना उचित है किन्तु वेश्यादि में उसका अनौचित्य माना जाता है।

रामायणमञ्जरी में भावाभास का उदाहरण रावण की सीता के प्रति अनौचित्य चिन्ता के सन्दर्भ में दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ—जब वन में कूटभिक्षु रावण चन्द्रमुखी सीता को देखता है तो—लता, पुष्प तथा सुगन्धित वायु से युक्त पर्णशाला के सामने रेशमी पीले वस्त्र पहन कर बैठी हुई उत्फुल्ल पलाश के सामने नेत्रों वाली कमलानना सीता को देखकर रावण काम के वशीभूत हो गया।[४]

यहाँ रावण की सीता के प्रति अनौचित्य चिन्ता प्रवर्तित है। अतः यहाँ भावाभास है। क्योंकि नियम के प्रतिकूल यहाँ प्रथमतः पुरुष के अनुराग का चित्रण किया गया है, जबकि स्त्री की रक्तता प्रथमतः वर्णित होनी चाहिए। यहाँ रावण के प्रति सीता के मन में थोड़ी सी भी आसक्ति नहीं है। इसलिए अननुरक्ता सीता के प्रति रावण की इस

१. रामा० मं०, उ० कां (३६४–३६८)
२. रामा० मं०, अयो० कां० (६२९–६५७)
३. का० प्र०, सू० (४९)
४. रामा० मं०, अ० प० (७८४–७८७)

चिन्ता का प्रदर्शन अनौचित्यमय है। इस स्थल पर 'सीतामन्तर्विचिन्त्यन' शब्द जो श्लोक में आया है उससे रावण का व्यञ्जित व्यभिचारिभाव चिन्ता प्रदर्शित होती है।

इसी प्रकार सुन्दरकाण्ड में भी रावण की सीता के प्रति अनौचित्य चिन्ता में भावाभास दर्शनीय है। अर्धरात्रि में उत्कट मदिरा का पान किए हुए, काम रूपी सर्प द्वारा संदंष्ट रावण जागा। उठकर पैरों के लड़खड़ाने के कारण ढीले पड़े हुए माल्य तथा श्रेष्ठ वस्त्रों वाले, निद्रा से कषायित नेत्रों वाले उसने क्षण भर सीता के विषय में सोचा। वह सीता के ध्यान से उत्पन्न काम को रोक सकने में उसी प्रकार समर्थ न हुआ, जैसे-कुमार्ग पर जाते हुए नौसिखिए मूर्ख को ईश्वर भी नहीं रोक पाते हैं।[1]

रसाभास—रति आदि स्थायिनी चित्तवृत्ति की औचित्येन प्रवृत्ति होकर आस्वाद्यमानता होने पर तो रस होता है किन्तु उसी की अनौचित्येन प्रवृत्ति होने पर रसाभास होता है।

रामायणमञ्जरी में रावणनिष्ठा सीताविषयिणी रति के सन्दर्भ में कई स्थलों पर रसाभास देखने को मिलता है।

अरण्यपर्व के अन्तर्गत—कामातुर एवं सीताहरण के लिए उत्सुक रावण कहता है—हे सीता! तुम्हें पाकर मैं त्रैलोक्य की इच्छा छोड़ दूँ, लङ्का अविश्रान्त उत्सवों वाली हो जाय। हे सुन्दरि! विद्यारिणियाँ तथा देवस्त्रियाँ तुम्हारे समक्ष तृण के समान हैं। तुम्हारे बिना सुख क्या है, विभूति क्या है तथा काम भी तुम्हारे बिना कामरहित अर्थात व्यर्थ है। हे सुन्दरि! प्रसन्न होकर लङ्का की उपवन भूमि में मेरे साथ विहार करो।[2] यहाँ रावण की सीता के प्रति अनौचित्य रति होने से रसाभास है।

इसी प्रकार सुन्दर कांण्ड में भी कामपीड़ित रावण सीता से कहता है—हे सुन्दर भौहों वाली! तुम्हारा यह शरीर सम्भोग के बिना शोभित नहीं हो रहा है। प्रसन्न होकर मुझ प्रेमी से सुन्दर मुस्कराहट के साथ बातचीत करो। कामदेव की इच्छा पूर्ण हो तथा धनुष पर किया हुआ उसका परिश्रम सफल होवे।[3]

उत्तरकाण्ड में भी देववती के प्रति कहे गये रावण के वचनों से भी श्रृङ्गार रस की पुष्टि नहीं होती, क्योंकि देववती के हृदय में रावण के प्रति कोई आसक्ति नहीं है। श्रृङ्गार का परिपाक वहाँ होता है, जहाँ पर नायक-नायिका दोनों में एक दूसरे के प्रति अनुराग होता है। यहाँ रति अनुभयनिष्ठ है। रावण देववती से कहता है—हे चंचल

---

१. रामा० मं०, सु० कां० (१८७–१९०)
२. रामा० मं०, अ० प० (८०२–८०६)
३. रामा० मं०, सु० कां० (२०६–२२५)

नेत्रों वालो ! तुम्हारा यह विरुद्ध आचरण क्यों ? कहाँ यह तपस्या और कहाँ यह युवावस्था को प्राप्त तुम्हारा शरीर । यह तपाचरण तो केवल वृद्ध लोगों के लिए ही उचित है । तुम्हारी यह युवावस्था तथा ये पीन स्तन भोग के इच्छुक हैं । ऐसा कहते हुए काम पीड़ित रावण ने देववती की चोटी पकड़ लिया ।[1] इस स्थल पर सहृदय पक्ष में शृंगार रस की भावना नहीं उत्पन्न होती, उल्टे तपस्विनी देववती के प्रति दया के भाव उमड़ पड़ते हैं । अतएव यह शृङ्गार रस न होकर शृङ्गाराभास की ही व्यंजना हुई है ।

भावसन्धि—लोचनकार के अनुसार जहाँ पर दो व्यभिचारिभावों की सन्धि ही चर्वणास्पद हो वहाँ भावसन्धि होती है—**क्वचित्तु व्यभिचारिणः सन्धिरेव चर्वणास्पदम्** ।[2] वे दो व्यभिचारिभाव विरोधी हों या अविरोधी इस बात का उन्होंने विचार नहीं किया किन्तु बाद के आलङ्कारिकों (एकावलीकार विद्याधर तथा पंडितराज जगन्नाथ आदि) ने उन व्यभिचारियों की विशेषता पर भी प्रकाश डाला है ।

सुन्दरकाण्ड में एक स्थल पर भावसन्धि का उदाहरण दर्शनीय है । हनुमान कहते हैं—राम का उतना कार्य तो पूरा हो चुका, जितने के लिए मैं भेजा गया था परन्तु अब मेरी इच्छा कहे हुए से भी अधिक करने की है । क्योंकि एक कार्य के लिए भेजे हुए परन्तु अनेक कार्यों को पूरा करने वाले सम्मान की वृद्धि करते हुए सेवकों का जीवन स्वामी से प्राप्त सम्मान से सफल हो जाता है ।[3]

यहाँ उदाहरण के प्रथम चरण में हनुमान का 'हर्ष' भाव ध्वनित होता है । वह हर्ष भाव—सीता से मिलना, उन्हें राम का अभिज्ञान देना, सीता का सम्पूर्ण समाचार प्राप्त करके राम के लिए उनसे अभिज्ञान लेना आदि पूर्णरूपेण सम्पादित कार्य में हनुमान का व्यञ्जित व्यभिचारी हर्ष भाव ध्वनित होता है । पुनः इससे कुछ और अधिक करने वाले हनुमान के विचार में—अशोक वन विध्वंस तथा लङ्कादहन आदि आगे होने वाले कार्यों के प्रति उनका 'औत्सुक्य' दो व्यभिचारिभावों की सन्धि होने से यहाँ भावसन्धि है ।

भावशबलता—जहाँ केवल दो भावों का योग होता है, वहाँ भावसन्धि मानी जाती है, और जहाँ दो से अधिक भावों का योग होता है वहाँ भावशबलता मानी जाती है । लोचनकार ने तो अनेक व्यभिचारिभावों की द्वन्दशः अभिव्यक्ति होने पर भावशबलता मानी है । काव्यप्रकाश के टीकाकारों ने उत्तरोत्तर भाव के द्वारा पूर्व-पूर्व भाव का दबा

---

१. रामा० मं०, उ० कां० (२९८–३१६)

२. ध्व० लो०, पृ० (१७६)

३. रामा० मं०, सु० कां० (३८३, ३८४)

दिया जाना ही भावशबलता है, माना है। किन्तु इसके विपरीत रसगंगाधरकार का कहना है कि भावशबलता में भाव एक दूसरे को दबाते नहीं अपितु जिस प्रकार नारियल के जल, दुग्ध, शक्कर तथा केले के सम्मिश्रण से विलक्षण आस्वाद आ जाता है, उसी प्रकार अनेक भावों की संहति भी आस्वाद्य होती है।[1] भावशबलता का सीधा लक्षण एकावलीकार करते हैं। उनके अनुसार बहुत से भावों का पूर्व-पूर्व भावों के उपमर्द के साथ उपनिबंधन ही भावशबलता है।

रामायणमञ्जरी (सुन्दरकाण्ड) के अन्तर्गत सीता के अधोलिखित कथन में कई भावों का योग होने से भावशबलता दर्शनीय है। सीता कहती हैं—'हर ली गई हूँ' यह तो संसार में प्रसिद्ध ही है। 'डरी हुई हूँ' यह स्त्रियों के लिए स्वाभाविक ही है। 'सूख रही हूँ' यह प्रलाप है। 'संस्थित चित्त हूँ' यह अत्यन्त निष्ठुर है। 'विस्तृत हूँ' यह अनुचित है, 'प्रिया हूँ' यह चञ्चलता है, 'जीवित हूँ' यह अत्यन्त लज्जा की बात है और 'शोक में डूबी हूँ' इसमें आश्चर्य की क्या बात है? इस दुःख के समुद्र में डूबी हुई मुझको कृपालु राम न जाने क्या कहने पर उद्धार करेंगे।[2]

यहाँ एक ही साथ मति, धृति, दैन्य, ग्लानि, चिन्ता, विषाद, वितर्क, चपलता, व्रीडा आदि कई व्यभिचारिभावों का एक साथ सन्निवेश दिखाई पड़ता है। अतः यहाँ भावशबलता है।

रामायणमञ्जरी का अङ्गीरस—

प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धानां नानारसनिबन्धने।
एको रसोऽङ्गीकर्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता॥[3]

प्रबन्धों में अनेक रसों का समावेश प्रसिद्ध होने पर भी उनके उत्कर्ष को चाहने वाले कवि के द्वारा किसी एक रस को अङ्गी बना देना चाहिए। यद्यपि अनेक रस होना कोई दोष नहीं है, अपितु गुण ही है, परन्तु वे काव्य में निबद्ध एक रस अर्थात अङ्गीरस के अनुकूल हों। उस एक रस का बार-बार अनुसन्धान करना चाहिए।[4] आठ रसों को ही मानने वाले धनञ्जय अपने उन दो 'उत्तम प्रकृतिक' रसों को नाटक के मुख्य रस के रूप में मानते हैं, परन्तु ध्वनिवादी अभिनवगुप्त, मम्मट एवं पं० राज जगन्नाथ प्रभृति

---

१. रसगङ्गाधर (पृ० १०४)

२. रामा० मं०, सु० कां० (३७७, ३७८, ३७९)

३. ध्व० लो० (३।२१)

४. ध्व० लो० (३।१३)

आचार्यों ने शान्त रस को भी उत्तम प्रकृतिक रस माना है। आचार्य विश्वनाथ ने तो महाकाव्य में शृङ्गार, वीर एवं शान्त में से कोई एक रस प्रधान मानने को कहा है।[1]

जैसा कि लक्षणकारों ने यह निश्चित कर दिया है कि प्रबन्धों में एक अङ्गीरस होना चाहिए जिसका कि ग्रंथ में आद्योपान्त निर्वहण भी परमावश्यक है। इसके अनुसार सम्प्रति विचार का विषय है कि रामायणमञ्जरी में किस एक रस का आद्योपान्त निर्वाह कवि ने किया है अर्थात कौन एक अङ्गीरस है। पूर्व स्पष्ट है कि रामायणमञ्जरी की आधिकारिक कथा राम कथा है तथा एक उपजीवी काव्य होने के कारण यह वाल्मीकि रामायण पर पूर्णतया अवलम्बित है। ग्रंथ के प्रारम्भ में ही आचार्य क्षेमेन्द्र ने महर्षि वाल्मीकि की वंदना, आदिकाव्य की प्रशंसा तथा उनका काव्य किस प्रकार श्लोक रूप में प्रस्फुटित हुआ आदि का वर्णन बड़े सुन्दर ढङ्ग से किया है।[2] इस प्रकार वाल्मीकि रामायण 'शोकः श्लोकत्वमागतः' के अनुसार कामपीडित क्रौञ्चमिथुन में नर क्रौञ्च का व्याध के द्वारा वध किए जाने से उत्पन्न मर्मविदारित शोक ही आदि कवि के मन में करुण रस उत्पन्न करके श्लोक रूप में प्रस्फुटित हुआ[3]—

ततः श्लोकच्छलात्तस्य शोकानलसमीरितः।
दयया हृदयालीनो निर्गतः करुणो रसः॥

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमालब्धाः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

उपर्युक्त तथ्य के आधार पर ही वाल्मीकि रामायण का अङ्गीरस 'करुण' स्वीकार किया गया है। अब चूंकि रामायणमञ्जरी की रामकथा वाल्मीकि रामायण पर ही आधारित है। अतः इसका भी अङ्गीरस 'करुण' निर्विवाद रूप से माना जा सकता है। पुनः रामायणमञ्जरी के अंगीरस 'करुण' का ग्रंथ में आद्योपान्त निर्वाह भी किया गया है। उदाहरणार्थ—दशरथ मृत्यु तथा कौशल्यादि का विलाप, बालिवध एवं तारा का विलाप, कुम्कर्ण, इन्द्रजित तथा रावण वध एवं मन्दोदरी आदि रानियों का विलाप। रामायणमञ्जरी में इन प्रमुख स्थलों के अतिरिक्त भी बहुत सी मृत्यु की घटनाएँ उपलब्ध हैं जिसके द्वारा रामायणमञ्जरी के अङ्गीरस 'करुण' के अंगत्व तथा आद्योपान्त निर्वहण की पुष्टि होती है। ग्रंथ में अङ्गीरस 'करुण' के अतिरिक्त अन्य रसों का भी उचित स्थलों पर समावेश किया गया है जो अङ्गीरस के सहायक रूप में विद्यमान हैं।

---

१. सा० द० (६।३१७)

२. रामा० मं०, बा० कां० (२, ३, ४)

३. रामा० मं०, बा० कां० (१७, १८)

रामायणमञ्जरी में वर्णित विभिन्न रस—

संस्कृत के साहित्य शास्त्र में अनिर्वचनीय रसों की संख्या भी अनिर्वचनीय सी हो गयी है। भोज तथा रुद्रट आदि ने सभी ४९ भावों को रस कोटि का माना है। अभिनव-गुप्त ने तो एक स्थल पर लोचन में कहा है कि कुछ आचार्य विभाव, अनुभाव, स्थायी तथा व्यभिचारी, उनके संयोगो अनुकार्य या समग्र समुदाय को ही रस कहते हैं। फिर भी प्रच-लित परम्परा में ९ प्रधान भावों की ही व्यक्त स्थिति रस कोटि की मानी जाती है। जिसके अन्तर्गत नाटक में केवल आठ तथा काव्य में शान्त रस के साथ नवें निर्वेद भाव की भी मान्यता है। ये रस-शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत एवं शान्त आदि हैं। इन नौ रसों के अतिरिक्त रुद्रट प्रभृति आचार्यों के वात्सल्य रस की मान्यता साहित्यदर्पण में भी वर्णित है तथा आधुनिक विद्वानों द्वारा मानी जाती है। रूपगोस्वामी ने भी अपने 'भक्तिरसामृतसिन्धु' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' नामक ग्रंथों में भक्ति रस का प्रतिपादन बड़े विस्तार के साथ किया है। इस प्रकार इन दो रसों के साथ आचार्यों ने आठ से ग्यारह रसों की संख्या मानी है। सम्प्रति इन रसों का विस्तारपूर्वक उल्लेख रामायणमञ्जरी के उदाहरणों द्वारा किया जा रहा है। प्रत्येक रसों के यद्यपि अनेक उदाहरण ग्रंथ में उपलब्ध हैं किन्तु विषय विस्तार के कारण उन सभी का उल्लेख न करके, केवल एक ही उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

१—शृंगार रस—शृंगार वह रस है जिसे रति के स्थायिभाव का अभिव्यञ्जन माना जाता है। शृंगार रस का स्वरूप शृंगार शब्द की व्युत्पत्ति **'शृंगं इच्छति इति शृंगारः'** से ही स्पष्ट हो जाता है।[1] शृंग शब्द से कामुक युगल के उत्पीडक कामादि भावों का बोध होता है। इस प्रकार शृङ्गार का तात्पर्य—जो इस प्रकार के कामोद्भेद से संभूत हो। इस रस के आलम्बन प्रायः उत्तम प्रकृति के ही प्रेमीजन हुआ करते हैं। अर्थात परकीया किंवा अनुरागशून्य वेश्या नायिका को छोड़कर अन्य प्रकार की नायिकाएँ तथा दक्षिण आदि प्रकार के नायक ही इसके उपयुक्त आलम्बन विभाव हैं। यह शृंगार रस विप्रलम्भ और सम्भोग दो प्रकार का होता है।[2] जिनका क्रमशः उल्लेख किया जा रहा है।

(अ) विप्रलम्भ शृङ्गार—विप्रलम्भ शृङ्गार में नायक नायिका का परस्परानु-राग तो प्रगाढ़ हुआ करता ही है किन्तु परस्पर मिलन नहीं होने पाता। यह विप्रलम्भ अभिलाष, ईर्ष्या, विरह, प्रवास तथा शाप रूप पाँच प्रकार के हेतुओं से होने के कारण पाँच प्रकार का होता है।

---

१. सा० द० (३।१८३)
२. सा० द० (३।१८६)

रामायणमञ्जरी में रावण द्वारा सीता का अपहरण कर लिए जाने पर पत्नीरहित राम की विरहावस्था का दृश्य अरण्यपर्व के अन्तर्गत कई स्थलों पर दर्शनीय है। यथा—'वसन्तवर्णनम्' के सन्दर्भ में सीता के वियोग शोक में डूबे हुए राम कहते हैं—हे प्रिये (सीता) यह सुन्दर पुष्पों से युक्त, आमोद का खजाना, बसन्त ऋतु के रमणीय वृक्ष मेरे लिये विषपादप के समान प्रतीत हो रहे हैं। इस प्रकार की शोभन वाणी वाले विरहातुर राम प्रिया के विषय में अनुचिन्तन करते हुए पुष्पों की सुगन्ध से युक्त वायु के द्वारा मूर्छित हो गए।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में सीता-आलम्बन विभाव, वसन्त ऋतु का मादक दृश्य उद्दीपन विभाव, सीता के वियोग में इन मादक दृश्यों के कारण विलाप करना, व्यथित चित्त तथा मोहमूर्छित होना अनुभाव एवं मोह, चिन्ता, स्मृति, जड़ता आदि व्यभिचारिभाव तथा रति स्थायिभाव है।

इसके अतिरिक्त रामायणमञ्जरी में अरण्यपर्व (११२०-११३६), किष्किन्धाकाण्ड (१-६, ४२), अयोध्याकाण्ड (६१७, ६१८), तथा सुन्दरकाण्ड (१४१-१४४) के अन्तर्गत भी विप्रलम्भ शृङ्गार के उदाहरण दर्शनीय हैं।

(ब) संभोग शृङ्गार—परस्पर प्रेम पगे नायक और नायिका के परस्पर दर्शन, परस्पर स्पर्शन, आदि की अनुभूति का प्रदाता जो रस है, वह संभोग शृंगार कहलाता है।[2] आदि शब्द से यहाँ चुम्बन, गाढ़ालिंगन आदि के समुच्चय का बोध होता है।

अरण्यपर्व के अन्तर्गत चित्रकूट वन का रमणीय वातावरण विलास पूर्वक देखते हुए राम अपनी प्रिया सीता के साथ विचरण कर रहे थे। पर्वत, झरनों तथा खिले हुए पुष्पों का सौन्दर्य देखते हुए त्रिपथगा के किनारे एक शिला के पार्श्व भाग पर बैठते हैं। पुनः सीता के मुख चन्द्र को अङ्क में लेकर शिला के पार्श्व भाग पर अंगुली रगड़कर राम उनके माथे पर तिलक लगाते हैं। सीता के मुखमण्डल पर वह तिलक बालेन्दु की भाँति शोभित हो रहा था। हरिणी के समान चञ्चल नेत्रों वाली तथा सुन्दर तिलक से युक्त सीता के मुखमण्डल का राम ने अपलक नेत्रों से देर तक पान किया। कपित्रास के समान चञ्चल नेत्रों वाली सीता राम के कण्ठ से लिपट गयी। प्रिय राम के गाढ़ालिङ्गन से उनके कुचकलश दब गये।[3]

---

१. रामा० मं०, अ० प० (११५४, ११५५)

२. सा० द० (३।२१०)

३. रामा० मं०, अ० प० (११६-१४०)

यहाँ आलम्बन-सीता के प्रति राम का रति भाव प्रदर्शित होता है। चित्रकूट एवं त्रिपथगातीर का मनोहारी एवं मादक दृश्य तथा सीता का रूप सौन्दर्य उद्दीपन विभाव। राम द्वारा, तिलक लगाना, मुख निर्वर्णन, गाढ़ालिङ्गन आदि अनुभाव तथा हर्ष एवं सुरतौत्सुक्य व्यभिचारिभाव हैं।

इसी प्रकार उत्तरकाण्ड (७३३-७४१) तथा अयोध्याकाण्ड (५५७-५६३) में भी संभोग शृंगार के उदाहरण दर्शनीय हैं।

२—हास्य रस—हास्य वह रस है जिसे हास स्थायिभाव का अभिव्यञ्जन कहा जाता है। इसका आविर्भाव आकार-विकृति, वाग्-विकृति, वेष-विकृति, चेष्टा-विकृति किंवा अन्यान्य प्रकार के विकृतियों के वर्णन अथवा अभिनय से हुआ करता है।[1]

सम्पूर्ण रामायणमञ्जरी में हास्य रस का एक भी उदाहरण उपलब्ध नहीं है। पुनः जिस ग्रंथ का अङ्गीरस ही 'करुण' हो जिसका कि ग्रंथ में आद्योपान्त निर्वहण किया गया है, वहाँ हास्य रस की कल्पना समीचीन भी नहीं लगती है।

३—करुण रस—'करुण वह रस है जिसे शोक रूप स्थायिभाव का अभिव्यञ्जन कहा गया है। इसका आविर्भाव इष्ट नाश और अनिष्ट प्राप्ति से सम्भव है।[2] इसका आलम्बन अनिष्ट व्यक्ति है। इसके उद्दीपन वर्ग में दाहकर्म आदि की गणना है। देवनिन्दन, भूमिपतन, क्रन्दन, वैवर्ण्य, उच्छ्वास, निःश्वास, स्तम्भ, प्रलपन आदि अनुभाव तथा निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद और चिन्ता आदि इसके व्यभिचारिभाव हैं।

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत पुत्र राम के वियोग शोक से पीड़ित राजा दशरथ बार-बार विलाप करते हुए प्राण त्याग दिये। राजा को सोया हुआ जानकर शोक संतप्त कौशल्या, राजा की निद्रा भङ्ग न हो, इसलिए निःशब्द विलाप करने लगी। पुनः राजा को मृत देखकर चारों तरफ शोक का अन्धकार छा गया। पुरवासी करुण क्रन्दन करने लगे। कौशल्यादि रानियों के विलाप करते हुए मुख पर गिरते हुए अश्रुकण टूटे हुए मौक्तिक हार के दानों की शोभा को प्राप्त हो रहे थे।[3]

यहाँ राजा दशरथ आलम्बन विभाव, उनकी मृत्यु का दृश्य उद्दीपन विभाव, पुरवासियों तथा कौशल्यादि रानियों का विलाप, अनुभाव, मोह, विषाद, चिन्ता, स्मृति, व्याधि, ग्लानि, जड़तादि व्यभिचारिभाव तथा शोक स्थायिभाव है।

---

१. सा० द० (३।२१४)

२. सा० द० (३।२२२)

३. रामा०, म० अयो० कां० (६८०–६८५)

इसके अतिरिक्त किष्किन्धापर्व (१८०–१८३), अयोध्याकाण्ड (८६५–८७०), अरण्यपर्व (२४, २५ एवं २०७–२१२) तथा युद्धकाण्ड (८७८–८८५, ११६१–११६८ एवं अंतःपुरक्रन्दनम् १–२१) में भी करुण रस के उदाहरण दर्शनीय हैं। इन सभी उदाहरणों में आलम्बन-मृत व्यक्ति हैं, उद्दीपन-मृत्यु का श्रवण या देखना, अनुभाव-अभीष्ट जनों का करुण क्रन्दन तथा व्यभिचारिभाव-मोह, जड़ता, विपाद, चिन्ता, स्मृति, व्याधि, ग्लानि, एवं शोक स्थायिभाव हैं।

४—रौद्र रस—वह रस है जिसका स्थायिभाव क्रोध हुआ करता है। इसमें आलम्बन रूप से शत्रु का वर्णन किया जाता है और शत्रु की चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव का काम करती हैं। इसकी विशेष उद्दीप्ति मुष्टि प्रहार, भूपातन, भयङ्कर मार, शरीर विदारण, संग्राम और संभ्रम आदि से हुआ करती है। इसके अनुभाव-भ्रूभङ्ग, ओष्ठ निदर्शन, बाहुस्फोटन, तर्जन, स्वकृत वीर कर्म वर्णन, शस्त्रोत्क्षेपण, उग्रता, आवेग, रोमाञ्च, स्वेद, कम्प, मद, आक्षेप तथा क्रूर दृष्टि आदि। इसके जो व्यभिचारिभाव हैं उनमें मोह अमर्ष आदि का स्थान है।

युद्धकाण्ड के अन्तर्गत कुम्भकर्ण जब जागकर, अत्यधिक क्रोध संतप्त भाई रावण का आदेश सुना तो शीघ्र ही वहाँ पहुँचकर मुख नीचे किए हुए बोला—आर्य! शत्रु के प्रति यह चिन्ता का ज्वर त्याग दीजिए। आपकी अत्यन्त कुटिल भ्रूभंगिमा मुझे विश्व नाश के लिए प्रेरित कर रही है। हे स्वामी! तीनों लोकों के विनाश में दीक्षित मुझे जो आदर प्राप्त है, ऐसी आपकी मेरे प्रति वाणी अवश्य ही हितकारी सिद्ध होगी। अब मैं अपनी भुजा से स्तम्भित करते हुए शत्रु का विनाश करके तथा उनकी कान्ताओं को चिर काल के लिए व्यग्र करके ही कार्य से निवृत्त होऊँगा। आज युद्ध में वानर, लक्ष्मण तथा राम से रहित लोक को आपके शासन के समक्ष कर दूँगा। आज मैं अकेले जाकर अपनी भुजा और शस्त्रों से शत्रु का विनाश करूँगा।[1]

यहाँ आलम्बन-शत्रु राम-लक्ष्मण एवं वानरी सेना, उद्दीपन, राक्षस सैनिकों का वध एवं क्रोध संतप्त भाई रावण को देखना, अनुभाव-भ्रूभंग, बाहुस्फोटन, स्कृत वीर कर्म वर्णन शस्त्रोत्क्षेपण, उग्रता, आवेग, रोमाञ्च तथा मद आदि व्यभिचारिभाव-अमर्ष तथा स्थायिभाव-क्रोध है।

इसी प्रकार युद्धकाण्ड में अन्य स्थलों (१३३–१५३, ८३४–८३८, ८८१–६०० तथा ११३८–११४३) पर भी रौद्र रस के उदाहरण पाये जाते हैं।

५—वीर रस—वह है जिसे उत्साह रूप स्थायिभाव का आस्वाद कहा गया है। इसके आश्रय उत्तम प्रकृति के वीर व्यक्ति हैं।[2] इसके आलम्बन विजेतव्य शत्रु हैं और इन

---

१. रामा० मं०, यु० कां० ७७८–७८४)

२. सा० द० (३।२३२)

विजेतव्य शत्रु आदि की चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव हैं। युद्धादि की सामग्री किंवा अन्यान्य सहायक साधनों के अन्वेषक इसके अनुभाव हैं। धृति, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमाञ्च आदि इसके व्यभिचारिभाव हैं।

आचार्य विश्वनाथ ने वीर रस को युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर तथा दयावीर चार प्रकार का माना है।[1] सम्प्रति रामायणमञ्जरी के उदाहरणों द्वारा इनका क्रमशः उल्लेख किया जा रहा है।

युद्धवीर—रामायणमञ्जरी एक युद्ध प्रधान ग्रंथ होने के कारण युद्धवीर के उदाहरणों से भरा पड़ा है। यथा—युद्धकाण्ड के अन्तर्गत युद्धस्थल में वानरों को देख कर कुम्भकर्ण ने मद भरी गर्जना किया जिससे सम्पूर्ण पृथ्वी तथा अन्य छोटे-बड़े स्थल कम्पित हो गये। आकाश तथा सभी दिशाओं के तट बाणों से पूरित हो गये। उसे देखकर सम्पूर्ण वानरी सेना तथा दिशाएँ संत्रस्त हो गयी। वज्र के प्रहार से वेगपूर्वक वानरी सेना को रौंदते हुए वह विशाल पर्वताकार प्रतीत हो रहा था। सम्पूर्ण वानरों को व्याकुल करते हुए उसने भयङ्कर आवाज किया। प्रहारोद्यत उसके काल रूप को देखकर वानर तथा दिशाएँ त्रास भाव को प्राप्त हो गयी। इसके बाद क्रोधोद्धत, भुजशाली कुम्भकर्ण ने सुग्रीव के वक्षःस्थल पर वृक्ष से प्रहार किया। उसे आहत कर वह विकट मुख वाला कुम्भकर्ण क्रोधपूर्वक हँसते हुए सुग्रीव के ऊपर पुनः शूल से आक्रमण किया। सुग्रीव ने उस शूल को भङ्ग कर दिया। शूल भङ्ग से कुपित कुम्भकर्ण ने पुनः ज्वाला की भाँति बाण से कपीश्वर पर प्रहार किया। आहत होकर सुग्रीव मूर्छित हो, पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसके बाद प्रसन्नचित्त कुम्भकर्ण लङ्का की ओर चल दिया।[2]

यहाँ विजेतव्य शत्रु रीछ तथा वानर आदि आलम्बन, उनके द्वारा राक्षसी सेना का वध एवं नाना क्रीडाएँ उद्दीपन, युद्धादि की सामग्री, शस्त्रों का प्रहार, सुग्रीव आदि वानरों को आहत करना अनुभाव, गर्व, रोमाञ्च, धृति, मति, आवेग, हर्ष आदि व्यभिचारि भाव एवं उत्साह स्थायिभाव है।

इसके अतिरिक्त युद्धकाण्ड (१२८१–१२८७), उत्तरकाण्ड (८७६–८८०) तथा बालकाण्ड, अरण्य पर्व एवं किष्किन्धा पर्व के अनेक स्थलों पर युद्ध वीर के उदाहरण सुलभ हैं।

दानवीर—उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत महाराज नृग की दानवीरता का परिचय मिलता है। प्राचीनकाल में नृग ने ब्राह्मणों को करोड़ों गायें तथा सहस्त्रों पुष्कर प्रदान

---

१. सा० द० (३।२३४)

२. रामा० मं०, यु० कां० (७८८–८३३)

प्रदान किया था।[1] यहाँ महाराज नृग का दान के प्रति उत्साह स्थायिभाव दर्श-नीय है।

इसके अतिरिक्त राम-सीता विवाह के अवसर पर जनक और दशरथ की दान-वीरता का उदाहरण मिलता है।[2] रामाश्वमेध यज्ञ के उपरान्त स्वर्ण तथा अन्य रत्नों की राशि अलग-अलग मुनियों को बाँटा गया।[3] यहाँ राम की दानवीरता का परिचय मिलता है।

धर्मवीर—धार्मिक क्रिया के प्रति उत्साह स्थायिभाव धर्मवीरता कहलाता है। यज्ञादि का अनुष्ठान भी धार्मिक क्रिया के अन्तर्गत आता है। उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत सर्वप्रथम राम द्वारा राजसूय यज्ञ करने का विचार करना। पुनः भरत द्वारा उसका विरोध करने पर लक्ष्मण के मतानुसार अश्वमेध यज्ञ का विधिवत् सम्पादन करना[4] आदि में राम की धर्मवीरता का परिचय मिलता है।

दयावीर—सम्पूर्ण रामायणमञ्जरी में राम की दयावीरता के अनेक स्थल सुलभ हैं। यथा—अहल्या तथा शबरी के प्रति उनकी दया का उत्साह दर्शनीय है।

६—भयानक रस—वह रस है जिसे भय रूप स्थायिभाव का आस्वाद कहा जाता है। इसका आलम्बन भयोत्पादक पदार्थ है और ऐसे भयोत्पादक पदार्थ की भीषण चेष्टाएँ इसके उद्दीपन विभाव का काम करती हैं। विवर्णता, गद्गद भाषण, प्रलय, स्वेद, रोमाञ्च, कम्प, इतस्ततः अवलोकन आदि इसके अनुभाव हैं। इसके व्यभिचारिभावों में जुगुप्सा, आवेग, संमोह, संत्रास, ग्लानि, दीनता, शङ्का, अपस्मार तथा मरण आदि आते हैं।

बालकाण्ड के अन्तर्गत विवाहोपरान्त जब राजा दशरथ रामादि पुत्रों एवं बहुओं के साथ अयोध्यापुरी के लिए प्रस्थान किए तो मार्ग में—भगवान सूर्य के प्रकाश को तिरस्कृत कर अन्धकार फैलाते हुए, क्रोध के कारण विवेक हीन एवं पृथ्वी को कम्पित करते हुए, मार्ग से उठती हुई धूल से समस्त लोक को कालरजनी के समान घोर अन्धकार युक्त करते हुए, दिशाओं एवं आकाश को जलाते हुए वड़वाग्नि की ज्वाला के समान घोर रूप धारण किए हुए भार्गव (परशुराम) को आते हुए देखा। अग्नि की ज्वाला के समान कुठार हाथ में लिए, सुमेरु पर्वत के शिखर पर चमकते हुए सूर्य की कान्ति वाले, विधिवत्

१. रामा० मं०, उ० कां० (८३८)
२. रामा० मं०, अयो० कां० (५५२, ५५३)
३. रामा० मं०, उ० कां० (१२१५)
४. रामा० मं०, उ० का० (११०१–११७०)

गुम्फित जटा वाले, बादलों में लटकती हुई विद्युत्कान्ति के सदृश भौहों वाले, अत्यन्त क्रोध के कारण स्फुरित होंठों वाले, क्षत्रियों के विनाशार्थ काल के समान अर्जुनदण्ड, कमण्डल तथा मृत्यु दन्तावलियों से युक्त कुठाराग्र को हाथों में आन्दोलित करते हुए, क्षत्रियों के विनाश से संसक्त रक्त धारा वाले कुठारयुक्त परशुराम को देखकर दशरथ तथा वशिष्ठादि मुख्य ऋषिगण भयाकुल हो प्रणाम करके उनकी पूजा करने लगे ।[1]

यहाँ परशुराम आलम्बन विभाव, उनका भयानक वेष एवं क्षत्रियों के प्रति प्रलयंकारी रूप, उद्दीपन विभाव, वशिष्ठ आदि मुनियों का प्रणाम एवं पूजा इत्यादि प्रारम्भ करना अनुभाव, शङ्का, संत्रास तथा दीनता आदि व्यभिचारिभाव एवं भय स्थायिभाव दर्शनीय है ।

७—वीभत्स रस—वह रस है जिसे जुगुप्सा स्थायिभाव का अभिव्यञ्जन माना जाता है ।[2] इसके आलम्बन दुर्गन्धमय मांस, रक्त, चर्बी आदि हैं । इन्हीं दुर्गन्धमय मांसादि में कीड़े पड़ने आदि को इसका उद्दीपन विभाव माना जाता है । निष्ठोवन, (थूकना), आलस्यवलन (मुँह फेरना), नेत्र संकोचन आदि अनुभाव तथा मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि तथा मरण व्यभिचारिभाव है ।

रामायणमञ्जरी में वीभत्स रस के उपर्युक्त लक्षणों को पूर्णरूपेण चरितार्थ करने वाले उदाहरण तो नहीं मिलते किन्तु उनसे किञ्चित साम्य रखने वाला एक उदाहरण उत्तरकाण्ड (श्वेतोपाख्यान) में दर्शनीय है—अगस्त्य मुनि ने सुन्दर केयूर, कुण्डलों से युक्त एक दिव्य पुरुष को विमान से उतरकर शव के पास जाते हुए देखा । वह यथा इच्छानुसार शव के मज्जा एवं मांस को खाकर तथा सरोवर में पानी पीकर आकाशमार्ग से जाने के लिए विमान पर चढ़ा । मुनि के द्वारा उसके इस वीभत्स कार्य के विषय में पूँछने पर उसने कहा—भूख एवं प्यास से पीड़ित होने के कारण मेरे द्वारा यह भोजन किया जाता है । ब्रह्मा ने मुझे अपने शरीर को खाने का यह आहार दिया है । उन्होंने यह भी कहा था कि कालान्तर में महातपस्वी अगस्त्य द्वारा तुम्हें अपने शरीर के भोजन करने वाले इस वीभत्स कार्य से मुक्त किया जाएगा । तब से निरन्तर मैं अपने इस शव का भक्षण करता हूँ । आपका दर्शन हो जाने से आज मेरे पाप विनष्ट हो गये ।[3]

यहाँ आलम्बन–राजा श्वेत, उद्दीपन–उनके द्वारा अपने ही शव की मज्जा एवं मांस खाना, अनुभाव–अगस्त्य द्वारा उनके इस वीभत्स कार्य के विषय में पूँछना,

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (५७३–५८५)

२. सा० द० (३।२९)

३. रामा० मं०, उ० कां० (१०६६–१०७८)

व्यभिचारिभाव—मोह, अपस्मार, रोमाञ्च, चिन्ता, मति आदि एवं जुगुप्सा स्थायिभाव है।

८—अद्भुत रस—वह रस है जिसे विस्मय के स्थायिभाव का अभिव्यञ्जन माना जाता है। इसका आलम्बन—अलौकिक वस्तु है। अलौकिक वस्तु का गुण-कीर्तन इसका उद्दीपन है। स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, गद्गद स्वर, संभ्रम, नेत्र विकास आदि अनुभाव तथा वितर्क, आवेग हर्ष आदि व्यभिचारिभाव है।

उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत अयोध्या नरेश राम के दरबार में लव-कुश का गीत सुनकर आश्चर्य से सभी लोगों के सिर हिलने लगे। राम, उनके भाई, नृपगण, मुनिगण, कपि एवं राक्षस सभी उनके काव्य एवं गीत के श्रवण से आश्चर्य चकित तथा चित्रलिखित से हो गए। उन दोनों को देखकर आश्चर्ययुक्त सभी लोगों में परस्पर वार्तालाप की आवाज उठने लगी। आनन्द विभोर सभी लोग—अहो! क्या गीत है, क्या काव्य है, कैसे ये दोनों कुमार हैं तथा इन दोनों के समान तीनों लोकों में विद्याधर नहीं हैं आदि आश्चर्ययुक्त एवं प्रशंसा युक्त शब्दों से वातावरण परिपूर्ण हो गया।[1]

यहाँ आलम्बन–लव-कुश, उद्दीपन–उनके मनोहर काव्य एवं गीत का श्रवण, अनुभाव–स्तम्भ, रोमाञ्च, गद्गद स्वर, संभ्रम, नेत्र विकास आदि तथा वितर्क, आवेग, हर्ष आदि व्यभिचारिभाव है।

९—शान्त रस—वह रस है जिसमें शम स्थायिभाव का आस्वाद हुआ करता है। इसके आश्रय उत्तम प्रकृति के व्यक्ति हैं।[2]

अरण्य पर्व के अन्तर्गत भरत जब राम से पादुका लेकर अयोध्यापुरी पहुँचते हैं तो सम्पूर्ण नगरी शोकाक्रान्त, अलङ्कार विहीन नव विधवा की तरह प्रतीत हो रही थी। अयोध्या की मलिनता एवं वैभवहीनता आदि का विशद वर्णन करते हुए भरत कहते हैं कि राम का वनवास, माताओं का कष्ट तथा राजा से विहीन यह पुरी मुझे बहुत पीड़ित कर रही है। अतः अब मैं रामागमन की अवधि तक नन्दिग्राम में निवास करूँगा। इसके बाद सिंहासन पर राम की पादुका रखकर जटा, वल्कल तथा फलाशन के द्वारा नन्दिग्राम में अपना व्रत प्रारम्भ कर दिया।[3]

यहाँ भरत द्वारा निःसारता का अनुभव आलम्बन, राम वनवास, पितृशोक, मातृ कष्ट एवं राजा विहीन अयोध्यापुरी को देखना आदि उद्दीपन, जटा, वल्कल तथा फलाशन

---

१. रामा० मं०, उ० कां० (११७४–२१७७)

२. सा० द०, (३।२४५)

३. रामा० मं०, अ० प० (३०६–३२३)

के द्वारा नन्दिग्राम में निवास अनुभाव, निर्वेद, ग्लानि, विषाद, चिन्ता आदि व्यभिचारिभाव तथा शम स्थायिभाव है।

रामायणमञ्जरी में छन्द

छन्दशास्त्र के आदि आचार्य के रूप में पिङ्गल मुनि ही सुप्रसिद्ध हैं। यद्यपि कि पिङ्गल सूत्रों में उनके पूर्व के कई अन्य छन्द-शास्त्रकारों का भी उल्लेख प्राप्त होता है, परन्तु, 'यशः पुण्यैरवाप्यते' के अनुसार पिङ्गल मुनि को ही छन्दशास्त्र का जनक कहा जाता है। पिङ्गल मुनि के परवर्ती छन्दशास्त्रकारों की सुदीर्घ शृङ्खला में' सुवृत्ततिलक' के प्रणेता आचार्य क्षेमेन्द्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। क्षेमेन्द्र ने अपने इस ग्रंथ के तीन विन्यासों में छन्दों के लक्षण, उनके गुण-दोषों का वर्णन तथा छन्दों के उचित प्रयोग को समुचित ढङ्ग से समझाने का प्रयास किया है। यथा—आचार्य क्षेमेन्द्र की मान्यता है कि काव्य में रस एवं वर्णन के अनुरूप समस्त छन्दों का प्रयोग करना चाहिए[1]—

काव्ये रसानुसारेण वर्णानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित ॥

महाकवि क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रंथ 'रामायणमञ्जरी' में विभिन्न प्रकार के छन्दों का जाल बिछाने का प्रयास नहीं किया है, अपितु कुछ प्रमुख छन्दों में ही कथानक तथा सम्पूर्ण काव्य को सजाया है। प्रायः महाकवि एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग करते हैं। एक सम्पूर्ण दृश्य का चित्र अनुष्टुप छन्द में कर देने में क्षेमेन्द्र को विशेष सफलता मिली है। उत्तरकाण्ड के अन्तिम कुछ स्थलों तथा किष्किन्धाकाण्ड के कुछ श्लोकों को छोड़कर प्रायः सर्वत्र श्लोक छन्द का ही प्रयोग हुआ है। इस प्रकार रामायणमञ्जरी में कवि ने लगभग आठ छन्दों का प्रयोग किया है, जो इस प्रकार हैं—अनुष्टुप, उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, वसन्ततिलका, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित। सम्प्रति इन छन्दों का लक्षण तथा उदाहरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

१—अनुष्टुप—रामायणमञ्जरी का विहंगम दृष्टि से अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को अनुष्टुप बहुत प्रिय थे। एक श्लोक छन्द में सम्पूर्ण रामकथा का इतना जीवन्त चित्रण करना निश्चय ही गुरुतर कार्य है। ग्रंथकार की मान्यता है कि सर्ग के आरम्भ में, कथा के सविस्तार वर्णन में एवं वैराग्यपूर्ण उपदेश वर्णन में अनुष्टुप का प्रयोग प्रशंसनीय होता है[2]—

---

१. सु० ति० (३।७)

२. सु० ति० (३।१६)

आरम्भे सर्गबन्धस्य कथाविस्तारसंग्रहे ।
शमोपदेशवृत्तान्ते सन्तः संशन्त्यनुष्टुभम् ॥

आठ अक्षरों के चरण वाले छन्द को अनुष्टुप कहते हैं। इसका छठाँ अक्षर एवं प्रथम तथा द्वितीय चरणों का सातवाँ अक्षर दीर्घ होता है तथा पाँचवाँ अक्षर एवं दितीय चतुर्थ चरण का सातवाँ अक्षर लघु होता है।[1] अनुष्टुप का सामान्य लक्षण आचार्यों ने इस प्रकार किया है—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमम दीर्घमन्ययोः ॥

ग्रंथकार की मान्यता के अनुसार (सर्ग के आरम्भ का अनुष्टुप प्रशंसनीय होता हैं) रामायणमञ्जरी के प्रारम्भ का श्लोक उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा ।
अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना ॥

प्रस्तुत श्लोक के प्रत्येक चरण में आठ अक्षर हैं, जिसमें पंचम अक्षर प्रत्येक चरण में लघु है, षष्ठ अक्षर प्रत्येक चरण में गुरु है तथा सतम अक्षर केवल द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में लघु है।

रामायणमञ्जरी में प्रयुक्त अनुष्टुप अधोलिखित हैं—

१—बालकाण्ड तथा अयोध्याकाण्ड	श्लोक सं० १ से ६८७ तक।
२—अरण्यपर्व	श्लोक सं० १ से ११५८ तक।
३—किष्किन्धापर्व	श्लोक सं० १ से २१४ तक।
४—किष्किन्धाकाण्ड	श्लोक सं० १ से ५६७ तक।
५—सुन्दरकाण्ड	श्लोक सं० १ से ७०५ तक।
६—युद्धकाण्ड	श्लोक सं० १ से १२६८ तक।
७—अन्तःपुरप्रलापः, रावणसत्क्रिया, विभीषणाभिषेकः, वह्निप्रवेशः, महापुरुषस्तवः, लोकपालदर्शनम्, पुनराख्यायिकम्	श्लोक सं० १ से १३६ तक।
८—उत्तरकाण्ड	श्लोक सं० १ से १२६१ तक।
९—ग्रंथ समाप्ति	श्लोक सं० १, ३, ४, ५, ६, ६।

१. श्रुतबोध (१०)

इस प्रकार सम्पूर्ण रामायणमञ्जरी में केवल ६२ श्लोकों को छोड़कर शेष सभी अनुष्टुप छन्द में ही वर्णित श्लोक हैं। आचार्य क्षेमेन्द्र ने अनुष्टुप छन्दों के विषय में कहा कि जो यह नियम है कि पंचम लघु रहे तथा षष्ठ गुरु रहे—यह सार्वत्रिक नियम नहीं है, क्योंकि बड़े-बड़े प्रबन्धों में इसका व्यभिचार भी देखा जाता है। इसलिए सार्वत्रिक नियम श्रव्यता हो कहा जा सकता है।[1]

२—उपजाति—यह वृत्त संकीर्ण होता है। जहाँ एक ही पद्य के कुछ चरणों में उपेन्द्रवज्रा के एवं कुछ में इन्द्रवज्रा के लक्षण घटित हों वहाँ उपजाति वृत्त होता है। 'छन्दोमञ्जरी' में इसका लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु स्मरन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥

उदाहरणार्थ रामायणमञ्जरी (पुनराख्यायिकम्) का यह श्लोक प्रस्तुत किया जा रहा है[2]—

इयं सरित्सा सरयूरयोध्यावधूनिबद्धा मणिमेखलेव।
करोति वेल्लत्कलहंसमालाकोलाहलैर्विभ्रमशिञ्जितानि ॥

प्रस्तुत श्लोक उपजाति छन्द में है। इसके चार चरणों में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय चरण उपेन्द्रवज्रा हैं तथा चतुर्थ चरण इन्द्रवज्रा है। रामायणमञ्जरी में अधोलिखित उपजाति छन्द हैं—

रामायणमञ्जरी (पुनराख्यायिकम्, भरतानन्दः, भरतसमागमः, रामाभिषेकः)—
१४१, १४२, १४३, १४६, १४७, १४८, १५०, १५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६८, १६९, १७०, १७२, १७३, १७४, १७५, १७७, १७८, १७९, १८०, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८८, १९१।

इस प्रकार केवल ३६ श्लोक उपजाति छन्द में प्रयुक्त हैं। उपजाति के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र की मान्यता है कि—शृंगार रस में आलम्बन भूत नायिका के वर्णन में एवं उद्दीपन स्वरूप वसन्त ऋतु आदि के वर्णन में इस छन्द से सुतरां कान्तियुक्त होते हैं।[3]

३—इन्द्रवज्रा—जिस छन्द के प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण तथा दो गुरु वर्ण क्रमशः हों, उसे इन्द्रवज्रा कहते हैं—

---

१. सु० ति० (२।४, ५)

२. रामा० मं०, (पुनराख्यायिकम्)—१५०

३. सु० ति० (३।१७)

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।[1]

आचार्य क्षेमेन्द्र ने इन्द्रवज्रा का लक्षण इस प्रकार दिया है—

तकाराभ्यां जकारेण युक्तं गुरु युगेण च ।
इन्द्रवज्राभिधं प्राहुर्वृत्तमेकादशाक्षरम् ॥[2]

रामायणमञ्जरी (पुनराख्यायिकम्, भरतानन्दः, भरतसमागमः तथा रामाभिषेकः) के श्लोक संख्या—१४४, १४५, १४८, १५६, १५७, १६६, १६७, तथा १७६ इन्द्रबज्रा छन्द में प्रयुक्त हैं। उदाहरणार्थ[3]—

सोऽयं गिरीन्द्रः सुमहान्महेन्द्रः वलान्तः कपीन्द्रेण विलङ्घनेऽब्धेः ।
मानोन्नतः साधुरिवाकुलीनो याञ्चा हि सा खर्वशिरा बभूव ॥

प्रस्तुत उदाहरण के प्रत्येक चरण में दो तगण एक जगण तथा दो गुरु वर्ण क्रमशः आए हुए हैं, साथ ही प्रत्येक चरश में ११ अक्षर हैं। यति प्रत्येक चरण के अंत में होती है।

४—उपेन्द्रवज्रा—जिस छन्द में क्रमशः जगण, तगण, जगण और उसके बाद क्रमशः दो गुरु वर्ण आए उसे उपेन्द्रवज्रा कहते हैं। यति चरणान्त में होती है—

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।[4]

क्षेमेन्द्र ने उपेन्द्रवज्रा का लक्षण इस प्रकार से दिया है[5]—

जतजैर्गुरुयुग्मेन संसक्तैरूपलक्षितम् ।
वदन्त्युपेन्द्रवज्राख्यं वृत्तमेकादशाक्षरम् ॥

रामायणमञ्जरी (भरतानन्दः तथा भरतसमागमः) में श्लोक संख्या—१५८, १५९, १७१ तथा किष्किन्धाकाण्ड में श्लोक संख्या—५७२ उपेन्द्रवज्रा छन्द में प्रयुक्त हैं।

उदाहरण[6]—निशम्य तस्मात्कुशलं गुणाब्धेः कृतं च दीप्तं भरतस्य राज्ञः ।
पुनः प्रहर्षाय समीरसूनुं मनःसमानं विससर्ज वक्तुम् ॥

प्रस्तुत छन्द के प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण तथा दो गुरु वर्ण क्रमशः प्रयुक्त हैं, साथ ही प्रत्येक चरण में ११ अक्षर हैं।

---

१. वृत्त० र० (३।५८)
२. सु० ति० (१।१८)
३. रामा० मं०, (पुनराख्यायिकम्)—१४४
४. वृत्त० र० (३।२९)
५. सु० ति० (१।१९)
६. रामा० मं०, (भरतानन्दः)—१५९

५—मालिनी—जिस छन्द के प्रत्येक चरण में नगण, नगण, मगण, यगण तथा यगण आए उसे मालिनी छन्द कहते हैं। इसके प्रत्येक चरण में १५ अक्षर होते हैं, साथ ही साथ भोगी अर्थात् नाग (=८) तथा लोक (=७) संख्यक अक्षरों पर यति होती है।

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।[१]

आचार्य क्षेमेन्द्र द्वितीयार्द्ध में समासयुक्त मालिनी को श्रेष्ठ एवं प्रथमार्ध में समास-युक्त को अवर माना है। अन्त में विसर्ग की स्थिति आवश्यक है।[२] क्षेमेन्द्र सर्गान्त में ही मालिनी छन्द के प्रयोग को उपयुक्त मानते हैं।[३] उनके द्वारा मालिनी का लक्षण इस प्रकार दिया गया है[४]—

अष्टाक्षरविरामेण युक्तं ननमयैः सयैः ।
वदन्ति मालिनीनाम वृत्तं पञ्चदशाक्षरम् ॥

रामायणमञ्जरी में अधोलिखित श्लोक मालिनी छन्द में प्रयुक्त हैं।

किष्किन्धाकाण्ड	श्लोक सं० ५७२
रामाभिषेकः	श्लोक सं० १८३
उत्तरकाण्ड	श्लोक सं० १२६३
ग्रंथ समाप्ति	श्लोक सं० ७ एवं ८

उदाहरणार्थ रामायणमञ्जरी के उत्तरकाण्ड का अन्तिम श्लोक प्रस्तुत किया जा रहा है[५] क्योंकि ग्रंथकार सर्गान्त में मालिनी छन्द के प्रयोग को हीं उपयुक्त मानते हैं।

इति दुरितविरामः कीर्तिकान्ताभिरामः,
सुजनहृदयरामः कोप्यभूद्यः स रामः ।
प्रकृतमनुसरामः पापपाशं तरामः,
सुकृतभुवि चरामस्तस्य नाम स्मरामः ॥

प्रस्तुत श्लोक के प्रत्येक चरण में दो नगण एक मगण तथा दो यगण हैं तथा प्रत्येक चरण में १५ अक्षर हैं।

---

१. वृत्त० र० (३।८७)

२. सु० ति० (२।२२, २३)

३. सु० ति० (३।१८)

४. सु० ति० (१।३०)

५. रामा० मं०, उ० कां० (१२६३)

६—**स्रग्धरा**—प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, रगण; भगण, नगण तथा तीन यगणों से युक्त और तीन बार मुनि (=७) संख्यक अक्षर पर यति वाली छन्द रचना स्रग्धरा कही जाती है।

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम ॥[1]

क्षेमेन्द्र ने स्रग्धरा का लक्षण इस प्रकार दिया है[2]—

युक्तं मरभनैर्यैश्च त्रिभिः सप्ताक्षरैस्त्रिभिः ।
छेदैश्च स्रग्धरावृत्तमेकविंशाक्षरं विदुः ॥

रामायणमञ्जरी में किष्किन्धाकाण्ड के श्लोक संख्या–५६८, ५७० तथा ५७३ स्रग्धरा छन्दों में प्रयुक्त हैं। उदाहरणार्थ—

वेगस्पृष्टेन धृत्वा गगनजलनिधौ सेतुबन्धानुकारं,
दत्वा स्फोरं मुहूर्तं दिनकरकमले नाललीलाविलासम् ।
लाङ्गूलेनाशु कृत्वा दिशि दिशि स मुहुर्मानदण्डाभियोगं,
लङ्कातङ्काभिशङ्काप्रथमपरिचयं केतुनेवादिदेश ॥

प्रस्तुत श्लोक के प्रथम चरण में क्रमशः मगण, रगण, भगण, नगण तथा तीन यगण मिलकर २१ अक्षर हैं।

क्षेमेन्द्र के अनुसार आकार या गुरु से प्रारम्भ, अन्त में अलुप्त विसर्ग तथा प्रवाहमयता से इस छन्द की शोभा बनती है।[3] कात्यायन के अनुसार वीरों के भुजदण्ड वर्णन में—**'वीरस्य भुजदण्डानां वर्णने स्रग्धरा भवेत्'** तथा क्षेमेन्द्र के अनुसार आवेग एवं पवन आदि के वर्णन में इसका प्रयोग होना चाहिए—

सावेग पवनादीनां वर्णने स्रग्धरा भवेत ॥[4]

७—**वसन्ततिलका**—(प्रत्येक चरण में १४ अक्षर)

उक्ता वसन्ततिलका तभजाजगौ गः ॥[5]

वसन्ततिलका उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, भगण, जगण, जगण तथा दो गुरु वर्ण आएँ। आचार्य कश्यप इसे सिंहोन्नता तथा आचार्य सैतव उद्धर्षिणी कहते हैं।

---

१. वृत्त० र०, (३।१०४)
२. सु० ति०, (१।३७)
३. सु० ति०, (३।४१, ४२)
५. सु० ति० (३।२२)
६. वृत्त० र०, (३।७९)

सुवृत्त तिलक में वसन्ततिलका का लक्षण इस प्रकार वर्णित है[1]—

अभिज्ञातं तभजंजरन्तासगुरुद्वयम् ।
चतुर्दशाक्षरं वृत्तं वसन्ततिलकं विदुः ।।

रामायणमञ्जरी में वसन्ततिलका छन्द अधोलिखित श्लोकों में प्रयुक्त है—

किष्किन्धाकाण्ड	श्लोक सं० ५६८
रामाभिषेकः	श्लोक सं० १८८, १८०, १८२
उत्तरकाण्ड	श्लोक सं० १२६३

ग्रंथकार के अनुसार वीर एवं रौद्र रस के सन्दर्भ में वसन्ततिलका का प्रयोग विशेष उपयुक्त होता है—वसन्ततिलकं भाति संकरे वीररौद्रयोः ।[2] इसी सन्दर्भ में रामायणमञ्जरी का यह श्लोक उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

व्योम्नि व्रजन्स विदधे विबुधावनीषु,
नानाविमानवनकेतुदुकूलपालीम् ।
उरुप्रबन्धपृथुवेगविनिर्गतोग्र-
वातैः प्रचण्डतरताण्डवकेलिलीलाम् ।।

प्रस्तुत उदाहरण के प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, भगण तथा दो जगण मिलकर क्रमशः १४ अक्षर हैं ।

८—शार्दूलविक्रीडित—(प्रत्येक चरण में १८ अक्षर)

सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।।[3]

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण तथा एक गुरु आए उसे शार्दूलविक्रीडित कहते हैं । इस छन्द में सूर्य (=१२) तथा अश्व (=७) संख्यक अक्षरों पर यति होती है ।

ग्रंथकार ने सुवृत्ततिलक में इस वृत्त का लक्षण इस प्रकार से किया है[4]—

मसजः सततगेन युक्तमेकोनविंशत् ।
शार्दूलविक्रीडितं पाहुश्छिन्नं द्वादशसप्तभिः ।।

आचार्य क्षेमेन्द्र का कहना है कि नृपादि की बल प्रशंसा में इस छन्द का प्रयोग होना चाहिए—शौर्यस्तवे नृपादीनां शार्दूलविक्रीडितं मतम् ।[5] उनकी मान्यता है कि

---

१. सु० ति० (१।२८)
२. सु० ति० (३।१८)
३. वृत्त० र० (३।१००)
४. सु० ति० (१।३६)
५. सु० ति० (३।२२)

इस छन्द में तभी उर्जस्विता आती है जब कि आदि का अक्षर 'आ' से प्रारम्भ हो, पाद का अन्तिम वर्ण विसर्गयुक्त हो, पहले दोनों पाद विच्छिन्न हों तथा बाद के दोनों समास-युक्त हों।[1]

सम्पूर्ण रामायणमञ्जरी में केवल एक छन्द शार्दूलविक्रीडित है जो उत्तरकाण्ड की समाप्ति के बाद ग्रंथ समाप्ति के सन्दर्भ में आया हुआ प्रथम श्लोक है—

भोगार्हे नवयौवनेऽपि विपिने चीराम्बरो राघव–
तत्राप्यस्य परेण दारहरणं क्लेशस्तदन्वेषणे।

सम्प्राप्तापि जनापवादरजसा त्यक्ता पुनर्जानकी,
सर्वं दुःखमयं तदन्तु भवतां श्लाघ्यो विवेकोदयः॥

प्रस्तुत उदाहरण के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण तगण तथा एक गुरु मिलकर १९ अक्षर हैं।

रामायणमञ्जरी में अलङ्कार

औचित्य सम्प्रदाय के प्रवर्तक, सुवृत्ततिलक, कविकण्ठाभरण तथा औचित्यविचार-चर्चा आदि ग्रंथों के रचयिता आचार्य क्षेमेन्द्र की शास्त्रीय प्रतिभा अनूठी थी। उन्होंने अपने उपर्युक्त ग्रंथों में रस, छन्द एवं अलङ्कारों के समुचित प्रयोग तथा लक्षण आदि के विस्तृत विवेचन के साथ विभिन्न शास्त्रीय विषयों पर भी विचार विमर्श किया है। इसके द्वारा अचार्य क्षेमेन्द्र की अलङ्कारादि विषयक प्रौढ़ता का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। अन्य काव्यों एवं कृतियों की तरह आचार्य ने रामायणमञ्जरी में भी विभिन्न अलङ्कारों का प्रयोग किया है। यद्यपि रामायणमञ्जरी में अलङ्कारों के प्रति कवि ने किसी मोह का प्रदर्शन नहीं किया है, फिर भी यत्र-तत्र अनुप्रास तथा अर्थालङ्कारों की स्वाभाविक छटा दर्शनीय और प्रशंसनीय है। इस स्थल पर आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा रामायणमञ्जरी में प्रयुक्त कतिपय प्रमुख अलंकारों को सोदाहरण स्पष्ट किया जा रहा है क्योंकि विषय विस्तार के कारण प्रत्येक अलङ्कारों के सभी उदाहरण प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। अतः रूपक, दीपक, अर्थान्तरन्यास, विभावना, निदर्शना, दृष्टान्त, समासोक्ति, पर्यायोक्त, उदात्त, परि-संख्या, व्यतिरेक तथा अनुप्रास आदि कुछ अलङ्कारों की सोदाहरण पुष्टि की जा रही है।

१—रूपक अलङ्कार—तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।[1]

उपमान और उपमेय का, जिनका भेद प्रसिद्ध है उनका सादृश्यातिशयवश जो अभेद वर्णन है, वह रूपक अलङ्कार है। उदाहरण—

---

१. का॰ प्र॰, दशम उल्लास, सू॰ (१३८)

उदिते गगनाम्भोधि कौस्तुभे विपुलप्रभे ।
मित्रे जगत्त्रयीनेत्रशतपत्रविकासिनि ॥[1]

आकाश रूपी समुद्र से उद्भूत होने वाले कौस्तुभ मणि के समान अत्यधिक प्रकाशयुक्त, तीनों लोकों के नेत्रकमलों का विकास करने वाले सूर्य के उदित होने पर,

यहाँ 'गगनाम्भोधि' तथा 'जगत्त्रयीनेत्रशतपत्र' में अभेद वर्णन होने के कारण रूपक अलङ्कार है।

२—दीपक अलङ्कार—

सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मना ।
सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम् ॥[2]

जहाँ एक ही क्रियादि रूप धर्म का अनेक कारकों के साथ सम्बन्ध हो वहाँ क्रिया-दीपक नामक दीपक का एक भेद होता है। इसी प्रकार जहाँ बहुत सी क्रियाओं में एक ही कारक का ग्रहण हो, वह दीपक अलङ्कार का दूसरा भेद अर्थात कारकदीपक होता है। क्रियादीपक का यह उदाहरण दर्शनीय है—

मानं मार्ष्टि मतिं हन्ति जनयत्येव लाघवम् ।
एवंरूपः प्रयत्नोऽस्याः प्रायेणाविषये रतिः ॥[3]

इसका इस तरह का प्रयत्न है। प्रायः अपात्र में प्रेम मान को समाप्त कर देता है, बुद्धि को नष्ट कर देता है और लघुता को उत्पन्न कर देता है।

यहाँ 'अविषये रतिः' के साथ मानं मार्ष्टि, मतिं हन्ति, जनयत्येव लाघवम् आदि कारकों का सम्बन्ध होने के कारण यह क्रियादीपक का उदाहरण है।

३—अर्थान्तरन्यास—

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणे तरेण वा ॥[4]

सामान्य अथवा विशेष का उससे भिन्न अर्थात् सामान्य का विशेष के द्वारा अथवा विशेष का सामान्य के द्वारा जो समर्थन किया जाता है, वह अर्थान्तरन्यास अलङ्कार साधर्म्य तथा वैधर्म्य से दो प्रकार का होता है।

---

१. रामा० मं०, सु० कां० (१६४)

२. का० प्र०, १०, सू० (१५५)

३. रामा० मं०, सु० कां० (२५३)

४. का० प्र०, १०, सू० (१६४)

कुमुद्वतीं परित्यज्य लक्ष्मीर्भेजे सरोजिनीम् ।
प्रायः पर्यायगामिन्यः संपदोविपदस्तथा ॥[1]

लक्ष्मी कुमुद्वती को छोड़कर कमलिनी के पास पहुँच गयी, सम्पतियाँ और विपत्तियाँ प्रायः क्रमशः आने-जाने वाली होती हैं ।

यहाँ प्रथम (विशेष) वाक्य का द्वितीय (सामान्य) वाक्य के द्वारा समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ।

४—विभावना—क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना ।[2]

कारण का निषेध होने पर भी फल की उत्पत्ति का वर्णन होने पर विभावना अलङ्कार होता है ।

उदाहरण— भूमिशायी निराहारः स्वशरीरेऽपि निःस्पृहः ।
मुनिरेव सुसंवृत्तः किन्तु रागोऽस्य वर्धते ॥[3]

भूमि पर शयन करने वाले और अपने शरीर की भी लालसा न रखने वाले (वह राम) मुनि ही बन गए हैं परन्तु उनका तुम्हारे प्रति अनुराग बढ़ता जाता है ।

यहाँ भूमि पर शयन करना, शरीर की लालसा न रखना तथा मुनि बन जाना आदि क्रियाएँ वैराग्य भाव को प्रकट करती हैं, परन्तु इनका निषेध करके अनुराग की उत्पत्ति का प्रकाशन किया गया है । अतः विभावना अलङ्कार है ।

५—निदर्शना— निदर्शना ।
अभवन् वस्तुसम्बन्धः उपमापरिकल्पकः ॥[4]

जहाँ वस्तु का (अभवन्) असम्भव या अनुपद्यमान सम्बन्ध (प्रकृत की अप्रकृत के साथ) उपमा का परिकल्पक (उपमा में पर्यवसित) होता है,व ह निदर्शना अलङ्कार है ।

उदाहरण— क्व पांसुशय्या विपिने जरन्मृगगणाश्रये ।
क्व नूपुरवती कान्ता शिञ्जानमणिनूपुरा ॥

क्व वृद्धसंनिधि वनं संभोगार्हं क्व यौवनम् ।
क्व युद्धयात्रा सुरथा क्व च पंगुमनोरथाः ॥

क्व शौर्यं क्व जटाबन्धः क्व शास्त्रं क्व च वल्कलः ।
सर्वथा कुटिलाचारो विपरीतः स तापसः ॥[5]

---

१. रामा० मं०, सु० कां० (१६५)
२. का० प्र०, १०, सू० (१६१)
३. रामा० मं०, सु० कां० (३४७)
४. का० प्र०, १० सू० (१४८)
५. रामा० मं०, यु० कां० (१०२, १०३, १०४)

रावण की इस उक्ति में पूर्वार्द्ध और उतरार्द्ध रूप दो वाक्यार्थों का उपमानोपमेय भाव पर्यवसित होता है इसलिए इसको वाक्यार्थ निदर्शना कहा जाएगा।

६—**दृष्टान्त**—दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बिनम्।[1]

उपमान, उपमेय, उनके विशेषण और साधारण धर्म आदि का बिम्बप्रतिबिम्ब भाव होने पर दृष्टान्त अलङ्कार होता है।

उदाहरण— त्वां वीक्ष्य मम लोलाक्षि रोचते न वधूजनः।
भृङ्गः कल्पलतां प्राप्य वल्लीषु रमते कथम्॥[2]

हे चञ्चल नेत्रों वाली! तुमको देखकर मुझे अपनी पत्नियाँ अच्छी नहीं लगती। (इसके लिए रावण दृष्टान्त देता है कि) कल्पलता को प्राप्त करके भौंरा सामान्य लताओं में कैसे रम सकता है।

यहाँ रावण–भ्रमर, सीता–कल्पलता तथा रावण को अपनी पत्नियाँ अच्छी न लगना और भौंरे का सामान्य लताओं में मन न रमने आदि में बिम्बप्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्त अलङ्कार है।

७—**समासोक्ति**—परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः।[3]

श्लेषयुक्त विशेषणों द्वारा अप्रकृत के व्यवहार का कथन 'समासेन संक्षेपेण उक्तिः' (दो अर्थों का संक्षेप से कथन होने के कारण) समासोक्ति अलङ्कार कहलाता है।

उदाहरण— सूर्यरत्नगृहैर्लङ्का वासरस्याशु गच्छतः।
क्षणमंशुकसंसक्ता हस्तालम्बमिवाकरोत्॥[4]

सूर्यकान्त मणियों से जटित घरों से लङ्का ने, रेशमी वस्त्रों से लिपटी हुई नायिका की भाँति शीघ्रतापूर्वक जाते हुए दिन रूपी नायक का मानो क्षण भर के लिए हाथ पकड़ लिया।

यहाँ विशेषणों की श्लिष्टता के कारण सूर्यपरक वर्णन प्रस्तुत है तथा नायक का वर्णन अप्रस्तुत है।

८—**पर्यायोक्त**—पर्यायोक्तं विना वाच्यवाच्यकत्वेन यद्वचः।[5]

---

१. का० प्र०, १०, सू० (१५४)
२. रामा० मं०, सु० कां० (२२१)
३. का० प्र०, १०, सू० (१४७)
४. रामा० मं०, सु० कां० (१७४)
५. का० प्र०, १०, सू० (१७४)

वाच्य-वाचक भाव से भिन्न (व्यञ्जनारूप) बोधन व्यापार के द्वारा जो वाच्यार्थ का प्रतिपादन करना है, वह पर्याय से अर्थात् प्रकारान्तर से कथन करने के कारण पर्यायोक्त अलङ्कार कहलाता है।

उदाहरण— विद्याधरीकरोदञ्चच्चामरोच्चालितांशुका ।
दर्शनानुग्रहव्यग्रा भव त्रिदशयोषिताम् ॥[1]

विद्याधारियों के हस्ताग्र में स्थित चामरों से उड़ने वाले दुपट्टे से युक्त तुम देवताओं की पत्निओं को दर्शन देने की कृपा करने वाली बनो।

यहाँ रावण के उपर्युक्त कथन में व्यञ्जना के द्वारा वाच्यार्थ का प्रतिपादन प्रकारान्तर से इस प्रकार है कि—तुम मेरी पत्नी बनो।

इसी प्रकार—दशाननकचाकर्षप्रौढरामशरांगुलिः ।
करः करालः कालस्य प्रवेक्ष्यति पुरीमिमाम् ॥[2]

इस श्लोक में सीता का प्रकारान्तर से कथन इस प्रकार है—राम लङ्का में प्रवेश करके शीघ्र ही रावणसहित इस लङ्का का विनाश करेंगे। अतः यहाँ भी पर्यायोक्त अलङ्कार है।

६—उदात्त—उदात्तं वस्तुनः सम्पत्।[3]

वस्तु की समृद्धि का वर्णन, उदात्त अलङ्कार होता है।

उदाहरण— अद्भुतं त्वत्प्रभावेण स्वयमेतत्प्रदर्शितम् ।
महाब्धौ सेतुबन्धश्च वधश्चेन्द्रजितो युधि ॥
कम्पं यत्कीर्तने वक्ति सुरस्त्रीरशनारवः ।
वधादिन्द्रजितस्य जातः कस्य न विस्मयः ॥
धनुस्त्रैलोक्यरक्षार्थं यज्ञार्थमखिलं धनम् ।
जीवितं साधुवादार्थमहो श्लाघ्यं तव त्रयम् ॥[4]

उपर्युक्त श्लोक में मुनियों द्वारा राम की यश, कीर्ति एवं शक्ति सम्पदा का वर्णन है। अतः यहाँ उदात्त अलङ्कार है।

---

१. रामा० मं०, सु० कां० (२२६)
२. रामा० मं०, सु० कां० (३४६)
३. का० प्र०, १०, सू० (१७५)
४. रामा० मं०, उ० कां० (१२, १३, १४)

१०—परिसंख्या—किंचित्पृष्टमपृष्टं वा कथितं यत्प्रकल्पते ।
तादृगन्यव्यपोहाय परिसंख्या तु सा स्मृता ।।[1]

कोई पूछी गयी या विना पूछी हुई कही गयी बात जो उसी प्रकार की अन्य वस्तु के निषेध में पर्यवसित होती है, वह परिसंख्या कहलाती है ।

उदाहरण— तस्यादरः सुचरितेन सितातपत्रे,
निर्व्याजसत्त्वविभवेषु न चामरेषु ।
आसीज्जनार्तिहरणेषु न संचयेषु,
धर्मोज्ज्वलेषु च गुणेषु न भूषणेषु ।।[2]

यहाँ जिस वस्तु में आदर प्रदर्शित किया गया है । उसी के समान दूसरी वस्तु में उसका निषेध किया गया है । अतः यह अप्रश्नपूर्विका परिसंख्या अलङ्कार है ।

११—व्यतिरेक—उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः ।[3]

उपमान से अन्य अर्थात उपमेय का जो आधिक्य वर्णन है, वह ही व्यतिरेक अलङ्कार होता है ।

उदाहरण— शृङ्गारशिक्षाकारिणी हरिणी हारिलोचना ।
का त्वं लावण्यनलिनी मलिनीकृत चन्द्रिका ।।[4]

यहाँ उपमान (चन्द्रिका) से उपमेय (सीता के रूप लावण्य) का आधिक्य वर्णन है ।अतः यह व्यतिरेकालङ्कार है ।

१२—अनुप्रास—वर्णसाम्यमनुप्रासः ।[5]

वर्णों की समानता (आवृत्ति का नाम) अनुप्रास है ।

राज्यं रात्रिश्च रामा च रागो राजाथ राशयः ।
रामनामाङ्कवर्णाङ्कास्त्रासं संजनयन्ति मे ।।[6]

यहाँ एक वर्ण (रा) की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्यानुप्रास है ।

---

१. का० प्र०, १०, सू० (१८४)
२. रामा० मं०, रामाभिषेकः (१९०)
३. का० प्र०, १०, सू० (१५८)
४. रामा० मं०, अ० प० (७८९)
५. का० प्र०, ९, सू० (१०३)
६. रामा० मं०, अ० प० (७०३)

रामायणमञ्जरी में 'प्रकृति वर्णन'

रामायणमञ्जरी में आद्योपान्त प्रकृति का व्यापक चित्रण मिलता है। महाकवि क्षेमेन्द्र स्थल-स्थल पर प्राकृतिक सौन्दर्य एवं सुषमा की सुरभि विखेरने में प्रकृति का जो स्पष्ट, सजीव एवं हृदयग्राही रूप चित्रांङ्कित किया है उससे उनके असीम प्रकृति प्रेम का परिचय तो मिलता ही है, साथ ही साथ प्रकृति के समस्त अङ्गों-उपाङ्गों एवं विविध उपकरणों के विषय में उनकी सूक्ष्म दृष्टि का भी दर्शन होता है। रामायणमञ्जरी के अधिकांश प्रसंगों के अध्ययनोपरान्त यह पता चलता है कि कवि ने प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण अधिक किया है। प्रकृति के अनेक मनोरम रूपों का विवरण रामायणमञ्जरी में मिलता है, जिनमें प्रमुख रूप हैं—उपवन, वन, पर्वत, सर, सरिता, सागर ऋतु, काल, दिन, रात्रि इत्यादि। उक्त सभी रूपों का व्यापक चित्रण दर्शनीय है।

लंका में उपवन का सांगोपांग वर्णन मिलता है। राक्षसराज रावण का यह उपवन नाना प्रकार के दिव्य, सुवासित कल्पतरू वृक्षों के पुष्प सुरभि से व्याप्त एवं स्वर्णिम कान्ति वाली मञ्जरियों से युक्त है। पुष्पों से उठते हुए भ्रमर समूह से मानों दिशाएँ श्याम वर्ण की हो गयी हैं। रक्त तथा नील वर्ण के पक्षियों के कलरव से निनादित इस उपवन में उनके पैरों तथा चोचों के प्रहार से उपवन स्थली पर गिरते पुष्प, मानों आकाश से पृथ्वी पर गिरते हुए पुष्पों की वर्षा की शोभा को धारण कर रहे हैं।[१] इस उपवन का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत करने के साथ ही कवि यहाँ के विभिन्न वृक्षों एवं पुष्पों का नामाङ्कन भी किया है जिसका परिचय हनुमान द्वारा इस उपवन के विध्वंस के समय मिलता है। हनुमान द्वारा अश्वकर्ण वृक्षों, नागवृक्षों, नवीन प्रवाल, शाल, सुनहरे कनेर और रत्नताली आदि वृक्षों के तोड़ देने पर उड़े हुए भ्रमर समूहों की गुञ्जार तथा डरे हुए पक्षियों से आकाश की दिशाओं में भर जाने वाले शब्द से लोग जाग पड़े।[२] पुनः राक्षसियों द्वारा विध्वंस वर्णन में भी इस उपवन के विभिन्न प्रकार के वृक्षों का परिचय मिलता है—यह मन्दार वृक्ष विदीर्ण हो गया, सुनहरी केतकी टूट गयी, सुन्दर तथा सोने से युक्त यह ऊँचा आम का वृक्ष गिर पड़ा। गुलाब धरती पर बिछ गया, अशोक वृक्ष टुकड़े-टुकड़े हो गया। कर्पूरतिलक, अगुरुबेल नष्ट हो गया, अशोक शोक उत्पन्न करने वाले हो गये, बकुलावली फल रहित हो गयी, सारी विहङ्गावली डर गयी है तथा लवङ्ग का पराग भी नष्ट हो गया है।[३]

रामायणमञ्जरी में कथा प्रसङ्ग के अनुकूल वनस्थली का सजीव चित्रण उपवन से भी अधिक परिमाण में मिलता है। राम वन की भयानकता का आभास कराते हुए सीता के वन चलने के आग्रह का निषेध करते हैं—बनदोषान्बहुविधान्घोररूपानुदा-

---

१. रामा० मं०, सु० कां० (१२२–१३५), २. वही (३८८–३९२), ३. वही (३९४–४०४)

हरन् ।[1] इसी प्रकार स्वर्ण मृग के शिकार हेतु जाते समय राम ने सीता की रक्षा के लिए लक्ष्मण को नियुक्त किया था—**भवता त्वप्रमत्तेन रक्ष्या जनकनन्दिनी** ।[2] इससे भी वन की भयानकता की ही सूचना मिलती है । पुनः सीता से लक्ष्मण के कथन में भी यही सूचना प्राप्त होती है—**अरण्ये निःसहायोऽस्मिन्नार्हत्यरि पराभवम्** ।[3] उक्त अवतरणों में प्रकृति के भयानक स्वरूप का ही चित्रण ध्वनित होता है ।

उक्त अनुमानित विवरणों के अतिरिक्त रामायणमञ्जरी में वन के वातावरण के संश्लिष्ट चित्र भी अनेक प्रसंगों मे चित्रित किये गये हैं । भरद्वाज के कथनानुसार राम चित्रकूट के अरण्यारण्य में पहुँचते हैं । वहाँ पुष्पित लता कुञ्जों में भ्रमरों के मनोहर गुञ्जार तथा पक्षियों के कलरव से मुग्ध राम, सीता से वहाँ की अनुपम प्राकृतिक छटा का वर्णन करते हैं ।[4] इसी प्रकार अरण्य पर्व के अन्तर्गत राम और सीता एक वन से दूसरे वन में साथ-साथ भ्रमण करते हुए चित्रकूट के अरण्यारण्य की प्राकृतिक सुषमा का आनन्द लेते हैं । यही नहीं राम प्रकृति के सौन्दर्ययुक्त मनोहारी उपकरणों से सीता के विभिन्न अवयवों की तुलना करते हुए त्रिपगथा के किनारे उनके ललाट पर मैनसिल का तिलक लगाते हैं तथा सीता उनकी गोद रूपी शय्या में लेटी रहती हैं । यहाँ की सम्पूर्ण प्राकृतिक छटा इतनी मनोहर एवं मादक है कि राम और सीता के मन में रति भाव उत्पन्न कर देती है ।[5]

रामायणमञ्जरी में कवि ने जहाँ एक तरफ चित्रकूट के अरण्यारण्य का अत्यन्त सजीव चित्रण किया है वहीं दूसरी तरफ अरण्य पर्व में भरत की सेना द्वारा आक्रान्त वन का भीषण रूप भी अंकित किया है ।[6]

दण्डकारण्य के वर्णन में कवि ने प्राकृतिक सुषमा की सुरभि ही विखेर दी है । पुन्नाग, केसर, अशोक, कर्णिकार, आदि वृक्षों से युक्त, मेघ घटावत गहन, यत्र-तत्र विकसित पुष्पों, पक्षि समूह के कलरव, भ्रमरों की गुञ्जार तथा हाथी, वराह, शिशुमार सिंह आदि अनेक वन्य जन्तुओं के कारण वह हँसता हुआ सा-प्रतीत होता था ।[7]

कवि के प्रकृति प्रेम एवं तत्सम्बन्धी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय उस समय भी मिलता है जब सीता को खोजते हुए राम जंगल में इधर-उधर भटकते हुए जंगली पक्षियों

---

१. रामा० मं० अयो० कां० (८७७)

२. रामा० मं, अ० प० (७५१), ३. वही (७६१)

४. रामा० मं०, अयो० कां० (८०७–८११)

५. रामा० मं०, अ० प० (११६–१४०)

६. रामा. मं. अ. प. (१५०-१५५), ७. वही (७२३-७३१),

शुक, कोकिल, हंस तथा मयूर आदि से सीता के विषय में पूछते हैं। यही नहीं लता-कुन्जों, नाना प्रकार के वृक्षों तथा खिले हुए पुष्पों से भी राम सीता के सम्बन्ध में पूछते हैं।[१] अरण्यारण्य के इस प्रसङ्ग में कवि की लेखनी प्रकृति के किसी भी उपादान को रामायणमञ्जरी में चित्रित करने से अछूती नहीं रहती है।

तदनन्तर वन-वन भटकते राम की कबंध से भेंट होती है। कबंध द्वारा वर्णित पम्पासरोवर की तरफ जाने वाले मार्ग के वन का प्रसङ्ग तथा मतंग आश्रम के शोभनीय चित्र का उल्लेख प्राप्त होता है।[२] इस प्रकार निर्दिष्ट पथ पर बढ़ते राम को मतंग वन का परिचय शबरी से भी प्राप्त होता है।[३] उक्त प्रसंग में वन के मार्ग की सुषमा मतंग वन का प्राकृतिक सौन्दर्य एवं शिशुमार, वाराह तथा जंगली हाथी एवं अन्य जन्तुओं से व्याप्त मतंग वन का बड़ा ही मनोहारी चित्र समुपस्थित है।

उक्त संश्लिष्ट, शब्द चित्रात्मक विवरणों द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि क्षेमेन्द्र वन प्रकृति के अत्यन्त सूक्ष्म द्रष्टा थे। अतएव उन्होंने भौगोलिक तथा स्वाभाविकता दोनों आधार-शिलाओं पर आधारित अरण्य चित्रण अत्यन्त सजीव एवं सफलतापूर्वक किया है।

वन्य जीवन के महत्वपूर्ण अंग आश्रम का कवि ने अत्यन्त सजीव एवं व्यापक चित्रण भी किया है। जिसमें तत्कालीन स्थिति भी प्रतिबिम्बित होती है। विश्वामित्र,[४] वशिष्ठ,[५] सुतीक्ष्ण,[६] अत्रि,[७] अगस्त्य,[८] शरभङ्ग,[९] भरद्वाज[१०] आदि अन्य तपस्वियों के आश्रमों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म सांगोपांग विवरण देते हुए महाकवि ने उसका सफल अंकन किया है।

उक्त सजीव चित्रात्मक विवरणों के अतिरिक्त आश्रम का भावात्मक एवं मानवीय संवेदनात्मक चित्रण भी क्षेमेन्द्र ने किया है। चित्रकूट में राम द्वारा आश्रम की वास्तु-शान्ति[११] एवं सीताहरण के पश्चात राम की पर्णशाला का शोकाभिभूत वर्णन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।[१२]

---

१. रामा० मँ०, अ० प० (६६०-६७६)
२. वही (१०६०-१०६६), ३. वही (१११३-१११६)
४. सिद्धाश्रम—रामा. मं. बा. कां. (१६३-१६७) ५. वशिष्ठाश्रम—वही (३४१)
६. सुतीक्ष्णाश्रम–रामा. मं. अ. प. (४१२, १३, १४) ७. अत्रि आश्रम–वही (३२६–३५४), ८. अगस्त्याश्रम–वही (४५६-४६१) ६. शरभङ्गाश्रम–वही (३८४-३८६)
१०. भारद्वाज—वही (१०५, ६, ७)
११. रामा. मं. अयो. कां. (६१२)
१२. रामा. मं. अ. प. (६४६, ६६०-६६०)

वनस्थली के वर्णन के प्रसंग में तत् स्थानीय पर्वत प्रदेशों का भी प्रसंगवश चित्रण करना अनिवार्य था। अतएव कवि ने कथा-क्रम के अनुसार चित्रकूट,[१] ऋष्यमूक,[२] महेन्द्र,[३] मैनाक,[४] सुबेल,[५] कैलाश,[६] एवं संजीवनी युक्त[७] पर्वत का भी चित्रण अत्यन्त संश्लिष्ट रीति से किया है। उक्त विवरणों में नयनाभिरामता, चित्रात्मकता, सूक्ष्मांकन, सजीवता, मार्मिकता, तथा मानवीय जीवन से अनुप्राणित वर्णनों का समावेश है।

भूमि प्रदेशों के साथ-साथ जलस्थानों के भी व्यापक प्रसङ्ग रामायणमञ्जरी में मिलते हैं। सरिता, सर, सागर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण इसमें प्राप्य हैं। सरिताओं में 'गङ्गावतरण' का समस्त प्रसङ्ग ही वर्णित है।[८] चित्रकूट की मन्दाकिनी नदी के रमणीय घाटों, किनारे पर खिले हुए पुष्पों की सुरभि, जलप्रवाह की उज्ज्वलता आदि का मादक एवं सुखमय चित्रण किया गया है।[९] इसी प्रकार पंचवटी में गोदावरी की प्राकृतिक छटा मनोमुग्धकारी एवं अत्यन्त सजीव है।[१०] उत्तरकाण्ड में नर्मदा नदी का दिव्य, मनोहारी एवं ललनायित वर्णन कवि की व्यापक एवं भावात्मक दृष्टि की ओर लक्षित कराते हुए उसकी प्रकृतिप्रियता का प्रमाण देते हैं।[११] हाथियों के मदजल से युक्त शोभावाली यमुना का भी अनुपम सौन्दर्य दर्शनीय है![१२] उक्त प्रमुख नदियों के अतिरिक्त कथा प्रसङ्ग में अन्य कई नदियों का भी उल्लेख किया गया है जैसे—तमसा,[१३] सरयू,[१४] शोण,[१५] कौशिकी आदि।

---

१. चित्रकूट—रामा० मं०, पुनराख्यायिकम् (१५१)
२. रामा. मं., अ. प. (१०८१, १०८२, ११५५-११५७) एवं कि० कि० प० (१, १६, १८)
३. रामा, मं. कि. कि. कां. (४२१) एवं रामा० मं०, पुनराख्यायिकम् (१४४)
४. रामा. मं. कि. कि. कां. (५३५-५४०)
५. रामा. मं. यु. कां. (२७८, २८०, ३३६) एवं सु. कां. (३, ४)
६. रामा. मं. उ. कां. (२८०-२८४)
७. रामा. मं. यु. कां. (८८१-१०००, १२२६, १२२७)
८. रामा० मं०, बा० कां० (२०८–२७२)
९. रामा० मं०, अ० प० (११७–१३०), १०. वही (४८३–५१७)
११. रामा० मं०, उ० कां० (३५७–३८२)
१२. रामा० मं०, पुनराख्यायिकम् (१५३)
१३. रामा० मं०, बा० कां० (१५), १४. वही (३२), १५. वही (१८७)

उपर्युक्त नदियों के मनोहारी एवं विशद चित्रण के साथ ही साथ कवि ने सरोवरों का भी चित्रण रामायणमञ्जरी में किया है जिनकी प्राकृतिक छटा अनुपम एवं सजीव है। सरोवरों में अरण्य पर्व के अन्तर्गत दमकर्ण ऋषि द्वारा निर्मित पञ्चाप्सर का हृदयग्राही वर्णन मिलता है। शुभ्र पुष्पों की मुस्कान वाली लता से युक्त वह विशाल सरोवर सज्जनों के आचरण की भाँति स्वच्छ, मणि दर्पण के समान वन की शोभा सदृश, स्नान करते हुए हाथियों की सूड़ों से फेंके गये जलशीकरों से दुर्दिन की भाँति वह प्रदेश खिले हुए कमलों के मुख पर मँडराते हुए मदमत्त भ्रमर समूहों से युक्त तथा सुन्दर पुष्पित पुष्पों की सुरभि को विखेरती हुई वायु से व्याप्त था।[1] इसके अतिरिक्त अरण्य पर्व के अन्त में पम्पा सरोवर की रमणीयता के साथ-साथ सीताहरण के कारण उसका संवेदनात्मक रूप भी प्रस्तुत किया गया है। किन्नरादि द्वारा सेवित, हंसादि पंक्षियों के कलरव की मधुर ध्वनि से निनादित, अरविन्दादि पुष्पों की सुरभि से सुवासित एवं सुशोभित तथा सुन्दर उपवनों से आवृत्त पम्पासरोवर का हृदयग्राही चित्रात्मक उल्लेख मिलता है।[2]

सर-सरिताओं की तरह सागर का भी चित्रात्मक वर्णन रामायणमञ्जरी में कई स्थलों पर मिलता है। हनुमान के समुद्रोल्लङ्घन करते समय उनके तीव्र वेग से महार्णव की तरङ्गों का उद्वेलन तथा सागर की क्षुब्धावस्था का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है।[3] इसके अतिरिक्त समुद्र तट पर स्थित अङ्गद, जाम्बवान आदि वानर भी समुद्र की भीषण दुर्गमता का अवलोकन करते हैं। उक्त प्रसङ्ग में समुद्र का उद्वेलन उत्ताल तरङ्गों का उन्नयन, उसकी भयानकता तथा वानरों द्वारा सम्पूर्ण जगत को जलाप्लावित समझना, दिशा, भूतल एवं आकाश का परिज्ञान न होना आदि सागर के भीषण स्वरूप का चित्र समुपस्थित करते हैं।[4] युद्धकाण्ड के अन्तर्गत 'समुद्रक्षोभणम्' नामक प्रसङ्ग में राम के विकराल बाण संधान से समुद्र में गम्भीर क्षोभ उत्पन्न हो जाता है जिसके फलस्वरूप व्याकुल घड़ियाल, सर्प, शंख आदि जलचर, समुद्र में उत्पन्न फेन एवं उत्ताल तरङ्गों का उन्नयन तथा जल प्रवाह एवं क्षुब्ध उर्मियों का कल-कल कोलाहल युक्त शब्द चित्र सागर का साक्षात् रूप उरेह देता है।[5]

प्रकृति के रूप चित्रण के साथ-साथ काल एवं ऋतुओं का भी वर्णन महाकाव्य के प्रकृति चित्रण का ही एक अंग होता है। प्रकृति के इस अंग का भी रामायणमञ्जरी में

---

१. रामा० मं०, अ० प० (४२७–४४१)
२. रामा० मं०, अ० प० (१११९–११३८) एवं पुनराख्यायिकम् (१४८)
३. रामा० मं०, कि० कि० कां० (५२३–५२६)
४. रामा० मं०, कि० कि० कां० (४४२–४४६)
५. रामा० मं०, यु० कां० (२२१–२२७)

व्यापक उल्लेख किया गया है। अहर्निश के सभी कालों में सूर्योदय,[१] चन्द्रोदय,[२] दिवा, रात्रि के द्योतक हैं। इसके अतिरिक्त संध्याकाल[३] तथा रात्रि[४] का विवरण भी समय के विभिन्न रूपों को प्रदर्शित करता है। उक्त सभी रूपों का वर्णन रामायणमञ्जरी में विद्यमान है।

ऋतुओं का क्रमिक वर्णन प्रकृति चित्रण का पूर्वाङ्ग प्रस्तुत करता है। प्रत्येक ऋतु का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवरण कवि के ऋतु सुलभ व्यापारों एवं तत्त्वों के ज्ञान को प्रदर्शित करता है। राम, सीता और लक्ष्मण को चित्रकूट की ओर प्रस्थान करते समय वसंत ऋतु की शोभा का अवलोकन कराते हैं।[५]

पम्पासरोवर के समीप भी बसन्त की शोभा अत्यन्त उल्लासमयी वर्णित है। परन्तु इस बसन्त वर्णन में पूर्वोक्त प्रसङ्ग से अधिक विशिष्टता यह है कि इसमें प्रकृति का मानवीकरण किया गया है तथा सीता विरह के कारण राम के लिए यह ऋतु उद्दीपन रूप में भी प्रस्तुत हुई है।[६] ऋष्यमूक पर्वत पर राम के स्थित होने के पश्चात् वर्षा ऋतु का वर्णन किया गया हैं जिसमें ग्रीष्म ऋतु की विषमताओं का संकेत उसके शमन में ही कर दिया गया है। वर्षा वर्णन में चित्रात्मकता, स्वाभाविकता तथा सजीवता का समावेश है। उस संश्लिष्ट विस्तृत चित्रण में मानवीय जीवन का भी आरोप मिलता है। समस्त प्रकृति वर्षा की हरीतिमा से उल्लसित एवं तरंगित सी दिखाई पड़ती है। परन्तु यह वर्षा का वातावरण भी विरही राम को उद्दीप्त करता रहता है।[७]

राम के ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करते समय शुभ्र ज्योत्स्नामयी शरद ऋतु[८] का भी सरस एवं चित्रात्मक वर्णन किया गया है। हेमन्त ऋतु[९] की शीत का यथार्थ अंकन राम ने गोदावरी नदी के तट पर किया है जिसमें शस्यश्यामला पृथ्वी, हिमाच्छादित हिमालय, हिमध्वस्त वनस्थली, शीतोत्पादक पवन तथा नीहाराच्छादित वनराजि आदि का सजीव चित्रण मिलता है।

पञ्चम अध्याय समाप्त

---

१. सूर्योदय—रामा० मं०, सु० कां० (१६२–१७०), २. चन्द्रोदय—वही (१७९–१८२) (७–४७), ३. संध्याकाल—वही (१७२–१७६), अ० प० (४२८)

४. रात्रि—वही (१७७, १७८, १८२) (७–४७)

५. रामा० मं०, अयो० कां० (९०६–९११)

६. रामा० मं०, अ० प० (११२५–११३८)

७. रामा० मं०, कि० कि० कां० (१–२५), ८. वही (४२–५६)

९. रामा० मं०, अ० प० (४९१–५१७)

अध्याय ६

लोकचित्रण

रामायणमञ्जरी में विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण

साहित्य समाज का दर्पण होता है। यह एक ऐसा श्रोत है जिसके माध्यम से हम किसी देश, काल एवं सीमा की सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कर सकते हैं। अतः साहित्य तत्कालीन सभ्यता एवं संस्कृति का द्योतक होता है।

संस्कृत साहित्य के तीनों कालों में भारतीय संस्कृति की स्पष्ट झलक सर्वत्र दर्शनीय है। श्रुतिकाल में संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति का मूल अंकित है। स्मृति काल में रामायण, महाभारत, पुराण तथा वेदाङ्गों के रूप में संस्कृति के विभिन्न रूप परिलक्षित होते हैं। तृतीय काल "लौकिक संस्कृत के काल" का साहित्य भी संस्कृति से पूर्णतया अनुप्राणित है।

अतएव वैदिक साहित्य यद्यपि सबसे प्राचीन धर्मग्रन्थ है जिसमें आर्य सभ्यता एवं संस्कृति तथा धर्म तत्त्वों का साधन प्राप्त है, परन्तु उनका व्यवहारिक रूप वाल्मीकि रामायण में ही स्पष्ट रूपेण दृष्टिगत होता है। वस्तुतः यह कहना असंगत न होगा कि रामायण के द्वारा हम वैदिक धर्म एवं संस्कृति के अज्ञात तथ्यों का साक्षात्कार कर सकते हैं। प्राचीन धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता का साङ्गोपाङ्ग चित्रण हमें रामायण में ही मिलता है।

महाकवि क्षेमेन्द्र प्रणीत रामायणमञ्जरी भी रामकथा सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं जिसमें कवि ने आदिकवि की लेखनी का अक्षरशः अनुगमन करते हुए रामकथा का एक संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करने का यत्न किया है। अतएव रामायणमञ्जरी में वर्णित विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ रामायण कालीन परिस्थितियों का ही चित्र समुपस्थित करती हैं। सम्प्रति रामायणमञ्जरी के विभिन्न उद्धरणों के माध्यम से कवि क्षेमेन्द्र द्वारा वर्णित विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

सांस्कृतिक परिस्थिति

रामायणमञ्जरी में वर्णव्यवस्था—

सम्पूर्ण रामायणमञ्जरी के अवलोकन से पता चलता है कि वर्णों का विभाजन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में था। इसका ज्वलन्त प्रमाण 'शम्बूक बध' की घटना है, जिसके अन्तर्गत राम शम्बूक से पूंछते हैं—हे तपस्वी ! सच-सच बताओ कि तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में से किस वर्ण के हो[1]—

तमुवाच ततो रामः कस्त्वमुग्रतपोनिधिः।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा सत्यमुच्यताम् ॥

यह स्पष्ट ही है कि यदि वर्णों का यह चतुर्विभाग न रहा होता तो राम शम्बूक से इस प्रकार का प्रश्न नहीं पूंछते। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उस समय समाज, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र प्रभृति चार वर्गों में विभाजित था।

इस प्रकार तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था वर्ण व्यवस्था की भित्ति पर अवलम्बित था। वर्ण चार थे, जिसमें ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनों वर्णों की प्रमुखता थी। इसका ज्वलन्त उदाहरण रामायणमञ्जरी में वर्णित है। एक ओर वशिष्ठ, परशुराम तथा सम्पूर्ण ऋषि वर्ग तथा दूसरी ओर रघुकुल।

उस समय वर्ण व्यवस्था जन्म पर ही आश्रित थी कर्म पर नहीं। क्योंकि रामायणमञ्जरी में ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ 'जन्मना ब्राह्मण' कर्मणा क्षत्रिय भी हैं किन्तु उन्हें ब्राह्मण ही कहा गया, यथा—रामायणमञ्जरी में वर्णित परशुराम की कथा एवं उनका उग्र रूप उनमें क्षत्रियत्व का प्रदर्शन करता है किन्तु वे ब्राह्मण ही कहलाए।[2] इसी प्रकार मुनि विश्वामित्र यद्यपि क्षत्रियकुलोत्पन्न एक राजा थे किन्तु उन्हें ब्राह्मणोचित व्यवहार तपश्चर्या आदि के कारण ब्रह्मर्षि पद की प्राप्ति हुई फिर भी वे क्षत्रिय ही माने गये।[3]

यह तो अपवादात्मक प्रसङ्ग था, किन्तु प्रायः सभी वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र अपने वर्णानुसार ही कर्मों का पालन करते थे। ब्राह्मणों का साधारण धर्म वेदों का अध्ययन, व्रत, नियम का पालन, यज्ञों का अनुष्ठान आदि था किन्तु इनके भी कर्मानुसार कई वर्ग मिलते हैं। कुछ ब्राह्मण अपने नित्य नैमित्तिक कर्मों को करते हुए सदाचरण के मार्ग का अवलम्बन करते थे उन्हें 'देव ब्राह्मण' कहा जाता था।

इसके अतिरिक्त कुछ विरक्त ब्राह्मण ऋषि वर्ग के रूप में वन में तपस्या करते हुए अपना तपस्वी जीवन व्यतीत करते थे वे 'मुनि ब्राह्मण' कहलाते थे। रामायणमञ्जरी में

---

१. रामा० मं, उ० कां (२०२८)

२. रामा० मं०, बा० कां० (५७७–५८४ एवं ५८३–५८६), ३. वही (४७४, ४७५)

अरण्य पर्व के अन्तर्गत इन मुनि ब्राह्मणों का विस्तृत उल्लेख किया गया है—जिससे तत्कालीन तपोनिष्ठ महात्माओं का अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण प्राप्त होता है।[1]

ब्राह्मण धर्म की ही भाँति रामायणमञ्जरी में क्षात्र धर्म की मर्यादा का भी दिग्दर्शन कराया गया है—

दुष्टक्षयात्क्षितित्राणात्क्षत्रियः किल जायते ।[2]

'दुष्टों के विनाश तथा पृथ्वी की रक्षा के लिए ही क्षत्रियों का प्रादुर्भाव होता है।' इस आदर्श के अतिरिक्त रामायणमञ्जरी में आद्योपान्त वर्णित राम का सम्पूर्ण चरित्र ही क्षात्र धर्म का जाज्वल्यमान प्रतीक है।

वैश्यों का भी समाज में स्थान था। उनकी समृद्धि एवं कर्मशीलता का परिचय रामायणमञ्जरी में यत्र-तत्र प्राप्त होता है। ब्राह्मण एवं क्षत्रियों की अपेक्षा समाज में महत्वपूर्ण स्थान नहीं था।

शूद्रों का व्यापक स्थान था। तीनों वर्णों को समुचित सहयोग प्रदान करना ही उनका प्रधान लक्ष्य था, जिसे वे मनसा, वाचा तथा कर्मणा सम्पादित करने में ही अपना परम कल्याण मानते थे। रामायणमञ्जरी के सामाजिक सङ्गठन की रूपरेखा में शूद्रों का पृथक्करण नहीं मिलता, यथा—गुहा वृत्तान्त।[3] केवल धार्मिक क्षेत्र में शूद्रों के लिए प्रतिबन्ध था जिसका स्पष्ट उदाहरण 'शम्बूक बध' का प्रसङ्ग है, जिसमें वह तपस्या के क्षेत्र में आने के कारण ही अनाधिकारी माना गया तथा स्वयं राम के हाथों उसका बध हुआ।[4]

इस प्रकार रामायणमञ्जरी में चातुर्वर्ण्य की पूर्णाङ्ग व्यवस्था का स्वरूप मिलता है, जिसमें वर्णसङ्करता का कोई दोष नहीं था।

ब्राह्मण वर्ण के प्रति क्षत्रिय सदैव अपनी श्रद्धा अर्पित कर उसे शीर्ष स्थान देते थे। समस्त क्षेत्रों (धार्मिक, राजनैतिकादि) के कार्य ब्राह्मण द्वारा ही सञ्चालित होते थे। रामायणमञ्जरी में वशिष्ठादि ऋषियों का स्थान उक्त तथ्य को प्रमाणित करता है।

रामायणमञ्जरी में आश्रम व्यवस्था—

वर्ण व्यवस्था के साथ ही साथ आश्रम व्यवस्था भी भारतीय संस्कृति का प्रधान अंग है। जहाँ वर्णव्यवस्था समष्टि के लिए उपयोगिनी थी वहीं आश्रम व्यवस्था व्यष्टि के

---

१. रामा० मं०, अ० प० (४००–४०६)
२. रामा० मं०, बा० कां (१०६)
३. रामा० मं०, अयो० कां० (८०१–८०४) एवं अ० प० (८६–१०१)
४. रामा० मं०, उ० कां (१०१५–१०३२)

लिए परम हितकारिणी एवं जीवन का सन्तुलनकारिणी थी। जीवन में धर्म, अर्थ काम तथा मोक्षादि पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति हेतु यह व्यवस्था परमोपयोगिनी थी।

इस आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास प्रभृत्ति चार सोपानों का निर्माण हमारे त्रिकालदर्शी ऋषियों ने किया है; क्रमशः इन्हीं सोपानों पर विधिवत चलते हुए ही व्यक्ति पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति कर पाता है।

रामायणमञ्जरी में आश्रम व्यवस्था के इन चारों सोपानों का समुचित उल्लेख प्राप्त होता है। कश्यप ऋषि के प्रपौत्र ऋष्यशृङ्ग का उदाहरण ब्रह्मचर्याश्रम का दिग्दर्शक है।[1]

गुरुकुल की व्यवस्था ब्रह्मचर्याश्रम के निमित्त ही की जाती थी। विश्वामित्र के आश्रम में राम का अस्त्र-शस्त्र विद्या की शिक्षा प्राप्त करना उक्त तथ्य की ओर ही संकेत करता है।[2] ब्रह्मचर्याश्रम आश्रम व्यवस्था का प्रथम सोपान है। ब्रह्मचर्याश्रम का निर्वाह करने के बाद ही व्यक्ति द्वितीय सोपान गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। रामायणमञ्जरी में राजा जनक तथा दशरथ के गृहस्थाश्रम का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। इसी प्रकार अरण्य पर्व के अन्तर्गत 'वानप्रस्थ' एवं 'सन्यास' आश्रम में निवास करने वाले मुनियों का व्यापक चित्रण है जिनका उल्लेख वर्ण व्यवस्था के प्रसङ्ग में किया जा चुका है।

रामायणमञ्जरी में पारिवारिक संस्कृति—

वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा पर स्थित समाज सुसङ्गठित एवं सुदृढ़ होगा। व्यष्टि से ही समष्टि का निर्माण होता है। अतः समाज का निर्माण कई परिवारों की समष्टि ही है। परिवार समाज की इकाई है। रामायणमञ्जरी में पारिवारिक संस्कृति का भी साङ्गोपाङ्ग वर्णन प्राप्त होता है।

परिवार में व्यक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके बिना परिवार की कल्पना करना बालू से भित्ति का निर्माण करना है। संयुक्त परिवार में व्यक्ति परस्पर एक दूसरे से किसी न किसी सम्बन्धों में संयुक्त रहते हैं। रामायणमञ्जरी में वर्णित संयुक्त परिवार में पिता-पुत्र, भाई-भाई, सास-वधू, पति-पत्नी, भाई-बहन इत्यादि के क्या-क्या उच्च आदर्श हो सकते हैं, इन सभी का समुचित चित्रण उपलब्ध है। पिता-पुत्र के रूप में दशरथ और राम, भाई-भाई के रूप में राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न, सास-वधू के रूप में कौशल्या और सीता, पति-पत्नी के रूप में राम-सीता, बालि-तारा तथा रावण एवं मन्दोदरी, और भाई-बहन के रूप में रावण तथा शूर्पनखा आदि के आदर्श सम्बन्ध अति श्लाघनीय हैं।

रामायणमञ्जरी में वर्णित समाज के इकाई रूप परिवार का स्वामी या मुखिया था। उसकी पत्नी गृहस्वमिनी थी। परिवार का सारा उत्तरदायित्व इस युगल दम्पत्ति पर

१. रामा० मं०, बा० कां० (४९, ५०), २. वही (१५२-१६२)

ही था। राजा दशरथ एवं कौशल्या तथा राजा जनक और उनकी पत्नी इस तथ्य के उदाहरण हैं। परिवार में पुत्र की उत्पत्ति का विशेष महत्त्व था। राजा दशरथ की पुत्र-प्राप्ति विषयक चिन्ता इसका ज्वलन्त उदाहरण है। ज्येष्ठ पुत्र पिता का उत्तराधिकारी माना जाता था। राम का उत्तराधिकार सम्बन्धी स्थल इसका प्रमाण है। परिवार में अनुशासन वांछनीय था। स्वामी के आदेश का उल्लंघन करने का किसी में दुस्साहस नहीं था। दशरथ तथा उनके पुत्र राम का उदाहरण इसका ज्वलन्त प्रमाण है। राम ने हठात् नहीं वरन् स्वेच्छा से पिता (स्वामी) की आज्ञा का पालन करना अपना परम कर्तव्य समझा। परिवार में उच्छृङ्खलता के व्यवहार का कोई स्थान न था। सभी एक दूसरे के स्थान एवं पद का ध्यान रखते हुए मर्यादा का पालन करते थे। इस प्रकार परिवार स्नेह, श्रद्धा, त्याग और सेवा आदि दिव्य भावनाओं द्वारा विकसित एवं परिवर्द्धित होता रहा।

सम्पूर्ण रामायणमञ्जरी के अवलोकन से पता चलता है कि इसमें वर्णित परिवार की दो शाखाएँ हैं—

१—भौतिकवादी, २—अध्यात्मवादी।

भौतिकवादी परिवार में अशुभ वृत्तियाँ निवास करती हैं। जिसका स्पष्ट उदाहरण रावण एवं उसका राक्षसकुल है। रावण स्वयं एक घोर भौतिकवादी तथा अशुभ वृत्ति का पोषक था। उसने अपनी भौतिक वासना की शान्ति हेतु ही समस्त धरा को अपनी अशुभ वृत्तियों एवं दुराचारों से आक्रान्त एवं क्लान्त कर दिया। इसके परिवार में श्रद्धा, विनय, प्रेम आदि भावों का सर्वथा अभाव था। इसके विपरीत अध्यात्मवादी समस्त शुभ वृत्तियों के पोषक थे। इसका ज्वलन्त उदाहरण राम एवं उनका परिवार है। इनके परिवार में सत्य प्रेम मिश्रित वात्सल्य, पितृ भक्ति, भ्रातृ-स्नेह, पातिव्रत तथा पश्चातापाग्नि का निखरा रूप दिखाई पड़ता है।

रामायणमंजरी में संस्कार

भारतीय परिवार में संस्कारों का अपना विशिष्ट स्थान है। भारतीय संस्कृति के ये अभिन्न अङ्ग हैं। संस्कृति और संस्कार में अङ्गाङ्गी का घनिष्टतम सम्बन्ध है। भारतीय वाङ्मय में शरीरोपयोगी एवं अध्यात्म विकासार्थ अनेकों संस्कारों का उल्लेख किया गया है—गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्न-प्रासन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, विवाह, द्विरागमन तथा अन्त्येष्टि।

उपर्युक्त संस्कारों में से केवल विवाह और अन्त्येष्टि को छोड़कर अन्य संस्कारों का उल्लेख रामायणमञ्जरी में नहीं मिलता है। सम्भवतः इसका कारण यह हो सकता है कि

भारतीय पारिवारिक जीवन में मुख्य रूप से केवल जातकर्म, उपनयन, विवाह एवं अन्त्येष्टि संस्कारों का ही विशेष महत्व एवं उपयोगिता व्यवहृत की गई है। इनमें भी विवाह एवं अन्त्येष्टि संस्कार तो अत्यन्त अपरिहार्य हैं। इसीलिए महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी अपने ग्रंथ में केवल इन्हीं दो (विवाह एवं अन्त्येष्टि) संस्कारों का ही समुचित उल्लेख किया है।

विवाह संस्कार—रामायणमञ्जरी में विवाह के जो भी प्रसङ्ग वर्णित हैं, उसमें विवाह के पूर्व वर-वधू का परिचय नहीं कराया गया है। सीता, शान्ता, मन्दोदरी सभी ने विवाह के पूर्व अपने पतियों के दर्शन नहीं किए थे। इससे स्पष्ट पता चलता है कि तत्कालीन विवाह स्वेच्छाधीन न होकर पित्राधीन था। सम्मिलित परिवार में पिता या गृहस्वामी का विशेष महत्त्व था, साथ ही वर-निर्णय का भी उसे विशेष अधिकार था। विवाह संस्कार के पश्चात् स्त्री और पुरुष दोनों के द्वारा अपनी समस्त प्रवृत्तियों को एक दूसरे में केन्द्रित एवं नियन्त्रित कर आत्म-संयम और आत्म-त्याग का अभ्यास करना उनका उद्देश्य था। इसी कारण नारी के लिए पातिव्रत धर्म एवं पुरुष के लिए एक पत्नी-व्रत धर्म की आदर्श प्रतिष्ठा का सफल निदर्शन रामायणमञ्जरी में कराया गया है। चरित्र चित्रण के सन्दर्भ में राम के एक पत्नीव्रत धर्म तथा सीता के पातिव्रत धर्म के उच्च आदर्श वर्णित किए जा चुके हैं।

रामायणमञ्जरी में राम द्वारा धनुर्भङ्ग करने के बाद उनके विधिपूर्वक विवाह सम्पादित होने का वर्णन पाया जाता है।[1] उस समय स्वयंवर प्रथा का भी प्रचलन था। स्वयंवर की मर्यादा का पालन करने के बाद ही वर विवाह के योग्य समझा जाता था। पाणिग्रहण संस्कार को सम्पन्न कराना इसका प्रमाण है। विवाह महोत्सव विधिवत् संपादित किया जाता था तथा इस अवसर पर कन्या एवं वर पक्ष दोनों तरफ से प्रचुर दान किया जाता था। राम-सीता के विवाहोत्सव में राजा जनक एवं दशरथ ने सौ लाख गौओं का दान किया।[2] दहेज की प्रथा भी प्रचलित थी, परन्तु आज की तरह नहीं, अपितु कन्या का पिता प्रसन्नतापूर्वक यथाशक्ति धन दहेज में देता था। राजा जनक ने कन्या धन के साथ ही साथ प्रभूत धन दशरथ को दान दिया था।[3]

अन्त्येष्टि संस्कार—यह संस्कार मरण के पश्चात मृतक देह को अग्नि प्रदान करके मन्त्रविधि से दाह क्रियादि के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। वर्णाश्रमानुसार दशगात्र, षोडश श्राद्ध, सपिण्डीकरणादि क्रियाएँ इसी क्रिया के अन्तर्गत आती हैं। स्थूल शरीर की परिसमाप्ति पर सूक्ष्म शरीर को वायवीय शरीर की प्राप्ति होती है। इस स्थिति में जीव को प्रेतसंज्ञा दी जाती है। इससे मुक्ति प्राप्त कराने हेतु इस क्रिया का विधान

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (५००–५६७), २. वही (५५२, ५५३), ३. वही (५६८)

शास्त्रों में बताया गया है। महाकवि क्षेमेन्द्र ने प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्तर्गत इस क्रिया का व्यापक उल्लेख किया है। इस संस्कार के निर्देशक प्रसङ्ग रामायणमञ्जरी में प्रमुखतः निम्नांकित हैं—दशरथ संस्कार, जटायु सद्क्रिया, बालि संस्कार एवं रावण सद्क्रिया आदि।

अरण्य पर्व के अन्तर्गत पिता दशरथ की मृत्यु शोक में डूबे हुए भरत को वशिष्ठ तथा मन्त्रिगण बार-बार समझाते हुए मृत पिता के देह संस्कार को सम्पादित करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसके बाद भरत शास्त्रोक्त विधि से जलाञ्जलि तथा अशौच आदि के द्वारा पिता की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न करते हैं।[१]

केवल भरत ही नहीं अपितु राम ने भी जैसे ही पिता की मृत्यु का दुःखद समाचार सुना तुरन्त उत्तर क्रिया सम्पन्न की। धर्म क्रिया में निष्णात् राम जाह्नवी के तट पर पिता को जलाञ्जलि प्रदान की। इंगुदी के गुदे में बैर मिलाकर उसका पिण्ड तैयार किया तथा कुशों पर रखते हुए दुःखार्त राम ने कहा—हे पृथ्वीपति! प्रसन्नतापूर्वक यह वन्य भोजन स्वीकार कीजिए क्योंकि हमलोगों का यही आहार है, अतः आपको भी यही प्रदान करता हूँ।[२]

इस प्रसङ्ग से यह स्पष्ट है कि उस समय इस क्रिया का इतना महत्त्व था कि वनवासी राम ने भी इस मर्यादा का निर्वाह सर्वप्रथम करना ही श्रेयस्कर मानकर येन-केन प्रकारेण उसे सम्पादित किया।

गृद्धराज जटायु के शरीर त्याग देने पर भी राम ने उसका विधिवत् अन्त्येष्टि संस्कार सम्पन्न किया तथा जाह्नवी में जलाञ्जलि दी।[३]

इसी प्रकार बालि की मृत्यु के बाद अङ्गद, सुग्रीव तथा सभी वानरों ने बालि की अन्त्येष्टि क्रिया अग्निसंस्कार तथा जलाञ्जलि आदि के द्वारा विधिवत् सम्पन्न किया।[४]

नर-वानर तथा पशु-पक्षी की ही भाँति राक्षसराज रावण की अन्त्येष्टि क्रिया भी शास्त्र प्रतिपादित ढङ्ग से ही सम्पन्न हुई। निर्वैर राम विभीषण द्वारा अन्तिम संस्कार का विरोध करने पर भी अपने प्रतिपक्षी की अन्त्येष्टि क्रिया हेतु विभीषण को आदेश देते हैं।[५]

---

१. रामा० मं०, अ० प० (७९-८२), २. वही (२१३-२१६), ३. वही (१०६६)

४. रामा० मं०, कि० कि० प० (२०९)

५. रामा० मं०, रावणसद्क्रिया (२२-३५)

रामायणमञ्जरी में यज्ञ प्रकरण—

भारतीय पारिवारिक संस्कृति में यज्ञों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'गीता' में भगवान श्री कृष्ण कर्मकाण्ड का विवेचन करते हुए यज्ञ का माहात्म्य वर्णित करते हैं[1]—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जन्ते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥

इन यज्ञों में पञ्च महायज्ञ, सप्त पाक यज्ञ, सप्त हवि यज्ञ, तथा सप्त सोम यज्ञों का विधान शास्त्रों में वर्णित है। पञ्च महायज्ञों में क्रमशः ब्रह्म यज्ञ, पितृ यज्ञ, देव यज्ञ, भूत यज्ञ तथा मनुष्य यज्ञ आते हैं।

रामायणमञ्जरी में प्रारम्भ से ही यज्ञ विधान के दर्शन होते हैं। राम का जन्म ही यज्ञ का सुफल है।[2] विश्वामित्र का आश्रम यज्ञों का प्रमुख केन्द्र है जिसकी सुरक्षा के लिए उन्हें राम की आवश्यकता पड़ी।[3] अनेक ऋषियों द्वारा कृत हवनादि क्रिया का प्रसङ्ग तत्कालीन याज्ञिक संस्कृति के निदर्शन हैं।[4] आर्य वर्ग में ही नहीं, राक्षस वर्ग में भी याज्ञिक क्रियाओं का उल्लेख किया गया है जिसका ज्वलन्त उदाहरण इन्द्रजित यज्ञ विध्वंस की घटना है।[5]

रामायणमञ्जरी में पितृ यज्ञ—रामायणमञ्जरी में पितृ यज्ञ का स्पष्ट निदर्शन 'अन्त्येष्टि संस्कार' के अन्तर्गत किया जा चुका है। इस यज्ञ का माहात्म्य आर्य, अनार्य तथा वानर सभी जातियों में पूर्व प्रसङ्ग में दिखलायाजा चुका। इसका तात्पर्य है कि यह यज्ञ भारतीय संस्कृति का सर्वमान्य अभिन्न अंग था।

पितृ यज्ञ का प्रधान रूप तर्पण एवं श्राद्ध है जिसके द्वारा प्राणी अपने दिवंगत पूर्वजों की तृप्त्यर्थ यज्ञ करता है। धर्मशास्त्रों में विहित है कि जो कोई प्रिय जलादि देता है वह पितृलोक में सदा रहता है। तदनुसार भरत एवं राम ने पिण्डदान आदि के द्वारा जलाञ्जलि अर्पित की। यही नहीं, भरत के वचनों से उक्त तथ्य की पुष्टि भी होती है। वे राम से कहते हैं[6]—

अधुना क्रियतामार्य वत्सलस्य पितुः क्रिया।
प्रियपाणिच्युतं वारि वाञ्छन्ति पितरोऽधिकम् ॥

---

१. गीता—३।१३

२. रामा० मं०, बा० कां० (६३–७७), ३. वही (८३–८४), ४. वही (८५)

५. रामा० मं०, यु० कां० (११००–११०८)

६. रामा० मं०, अ० प० (२०६)

गया में श्राद्ध करने का विधान भी रामायणमञ्जरी में वर्णित है। राम भरत से कहते हैं—इसीलिए बहुत से पुत्र उत्पन्न करने चाहिए जिससे उनमें से कोई तो ऐसा हो जो गया जाकर तथा श्राद्ध करके पिता का तारण करे।[1]

रामायणमञ्जरी में देव यज्ञ—यज्ञ विधान में 'हवि' ऋषियों एवं देव वर्ग को अर्पण की जाती थी तथा देवायतनों में भी देवोपासना के नित्य-नैमित्तिक कर्म किये जाते थे क्योंकि देवगण विश्वसञ्चालक एवं कर्म निर्णायक कहे जाते हैं अतएव उनकी परितुष्टि अनिवार्य है। रामायणमञ्जरी में अनेकशः देवपूजन के वर्णन मिलते हैं। वनगमन के समय राम जब माता कौशल्या के पास पहुँचते हैं तो इस दुःखद समाचार से अनभिज्ञ कौशल्या अभिषेकोत्सव की खुशी में देवाराधन एवं व्रत में संलग्न थी[2]—

अभिषेकोत्सुका तत्र देवताराधनव्रता ।

इसी प्रकार अभिषेकोत्सव की खुशी में व्रत, आराधन आदि में संलग्न सीता के पास भी राम पहुँचते हैं[3]—

स समेत्याभिषेकार्हव्रतमङ्गलशालिनीम् ।

सीता अन्वेषणार्थ लङ्का की ओर प्रयाण करते समय हनुमान भी देव वन्दना करते हैं[4]—

ततः प्रणम्य शक्रार्क विष्णुरुद्र चतुर्मुखान ।
सानुजं मनसा रामं सागरं चोत्पात सः ॥

ससूर्याय महेन्द्राय पवनाय स्वयंभुवे ।
भूतेभ्यः स नमस्कारं चकार हरिपुंगवः ॥

रामायणमञ्जरी में भूत यज्ञ—मनुष्येतर प्राणिवर्ग का यजन 'भूत यज्ञ' के अन्तर्गत आता है। जड़, अर्धचेतन का पूजन इसी यज्ञ के अन्तर्गत आता है। रामायणमञ्जरी में भूत यज्ञ अर्थात जड़ या अर्धचेतन के पूजन का कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता किन्तु एक-दो स्थलों पर इसके संकेत अवश्य प्राप्त होते हैं। किष्किन्धाकाण्ड के अन्तर्गत सीतान्वेषण हेतु हनुमान जब प्रस्थान करने लगते हैं उस समय देवताओं के साथ-साथ समस्त भूतों, सागर तथा सरिताओं को भी प्रणाम करते हैं—"भूतेभ्यः स नमस्कारं चकार हरिपुंगवः"[5], तथा "सागरं सरितश्चैव प्रणम्य शिरसा कपिः"।[6] इसी प्रकार रावण द्वारा अपहृता सीता वन में गोदावरी नदी को प्रणाम करके तथा पर्वतों से हाथ जोड़ते हुए अपना समाचार राम से कहने के लिए निवेदन करती हैं।[7]—

---

१. रामा० मं०, अ० प० (२५६)
२. रामा० मं०, बा० कां० (८२८), ३. वही (८६६)
४. रामा० मं०, कि० कि० कां० (५१८–५२१), ५. वही (५१८), ६. वही (५२१)
७. रामा० मं०, अ० प० (८६०)

गोदावरि नमामि त्वां गिरीणामयमञ्जलिः ।
सर्वे शंसत रामाय रक्षसा बल्लभाहृता ॥

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस समय भूत यज्ञों का भी महत्त्व एवं प्रचलन था। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो हनुमान और सीता सागर, सरिता, गोदावरी नदी, पर्वतों एवं समस्त जड़, तथा अर्धचेतन भूतों को प्रणाम नहीं करते।

रामायणमञ्जरी में 'मनुष्य यज्ञ'—भारतीय संस्कृति के पञ्चम महायज्ञ 'नृ यज्ञ' का अत्यन्त महत्त्व है। किसी भी वर्ण या आश्रम के व्यक्ति को देव सम मानकर उसका आतिथ्य सत्कार करना मनुष्य यज्ञ है। इससे इस यज्ञ की सर्वव्यापकता एवं ऊँच-नीच की अधिकार भावना का सर्वथा अभाव प्रमाणित होता है। समस्त मानव सृष्टि में श्रद्धामयी समत्व भावना का यह प्रमुख साधन है। जिसका रामायणमञ्जरी में स्थान-स्थान पर क्रियात्मक चित्रण किया गया है।

राजा दशरथ ने विश्वामित्र का यथोचित वाचिक एवं कायिक आतिथ्य धर्म सम्पादित किया।[1] राजा ही नहीं अपितु संसार से विरक्त एवं तटस्थ मुनि वर्ग भी इस नृ यज्ञ का समुचित सम्पादन करते थे। अरण्य पर्व के अन्तर्गत अत्रि, सुतीक्ष्ण तथा अगस्त्यादि ऋषियों द्वारा राम का विधिवत् आतिथ्य किया गया है।[2] मुनि भरद्वाज का अतिथि सत्कार तो अनूठा ही है। जिसमें आतिथ्य धर्म के किसी भी दृष्टिकोण का अभाव दृष्टिगत नहीं होता।[3] उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत लङ्का विजय के बाद राम के दर्शन हेतु आए हुए ऋषियों का स्वयं राम ने पूर्ण आतिथ्य किया।[4] नृप एवं ऋषि वर्ग की ही भाँति वन्य जाति के निषादादि भी इस यज्ञ को सम्यक् रूपेण सम्पन्न करते हैं।[5] शूद्रकुलोत्पन्न शबरी द्वारा किया गया आतिथ्य तो इस धर्म की पराकाष्ठा[6] है। सुग्रीवादि वानरजाति के लोग भी इस आतिथ्य धर्म की मर्यादा से भलीभाँति परिचित हैं।[7]

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (८४–८८)
२. रामा० मं०, अ० प० (३२८, ४१३ एवं ४५७–४६०)
३. रामा० मं०, अयो० कां० (८०६)
४. रामा० मं०, उ० कां० (२–७)
५. रामा० मं०, अयो० कां० (८०१)
६. रामा० मं०, अ० प० (११०६)
७. रामा० मं०, कि० कि० कां० (१२३)

रामायणमञ्जरी में अन्य यज्ञ—उपर्युक्त पञ्च महायज्ञों के अतिरिक्त अनेक सामयिक एवं प्रासंगिक यज्ञों का भी विवरण रामायणमञ्जरी में मिलता है, जिनमें पाक यज्ञ, हवि यज्ञ तथा सोम यज्ञ प्रमुख हैं।

गार्हस्थ्य जीवन में पाक यज्ञ का विशेष महत्त्व है। इसकी महत्ता रामायणमञ्जरी में उस समय देखी जा सकती है जब चित्रकूट में पर्णशाला निर्मित होने के बाद राम उस आश्रम की वास्तु शान्ति करना नहीं भूलते[1]—

इत्युक्त्वा दारुभिस्तत्र राघवो लक्ष्मणाहृतैः।
कृत्वाश्रमे वास्तुपूजां वैश्वदेवोचितां व्यधात्॥

दंडक वन में रहने वाले ऋषिवर्ग भी अग्निहोत्र एवं पर्वण आदि पाक यज्ञों को विधिपूर्वक संपादित करते हैं, इसका उल्लेख अरण्य पर्व के अन्तर्गत मिलता है।

रामायणमञ्जरी में पाक यज्ञों से भी अधिक विस्तृत वर्णन हविर्यज्ञों एवं सोम यज्ञों का है। इनमें भी अश्वमेध यज्ञ का अत्यन्त व्यापक चित्रण है। इस यज्ञ का प्रसंग दो रूपों में है—प्रथमतः 'सकाम पुत्रेष्टि यज्ञ' के रूप में तथा द्वितीय "निष्काम कर्तव्य रूप में"।

प्रथम अश्वमेध यज्ञ का रामायणमञ्जरी में सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रात्मक वर्णन मिलता है। इसमें राजा दशरथ के द्वारा अनेक आयोजन किया गया, पुरोहितों, राजाओं एवं ऋषियों को आहूत किया गया, उपयुक्त ऋत्विज की नियुक्ति की गयी तथा सम्पूर्ण विधि-विधान के साथ सफलतापूर्वक अश्वमेध यज्ञ सम्पादित हुआ।[2]

अश्वमेध यज्ञ की महत्ता एवं सम्पूर्ण विधि-विधान का विस्तारपूर्वक वर्णन उत्तरकाण्ड में भी दिखाई पड़ता है। राम लक्ष्मण से कहते हैं कि निश्चय ही अश्वमेध के समान पवित्र यज्ञ इस लोक में नहीं है—'अश्वमेधसमं लोके विद्यते न हि पावनम्।'[3]

राम के अश्वमेध यज्ञ में भी इस यज्ञ की हर प्रक्रिया का सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन किया गया है। यज्ञ के आयोजन में विभिन्न राजाओं एवं ऋषियों का आगमन, यज्ञस्थली का वर्णन, दानादि का उल्लेख तथा यहाँ तक कि यज्ञ में कभी-कभी अनेकानेक विघ्न उपस्थित हो जाया करते हैं, अतः उसकी निवृत्ति हेतु पूर्व से ही सतर्क रहना आदि सभी सूक्ष्म तत्त्वों का वर्णन राम के अश्वमेध यज्ञ में दर्शनीय है।[4]

अश्वमेध यज्ञ के वर्णन के साथ ही साथ रामायणमञ्जरी में राजसूय यज्ञ का महत्त्व उससे होने वाले फल आदि का भी सम्यक् विवेचन किया गया है। उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत ही राम राजसूय यज्ञ करने की अपनी इच्छा भरत एवं लक्ष्मण के समक्ष व्यक्त करते

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (९१२), २. वही (९२–९५)

३. रामा० मं०, उ० कां० (११२२), ४. वही (११९२–११९६)

है ।[१] परन्तु जब भरत ने इस यज्ञ के परिणामस्वरूप भावी विनाश की सूचना राम को[२] दी, तो राम ने अपना विचार बदल कर, लक्ष्मण की सलाह के अनुसार अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय कर लिया ।

रामायणमञ्जरी में ललित कलाओं का चित्रण

ललित कलाएँ संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अङ्ग हैं । अतः रामायणमञ्जरी में सांस्कृतिक वर्णन के अन्तर्गत निःसन्देह इनकी उपादेयता एवं विवेचना अत्यावश्यक है । ललितकलाओं में प्रमुख रूप से वास्तु, मूर्ति, चित्र एवं संगीत कलाएं आती हैं । सम्प्रति रामायणमञ्जरी में चित्रित इन्हीं कलाओं का विवेचन किया जा रहा है ।

रामायणमञ्जरी में वास्तुकला—

रामायणमञ्जरी के सांस्कृतिक सन्दर्भों से यह स्पष्ट ही है कि उस समय यज्ञ-यागों की विशेष प्रधानता थी । अतएव तन्निमित्त यज्ञवेदी एवं यज्ञ मण्डपों की सतत् आवश्यकता थी जो केवल साधारण वर्ग के ही नहीं अपितु अच्छे शिल्पशास्त्रियों तथा कलामर्मज्ञों के निर्देशन में ही निर्मित किए जाते रहे होंगे । यह सम्भव है कि अरण्य भूमि में रहने वाले ऋषियों के यज्ञमण्डपों आदि की रचना हेतु शिल्पकार न उपलब्ध रहते हों किन्तु चक्रवर्ती सम्राटों की वैभव सम्पन्न राजधानी में तो विभिन्न कलामर्मज्ञ अवश्य ही रहते थे । पुनः यदि उस काल में कला का विशेष महत्त्व न होता तो कवि क्षेमेन्द्र राम के लिए कैसे कहते कि वे शैशवकाल में ही विभिन्न कलाओं के मर्मज्ञ हो गए—

कलानां बभुवुस्ते संक्रान्तिमणिदर्पणाः ।[3]

यज्ञशाला निर्माण से भी विशद एवं सुन्दर चित्रण रामायणमञ्जरी में भवन निर्माण का है, जिससे तत्कालीन निर्माण कला के विकास का पता लगता है । कवि द्वारा राजा दशरथ की अयोध्या नगरी तथा उसके मणिमय भवनों के चित्रण से तो तत्कालीन वास्तुकला का अनुपम निदर्शन प्रस्तुत होता है ।[४] उस समय राजमहल अत्यन्त भव्य वृहदाकार, गगनचुम्बी एवं अनेक प्रकोष्ठों वाले थे जिसमें विभिन्न प्रकार के रत्न, मणियाँ एवं कीमती चमकीले पत्थर जटित थे जिनकी आभा सूर्य एवं चन्द्र की कान्ति को भी मलिन कर देती थी ।

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत मन्थरा द्वारा प्रेरित की हुई बरार्थिनी कैकेयी कोपागार में जाकर शयन करती हैं ।[५] इस स्थल से राजा दशरथ के राजमहल में निर्मित कोपागार

---

१. रामा० मं० उ० कां० (११०१–११०३), २. वही (११०५–११११)
३. रामा० मं०, बा० कां० (८०), ४. वही (३२–३७)
५. रामा० मं०, अयो० का० (७०६)

का संकेत मिलता है जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि तत्कालीन भवनों की निर्माण कला अपने चरम पर थी। यदि राजा दशरथ के भवन में कोपगृह था तो शयन-गृह, रसोई गृह, स्नानगृह, विनोदगृह तथा अन्य छोटे-बड़े, अलग-अलग गृहों एवं प्रकोष्ठों की स्वतः कल्पना की जा सकती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय विभिन्न प्रयोजनार्थ भिन्न-भिन्न प्रकार के कक्षों का भी निर्माण किया जाता था जिससे तत्कालीन वास्तुकला की चरम समृद्धि का परिचय मिलता है।

आर्य जाति के भवन निर्माण की कला ही उच्च शिखर पर न थी, अपितु वानर जाति के निवासगृह भी अत्यन्त उत्कृष्ट एवं अवलोकनीय हैं। किष्किन्धाकाण्ड के अन्तर्गत कवि वानरराज सुग्रीव की नगरी किष्किन्धापुरी के भवनों की भव्यता का वर्णन करता है[1] —

संप्राप्य विद्रुमस्तम्भरत्नप्राकारतोरणाम् ।
नगरीं सूर्यपुत्रस्य सुग्रीवस्य प्रभामिव ॥
× × ×
स्फाटिकं हेमहर्म्योच्चश्रृङ्गं सुग्रीवमन्दिरम् ॥

इस उद्धरण से किष्किन्धापुरी तथा सुग्रीव के भवन की विशालता, भव्यता तथा वानर-जाति में भवन निर्माण कला एवं वास्तु कला का सम्यक् परिचय मिलता है।

आर्य एवं वानर जाति की ही भाँति अनार्य जाति के प्रतीक राक्षसराज रावण की लङ्कापुरी में भी वास्तु कला का चरम विकास दर्शनीय है सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत कवि ने हनुमान के माध्यम से लङ्कापुरी के गगनचुम्बी प्रासाद, वातायन, प्राकार एवं विभिन्न प्रकार के प्रकोष्ठों का बहुत ही रमणीय एवं विशद वर्णन प्रस्तुत किया है, जिससे तत्का-लीन वास्तुकला के सर्वाङ्गीण विकास का साक्षात् चित्र ही समुपस्थित हो जाता है। यही नहीं हनुमान तो लङ्का के रत्नजटित भवनों की निर्माण कला एवं भव्यता को देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं।[2]

रामायणमञ्जरी के अन्तर्गत शिल्पकला का सर्वोत्कृष्ट एवं सम्यक् परिचय उस समय मिलता है जब राम के अश्वमेध यज्ञ के समय कुशल शिल्पकारों द्वारा सीता की हेममयी मूर्ति बनायी जाती है—"तत्र हेममयी सीता कुशलैः शिल्पिभिः कृता।"[3] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय शिल्प कला अपने चरमोत्कर्ष एवं समृद्धि पर थी।

---

१. रामा० मं०, कि० कि० कां० (८२-१७३)
२. रामा० मं०, सु० कां० (२-५५०)
३. रामा० मं०, उ० कां० (११६८)

रामायणमञ्जरी में मूर्तिकला—

रामायणमञ्जरी में देवों की मूर्तियों के विधान का भी उल्लेख मिलता है। उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत शिव पूजा के महत्व का विशद वर्णन करते हुए रावण नर्मदा तीर पर सुवर्ण शिवलिङ्ग की बालू में स्थापना करके विधिवत् पूजन क्रिया सम्पादित करता है।[१] यहाँ रावण द्वारा शिवलिङ्ग की स्थापना में ही तत्कालीन मूर्तिकला का स्पष्ट दर्शन होता है। इसी प्रकार राम के अश्वमेध यज्ञ के समय भी कुशल शिल्पकारों द्वारा सीता की स्वर्णिम मूर्ति की संरचना में भी उत्कृष्ट मूर्तिकला का परिचय प्राप्त होता है।[२]

रामायणमञ्जरी में चित्रकला—

रामायणमञ्जरी में वर्णित वास्तु कला एवं मूर्ति कला के पूर्वोक्त प्रसङ्ग से तत्कालीन चित्रकला के विकास, समृद्धि एवं चरमोत्कर्ष का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। फिर राजा दशरथ, वानरराज सुग्रीव एवं राक्षसराज रावण की पुरी के प्रासादों पर उत्कीर्ण भित्ति चित्र का तो सर्वत्र ही दर्शन होता है।

रामायणमञ्जरी में संगीत कला—

रामायणमञ्जरी में संगीत की दोनों विद्याओं (गायन एवं वादन) का पूर्ण विकास दिखाई पड़ता है। संगीत के इन दोनों पक्षों का विकास किसी एक जाति विशेष में नहीं अपितु देव, आर्य, वानर, राक्षस, यक्ष, किन्नर तथा गन्धर्व आदि सभी में समान रूप से दर्शनीय है। गायन एवं वादन के साथ ही साथ नृत्य की कला से भी सभी जातियाँ पूर्ण रूपेण परिचित थी तथा व्यवहार में उनका बहुशः प्रयोग भी देखने को मिलता है।

रामायणमञ्जरी में गान की स्वर लहरी का उत्कृष्ट निदर्शन प्राप्त होता है। बालकाण्ड के प्रारम्भ में ही कवि लव कुश द्वारा गाये गये रामायण के सस्वर पाठ का संकेत करता है[३] जिसमें स्वर की मधुरिमा, छन्दों का विन्यास एवं स्वरों के आरोह-अवरोह का समुचित सन्निवेश दिखाई पड़ता है। पुनः उत्तरकाण्ड के अन्त में रामाश्वमेध यज्ञ के अवसर पर लव और कुश जब कोकिल कण्ठों से रामायण का गान करने लगे तो उस श्रवणामृतवर्षिणी गीत तथा वीणा और वंशी की सम्मिलित मूर्छनाओं से युक्त संगीत ने सभी श्रोताओं को आश्चर्यचकित, मन्त्रमुग्ध तथा चित्रलिखित सा बना दिया।[४] अयोध्याकाण्ड में राम के विवाहोत्सव के समय भी जनकपुर की ललनाओं के गीत एवं

---

१. रामा० मं०, उ० कां (३५८, ३७०, ३७१, ३७२), २. वही (११६९)

३. रामा० मं०, बा० कां० (२९, ३०, ३१)

४. रामा० मं०, उ० कां० (११७१–११७७)

नृत्य का संकेत मिलता है—"गीतनृत्याकुलबधूवदनेन्दु शतांचिता ।"[1] इसी प्रकार अयोध्यापुरी की ललनाओं के संगीत प्रेम का भी परिचय प्राप्त होता है । भरत जब ननिहाल से लौटकर अयोध्या नगरी में पहुँचते हैं तो चारों तरफ सूना देखकर कहते हैं कि वीणा और वंशी की मधुर ध्वनि से आकाश को गुञ्जित करने वाला कामिनियों का संगीत पिता के धवल यश का ज्ञान क्यों नहीं कर रहा है ।[2] पुनः चित्रकूट यात्रा के समय भरत से ही भरद्वाज आश्रम में गन्धर्वों एवं अप्सराओं के गीत एवं नृत्य का संकेत मिलता है[3]— 'गन्धर्वगणगीतेन नृत्येन सुरयोषिताम् ।'

अरण्यपर्व के अन्तर्गत दमकर्ण मुनि के सरोवर से गीत एवं वाद्य की ध्वनि सुनकर राम मुग्ध हो जाते हैं[4]—'गीतवाद्यरवं राम शुश्राव श्रवणामृतम्' पुनः राम के पूँछने पर सुतीक्ष्ण मुनि ने इसका कारण बताते हुए कहा[5]—

तस्यास्मिन्सरसतीरे सुरनारीविलासिनः ।
गीतवाद्यरसोत्सेकैः सुगतः श्रूयते ध्वनिः ॥

इस उद्धरण से राम के संगीत ज्ञान के साथ ही साथ ऋषियों-मुनियों के संगीत ज्ञान का भी परिचय मिलता हैं ।

आर्यों की भाँति वानर जाति में भी संगीत कला पूर्णरूपेण विकसित एवं समृद्ध थी । किष्किन्धाकाण्ड के अन्तर्गत सुग्रीव के अन्तःपुर में वंशी और वीणा की मधुर ध्वनि तथा किन्नरों द्वारा गाये जाते हुए गीतों को सुनकर लक्ष्मण क्रोधित हो उठे ।[6]

आर्य एवं वानर जाति से कहीं अधिक विकसित संगीत कला का परिचय राक्षसों में मिलता है । स्वर्णिम लङ्कापुरी के भवनों में सर्वत्र संगीत ध्वनि सुनाई पड़ती है— 'संगीतवेश्मभिर्वारा गृहैरापणमन्दिरैः ।'[7] रावण के अन्तःपुर में वीणा, वेणु तथा मृदङ्ग आदि वाद्य यन्त्रों को बगल में लेकर गाढ निद्रा में सोयी हुई स्त्रियों का भी चित्र दर्शनीय है ।[8] यही नहीं, रावण देवताओं, किन्नरों, गन्धर्वों और विद्याधर की मृगाक्षी स्त्रियों के द्वारा मधुर गीत गाये जाने पर निद्रा से जागता था ।[9] युद्धकाल में कुम्भकर्ण को जगाने के लिए भी शङ्ख तथा भेरी का घोर निनाद किया गया । पुनः गन्धर्वों तथा विद्याधरों की स्त्रियों ने मधुरगीतों तथा वाद्यों की संगीत से कुम्भकर्ण को जगाने में सफल हुई ।[10]

---

१. रामा० मं०, अयो० कां० (५६७)

२. रामा० मं०, अ० प० (१९), ३. वही (१०७), ४. वही (४३३), ५. वही (४४१)

६. रामा० मं०, कि० कि० कां० (८८, ८९)

७. रामा० मं०, सु० कां० (५२), ८. वही (८४), ९. वही (१६९)

१०. रामा० मं०, यु० का० (७३६–७४०)

युद्धकाण्ड के अन्तर्गत युद्ध के समय भी आर्य (राम), वानर तथा राक्षसों के द्वारा घण्टा, दुन्दुभि तथा शङ्ख आदि घोर निनाद करने वाले वाद्य यन्त्रों का प्रयोग किया गया है।

रामायणमञ्जरी के उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायणकालीन संगीत कला चरमोत्कर्ष पर थी। आर्य, देव, ऋषि, वानर, राक्षस, यक्ष, किन्नर तथा गन्धर्व सभी संगीत प्रेमी थे। गायन, वादन, एवं नृत्य प्रभृति संगीत के सभी अङ्गों का पूर्ण विकास रामायणमञ्जरी में दर्शनीय है। वाद्य यन्त्रों में विशेष रूप से वीणा, वेणु, मृदङ्ग, शङ्ख, घण्ट आदि का प्रचलन था।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि रामायणमञ्जरी में वास्तुकला, चित्रकला, मूर्तिकला एवं संगीत कला की समृद्धि एवं कवि की काल्पनिक चित्रमत्ता का सुवर्ण सुगन्धि संयोग प्रस्तुत किया गया है।

सामाजिक परिस्थिति

रामायणमञ्जरी में जाति व्यवस्था—

वर्णाश्रम धर्म के अन्तर्गत रामायणमञ्जरी की सामाजिक रूपरेखा का एक चित्र प्रस्तुत किया जा चुका है जिससे तत्कालीन समाज में प्रतिष्ठित वर्ण उनके कर्म, आचार-व्यवहार एवं कर्तव्याकर्तव्य का परिचय मिल जाता है। सम्प्रति विचारणीय विषय यह है कि तत्कालीन समाज में अन्य कौन-कौन सी जातियाँ थी तथा उनका क्या अस्तित्व था?

रामायणमञ्जरी में यद्यपि अनेक जातियों का उल्लेख पाया जाता है किन्तु आद्योपान्त इसकी कथावस्तु प्रमुख रूप से देव, आर्य, वानर एवं राक्षस प्रभृति चार जातियों के इर्द-गिर्द घूमती है। प्रारम्भ में ही रावण के अत्याचार से त्रस्त ब्रह्मादि देव गण विष्णु से दशरथ के पुत्र के रूप में अवतरित होकर रावण की पाशविक शक्ति के विनाश हेतु प्रार्थना करते हैं। पुनः आर्य राम का जन्म, सुग्रीवादि वानरों से मैत्री, तदनन्तर देव, आर्य एवं वानरों द्वारा राक्षसराज रावण के विनाश का उल्लेख प्राप्त होता है। इस प्रकार रामायणमञ्जरी में प्रमुख रूप से इन्हीं चार जातियों का वर्णन है, किन्तु प्रसङ्गानुसार अन्य जातियों के संकेत भी इस ग्रन्थ में मिलते हैं, यथा—गुहा वृत्तान्त से आधुनिक केवट (मल्लाह) जाति का परिचय मिलता है। उत्तरकाण्ड में सीता परित्याग का कारण धोबी बनता है, जिससे समाज में धोबी तथा उसके अतिरिक्त अन्य जातियों की भी कल्पना की जा सकती है। तत्कालीन समाज में विभिन्न प्रकार के आभूषणों के प्रयोग का वर्चस्व था। इससे स्वर्णकारों के अस्तित्व की कल्पना भी की जा सकती हैं। रामाश्वमेध के समय सीता की स्वर्णिम मूर्ति कुशल शिल्पकारों द्वारा बनायी गयी थी। अतः शिल्पकार, पच्ची-

कार, लुहार एवं बढ़ई आदि विभिन्न जातियों एवं उपजातियों के अस्तित्व की कल्पना तत्कालीन समाज में की जा सकती है। यक्ष, किन्नर, गन्धर्वों के अनेकश: उल्लेख विद्यमान हैं। कुछ कोल-भील आदि जंगली जातियों के संकेत भी प्राप्त होते हैं। ऋषियों का एक अलग ही वर्ग था जो 'ऋषिकुल' के नाम से जाना जाता था।

इस प्रकार सम्पूर्ण रामायणमञ्जरी पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डालने से विभिन्न जातियों के अस्तित्व का उल्लेख प्राप्त होता है। इसमें देव, आर्य, वानर, राक्षस, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व कोल-किरात, केवट, धोबी, शिल्पकार, स्वर्णकार, ऋषिकुल आदि विभिन्न जातियाँ उल्लेखनीय हैं।

समाज में इन जातियों के भिन्न-भिन्न कर्म, रहन-सहन, खान-पान तथा वेष-भूषा के भी संकेत प्राप्त होते हैं। आर्य लोग उत्तम अन्नादि आहार करते थे। वानर जाति के लोगों को प्राय: फल ही अधिक प्रिय था। किन्तु आर्य एवं वानरों से भिन्न राक्षस जाति के लोग भक्ष्या-भक्ष एवं मांसाहार अधिक पसन्द करते थे। भोजन के साथ पेय के रूप में मदिरा पान का इनमें अधिक प्रचलन था। युद्धकाण्ड के अन्तर्गत कुम्भकर्ण जागने पर हाथी, भैंसे तथा मनुष्यों के मांस का आहार करके सहस्रों घड़े रुधिर का पान किया।[1] इसी प्रकार सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत रावण के उत्कट मदिरा पान का भी चित्रण मिलता है।[2] इससे स्पष्ट ही है कि राक्षस लोग मांस एवं मदिरा का सेवन करते थे तथा अन्य आर्य, वानर आदि जाति के लोग विशुद्ध सात्त्विक अन्नाहार एवं फलाहार करते थे।

रामायणमञ्जरी के अन्तर्गत चित्रित समाज में व्यक्ति भेद की दृष्टि से भी प्राय: उत्तम, अधम, धनी, गरीब, मूर्ख, बुद्धिमान, विनीत, उदण्ड, सत्यवादी, असत्यवादी, धार्मिक, अन्यायी आदि विविध प्रकार के व्यक्तित्व सुलभ हैं। आर्य लोग सत्यवादी, विनीत बुद्धिमान, धार्मिक एवं समाज में उत्तम वर्ग के समझे जाते थे। किन्तु इसके विपरीत राक्षसगण प्राय: उदण्ड, असत्यवादी, अन्यायी तथा अधम माने जाते थे। वानर जाति में आर्यों के ही गुण विद्यमान थे, अपवादस्वरूप बालि को छोड़कर। इसी प्रकार राक्षसों में भी विभीषण आर्य गुण सम्पन्न थे।

रामायणमञ्जरी में वर्णित समाज के अवलोकन से पता चलता है कि देव, आर्य, वानर तथा राक्षस प्रभृति सभी जातियाँ प्रभूत धन सम्पन्न एवं वैभव युक्त थी। स्वर्ण, हीरे तथा अनेक प्रकार की दीप्त मणियों का आभूषण प्राय: सभी लोगों की वेष-भूषा का एक अंग था। अत: सभी जातियाँ धन-धान्य से सम्पन्न थी। केवल आर्य जाति में ऋषियों

---

१. रामा० मं०, यु० कां० (७४४)

२. रामा० मं०, सु० कां० (७६, १८७, १८६)

का ही एक ऐसा समुदाय था, जिन्हें धन, ऐश्वर्य एवं विलासी जीवन से कोई प्रयोजन नहीं था। अतः अर्थप्राधान्य के आधार पर यदि किसी को गरीब की संज्ञा तत्कालीन समाज में दी जा सकती है तो वह ऋषिकुल ही था।

समाज में व्यवहारिक स्तर पर शिष्टाचार का बहुत अधिक महत्व था। वह भी विशेष रूप से देव, आर्य, ऋषि एवं वानर जाति में ही देखने को मिलता है। श्रेष्ठ व्यक्ति का विशेष आदर किया जाता था। तत्कालीन समाज में आतिथ्य धर्म बहुत ही विकसित एवं महत्त्वपूर्ण था। समाज में माता, पिता एवं गुरु का स्थान सर्वोपरि था। राम ने पिता के अप्रत्यक्ष आदेश से ही वनवास स्वीकार कर लिया। माताओं को तो उन्होंने सर्वत्र समादृत किया। गुरु का स्थान तो माता एवं पिता से भी बढ़कर था जिसके प्रमाण रामायणमञ्जरी में तो अनेकशः उपलब्ध हैं। चाहे वह दशरथ द्वारा विश्वामित्र के प्रति देखा जाय अथवा राम का वशिष्ठ एवं विश्वामित्र के प्रति। गुरु पत्नी को माता तथा पुत्री को बहन सदृश मान्यता प्राप्त थी। इस मर्यादा का अतिक्रमण करने वाला व्यक्ति राजा दण्ड की गति को प्राप्त होता था। राजा 'दण्ड' ने अपने गुरु शुक्र की पुत्री अरजा के साथ बलात्कार किया, परिणामस्वरूप उसका राज्य एवं सम्पूर्ण राष्ट्र भस्म होकर राख हो गया तथा वह स्थान पशु-पक्षि विहीन 'दण्डकारण्य' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[1] राक्षसों में शिष्टाचार का कोई विशेष महत्त्व नहीं था, वे तो जन्मना अशिष्ट ऐवं उद्दण्ड थे।

रामायणमञ्जरी में वैवाहिक स्वरूप—

भारतीय संस्कृति के अनुसार विवाह एक संस्कार है जिसका मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति है। यह सन्तानोत्पत्ति पितृ ऋण से उद्धार पाने के लिए किया जाता है। अतः भारतीय परिवार में विवाह संस्कार का आधार धर्म और आध्यात्मिकता है, भोग और भौतिकता नहीं।

उपर्युक्त कथन के अनुसार ही भारतीय संस्कृति के इस विवाह संस्कार का स्वरूप अत्यन्त पावन, भावपूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण है। इस वैवाहिक कर्म के दो पक्ष हैं—दाता और प्रतिग्रहीता। इसमें दाता का अत्यधिक महत्त्व होता है। दाता कन्या धन के साथ-साथ प्रभूतधन भी प्रतिग्रहीता को यथाशक्ति दान करता था। यह प्रथा रामायणमञ्जरी में वर्णित है। राजा जनक दशरथ को कन्या धन के साथ प्रभूत धन भी दान करते हैं।[2] इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज में दहेज प्रथा का प्रचलन था किन्तु आजकल की तरह नहीं कि प्रतिग्रहीता अपनी इच्छानुसार दाता से कन्या धन के साथ-साथ उसकी यथाशक्ति से अधिक ही दहेज लेने का प्रयत्न करता है।

---

१. रामा० मं०, उ० कां० (१०८२–१०८७)
२. रामा० मं०, बा० कां० (५६८)

रामायणमञ्जरी के अनुसार पिता के ऊपर ही अपनी कन्या के लिए उत्तम वर-निर्णय का भार होता था। इसी कारण पिता को इस उत्तरदायित्व के निर्वाह की चिन्ता होती थी। राजा जनक का शौर्यशुल्का सीता के लिए स्वयंवर करना इसी तथ्य की पुष्टि करता है।[1] राजा कुशनाभ की कन्याएँ भी पिता के इस उत्तरदायित्व को समझते हुए ही वायु के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती हैं[2]—

कुलाभिमानात्कन्याभिः स निषिद्धः पितुर्भयात्।

आर्य जाति में ही दाता के ऊपर यह उत्तरदायित्व नहीं था अपितु राक्षसों में भी दाता (पिता) के इस उत्तरदायित्व का संकेत मिलता है। उत्तरकाण्ड में सुमाली का अपनी युवती कन्या के लिए वर-निर्णय की चिन्ता[3] तथा मय दानव का अपनी कन्या मन्दोदरी के लिए वर की खोज[4] आदि घटनाएँ तत्कालीन समाज में दाता के उत्तरदायित्व की ओर संकेत करती हैं।

तत्कालीन समाज में ऋषि विवाह प्रचलित था जिसका मुख्य उद्देश्य केवल उत्तम सन्तान से उन्नत समाज का निर्माण करना था। इस तथ्य के उदाहरण रामायणमञ्जरी के कई प्रसङ्गों में मिलते हैं। राजा लोमपाद ने ऋष्यश्रृंग से अपनी कन्या शान्ता का विवाह सम्पन्न किया था—**तत्प्रीत्या लोमपादोऽस्मै शान्तां दुहितरं ददौ।**[5] राजा कुशनाभ ने अपनी सौ कन्याओं का विवाह महातेजस्वी ऋषि ब्रह्मदत्त से किया था।[6] राक्षसों में भी इस प्रथा का संकेत मिलता है। सुमाली अपनी कन्या पुष्पोत्कटा को पौलस्त्य पुत्र विश्रवा को देता है।[7]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज में **आर्ष विवाह** का प्रचलन था। अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहों के उदाहरण भी रामायणमञ्जरी में प्राप्त होते हैं। इसमें भी **अनुलोम प्रथा** का प्रसार अधिक था क्योंकि आर्ष विवाह के अन्तर्गत ऋषियों का महत्त्व स्पष्ट था। क्षत्रिय वर्ण के राजागण ऋषि वर्ग में अपनी कन्याओं का अर्पण करना सौभाग्य समझते थे। उत्तरकाण्ड में दैत्य कुलोत्पन्न शर्मिष्ठा तथा क्षत्रिय राजा ययाति का विवाह अनुलोम प्रथा की पुष्टि करता है।[8] इसी स्थल पर **प्रतिलोम विवाह** का उदाहरण भी देखा जा सकता है। शुक्राचार्य की कन्या देवयानी ययाति की पत्नी थी।[9]

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (४८८, ४९०), २. वही (१९०–१९५)

३. रामा० मं०, उ० कां० (११४–११७), ४. वही (१९३–१९९)

५. रामा० मं०, बा० कां० (४९, ६०), ६. वही (१९७–१९९)

७. रामा० मं०, उ० कां० (१०८–१२०), ८. वही (८८४), ९. वही (८८३)

रामायणमञ्जरी के विवरणों से पता चलता है कि रामायण काल में ब्राह्म विवाह एवं स्वयंवर प्रथा भी प्रचलित थी। राम और सीता का विवाह इस तथ्य की पुष्टि करता है। स्वयंवर के द्वारा राम सीता का वरण करते हैं तदनन्तर प्रभूत धन के साथ कन्या धन को राजा जनक दान करते हैं। रामायणमञ्जरी में राक्षस विवाह का संकेत भी प्राप्त होता है राक्षस राज रावण सुर, गन्धर्व, किन्नर तथा नाग कन्याओं को बलात् हरण कर अपनी पत्नी बना लिया था।[1]

रामायणमञ्जरी के अनुशीलन से पता चलता है कि रामायण काल में 'गान्धर्व विवाह' का प्रचलन नहीं था। 'बाल विवाह' के भी संकेत नहीं मिलते क्योंकि विवाह के समय सीता 'समुपस्थित यौवना' थी। इसके अतिरिक्त भी रामायणमञ्जरी में जितनी कन्याओं के विवाहादि का उल्लेख मिलता है वे सभी समुपस्थित यौवना थी।

रामायण काल में वैवाहिक आदर्शों के अतिरिक्त किञ्चित सामाजिक दुर्गुणों का भी समावेश हो चुका था जिसका स्पष्ट संकेत रामायणमञ्जरी के कई प्रसङ्गों से प्राप्त होता है। यह सामाजिक दुर्गुण बहु-पत्नी प्रथा का था। राजा दशरथ की तीन पत्नियाँ (कौशल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा) राजा सगर की दो पत्नियाँ (केशिनी तथा सुमति), ययाति की दो पत्नियाँ (देवयानी एवं शर्मिष्ठा), बालि द्वारा भाई सुग्रीव की पत्नी का अपहरण कर तारा एवं रूमा सहित दो पत्नियाँ तथा राक्षसराज रावण की बहुत सी पत्नियों का उल्लेख प्राप्त होता है। इन तथ्यों से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि रामायण काल में बहु-पत्नी प्रथा प्रचलित थी। किन्तु इसी स्थल पर ध्यातव्य है कि रामायणमञ्जरी में राम की एकपत्नीनिष्ठता तथा सीता के पातिव्रत धर्म का आदर्श स्थापित किया गया है। सम्भवतः राम और सीता का यह आदर्श तत्कालीन बहुपत्नी प्रथा के दुर्गुण का उपचार स्वरूप ही था।

रामायणमञ्जरी में नारी का स्वरूप

भारतीय समाज में नारी को एक विशिष्ट गौरव पद सदा से ही प्राप्त रहा है। भारतीय परिवार में नारी के विविध रूप हैं और सभी रूपों में वह पूजनीया है। यह बेटी है, यह पत्नी है, यह गृहवधू है और बहन है। यह ननद है, सास है, पुत्रवधू है, माँ है। सखी, नातिन, पोती—ओह! अधिक क्या कहा जाय विधाता की सृष्टि में यह कन्या (नारी) भला कौन सा गौरव पद नहीं धारण करती।[2]

---

१. रामा० मं०, उ० कां० (५४६, ५४७)

२. जानकीजीवनम् (८।८०)

इतने विविध रूपों में भ्रमण भरते हुए अर्थात परिवर्तन कष्ट को सहते हुए भी नारी विकार को नहीं प्राप्त होती। लहलहाती फसलों से हँसती हुई, तुषारापात से प्रकम्पित काया वाली, ग्रीष्म ऋतु में उष्माजनित प्रखर किरणों से जलती हुई वसुधा, जैसे नाना परिवर्तनों के बावजूद भी सन्तुष्ट ही रहती है, उसी प्रकार कन्या (नारी) विविध परिवर्तन कष्ट सहते हुए भी विकार को नहीं प्राप्त होती, अपितु हर परिस्थितियों में स्वयं को ढाल लेती है।[1]

उपर्युक्त प्रसंग से भारतीय नारी के विविध स्वरूप का स्पष्ट एवं साक्षात चित्र ही समुपस्थित हो जाता है। रामायणमञ्जरी के विभिन्न सन्दर्भों से भी नारी के विविध स्वरूप का परिज्ञान होता है। बेटी के रूप में शान्ता, सीता, कुशनाभ की कन्याएँ तथा पुष्पोत्कटा आदि, पत्नी के रूप में कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, सीता, तारा तथा मन्दोदरी गृहवधू एवं पुत्रवधू रूप में सीता, बहन रूप में शूर्पनखा, सास एवं माँ के रूप में कौशल्या, कैकयी, सुमित्रा, सखी रूप में त्रिजटा एवं सरमा के उदाहरण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

नारी के विविध रूपों में सर्वप्रथम 'कौमार्य' रूप सामने आता है। आजकल की भाँति बालिका का जन्म उस समय अवांछनीय नहीं माना जाता था अपितु उन्हें कन्या धन[2] की संज्ञा से विभूषित कर उनका पालन पोषण किया जाता था। कुमारियों के विवाह का भी चिन्ता अनिवार्य था परन्तु वह चिन्ता विषादजन्य न थी अपितु कर्तव्य प्रेरणावश थी। अपनी पुत्री को यावज्जीवन सुखी देखने की अभिलाषा से पितृ वर्ग चिन्तित हो जाया करते थे। इस लालसा की पूर्ति के लिए महान आयोजन किए जाते थे। जनक की चिन्ता एवं धनुष यज्ञ का विशाल आयोजन अपनी कुमारी कन्या के लिए श्रेष्ठ वर खोजने का ही प्रतिरूप है।[3] राजा कुशनाभ ने अपनी कुब्जा कन्याओं के लिए भी योग्य भर्ता तपस्वी ब्रह्मदत्त को खोजा।[4] सुमाली की चिन्ता भी विश्रवा मुनि को पुष्पोत्कटा के लिए वर रूप में वरण किया।[5] मय ने भी मन्दोदरी के लिए रावण का वरण किया।[6] विवाह में भी कुमारियाँ स्वतन्त्र न थी अपितु पितृवशा थी। यद्यपि स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी किन्तु कन्याएँ मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं करती थी। कुमारियों के विवाह पितृवर्ग के लिए अभिशाप न थे क्योंकि उस समय आधुनिक 'दहेज प्रथा' का प्रचार न था और न ही वर पक्ष की ओर से किसी माँग का प्रस्ताव होता था। हाँ, कन्या दान के समय 'कन्या धन' अवश्य दिया जाता था।[7]

---

१. जानकीजीवनम् (८।७९)

२. रामा० मं०, अयो० कां० (५६९), ३. वही (४९१), ४. वही (१९७–१९९)

५. रामा० मं०, उ० कां० (११३–११७), ६. वही (१९३–१९९)

७. रामा० मं०, बा० कां० (५६९)

नारी के 'युवती' रूप का तो रामायणमञ्जरी में चरम विकास ही दर्शाया गया हैं। नारी के गुणों के अनुसार उसे कई रूपों में सम्बोधित किया जाता है—नारी, वामा, अबला, सुन्दरी, प्रमदा, मानिनी, महिला, जाया, माता इत्यादि। रामायणमञ्जरी में नारी के इन विविध सम्बोधनों का प्रयोग अनेकशः प्राप्त होता है, जो उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ही प्रस्तुत कर देता है।

सायण के अनुसार 'नारी' शब्द की व्युत्पत्ति **'नृणां महावीरार्थिनाम् उपकारित्वात् नारिः।'** 'न अरिः नारिः।' के अनुसार नारी का अर्थ नरों का उपकारक या शत्रु का न होना कहा गया है। कौशल्या, सीता, मन्दोदरी आदि सभी इस रूप को चरितार्थ करती हैं।

'वामा' रूप का अर्थ सौन्दर्य ... करने वाला है। सीता का सौन्दर्य इस रूप का प्रमाण हैं। इसी वामा रूप अथवा सौन्दर्यातिशय के प्रसङ्ग में रावण द्वारा सीता के सौन्दर्य हेतु प्रयुक्त विभिन्न सम्बोधनों का उल्लेख करना आवश्यक है। सुन्दरकाण्ड में रावण सीता के लिए—'वामनयने', 'मुग्धे', 'सुभ्रु', 'सुवृशा', 'तन्वि', 'भीरू', 'मदिराक्षि', 'चारुनयने', 'लोलाक्षि', 'शुचिस्मिते', 'सौम्ये' आदि सौन्दर्य परिचायक सम्बोधनों का प्रयोग करता है।[1] इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत दशरथ भी कैकेयी के प्रति 'प्रिये', 'दयिते', 'सुभगे' आदि सम्बोधनों का प्रयोग करते हैं।[2] रामायणमञ्जरी में प्रयुक्त उपर्युक्त संबोधन नारी के वामा रूप का स्पष्ट संकेत करते हैं।

'बल' शब्द शारीरिक शक्ति का वाचक है अतएव 'अबला' शब्द शारीरिक शक्ति के अभाव का सूचक है। इसके अनुसार नारी में शारीरिक बल नहीं होता अतएव वह 'अबला'[3] है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उसमें शक्ति ही नहीं होती अपितु उसकी मानसिक शक्ति अपरिमित हुआ करती है। इसका ज्वलन्त उदाहरण राक्षसराज रावण के वश में पड़ी हुई सीता का निर्भीक रूप एवं दृढ़ आत्मबल है। शारीरिक शक्ति के अभाव के कारण ही वह, दुष्ट रावण की शक्ति का प्रतीकार न करते हुए उसके चंगुल में पड़ी रही किन्तु सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत अबला सीता के दूसरे रूप का दर्शन होता है जिसमें वह निर्भीक होकर रावण का अपमान करती है।[4]

सुन्दरी शब्द का अर्थ है **'सुष्ठु नन्दयति इति'**। स्त्री भली प्रकार प्रसन्न करती है। सुन्दरी का अर्थ शोभा सम्पन्ना तथा चित्त द्रवित करने वाली भी है। अरण्य पर्व के

---

१. रामा० मं०, सु० कां० (२०६–२२४)
२. रामा० मं०, अयो० कां० (७१३, ७१४, ७२२)
३. रामा० मं०, अ० प० (७७७, ८५८)
४. रामा० मं०, सु० कां० (२२८–२४४, २५७–२६२)

अन्तर्गत विलाप करते हुए राम द्वारा सीता के प्रति प्रयुक्त सम्बोधन 'सुन्दरी' शब्द के ही वाचक हैं। सीता के अतिरिक्त भी कौशल्या, मन्दोदरी तथा अनसूया आदि सभी नारियाँ इस गुण से सर्वथा समन्वित हैं।

नारी का ही एक अन्य रूप 'प्रमदा' भी है। 'प्रमदा संमर्दो हर्षे च' के अनुसार हर्षित प्रकृति सम्पन्ना नारी प्रमदा है। यह नैसर्गिक गुण भी रामायणमञ्जरी की सभी नारियों में मिलता है। स्त्री मानप्रियता के कारण 'मानिनी'[1] भी कहलाती है। कैकेयी इसका ज्वलन्त उदाहरण है। सीता के लिए भी मानिनी शब्द का प्रयोग मिलता है। नारी के एक 'ललना'[2] रूप का वर्णन मिलता है। ललना और मानिनी नारी की मानसिक भावना का द्योतक है। 'लल' शब्द का अर्थ है इच्छा करना नारी में लालसा एवं इच्छा प्रबल होती है। अतः उसे ललना कहा गया।

नारी के अन्य नाम रूप महिला, जाया, दुहिता, माता आदि हैं जो भारतीय नारी के प्रति उत्तम भाव ही अर्पित करते हैं। महिला का मूल शब्द 'मह्' स्वयं पूजा वाचक है। जाया रूप में वह पुत्र की साधन स्वरूपा होने के कारण महिमा, गरिमा एवं शोभा से समन्विता हो जाती है। 'माता' शब्द की गरिमा तो सर्वप्रसिद्ध ही है। उसका तात्पर्य माननीया एवं निर्मातृ दोनो ही है। माता शब्द के माननीया रूप के ज्वलन्त उदाहरण लक्ष्मण तथा हनुमान द्वारा सीता के प्रति प्रयुक्त 'माता' के सम्बोधन हैं। लक्ष्मण सदैव सीता को 'माता' शब्द के द्वारा ही सम्बोधित करते हैं। इसी प्रकार सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत हनुमान भी सीता के लिए 'माता' कहकर ही सम्बोधित करते हैं। निर्मातृ रूप में कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा के प्रति राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न द्वारा प्रयुक्त 'माता' के सम्बोधन अनेकशः वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त रामायणमञ्जरी में देवि, भार्या, कामिनी, कान्ता, बल्लभा, स्त्री, योषित, तरुणी, अङ्गना आदि सम्मान्य वाचक एवं सौन्दर्य वाचक सम्बोधनों का प्रयोग बहुशः प्राप्त होता है। नारी के विभिन्न स्वरूपों में कुछ भौतिक व्यक्तित्व के द्योतक हैं, कुछ शारीरिक एवं कुछ मानसिक विशेषताओं के सूचक हैं। हर्ष का विषय यह है कि नारी के इन विभिन्न रूपों का विस्तृत वर्णन कवि ने रामायणमञ्जरी में स्थल-स्थल पर किया है।

नारी के इन दिव्य रूपों के साथ-साथ सामाजिक क्षेत्र में उसके अन्य रूप भी उस समय विद्यमान थे जिसका उल्लेख रामायणमञ्जरी में मिलता है। रामायणमञ्जरी में गणिका एवं अप्सराओं के प्रसङ्ग कई स्थानों पर हैं। परन्तु उनके स्वरूप तथा आधुनिक

---

१. रामा० मं०, अ० प० (११४१) एवं विभीषणाभिषेकः (९४)

२. रामा० मं०, अयो० कां० (९८६), कि०कि० कां० (९९१, १५३), अ० प० (७६६) एवं सु० कां० (२४८)

रूप में पर्याप्त अन्तर है। उस समय गणिका को 'वाराङ्गना'[1] शब्द से सम्बोधित किया जाता था। जबकि आधुनिक वेश्या अपने अनिर्बन्ध व्यवहार के कारण निन्दनीया एवं उपेक्षिता है। रामायणकालीन गणिका गण विशेष की पत्नी होकर भी पातिव्रत धर्म का पालन करती है। यह बहुत कुछ बहु-पत्नी प्रथा का भी प्रमाण है। इस प्रथा का अस्तित्व देव वर्ग की अप्सराओं में उल्लिखित है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उनमें व्यभिचार था। रावण-रम्भा प्रसङ्ग में नल-कूबर का शाप इसका स्पष्ट प्रमाण है।[2]

'कौमार्य' एवं 'युवती' रूप के अतिरिक्त नारी के 'वृद्धा' रूप का भी संकेत रामायणमञ्जरी में मिलता है। इसका ज्वलन्त उदाहरण अनसूया, त्रिजटा एवं रावण की माता का है। इनके वर्णन से यह तर्क किया जा सकता है कि रामायणकालीन वृद्धा नारी पातिव्रतपरायणा, धर्मपरायणा एवं सद्विचारयुक्ता थी। अन्यथा त्रिजटा एवं राक्षसराज रावण की माँ तो राक्षस परिवार से ही सम्बन्धित थी, उनके अन्तः में धर्म बुद्धि कैसे आ सकती थी। यह तो मात्र तत्कालीन वृद्धा नारी के सहज गुण के कारण ही है।

रामायणमञ्जरी में नारियों की सामाजिक स्थिति के भी महत्वपूर्ण प्रसङ्ग हैं। यथा—'नारी सदैव अवध्य है' इसका प्रमाण अरण्य पर्व के अन्तर्गत भरत की उक्ति से मिलता है—**अवध्या जननी योषिदात्महा पापमश्नुते।**[3] 'भ्रातृजाया के साथ संभोग महान पाप है'[4]—राम बालि से कहते हैं कि—वानर जाति में उत्पन्न तुम धर्म की गति नहीं जानते, जो कि भ्रातृजायारत जैसे पाप को भी अच्छा ही समझते हो—**भ्रातृजायारतः पापं किं साधुरिव भाषसे।** पुनः राम कहते हैं कि भ्रातृजायारती व्यक्ति का वध करना अधर्म नहीं है—**भ्रातृजायारतवधो नाधर्मो ममरूपता।** परदाराहरण घोर निन्दित कार्य है। इसकी तो सम्पूर्ण रामायणमञ्जरी में अनेक पात्रों द्वारा आलोचना की गयी है। परदारा सम्भोग वर्जित है—रावण-रम्भा के प्रसङ्ग में नल-कूबर साप से ही यह स्पष्ट है। यही नहीं निर्वस्त्र परस्त्री दर्शन अथवा परस्त्री के विषय में कुविचार का मन में आना भी महान पाप है। सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत रावण के अन्तःपुर में निर्वस्त्र स्त्रियों को देखकर हनुमान द्वारा कही गयी उक्तियाँ इसका स्पष्ट प्रमाण हैं।[5] परनारी की ओर दृष्टिपात करना या उस पर क्रोध करना भी अवाँछनीय था—वानर जाति की साम्राज्ञी तारा

---

१. रामा० मं०, अयो० कां० (७८७)

२. रामा० मं० उ० कां० (६११–६१८)

३. रामा० मं०, अ० प० (४६)

४. रामा० मं०, कि० कि० प० (१७५, १७७)

५. रामा० मं०, सु० का० (९६–१००)

के सम्मुख उग्र प्रकृति वाले क्रोधान्ध लक्ष्मण भी विनतवदन स्थित रहे।[1] नारी के उपर्युक्त आदर्शों के साथ ही साथ रामायणकालीन समाज में 'मातृवत परदारेषु' का आदर्श सम्यक्रूपेण परिपालित था जिसका स्पष्ट संकेत रामायणमञ्जरी में मिलता है। लक्ष्मण सीता का व्यवहार आद्यन्त माता पुत्र का ही है।[2] इसी प्रकार हनुमान सीता का भी प्रसङ्ग परम श्लाघ्य है।[3] पातिव्रत धर्म ही नारी का परम धर्म हैं—अनसूया, सीता, कौशल्या आदि का चरित्र पवित्र पातिव्रत का संदेश देता है। अरण्य पर्व में पातिव्रत धर्म की महत्ता का वर्णन करते हुए अनसूया सीता से कहती हैं[4]—कुलीन स्त्रियों के लिए किसी दूसरे व्रत या धर्म की आवश्यकता नहीं यदि वे भक्तिपूर्वक पवित्र मन से सदा पति की सेवा में संलग्न रहें। जिस प्रकार ज्ञाननिष्ठ तपस्वी तथा युद्धरत वीर अन्तकाल में परमधाम को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार पतिपरायणा स्त्रियाँ भी परमधाम को प्रात होती हैं। प्रजा का एक मात्र देवता (स्वामी) राजा होता है, सज्जनों के एक मात्र माता और पिता, विप्रों के एक मात्र देवता अग्नि तथा नारियों के एक मात्र देवता पति हैं। इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत सीता की उक्तियों में भी पातिव्रत धर्म दर्शनीय है वे कहती हैं—नारी का सौन्दर्य, आयु, कान्ति सौभाग्य एवं सम्पूर्ण जोवन ही पति पर आधारित होता है। जिस प्रकार त्याग विहीन सम्पदा, सत्यविहीन वाणी और शान्ति विहीन विद्या शोभित नहीं होती, उसी प्रकार पति विहीन नारी भी शोभायमान नहीं होती।[5] पुत्र नारी का आत्मीय रूप है—कौशल्या की पुत्रवत्सलता के अन्तर्गत इसका स्पष्ट संकेत मिलता है।[6] इस प्रकार नारी एक ओर पति के प्रति उत्सर्गमयी है तो दूसरी ओर पुत्र के प्रति त्यागमयी।

स्त्रियों का सामाजिक महत्त्व धार्मिक अनुष्ठानों से भी व्यक्त होता है। यज्ञादि में पत्नी की उपस्थिति परम अनिवार्य थी। इसीलिए रामाश्वमेध यज्ञ के अवसर पर सीता की अनुपस्थिति में उनकी स्वर्णिम प्रतिमा बनवायी गयी।[7] रामायणकालीन समाज में 'विधवा' नारी उपेक्षिता नहीं थी। इस बात का प्रमाण रामायणमञ्जरी में दर्शनीय है। दशरथ की विधवा रानियाँ सम्मानित एवं आदरणीय जीवन व्यतीत करती हैं। समस्त युद्ध ही रावण ने अपनी विधवा बहन शूर्पनखा के सम्मान की रक्षा के लिए ही किया।

---

१. रामा० मं०, कि० कि० कां० (१५२, १५३)
२. रामा० मं०, अ० प० (७७६, ७७९)
३. रामा० मं०, सु० कां० (३३५)
४. रामा० मं०, अ० प० (३३६, ३३७, ३३९)
५. रामा० मं०, अयो० कां० (८७३, ८७४, ८७६), ६. वही (८३०–८३३)
७. रामा० मं०, उ० कां० (११६९)

तत्कालीन समाज में 'वन्ध्या' स्त्रियों के अस्तित्व का भी संकेत मिलता है। कौशल्या कहती हैं—एक पुत्र वाली माँ की अपेक्षा वे वन्ध्या स्त्रियाँ ही धन्य हैं जो स्वप्न में भी पुत्र स्नेह की विषम व्यथा को नहीं जानती।[1]

रामायणमञ्जरी में जहाँ एक तरफ नारी के उपर्युक्त शारीरिक एवं मानसिक गुणों के आदर्श रूप का चित्रण मिलता है वहीं दूसरी तरफ कवि ने उसके गर्हित एवं निन्दित स्वरूप का भी उल्लेख किया है जिसमें नारी के मनोवैज्ञानिक चाञ्चल्य एवं दुष्ट स्वभाव का दर्शन होता है। नारी के इस स्वरूप के स्पष्टीकरण हेतु रामायणमञ्जरी में अनेक स्थल विद्यमान हैं जिनका संक्षिप्त उल्लेख अधोलिखित है।

अरण्य पर्व के अन्तर्गत लक्ष्मण स्त्रियों के कुटिल, दुर्बोध एवं चंचल स्वभाव का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि ये कुटिल स्त्रियाँ अपने स्वभाव से मित्र, स्नेही तथा बन्धु-बान्धवों में भेद उत्पन्न करने वाली होती हैं।[2] सुन्दरकाण्ड में रावण कहता है कि—स्त्रियाँ कुटिल आचरण वाली होती हैं। वे समझाने से धृष्टता और अपमान से अधीनता को प्राप्त होती हैं। वे प्रेम की पात्र नहीं हैं।[3] स्त्री कठोर बोलती है फिर भी लोग उसे प्रेम करते हैं।[4] नीच व्यक्तियों, नदियों और स्त्रियों को प्रयत्नपूर्वक पकड़ने पर भी उनके हृदय में उन्नत (उत्तम व्यक्ति) के प्रति प्रेम नहीं उत्पन्न होता है।[5] चञ्चल हृदयों वाली और प्रायः स्वभाव से ही मोह में पड़ी रहने वाली स्त्रियाँ महान व्यक्तियों से भी अवज्ञापूर्वक बोलने की धृष्टता किया करती हैं।[6] इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड में भी स्त्रियों की विवेक हीनता का परिचय मिलता है—दुष्ट वाक्यों का स्त्रियाँ और मूर्ख सदा आदर करते हैं[7]—**सर्वथा खलवाक्येषु स्त्रियो मूर्खाश्च सादराः।** इस प्रकार कुटिल, विवेकहीन एवं दुष्ट स्वभाव वाली स्त्रियों के वशीभूत हो जाने वाले पुरुष की क्या गति हो सकती है, इसका भी सम्यक् परिचय रामायणमञ्जरी में प्राप्त होता है।[8] सामान्य जन की बात ही क्या? स्त्रियों के वशीभूत बड़े-बड़े राजागण भी पराभव को प्राप्त होते हैं[9]—

बलिनोऽपि धियाहीना मत्तप्राया नृपद्विपाः।
करिणीनामिव स्त्रीणां वश्या यान्ति पराभवम्॥

स्त्रियों के काम के वशीभूत राजाओं तथा सामान्य जन की भी गति विचित्र ही है। जिस

---

१. रामा० मं०, अयो० कां० (८३०)

२. रामा० मं०, अ० प० (७७७, ७७८)

३. रामा० मं०, सु० कां० (२४५), ४. वही (२४८), ५. वही (२४९), ६. वही (२६०)

७. रामा० मं०, अयो० कां० (७०६), ८. वही (७२८, ७२९, ७३०), ९. वही (८३९)

प्रकार गृहिणी के वशीभूत नपुंसक व्यक्ति गृहाचार को नहीं जानते उसी प्रकार काम के वशीभूत राजा लोग भी राष्ट्र वृत्ति को नहीं जान पाते ।[1] नारी के साथ काम-क्रीडा की भी एक सीमा और मर्यादा है । जो व्यक्ति सभी आवश्यक कार्यों का परित्याग करके, अपने तेज एवं कान्ति का विनाश करके, स्त्री के वशीभूत हो, अपने मान-सम्मान को म्लान कर देता है, ऐसे कामी जनों को धिक्कार है ।[2] उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त सर्वसामान्य नारी में एक दोष और भी पाया जाता है, वह है 'सापत्न्य द्वेष दोष, जिस पर रामायणमञ्जरी की सम्पूर्ण कथा ही आश्रित है ।

रामायणमञ्जरी में शिक्षा का स्वरूप—

रामायणमञ्जरी में आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत यह स्पष्ट हो चुका है कि जीवन के प्रथम सोपान 'ब्रह्मचर्याश्रम' में ही लोग शिक्षार्जन करते थे । तदनन्तर जीवन के कर्मक्षेत्र में पदार्पण करते थे ।

शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख चार तत्त्व विचारणीय हैं—गुरु, विद्यालय, शिष्य और शिक्षा । रामायणमञ्जरी में शिक्षा के इन प्रमुख तत्त्वों का किञ्चित् उल्लेख अवश्य प्राप्त होता है जिससे तत्कालीन शिक्षा के स्वरूप का स्पष्ट परिज्ञान हो जाता है ।

शिक्षा से सम्बन्धित उपर्युक्त तत्त्वों में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान 'गुरु' का है । गुरु के विना अन्य तत्त्वों का न तो कोई मूल्य है और न ही अस्तित्त्व । रामायणमञ्जरी में गुरु की महत्ता को प्रतिपादित करने वाले कई स्थल उपलब्ध हैं । इनमें भी गुरु वशिष्ठ और विश्वामित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । बालकाण्ड के अन्तर्गत इनके आश्रमों का भी उल्लेख है ।[3] वशिष्ठ के आश्रम में उनके १०० शिष्यों की भी सूचना मिलती है जो राजा त्रिशंकु को गुरु वशिष्ठ की अवमानना करने पर 'चाण्डाल' होने का शाप दे देते हैं ।[4] इस प्रसङ्ग से यह स्पष्ट होता है कि रामायणकाल में गुरुकुल की परम्परा थी । शिष्य स्वयं गुरु के पास जाकर एक अन्तेवासी के रूप में शिक्षार्जन करते थे । गुरु का आश्रम ही विद्या मन्दिर के रूप में था । वशिष्ठ तथा उनके शिष्यों के इस वर्णन से तत्कालीन गुरु के तपोमय रूप का तो परिचय प्राप्त होता ही है, साथ ही साथ ऐसे ज्ञान-निष्ठ एवं तपस्वी गुरु के शिष्यों के भी प्रदीप्त तेज का संकेत मिलता है ।

इसी प्रकार 'सिद्धाश्रम' में गुरु विश्वामित्र का तपोमय रूप भी तत्कालीन गुरु की जीवनचर्या का व्यापक दिग्दर्शन कराता है ।[5] ऐसे गुरु की महत्ता एवं गुरुता का तो

---

१. रामा० मं०, अ० प० (६४१)

२. रामा० मं०, कि० कि० कां० (१३७, १३८)

३. रामा० मं०, बा० कां० (३४१–४०७), ४. वही (३९१, ३९२, ४०२), ५. वही (१६३–१६९)

वर्णन ही दुष्कर है जिसके शिष्य रूप में स्वयं राम ने समस्त विद्याओं का अर्जन किया। रामायणमञ्जरी में विभिन्न स्थलों पर गुरु वशिष्ठ एवं विश्वामित्र का देवोचित सम्मान एवं आतिथ्य दर्शनीय है। गुरु की आज्ञा सभी को शिरोधार्य थी। शिष्य राम गुरु की आज्ञा स्वीकार करते हुए कहते हैं—निश्चय ही आपकी वाणी सभी धर्मों में प्रमाण है। हे भगवन्! मैं पिता द्वारा आपके आदेशपालन हेतु नियुक्त हूँ। आपका प्रत्येक वाक्य एवं कार्य मेरे द्वारा सहर्ष स्वीकार है।[1]

गुरु वशिष्ठ एवं विश्वामित्र के अतिरिक्त अरण्य पर्व के अन्तर्गत भरद्वाज, अत्रि, सुतीक्ष्ण, शरभङ्ग तथा अगस्त्यादि ऋषियों के तपोमय स्वरूप का वर्णन मिलता है। इन ऋषियों के भव्य, पवित्र एवं मनोमुग्धहारी आश्रमों के उल्लेख के साथ-साथ पूतात्मा आश्रमवासियों (शिष्य गण) का भी संकेत मिलता है। इससे यह तर्क किया जा सकता है कि ये ऋषि भी गुरुकुल परम्परा के अन्तर्गत शिष्यों को शिक्षार्जन कराते रहे होंगे। इसी प्रसङ्ग में मतङ्ग ऋषि के आश्रम का वर्णन भी अति आवश्यक है। कबन्ध, राम से मतंग आश्रम के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उनके शिष्यों का भी उल्लेख करता है[2]—

अनावृष्टिहते काले गुर्वर्थं फलहारिणाम्।
पुरा मतङ्ग शिष्याणां पतिताः स्वेदबिन्दवः॥

तदनन्तर आश्रम में पहुँचने पर मतङ्ग ऋषि की शिष्या शबरी ने राम से अपने गुरु मतङ्ग एवं उनके आश्रम के महत्ता की विशद चर्चा की है[3]—

आश्रमोऽसौ मतङ्गस्य यत्र ते गुरवो मम।

इस प्रकार गुरु वशिष्ठ, विश्वामित्र एवं मतङ्गादि ऋषियों के तपोमय स्वरूप, उनके पवित्र आश्रम तथा शिष्यों के वर्णन से शिक्षा के प्रमुख तीन तत्त्वों (गुरु, विद्यालय एवं शिष्य) का सम्यक् परिचय रामायणमञ्जरी में प्राप्त हो जाता है। इसके आधार पर निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि रामायणकालीन शिक्षा का स्वरूप गुरुकुल व्यवस्था पर अवलम्बित था। जिसके अनुसार शिष्य अन्तेवासी रूप में गुरु के आश्रम में निजानुकूल शिक्षार्जन करते थे।

सम्प्रति विचारणीय तथ्य यह है कि रामायणकाल में शिक्षा के विषय क्या थे, जिनका रामायणमञ्जरी में वर्णन किया गया है?

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (१४०, १४१)

२. रामा० मं०, अ० प० (१०९३), ३. वही (१११३–१११६)

रामायणमञ्जरी एक युद्ध प्रधान ग्रंथ है। जिसमें क्षत्रियकुलोत्पन्न राम तथा राक्षसकुलोत्पन्न रावण के बीच युद्ध की व्यापक चर्चा है। इसके अतिरिक्त भी ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर युद्ध की घटनाएँ वर्णित हैं। इन युद्धों में बहुत से अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया गया है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि रामायणकाल में प्रायः सभी को अस्त्र-शस्त्र विद्या का ज्ञान था तथा यह एक प्रमुख शिक्षा का विषय भी रहा होगा। इसमें भी 'धनुर्वेद विद्या' में प्रायः सभी निष्णात् थे। धनुर्वेद विद्या एवं अनेक दिव्यास्त्रों का प्रयोग राम ने गुरु विश्वामित्र से प्राप्त किया जिसकी बालकाण्ड में विशद चर्चा की गयी है। विश्वामित्र राम को दिव्यास्त्र प्रदान करते समय केवल उनका प्रयोग ही नहीं सिखाते अपितु इनके उपसंहार एवं उनसे सुरक्षा की भी शिक्षा देते हैं।[1] धनुर्वेद विद्या के अन्तर्गत अनेक सहायक विषयों का भी अध्ययन करना अनिवार्य होता था जिसका प्रमाण बला और अबला विद्याओं के प्रसङ्ग से मिलता है।[2] पुनः रामादि सभी भाई शस्त्रास्त्र, ग्राम शिक्षा एवं सम्पूर्ण विद्याओं तथा कलाओं में निष्णात् एवं पारङ्गत थे[3]—

शस्त्रास्त्रग्रामशिक्षाणां विद्यानां विशदाशयः।
कलानां च बभूवुस्ते संक्रान्तिमणिदर्पणाः॥

इससे यह स्पष्ट होता है कि रामायणकाल में शस्त्रास्त्र, धनुर्वेद, ग्राम शिक्षा, विभिन्न विद्याएँ तथा सम्पूर्ण कलाएँ शिक्षा का विषय थी। रामायणमञ्जरी में कला के स्वरूप का चित्रण करते हुए बताया गया है कि तत्कालीन समाज में वास्तु कला, मूर्ति-कला, चित्रकला एवं सङ्गीत कला का पूर्ण विकास दिखाई पड़ता है। लव और कुश को तो स्वयं वाल्मीकि ने ही सङ्गीत कला में प्रवीण किया था।[4] अतः रामायणकाल में उपर्युक्त सभी विद्याएँ एवं कलाएँ शिक्षा के विषय थे।

इसके अतिरिक्त भी रामायणमञ्जरी के विभिन्न स्थलों से भिन्न-भिन्न विद्याओं के संकेत मिलते हैं। अरण्य पर्व, किष्किन्धा पर्व एवं किष्किन्धाकाण्ड में राम द्वारा बसन्त, हेमन्त, शरद् तथा प्रावृड् आदि ऋतुओं के वर्णन से उनके ऋतु तथा नक्षत्र सम्बन्धी ज्ञान का परिचय मिलता है। राम द्वारा अनेक आश्रमों, पम्पासरोवर तथा विभिन्न ऋतुओं के वर्णन के प्रसङ्ग में नाना प्रकार की वनस्पतियों के उल्लेख से उनके वनस्पति शास्त्र[5] के ज्ञान का परिचय मिलता है। यदि राम वनस्पति शास्त्र का अध्ययन न किए होते तो नाना प्रकार की वनस्पितियों का ज्ञान कैसे हो सकता था? यह सम्भव है कि कुछ पेड़ पौधे जो प्रायः सर्वत्र सुलभ थे उनका ज्ञान उन्हें हो सकता था किन्तु विभिन्न

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (१५१–१६१), २. वही (११५, ११६), ३. वही (८०), ४. वही (२८, ३०)

५. रामा० मं०, अ० प० (८७१–८७६)

प्रकार की वनस्पतियों का इतना सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिचय सम्भव नहीं था। वशिष्ठ और उनकी गाय शबला का संभाषण,[1] राम एवं जटायु का वार्तालाप[2] तथा विरही राम द्वारा शुक, कोयल, हंस, मोर आदि पक्षियों से सीता के विषय में पूँछना,[3] कुत्ते द्वारा राम से अपना कष्ट सुनाना[4] आदि घटनाएँ इस बात की सूचना देती हैं कि राम तथा वशिष्ठ आदि को पशु-पक्षि विज्ञान का भी सम्यक् अध्ययन एवं अध्यापन था। किष्किन्धाकाण्ड के अन्तर्गत वानरी सेना द्वारा अपनी लङ्घन शक्ति का वर्णन करना तथा हनुमान द्वारा सागर लङ्घन की घटना[5] तत्कालीन लङ्घन विद्या (शारीरिक विज्ञान) का परिचय देती है। इसी काण्ड के ही अन्तर्गत सुग्रीव जब सम्पूर्ण वानरी सेना को विभिन्न दिशाओं में भेजते हैं, उस समय उनके द्वारा आर्यावर्त की विभिन्न दिशाओं नदियों, पर्वतों एवं जङ्गलों का वर्णन उनके भूगोल ज्ञान का स्पष्ट परिचय देता है।[6] इसी प्रकार युद्ध काण्ड के अन्तर्गत इन्द्रजित के साथ युद्ध में सम्पूर्ण वानरी सेना के मारे जाने पर विभीषण की सलाह से हनुमान कैलाश पर्वत से 'विशल्या जीवनी' लाकर सेना को पुनर्जीवित करते है[7]। पुनः लक्ष्मण शक्ति के समय भी सुषेण के आदेश से हनुमान सञ्जीवनी औषधि लाकर उन्हें जीवित करते हैं।[8] युद्ध काण्ड की इन दोनों घटनाओं से तत्कालीन औषधि विज्ञान का परिचय मिलता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उस समय आयुर्वेद की भी शिक्षा दी जाती थी। युद्धकाण्ड के ही अन्तर्गत माया युद्ध में राम और लक्ष्मण को मृत समझकर पुष्पकारूढ़ सीता जब नाना प्रकार से विलाप करने लगती हैं तो उन्हें समझाते हुए त्रिजटा कहती है[9]—"भग्नभाग्यो जनः सत्यं पुष्पकेन न धार्यते।" त्रिजटा के इस वाक्य से उसके 'वाहन विज्ञान' के ज्ञान का परिचय मिलता है। इसके अतिरिक्त रामायणमञ्जरी में स्थल-स्थल पर नीति सम्मत तथा सामाजिक विषयों से सम्बन्धित वर्णन अनेक पात्रों द्वारा किया जाता है जिससे तत्कालीन नीति शास्त्र एवं समाजशास्त्र की शिक्षा का परिचय मिलता है। अनेक ऋषियों, तपस्वियों को वेद-वेदाङ्गों एवं धर्मशास्त्रों का सम्यक् ज्ञान था, इसीलिए वे ज्ञाननिष्ठ तपस्वो कहे गये हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि रामायणमञ्जरी में वर्णित रामायणकालीन शिक्षा का स्वरूप अत्युन्नत है। इसका प्रमाण उपर्युक्त प्रसङ्ग है जिसमें कि विभिन्न शिक्षा

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (३५४-३५८)

२. रामा० मं०, अ० प० (८६२-८६७), ३. वही (४८५-४८० एवं १०५०-१०५३)

४. रामा० मं०, उ० कां० (८०५-८३६)

५. रामा० मं०, कि० कि० कां० (४५१-५७३), ६. वही (२१४-२८०)

७. रामा० मं०, यु० कां० (८८१-१००५), ८. वही (१२२६-१२२७), ९. वही (५११)

विषयों का उल्लेख किया गया है, यथा—समाज शास्त्र, वनस्पति शास्त्र, निर्माण शास्त्र, वास्तु कला, चित्रकला, मूर्तिकला, सङ्गीत कला, अस्त्र-शस्त्र विद्या, धनुर्वेद विद्या, वेद, वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, लङ्घन, (शारीरिक विज्ञान), वाहन विज्ञान, आयुर्वेद,पशु-पक्षि विज्ञान, भूगोल विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान आदि। शिक्षा के उपर्युक्त विभिन्न विषयों के आधार पर ही रामायणमञ्जरी में वर्णित रामायणकालीन शिक्षा की उन्नता का निस्सन्देह आकलन किया जा सकता है।

रामायणमञ्जरी में धार्मिक परिस्थिति—

रामायणमञ्जरी में वर्णित 'यज्ञ प्रकरण' से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि रामायण काल में यज्ञों की प्रधानता थी। इन यज्ञों को होमादि क्रियाओं द्वारा विधिपूर्वक सम्पन्न किया जाता था। रामायणमञ्जरी के विभिन्न स्थलों के अवलोकन से पता चलता है कि रामायण काल में धार्मिक कृत्यों के अन्तर्गत यज्ञ, दान, व्रत, उपासना आदि का विशेष प्रचलन था। वैदिक देवताओं के अतिरिक्त धार्मिक क्षेत्र में अन्य देवों का महत्त्व भी परिवर्द्धित हो चुका था। तत्कालीन पूज्य देवों का विस्तृत वर्णन रामायणमञ्जरी में मिलता है। राम जन्म से लेकर स्वर्गारोहण तक अनेकशः ब्रह्मा का उल्लेख पूज्य देव के रूप में हुआ है। विष्णु और शिव का देव रूप भी प्रतिबिम्बित होता है। राम को विष्णु का अवतार कहने के स्थल तथा रावण द्वारा शिव की पूजा आदि घटनाएँ इसके प्रमाण हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर के अतिरिक्त इन्द्रादि लोकपाल, सप्तर्षि, नारद, वरुण, शुक्र, लक्ष्मी, सरस्वती, चन्द्र, सूर्य, कुबेर तथा यम आदि पूज्यदेवों का वर्णन रामायणमञ्जरी में प्राप्त होता है।[1] अग्नि प्रधान देव थे तथा वायु की भी उपासना की जाती थी।

रामायणमञ्जरी में प्रकृति तत्त्वों की उपासना का भी संकेत मिलता है। इनमें नदियाँ, पर्वत, वृक्षों एवं सभी भूतों की उपासना होती थी।[2] ब्राह्मण एवं ऋषि भी पूज्य थे।[3] राम ने आश्रम में वास्तु शान्ति हेतु पूजा की थी।[4]

रामायणमञ्जरी में राजनीतिक परिस्थिति

रामायणमञ्जरी में राजनीति का सम्यक् एवं व्यापक चित्रण है। इसमें राजनीति के सिद्धान्तों एवं अङ्गों का भी सर्वाङ्गीण विवेचन मिलता है। अतएव 'रामायणमञ्जरी में

---

१. रामा० मं०, कि० कि० कां० (५१९-५२१) एवं विभीषणाभिषेकः (१०५)
२. रामा० मं०, अ० प० (८५८–८६१)
३. रामा० मं०, विभीषणाभिषेकः (१०४)
४. रामा० मं०, अयो० कां० (८१२)

'राजनीतिक परिस्थिति' का अध्ययन करने के पूर्व भारतीय राजनीति वेत्ताओं द्वारा प्रतिपादित राजनीति के प्रमुख तत्त्वों की जानकारी आवश्यक है।

राजनीतिक सन्दर्भ के अन्तर्गत सबसे प्रमुख एवं अपरिहार्य तत्त्व राज्य है। भारतीय विचारकों ने राज्य के सात अंग निर्धारित किए हैं। 'महाभारत' के अनुसार यह सप्ताङ्ग—आत्मा, अमात्य, कोष, दण्ड, मित्र, जनपद तथा पुर है।[1] 'कौटिल्य' ने स्वामी अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र को सप्त प्रकृति माना है।[2] 'मनु' ने स्वामी अमात्य, पुर, राष्ट्र, कोष, दण्ड और सुहृद् आदि राज्य की सात प्रकृतियाँ निर्धारित की है।[3] उक्त अङ्गों का व्यावहारिक रूप रामायणमञ्जरी के विभिन्न सन्दर्भों में वर्णित है। सभी प्रमुख अङ्गों में राजा सर्व प्रधान अङ्ग है। अतएव सर्वप्रथम उसका स्वरूप, अधिकार एवं कर्तव्य अवलोकनीय है।

रामायणमञ्जरी में राजा का स्वरूप (अधिकार एवं कर्तव्य)—

राज्य की उत्पत्ति विषयक विभिन्न विचारधाराओं में दैवी सिद्धान्त अत्यन्त प्राचीन है। वेदों से लेकर महाभारत, रामायण काल तक इसकी सर्वमान्यता प्रतिष्ठित् रही है। इसके अनुसार राजा को देव माना गया है। वह मानव रूप धारण कर पृथ्वी पर विचरण करता हुआ दुष्टों का विनाश तथा धर्म की संस्थापना करता है। राजा सत्य, धर्म एवं न्याय की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। इतना ही नहीं, वह अपने गुणों एवं चरित्र के बल से देवों से भी महानतम् है। वह देवोपम, माननीय एवं शरण्य है। रामायणमञ्जरी में राजा राम के व्यक्तित्व में उपर्युक्त सभी राजोचित गुण दृष्टिगोचर होते हैं जिसका वर्णन आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

सर्वप्रथम राज्य के प्राण रूप राजा की नियुक्ति के सिद्धान्तों पर दृष्टिपात किया जाय। संविधान में राज्य पद की प्राप्ति हेतु कुछ विशिष्ट सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, जिसमें प्रमुख सिद्धान्त 'पैतृक अधिकार' का है। परन्तु इसके साथ ही साथ 'ज्येष्ठता का अधिकार' भी समन्वित है। रामायणमञ्जरी में राजा की नियुक्ति के इस सिद्धान्त का सम्यक् रूपेण पालन किया गया है। राजा दशरथ अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को ही राज्य पद पर अभिषिक्त करना चाहते हैं।[4] भरत भी भाई राम की इस अर्हता को स्वीकार करते हुए उन्हें राज्य पद देने के लिए वन से वापस बुलाने जाते हैं[5]—

---

१. महाभारत, शा० प० (६५।६८)

२. अर्थशास्त्र, वार्ता १, अध्याय १, अधिकरण ६

३. मनुस्मृति, अध्याय ६ (श्लो० २९४)

४. रामा० मं०, अयो० कां० (६३९–६५६)

५. रामा० मं० (८४, ८६)

राज्यमर्हति काकुत्स्थस्तस्य दास्योचिता वयम् ।
ज्येष्ठाभिगामिनी लक्ष्मीः सदैव रघुभूभुजाम् ।।
विश्वरक्षार्माणं तस्माज्ज्येष्ठं ज्येष्ठैर्गुणैर्युतम् ।
रामं प्रसादयिष्यामि वनं गत्वा निर्जाश्रये ।।

तदनन्तर वन पहुँचकर भरत राम से कहते हैं[1]--'**अयोध्या स्त्रयमभेत्य भज राज्यं क्रमागतम्** ।' यदि राजा ने स्त्री के वशीभूत होकर मुझे राज्य दे ही दिया तो यह उनका मतिविप्लव था, किन्तु मैं राज्य पद की अर्हता नहीं धारण करता हूँ—'**न राज्यं प्राप्तुमर्होऽहं**' । इसलिए आप अपने क्रमागत राज्य पद को स्वीकार करें, इसकी मुझे कोई अभिलाषा नहीं है—**तत्व क्रमागत राज्यं का स्पृहा राम मादृशाम्** । इसी प्रकार वशिष्ठ जाबालि आदि मुनियों ने भी ज्येष्ठता के ही आधार पर राम को राज्य पद स्वीकार करने के लिए बार-बार निवेदन किया।[2] राज्य पद के लिए ज्येष्ठता के अधिकार का रामायणमञ्जरी में कितना सम्यक् रूपेण पालन किया गया है कि राम द्वारा वापस लौटना अस्वीकार करने पर भी भरत उनकी चरणपादुका लाकर सिंहासन पर रख देते हैं तथा स्वयं नन्दिग्राम में रहते हुए राज्य कार्य का सञ्चालन करते हैं।[3]

वानर जाति में भी पैतृक अधिकार तथा ज्येष्ठता या क्रमागत अधिकार का समर्थन किया गया है । सूर्य पुत्र बालि और सुग्रीव में ज्येष्ठ बालि ही किष्किन्धापुरी का राजा था।[4] बालि वध के बाद क्रमागत रूप से सुग्रीव को ही राज्य पद मिला[5] न कि बालिपुत्र अङ्गद को। पुनः सुग्रीव के बाद तो क्रमागत रूप से अङ्गद ही राज्य के उत्तराधिकारी थे। इस बात का समर्थन करते हुए किष्किन्धाकाण्ड के अन्तर्गत हनुमान अङ्गद को उस समय समझाते हैं जबकि समुद्र पार करने में सम्पूर्ण वानरी सेना असमर्थ दिखाई पड़ती है तथा सुग्रीव के भय से अङ्गद आत्महत्या की इच्छा व्यक्त करते हैं। हनुमान कहते हैं—तुम सुग्रीव के पुत्र न सही, किन्तु उसके धर्मपुत्र तो हो। अतः तुम क्यों अपने क्रमागत राज्य को अपने ही पैरों से ठुकराने के लिए उद्यत हो।[6]

इसी प्रकार राक्षसराज रावण भी अपने भाइयों में ज्येष्ठ होने के कारण ही लङ्कापुरी का राजा बना था।

इन प्रमुख अधिकारों के अतिरिक्त राजनीतिविदों द्वारा वर्णित अन्य अधिकारों की ओर भी महाकवि क्षेमेन्द्र ने व्यापक दृष्टिपात किया है। राजा की नियुक्ति में प्रजा एवं

---

१. रामा० मं० (२०१, २३०–२३२), २. वही (२५९–२७१, २८३–२८८), ३. वही (३०५, ३०६, ३२१–३२४)
४. रामा० मं०, कि० कि० प० (६०), ५. वही (२१०, २११)
६. रामा० मं०, कि० कि० कां० (३८६)

मन्त्रिमण्डल की अनुमति भी परमावश्यक हुआ करती है क्योंकि राजा का पूर्ण सम्बन्ध प्रजा एवं मन्त्रियों से ही होता है। प्रजानुरञ्जन ही उसका प्रमुख कर्तव्य होता है। राजा दशरथ राम के राज्याभिषेक के समय प्रजा की अनुमति लेने की भावना से ही जनता एवं मन्त्रिमण्डल के समक्ष अपना यह प्रस्ताव रखते हैं[1]—

रामाभिषेकानुमतं पृष्ठाः संसदि तेन ते ।
ब्राह्मणा, मन्त्रिणो भूपाः पौरद्याश्च बभाषिरे ॥

पुनः दशरथ के भाव को समझ कर सभी लोगों ने अनुमति प्रदान करते हुए कहा—राजन ! आपके मन में जो इच्छा है उसे सम्पन्न करिए। अनन्त गुणों से युक्त, सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन करने में समर्थ राम ही योग्य हैं।[2]

परन्तु राज्याभिषेक के इस प्रसङ्ग में प्रजानुमति से तात्पर्य प्रजा का अन्धानुकरण नहीं था कि राजा ने जैसा कह दिया उसी का प्रजा ने वैसे ही अनुमोदन भी कर दिया। प्रजा को अनुमति देने का अधिकार युवराज की चारित्रिक योग्यता पर आधारित था। इस प्रकार राजकुलोत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र भी तभी राजपदासीन होने का अधिकारी हो सकता था जब उसे चारित्रिक अधिकार प्राप्त हो अर्थात उसमें राजोचित गुणों का समावेश होना परमावश्यक था। रामायणमञ्जरी में इन आचरणों की ओर व्यापक दृष्टि डाली गयी है।[3] राम (अनन्त) गुणों के आकर हैं। सम्पूर्ण रामायणमञ्जरी में उनके गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है।

राज्य पद के लिए इस चारित्रिक अधिकार का पुष्टीकरण राम के अतिरिक्त दशरथ तथा जनकादि राजाओं के चरित्र-चित्रण वाले स्थलों से भी भली भाँति हो जाता है। विभीषणाभिषेक के समय विभीषण के गुणों एवं उज्ज्वल चरित्र के वर्णन से भी राजा की चारित्रिक योग्यता का प्रमाण मिलता है।[4] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य पद के लिए चरित्र ही सर्वाधिक योग्यता एवं अधिकार है। उससे हीन होने पर राजा को राजपद भी त्याग देना पड़ता है। इस प्रकार राजा की नियुक्ति के लिए चारित्रिक योग्यता, शारीरिक, पैतृक, ज्येष्ठता एवं प्रजानुमति आदि आवश्यक तत्त्व हैं।

सम्प्रति रामायणमञ्जरी में वर्णित राजा के अधिकार एवं कर्तव्य का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। राजा का प्रथम कर्तव्य उसका राजोचित आचरण है जिसकी विशद चर्चा उपर्युक्त प्रसङ्ग में की जा चुकी है। इसके अतिरिक्त उसका दूसरा कर्तव्य 'लोकरञ्जन कार्य है।' उन लोकरञ्जन कार्यों में वर्णाश्रम धर्म की रक्षा, बाह्य एवं आन्त-

---

१. रामा. मं., अयो. कां. (६४६), २. वही (६४७), ३. वही (६३९–६४५)
४. रामा. मं., विभीषणाभिषेकः (३९–४३)

रिक विघ्न-बाधाओं से सुरक्षा, न्याय व्यवस्था की स्थापना, योग्य राज्य कर्मचारियों की नियुक्ति एवं उनके कार्यों का सम्यक् निरीक्षण, आर्थिक कल्याण की व्यवस्था तथा सार्वजनिक कार्यों के देख-भाल की व्यवस्थादि प्रमुख हैं। रामायणमञ्जरी में दशरथ[1] तथा राम[2] के राज्य की स्थिति के चित्रण में उनके कर्तव्यों का पूर्ण विवरण सुलभ है। पुनः अरण्य पर्व के अन्तर्गत राम ने राजा के कर्तव्य एवं अधिकारों के विषय में भरत को जो उपदेश दिया है, उससे इस प्रसङ्ग की सर्वाङ्गीण पुष्टि हो जाती है।[3]

'शुक्रनीति' के अनुसार राजा का परम धर्म प्रजा का पालन और दुष्टों का निग्रह है।[4] राजा प्रजा का रञ्जन करने वाला भी होता है।[5] शुक्रनीति के प्रथम अध्याय में राजा के कर्तव्यों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है। दुष्ट को दण्ड देना, प्रजा का परिपालन करना, राजसूय आदि यज्ञों का यजन करना, न्यायानुसार कोष का अर्जन करना अन्य राजाओं को वश में करना, शत्रु का परिमर्दन करना तथा भूमि का संग्रह करना आदि आठ कार्य राजा के कर्तव्य माने गए हैं।

'प्रजानां दैवतं राजा'[6] के अनुसार राजा ही एकमात्र प्रजा का स्वामी (देवता) है। इसलिए राजा का परम कर्तव्य प्रजा की रक्षा एवं अहर्निश हित-चिन्तन है। राम सदैव प्रजा की रक्षा एवं हित में लगे रहते थे[7]—'तं समग्रगुणोदारं प्रजाप्रियहिते रतम्।' राजा राम क्षत्रिय कुलोत्पन्न होने के कारण भी प्रजा के हित एवं दुष्टों के विनाश में सदैव संलग्न रहे, क्योंकि क्षत्रियों का धर्म ही पृथ्वी की रक्षा एवं दुष्टों का विनाश है[8]—दुष्टक्षयात्क्षितित्राणात्क्षत्रियः किल जायते।' सभी गुणों के आश्रय राजा राम प्रजा के कष्ट वृक्ष का विनाश करने वाले थे[9]—'गुणद्विरेफो विरराज राजसद्रुमस्तापहरः प्रजानाम्।' इसी प्रकार बालकाण्ड में जब मुनिगण नारद से पूछते हैं कि प्रजा का जीवन कौन है[10]—'प्रजानां जीवितं को नु?' इस पर नारद वैरियों की सम्पदा को नष्ट करने गुणाभिराम राम का परिचय देते हैं[11]–'गुणाभिरामः श्रीरामः विरामो वैरिसंपदाम्।'

१. रामा. मं., बा. कां. (३२–४५)
२. रामा. मं., उ. कां. (८६८–६०२, १००२–१००७) एवं रामाभिषेकः (१८८–१६३)
३. रामा. मं., अ. प. (१८०–१८८)
४. शुक्रनीति (१।१४), ५. वही (१।२०)
६. रामा. मं., अ. प. (२३८)
७. रामा. मं., अयो. कां. (६४५)
८. रामा. मं., बा. कां. (१०६)
६. रामा. मं., रामाभिषेकः (१८८)
१०. रामा. मं., बा. कां. (८), ११. वही (१०)

इस प्रकार राम प्रजा को प्रिय तथा उनका रञ्जन करने वाले भी थे। रामाभिषेक के समय अयोध्यावासियों की खुशीविह्वलता एवं उत्सव की तैयारी[1] तथा लङ्काविजय के बाद अयोध्या लौटने पर प्रजा की प्रसन्नता एवं अयोध्या को सजाना[2] आदि घटनाएँ उनकी प्रजाप्रियता एवं रञ्जकता का प्रबल प्रमाण है। जिस प्रकार राम प्रजा के हित-चिन्तन में संलग्न तथा उसके सुख में सुखी व दुःख में दुःखी थे, तथैव प्रजा भी। अभिषेक का समाचार पाकर प्रजा का प्रसन्न होना तथा वनगमन के समय दुःखार्त होकर राम के पीछे चल देना[3] आदि इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती है कि राम को उनकी प्रजा कितना अधिक प्रेम करती थी। राम स्वयं कहते हैं—दान, प्रजा की रक्षा, यजन तथा धर्मरञ्जन प्रभृति सभी राज्य रूपी कल्पद्रुम की फलसम्पदाएँ हैं।[4] राम जैसे योग्य राजा के उदय से ही सम्पूर्ण दिशाएँ निर्दोष हो गयी। रामराज्य का वर्णन करते हुए लक्ष्मण कहते हैं[5]—हे राजन! आपके शासन करते हुए न तो कोई कार्यार्थी तथा याचक दिखाई पड़ता है और न ही देवताओं तथा मनुष्यों में कहीं विप्लव ही दिखाई पड़ता है। जो राजा धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन करता है उसके राज्य में कहीं भी कार्यार्थी आदि विचरण करते हुए नहीं पाए जाते। आपके शासन करते हुए पृथ्वी सम्पूर्ण पृथ्वीपतियों से रहित हो गयी है। सम्पूर्ण लोक के लोगों में कहीं भी किसी प्रकार का कोई ताप या उपताप नहीं है।

इस प्रकार राजा राम के राज्य की प्रजा कितनी सुख सम्पन्न एवं विकारों से रहित थी। राम राज्य में ऐसा वैभव सम्पन्नता तथा सुखी एवं प्रसन्न प्रजा का एक मात्र कारण सर्वगुण सम्पन्न राजा राम का उज्ज्वल चरित्र ही है क्योंकि सत्त्व सम्पन्न एवं धर्म-रती राजा के राज्य में न तो अकाल मृत्यु होती है और न ही कहीं दुर्भिक्ष, व्याधि तथा चौरादि दिखाई पड़ते हैं। पुण्यकर्मा राजाओं के जनपद में कहीं भी अकाल मृत्यु, दुर्भिक्ष तथा करुण ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती।[6]

प्रजापालक तथा प्रजारञ्जक के रूप में तो राम प्रसिद्ध ही हैं। प्रजारञ्जन का इससे महत्वपूर्ण उदाहरण और भी क्या हो सकता है कि धोबी द्वारा उत्पन्न लोकापवाद के कारण उन्होंने अपनी प्राणप्रिया सीता का परित्याग कर दिया।[7] सामाजिक मर्यादा की प्रतिस्थापना के लिए ही राम ने रावण विजय के बाद सीता को तुरन्त स्वीकार नहीं

---

१. रामा. मं., अयो. कां. (६३८), २. वही (६३१, ७८३, ७८७, ७८८)

३. रामा. मं., अयो. कां. (८८५–८८६)

४. रामा. मं., अ. प. (१८७)

५. रामा. मं., उ. कां. (८८६–८०३), ६. वही (१००२, १००३), ७. वही (७५७–७७६)

किया तथा उनकी अग्नि परीक्षा हुई।[1] राम दुष्टों एवं शत्रुओं के संहारक भी हैं। तपस्वियों को विघ्न पहुँचाने वाले राक्षसों का उन्होने वध किया, भ्रातृजायारती बालि को बाण से बेधा तथा सम्पूर्ण पृथ्वी को त्रास देने वाले रावण सहित सम्पूर्ण राक्षसों का वध करके पृथ्वी से दुष्टों एवं शत्रुओं का उन्मूलन कर दिया। शम्बूक का वध करके उन्होंने वर्णाश्रम धर्म की रक्षा की।[2]

राजाज्ञा न मानने वालों को भली प्रकार से दण्डित करने का अधिकार भी रामायणमञ्जरी में वर्णित है। किष्किन्धाकाण्ड के अन्तर्गत वानरी सेना को सभी दिशाओं से बुलाने का आदेश देता हुआ सुग्रीव हनुमान से कहता है—राजाज्ञा का निषेध करने वाले मदमोहित जो न आएँ उन्हें तुरन्त दुःसह दण्ड दिया जाय।[3]

राजसूयादि यज्ञ करना भी राजा का प्रमुख कर्तव्य है जिससे अन्य राजाओं को वश में किया जा सके। उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत राजा राम राजसूय यज्ञ करने का विचार करते हैं परन्तु भरत द्वारा इस यज्ञ के परिणामस्वरूप भावी विनाश[4] की सूचना पाने पर राम ने अपना विचार बदल दिया। पुनः लक्ष्मण के मत्यानुसार उन्होंने अश्वमेध यज्ञ विधिवत् सम्पन्न किया।[5]

न्यायानुसार कोषार्जन भी राजा का प्रमुख कर्तव्य है परन्तु इसका उल्लेख अन्य कर्तव्यों की अपेक्षा स्वल्प है। सम्भवतः महाकवि क्षेमेन्द्र ने कोषार्जन के प्रश्न विस्तार की आवश्यकता नहीं समझी क्योंकि सार्वभौम सम्राट दशरथ तथा राम के कोष स्वयं सम्पन्न एवं समृद्ध थे।

रामायणमञ्जरी में राजा की नियुक्ति, अधिकार, कर्तव्य एवं राजोचित गुणों का जो उल्लेख किया गया वह न केवल राम में ही दिखाई पड़ता है, अपितु दशरथ, जनक तथा अन्य छोटे बड़े राजाओं में भी दर्शनीय है।

राजा की नियुक्ति, अधिकार, कर्तव्य एवं राजोचित गुणों के उपर्युक्त विश्लेषण के बाद सम्प्रति रामायणमञ्जरी में वर्णित राजा में निहित कतिपय दोषों का भी विवेचन किया जा रहा है जिनके कारण राष्ट्र, धन, दुर्ग, सेना एवं प्रजा विनाश को प्राप्त हो जाते हैं।

---

१. रामा. मं., वह्निप्रवेशः (५०–१०५)

२. रामा. मं., उ. कां. (१०२९–१०४०)

३. रामा. मं., कि. कि. कां. (१७०)

४. रामा. मं., उ. कां. (११०५), ५. वही (११६२–११६९)

राजा में शील का होना अति आवश्यक है क्योंकि शील भ्रष्ट राजा शीघ्र ही तेजहीन हो जाता है[१]—'शीलभ्रष्ट इव नृपः प्रयाती निष्प्रताम् ।' राजा दर्प और मोह से रहित तथा जितेन्द्रिय होना चाहिए, नहीं तो इसके द्वारा पराजित राजा के पास विपत्तियाँ स्वयं आ जाती हैं ।[२]

व्यसनों में राजा की आसक्ति प्रजा विनाश का लक्षण है[३]—'नृपतेर्व्यसन ङ्गः प्रजानां क्षयलक्षणम् ।' अतः राजा को व्यसनी नहीं होना चाहिए । व्यसनी राजा को प्रजा उसी प्रकार त्याग देती है जैसे वृद्ध पति को ईर्ष्यालु नवयौवना स्त्रियाँ त्याग देती हैं ।[४]

रति के वशीभूत राजा राष्ट्र वृत्ति को उसी प्रकार नहीं जान पाते जैसे गृहिणी के वशीभूत नपुंसक व्यक्ति गृहाचार को नहीं जान पाते ।[५] काममोहित एवं विलास युक्त दृष्टि वाले राजा दीपक की भाँति अपने दुर्गुणों को नहीं देख पाते ।[६]

इसी प्रकार, अत्यधिक क्रोध करने वाले तथा अनायास ही शत्रुता लेने वाले राजागण उसी प्रकार अपमान को प्राप्त होते हैं, जैसे निर्धन व्यक्ति वेश्या से पराभव को प्राप्त होता है ।[७] अकार्यप्रणयी एवं घोर दुराचारी राजा, महान राज्यवृक्ष के मूल को काटने वाले फरसे के समान है ।[८] मदयुक्त स्त्रियों के अङ्ग विलास से भ्रमित राजाओं की सम्पदा एवं बुद्धि नष्टप्राय हो जाती है ।[९] करिणी की तरह स्त्रियों के वशीभूत मतप्राय राजाओं की बुद्धि नष्ट हो जाती है तथा वे पराभव को प्राप्त होते हैं ।[१०]

इस प्रकार राजा को व्यसनी, कामातुर एवं स्त्री के वशीभूत नहीं होना चाहिए, क्योंकि भ्रातृजायारती किष्किन्धा नरेश बालि इसी कारण ही राम द्वारा मारा गया । महान दुराचारी, कामासक्त एवं व्यसनी राक्षसराज रावण का बध हुआ तथा कैकेयी के वशीभूत राजा दशरथ को प्राणों से भी अधिक प्रिय पुत्र राम को वनवास देना पड़ा जिसके कारण उनकी मृत्यु भी हो गयी ।

इसीलिए राजा को धर्मयुक्त, न्यायप्रिय, पुण्यकर्मा एवं प्रजावत्सल होना चाहिए । इससे रहित दुष्ट राजा, स्वयं सहित प्रजा को भी पराभव एवं विनाश को प्राप्त करा देता है । इसका ज्वलन्त उदाहरण दुष्ट रावण है । कहा भी गया है कि दुष्ट राजा

---

१. रामा. मं., अ. प. (५१०)

२, रामा. मं., सु. का. (२३५), ३. वही (२३६)

४. रामा. मं., अ. प. (६३८), ५. वही (६४१), ६. वही (६४६), ७. वही (६४८),

८. वही (६८६), ९. वही (६८८)

१०. रामा. मं., अयो. कां. (८३९)

के द्वारा सताये गये ब्राह्मण लोग गुणों से विहीन हो जाते हैं और जनता तिरस्कृत कर दी जाती है।[1] राजा को धर्मवान एवं सत्यप्रिय होना चाहिए, क्योंकि अधर्मकर्मा राजाओं की बुद्धि शत्रु को सन्तोष प्रदान करने वाली, बन्धु-बान्धवों को दुःख पहुँचाने वाली तथा विनाश की दूती होती है।[2] दुष्ट राजा के राज्य में अकाल मृत्यु होती है। सम्यक् रूप से प्रजा का पालन न करने वाले राजा के राज्य में लोग असह्य दुःख भोगते हैं। कुमार्गगामी राजा के राज्य में सुखपूर्वक भी जीना अच्छा नहीं है। यह उसी प्रकार से जैसे कायर पुरुषों के आश्रय से रहित विधवा स्त्री ही भली है।[3]

इस प्रकार रामायणमञ्जरी के स्थल-स्थल पर राजा के गुण-दोषों का सम्यक् विवेचन किया गया है जिसके अल्पांश को इस स्थान पर प्रस्तुत किया गया है।

रामायणमञ्जरी में मन्त्रिमण्डल—

राजा के राजकार्य सञ्चालन में सहायक, राज्य का अनिवार्य अङ्ग मन्त्रिमण्डल है। इस मन्त्रिपरिषद् के स्वरूप, कर्तव्य एवं उसके महत्त्व पर रामायणमञ्जरी में व्यापक विचार किया गया है। राजा दशरथ, जनक, राम, सुग्रीव एवं रावण सभी के मन्त्रिमण्डल का संकेत ग्रन्थ में मिलता है। इस मन्त्रिमण्डल के अन्तर्गत पुरोहित या पुरोधा, सचिव, मन्त्री, पण्डित, अमात्य एवं दूत का उल्लेख किया गया है।

'कौटिल्य' ने मन्त्रिमण्डल का वर्णन करते हुए मन्त्रियों का महत्त्व बताया है— **'मन्त्रिणां मन्त्रमूलं हि राज्ञो राष्ट्रं विवर्धते।'** अर्थात मन्त्रियों की मन्त्रणा से ही राजा की राष्ट्रवृद्धि होती है। दशरथ के राज्य में ऐसे ही मन्त्रियों का परिषद् था जिसमें वशिष्ठ जैसे पुरोहित, मन्त्रियों में श्रेष्ठ सुमन्त्र, महामात्य सिद्धार्थ, मार्कण्डेय, वामदेव तथा जाबालि जैसे मुनिश्रेष्ठ एवं ब्राह्मणों आदि की सूचना मिलती है।[4] यह मन्त्रिमण्डल राजा को समय-समय पर उचित परामर्श दिया करता था। राजा किसी भी समय किसी भी विषय पर विचार-विमर्श करने के लिए मन्त्रियों की सभा बुलाता था। रामाभिषेक के समय दशरथ मन्त्रिमण्डल के अनुमोदनार्थ उनकी सभा बुलाकर अपना विचार प्रस्तुत करते हैं।[5] इसी प्रकार मन्त्रियों में श्रेष्ठ सुमन्त्र जो प्रति पल राजा दशरथ के साथ ही रहा करते थे, समय-समय पर राजा को उचित सलाह देना उनका परम कर्तव्य था। पुत्र प्राप्ति के लिए दुःखी दशरथ को सुमन्त्र ही ऋष्यशृङ्ग को बुलाकर पुत्रेष्टि यज्ञ

---

१. रामा० मं०, सु० कां० (४०७)

२. रामा० मं०, यु० कां० (४)

३. रामा० मं०, उ० कां० (१००४–१००७)

४. रामा० मं०, बा० कां० (४२–४५, ४६, ५१५, ८८१, ८८८)

५. रामा० मं०, अयो० कां० (६४६)

करवाने की सलाह देते हैं।[१] इसके अतिरिक्त भी सुमन्त्र का प्रसङ्ग रामायणमञ्जरी में अनेक स्थलों पर मिलता है। 'पुरोहित' या 'पुरोधा' का स्थान मन्त्रिमण्डल में सर्वश्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण था। राजा दशरथ के पुरोहित वशिष्ठ का उल्लेख रामायणमञ्जरी के अनेक स्थलों पर मिलता है जिससे उनकी श्रेष्ठता एवं महत्त्व का परिज्ञान भली-भाँति हो जाता है। मन्त्रिमण्डल में 'दूतों' का भी स्थान था जिनका कार्य केवल एक स्थान से दूसरे स्थान तक संदेश-प्रेषण था। इस कार्य में बड़ी कुशलता एवं तकनीक की आवश्यकता होती है। दशरथ के दूत इसमें कुशल थे। भरत और शत्रुघ्न को ननिहाल से ले आने के लिए ये दूत कैकयपुर पहुँचते हैं—**'प्राप्तेषु कैकयपुरं दिनैर्दूतेषु सप्तभिः।'**[२] इन दूतों की कुशलता का भी परिचय इसी स्थल पर ही मिल जाता है कि वे अयोध्या का कोई भी दुःखद समाचार भरत तथा शत्रुघ्न से नहीं कहते हैं।

राजा राम के मन्त्रिमण्डल का भी रामायणमञ्जरी में विस्तृत उल्लेख मिलता है। वैसे तो दशरथ का ही मन्त्रिमण्डल राम का भी था किन्तु राम के मन्त्रियों, मुनियों आदि की संख्या कुछ विस्तृत है। उत्तरकाण्ड के एक स्थल से उनके मन्त्रिमण्डल की सूचना मिलती है। राम प्रातः कालीन कृत्य को सम्पादित करके भाइयों के साथ मुनियों, मन्त्रियों तथा राजाओं से भरे हुए सभा भवन में पहुँचते हैं।[३] राजा राम भी समय-समय पर विचार-विमर्श हेतु मन्त्रियों की सभा बुलाते थे। ब्राह्मण पुत्र की अकाल मृत्यु के समाचार से दुःखी राम, सभा में पहुँचते हैं। राम को देखकर अमात्यों सहित वशिष्ठ, जाबालि, कौत्स, गौतम, नारद, मार्कण्डेय, अत्रि, मौद्गल्य, वामदेव, पुरोगमा, भृगु, कात्यायन एवं काश्यप प्रभृत्ति सम्पूर्ण मुनिमण्डल अत्यन्त दुःखी हो गया। पुनः राजा ने सभा में बाल निधन का कारण पूंछा। नारद ने राम को इसका कारण एवं हल विस्तारपूर्वक बताया।[४] इस प्रकार राम के मन्त्रिमण्डल की उच्चता का स्पष्ट ज्ञान प्रस्तुत प्रसङ्ग से स्वयमेव हो जाता है।

राजा जनक के मन्त्रिमण्डल का भी संकेत मिलता है। जनक के पुरोहित शतानन्द थे[५]—**'प्रत्युद्ययौ पुरस्कृत्य शतानंद पुरोहितम्।'** पुरोहित के आधार पर ही अन्य मन्त्रियों के अस्तित्व का भी अनुमान किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जनक एक स्थल पर मन्त्रियों को आदेश भी देते हैं[६]—**'इत्युक्त्वा मन्त्रिणः सर्वानादिदेशमहीपतिः।'** इससे राजा जनक के सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल का आभास होता है। धनुर्भङ्ग के बाद जनक दशरथ को बुलाने के लिए अपने दूतों को अयोध्या भेजते हैं[७]—**'अयोध्या यान्तु मे दूता-**

---

१. रामा० मं०, बा० कां० (४५–६२)
२. रामा० मं०, अ० प० (१)
३. रामा० मं०, उ० कां० (८८७)
४. रामा० मं०, उ० कां० (१०१०–१०१५)
५. रामा० मं०, बा० कां० (३१८), ६. वही (४८७), ७. वही (५१२)

स्तूर्णं दशरथं प्रति ।' इस प्रकार पुरोहित, दूत तथा मन्त्रियों के संकेत से जनक के मंत्रिमण्डल की पूर्ण जानकारी हो जाती है।

राजा दशरथ, राम तथा जनक के मन्त्रिमण्डल के साथ ही साथ रामायणमञ्जरी में वानरजाति के राजा सुग्रीव के मन्त्रिमण्डल का भी वर्णन मिलता है। किष्किन्धा पर्व के प्रथम श्लोक में ही हनुमान आदि मुख्य सचिवों की सूचना मिलती है—**उवाचहनुमान्मुख्यान्सचिवान्वालिशङ्कितः ।**[1] पुनः आगे भी सुग्रीव राम से कहता है कि भाई बालि को दुन्दुभि दानव से मारा गया समझकर सचिवों ने मुझे राज्य पद पर अभिषिक्त कर दिया।[2] इस प्रसङ्ग से सचिवों के अहं अस्तित्व का भी प्रमाण मिलता है अर्थात् राज्य पद पर अभिषिक्त करने में मन्त्रिमण्डल की अहं भूमिका थी। सुग्रीव के मन्त्रिमण्डल के प्रमुख मन्त्री हनुमान, नल, नील, सुषेण, अङ्गद तथा जाम्बवन्त आदि थे। लक्ष्मण को क्रोधावेश में किष्किन्धापुरी में आया देख कर हनुमान, नल, नील, सुखेण, विनता तथा अङ्गद आदि सभी मन्त्री चिन्तित हो जाते हैं।[3] वानरजाति के मन्त्रिमण्डल में भी दूतों का संकेत मिलता है। सुग्रीव सभी दिशाओं से वानरों को बुलाने के लिए दूत भेजता है[4]—**'तूर्णमायान्तु ते दूतैस्त्वद्विसृष्टैर्मदाज्ञया।'**

राजा दशरथ, राम, जनक एवं सुग्रीव के राज्य में ही उच्च कोटि का मन्त्रिमण्डल नहीं था अपितु राक्षसराज रावण के मन्त्रिमण्डल का भी सविस्तार वर्णन रामायणमञ्जरी में दर्शनीय है। माता के आदेशानुसार विभीषण जब रावण के दरबार में पहुँचा तो वहाँ उसे महामात्यों से घिरा हुआ पाया[5]—**'स प्रविश्य सभासीनं महामात्यैः समावृतम् ।'** इसके अतिरिक्त युद्धकाण्ड में अनेक स्थलों पर रावण के मन्त्रियों तथा मन्त्रिमण्डल का वर्णन मिलता है।[6] रावण के मन्त्रिमण्डल में प्रहस्त, वज्रदंष्ट्र, महापार्श्व, माल्यवान तथा त्रिशिरा आदि अनेक मन्त्री थे जो रावण को समय-समय पर उचित सलाह दिया करते थे। इसमें भी सुपार्श्व (वृद्ध राक्षस), माल्यवान (वृद्धामात्य), वज्रदंष्ट्र (प्रवरामात्य) आदि का मन्त्रिमण्डल में श्रेष्ठ स्थान था। रावण के मन्त्रिमण्डल में शुक और सारण नामक दूतों का भी उल्लेख है।[7]

इस प्रकार मानव, वानर एवं राक्षस प्रभृत्ति सभी राजाओं के मन्त्रियों एवं मन्त्रिमण्डल का पर्याप्त वर्णन रामायणमञ्जरी में उपलब्ध है। सम्प्रति इन मन्त्रियों के कर्तव्य एवं महत्व पर विचार किया जा रहा है।

---

१. रामा० मं०, कि० कि० प० (१), २. वही (२१)

३. रामा० मं०, कि० कि० कां० (८५), ४. वही (१६८)

५. रामा० मं०, यु० कां० (२०), ६. वही (४५, २८० आदि), ७. वही (२८६)

पूर्वविदित है कि मन्त्रियों की मन्त्रणा से ही राजा के राष्ट्र की वृद्धि होती है। इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए राम भरत से कहते हैं[१]—'रक्षितात्मा हितामात्यः कोशराष्ट्रविवर्धनः।' पुनः राम भरत से पूँछते हैं कि अभिषेक प्राप्त करने के बाद क्या तुम्हारे मन्त्री तुम्हें अच्छी मन्त्रणा देते हैं? क्योंकि प्रौढ़ राज्य को परिचालित करने में ये मन्त्रीगण कर्णधार हैं।[२] प्रौढ़ राज्य के सञ्चालन में ये मन्त्रिगण मनसा, वाचा तो तत्पर ही थे, साथ ही आवश्यकतानुसार राजा के सहायक रूप में कर्मणा भी प्रवृत्त होते थे। रावण के सभी मन्त्री समय-समय पर अपनी सुमंत्रणा से राजा की सहायता तो करते ही हैं, साथ ही युद्ध भूमि में राम ये युद्ध करते हुए मृत्यु को भी प्राप्त हो गये। वानर मन्त्री हनुमान, नल, नील तथा जाम्बवन्त आदि भी राजा सुग्रींव के आदेश से सीता की खोज में तत्पर रहे तथा क्रोधान्ध लक्ष्मण के किष्किन्धा पहुँचने पर अपनी युक्ति द्वारा सुग्रीव की रक्षा भी की। इसी प्रकार राजा दशरथ जनक तथा राम के मन्त्री भी राजा के सहायक रूप में सर्वत्र मनसा, वाचा, कर्मणा प्रवृत्त दिखाई पड़ते हैं।

राजा मन्त्रिमण्डल पर पूर्ण निर्भर रहता है। अतः मन्त्रियों को चाहिए कि वे हितकारी वचनों द्वारा राजा को उत्तम सलाह दें। राजा के सामने हितकारी बातें न करके प्रिय बोलने वाले मन्त्री राजा, राष्ट्र तथा कोष आदि को विनाशोन्मुख प्रवृत्त करते हैं। इसी बात का समर्थन करते हुए विभीषण रावण के मन्त्रियों के विषय में सविस्तार बताता है।[३] पुनः इसी बात के समर्थन में कहते हैं कि मंत्रियों को चाहिए कि वे अपनी सुमन्त्रणा से राजा को व्यसनों से दूर करें।[४] कुम्भकर्ण भी राजा के सामने प्रिय बोलने वाले तथा हितकारी बातें न करने वाले मन्त्रियों की आलोचना करते हुए रावण को समझाता है।[५] इस प्रकार मन्त्रिमण्डल, मन्त्रियों के कर्तव्य, महत्त्व एवं उनके गुण-दोषों का समग्र वर्णन रामायणमञ्जरी के उपर्युक्त सन्दर्भों में दर्शनीय है।

रामायणमञ्जरी में 'विधि' एवं 'न्याय व्यवस्था'—

राजा एवं मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा का महत्त्वपूर्ण कार्य 'विधि निर्माण' है। राजनीति शास्त्रों में विधि निर्माण के अनेक साधनों का उल्लेख किया गया है[६]—

(१) जनता के आधार पर विधि निर्माण। (२) दैवी साधन से विधि निर्माण। (३) आर्ष साधन से विधि निर्माण। (४) स्थानीय संस्थाओं द्वारा विधि निर्माण। स्थानीय संस्थाओं द्वारा निर्मित विधियों के भी ३ भेद हैं—कुल धर्म, जाति धर्म, देश

---

१. रामा० मं०, अ० प० (१८२), २. वही (१८३)

३. रामा० मं०, यु० कां० (७८, ७९), ४. वही (१५०, १५१), ५. वही (७६१)

६. महाभारत—शान्तिपर्व (५९।७१)

धर्म। विधि निर्माण के प्रथम साधन का रामायणमञ्जरी में उल्लेख नहीं किया गया है। दैवी साधन के सिद्धान्त का प्रतिपादन एक स्थल पर अवश्य दर्शनीय है। लक्ष्मण सुग्रीव को सम्बोधित करते हुए 'कृतघ्न मित्र' के लिए प्रयुक्त की जाने वाली विधि का उल्लेख करते हैं जिसे वे ब्रह्मा द्वारा निर्मित बताते हैं[1]।

समय-समय पर देश, काल एवं परिस्थिति के अनुकूल ऋषियों मुनियों एवं राजनीतिविदों द्वारा निर्मित विधियों को आर्ष साधन के अन्तर्गत रखा गया है। वेद एवं शास्त्र के विशेषज्ञ ही इसके अधिकारी निर्माता होते थे। इस प्रकार की विधियों का विवरण रामायणमञ्जरी में अनेकशः वर्णित है जो प्रायः ग्रन्थ में आद्योपान्त सूक्तियों के अन्दर सुलभ है।

संस्थामय भारतीय जीवन में लघु से लेकर विशाल तक प्रत्येक संस्था की महत्ता प्रतिपादित की गयी है जिनमें तीन प्रमुख हैं—कुल जाति एवं देश। प्रत्येक की निजी विशेषताएँ होती हैं। इनमें से प्रत्येक को निजी स्वतन्त्रता प्राप्त होने का प्रमाण 'कुल धर्म' हैं। कुल सञ्चालन इन्हीं के द्वारा होता है। रामायणमञ्जरी में इन कुल धर्मों का भी अनेकशः उल्लेख मिलता है।[2]

विभिन्न जातियों के अनुसार उनकी रीतियाँ एवं संस्कृतियाँ भी भिन्न-भिन्न हुआ करती हैं। तदनुकूल जाति धर्म भी होते हैं। रामायणमञ्जरी में मानव जाति, वानरजाति एवं राक्षस जाति के धर्मों का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार अन्य विभिन्न वर्णों एवं जातियों के भी भिन्न-भिन्न धर्म हैं।[3]

रामायणमञ्जरी सूक्तियों एवं नीति श्लोकों का आकर ग्रन्थ है। महाकवि क्षेमेन्द्र ने इन्हीं नीति श्लोकों के माध्यम से विभिन्न विधियों का उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया है। ग्रन्थ में आद्योपान्त दैवी विधि, आर्ष विधि, जाति धर्म, कुल धर्म एवं देश धर्म से सम्बन्धित सूक्तियाँ दर्शनीय हैं।

प्राचीन परम्परा के अनुसार न्याय संस्था का अध्यक्ष राजा ही हुआ करता था, जो 'धर्माध्यक्ष' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। उसकी धर्म सभा हुआ करती थी जिसमें वेदज्ञ एवं नीतिज्ञ धर्माधिकारीगण हुआ करते थे जो कि जाति, देश, कुल धर्म तथा सदाचारादि के विशद ज्ञाता हुआ करते थे। अतः स्पष्ट है कि जनता के अधिकारों को सम्यक् निर्वाह करने के लिए राजा न्यायाधीश के रूप में न्याय व्यवस्था का समुचित

---

१. रामा० मं०, कि० कि० कां० (१२७–१३३)

२. रामा० मं०, बा० कां० (१०५), अयो० कां० (८६१), अ० प० (२८५, २६७)

३. रामा० मं०, बा० कां० (१०६)

सङ्गठन किया करता था। रामायणमञ्जरी में राम को 'धर्म मूलः',[१] 'धर्मस्तम्भ'[२] तथा 'धर्मस्थ'[३] आदि शब्दों से विभूषित किया गया है जिससे उनके धर्माध्यक्ष स्वरूप का प्रमाण मिलता है। यह पूर्व विदित ही है कि राजा राम के मन्त्रिपरिषद में वशिष्ठ, जाबालि, कौत्स, गौतम, नारद, मार्कण्डेय, अत्रि, मौद्गल्य, वामदेव, पुरोगमा, भृगु, कात्यायन तथा कश्यप आदि सर्वश्रेष्ठ मुनिगण थे जो वेद, नीति एवं धर्म तत्त्ववेत्ता तथा त्रिकालदर्शी थे।[४] राजा राम की धर्म सभा में इन ऋषियों का महत्त्वपूर्ण स्थान एवं योगदान था। इन्हीं के द्वारा राम न्यायाधीश के रूप में न्याय व्यवस्था का समुचित प्रतिपादन किया करते थे। उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत ब्राह्मण पुत्र की अकाल मृत्यु का कारण जानने के लिए उन्होंने धर्माधिकारियों की सभा बुलाई। नारद द्वारा इसका कारण एवं हल जानने के बाद राम ने शम्बूक का वध करके ब्राह्मण पुत्र को जीवित कर वर्णाश्रम व्यवस्था एवं न्याय व्यवस्था की स्थापना की।[५] इसी प्रकार ब्राह्मण के दण्ड प्रहार से घायल कुत्ते को भी उचित न्याय देकर ब्राह्मण को मठाधीश बना दिया।[६] उत्तरकाण्ड की इन घटनाओं के अतिरिक्त भी ग्रन्थ में आद्योपान्त राजा राम की न्यायप्रियता सर्वत्र दर्शनीय है।

राजा के प्रमुख कर्तव्यों में दुष्ट दमन द्वारा धर्म एवं न्याय की संस्थापना प्रधान है। राम ने ताटका, सुबाहु, विराध, कबन्ध, बालि, रावण तथा सम्पूर्ण दुष्ट राक्षसों का वध करके धरा को दुष्टों से रहित कर दिया। अन्याय एवं अधर्म का विनाश करके न्याय एवं धर्म की प्रतिस्थापना की। उत्तरकाण्ड में तो उनकी धर्म सभा एवं न्याय व्यवस्था का विशद वर्णन है। च्यवनादि ऋषियों के कहने से उन्होंने महादुष्ट दैत्य लवणासुर का वध करवाया।[७] लोकापवाद के कारण सीता का परित्याग किया।[८] धर्म, न्याय एवं सत्य की प्रतिस्थापना हेतु ही सीता को अग्नि परीक्षा के बाद स्वीकार किया।[९]

राम के अतिरिक्त राजा दशरथ तथा जनक की धर्म सभा में वशिष्ठ तथा शतानन्द जैसे नीति एवं धर्म तत्त्ववेत्ता ऋषि रहते थे। इन श्रेष्ठ ऋषियों मुनियों का राजा की धर्म सभा में रहने का उद्देश्य सम्भवतः राजा को सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म एवं न्याय-अन्याय का नीर-क्षीर विवेक कराना ही था।

रामायणमञ्जरी में सैन्य सङ्गठन एवं युद्ध प्रणाली—

राज्य का प्रमुख अङ्ग 'बल' बताया गया है। जिसमें 'सैन्य बल' प्रधान है। इस सैन्य बल के आठ अङ्ग माने गये हैं—रथारोही, गजारोही, अश्वारोही, नौकारोही, पैदल,

---

१. रामा० मं०, रामाभिषेकः (१८८)

२. रामा० मं०, उ० कां० (९०६, ९०७), ३. वही (९२३, १००२, १०४२),

४. वही (१०१०–१०१५), ५. वही (१०११–१०४०), ६. वही (९०४–९३६),

७. वही (९६१–९९५), ८. वही (७५५–७७६)

९. रामा० मं०, वह्निप्रवेशः (७७-१०४)

विष्टि (भारवाहक), गुप्तचर और उपदेशक।[1] एक युद्ध प्रधान ग्रन्थ होने के कारण रामायणमञ्जरी में सैन्य बल के उक्त अङ्गों का सम्यक् विवेचन किया गया है। ग्रन्थ में सेना का स्वरूप, उसके प्रकार तथा सङ्गठन आदि का पर्याप्त विश्लेषण किया गया है।

राजनीतिवेत्ताओं के अनुसार सेना दो प्रकार की बतायी गयी है—स्वगमा और अन्यगमा। स्वगमा के अन्तर्गत पैदल सेना और अन्यगमा में घोड़े, हाथी आदि। रामायणमञ्जरी में राम की सेना स्वगमा[2] तथा रावण की सेना स्वगमा और अन्यगमा दोनों रूपों में पायी जाती है।[3] सेना का सेनापति या सेनानायक उसका मुख्य अध्यक्ष होता है। राम तथा रावण दोनों की सेना में इसका उल्लेख पाया जाता है।[4] रामायणमञ्जरी में सेनानायक एवं सेना के गुणों की ओर भी दृष्टिपात किया गया है। सेना को प्रोत्साहन देने हेतु सैन्य सञ्चालक को व्यवहार कुशल और अनुशासनकर्ता होने की आवश्यकता होती है। राम, सुग्रीव, विभीषण तथा रावण, इन्द्रजित, कुम्भकर्ण आदि में यह विशेषता देखने को मिलती है।[5]

राम तथा रावण दोनों की सैन्य संख्या अपरिमित दर्शायी गयी है।[6] राजनीतिवेताओं के अनुसार सेना की व्यूहाकार स्थिति भी रामायणमञ्जरी में वर्णित है। राम तथा रावण दोनों अपनी सेना को कई भागों में विभक्त कर सभी दिशाओं में व्यूहाकार में सजाया है।[7] सेना का विभाजन उसकी सुरक्षा के लिए किया जाता है। राजनीतिशास्त्रों के अनुसार सेना के प्रस्थान का समय वर्षा ऋतु के पश्चात् का उत्तम माना गया है।[8] रामायणमञ्जरी में वर्षा ऋतु के बाद शरद ऋतु के आगमन पर ही युद्ध का प्रसङ्ग प्रारम्भ होता है।

राजनीति शास्त्रों के अनुसार युद्ध दो प्रकार का कहा गया है—धर्म युद्ध तथा अधर्म युद्ध। रामायणमञ्जरी में वर्णित युद्ध, धर्म युद्ध ही माना जाएगा क्योंकि भीष्म प्रजारक्षण कार्य, शिष्ट रक्षा कार्य, अत्याचारों से पीड़ित की रक्षा, शरणागत की रक्षा तथा ऐसे ही अन्य निमित्तों के हेतु युद्ध घोषित करना वैध मानते हैं।[9] रामायणमञ्जरी में अत्याचारी, क्रूर, पापकर्मा तथा त्रैलोक्य को अपने दुराचार से त्रास देने वाले अधर्मी रावण के विरुद्ध लोक रक्षा तथा प्रजारक्षण हेतु राम धर्म युद्ध की घोषणा करते हैं।

---

१. भीष्म का राजधर्म, पृ० १३४

२. रामा० मं०, यु० कां० (३००, ३०४, ३२०, आदि), ३. वही (४१२, ६२१),

४. वही (५६०), ५. वही (६०२–६६०), ६. वही (३००–४१२)

७. रामा० मं०, यु० कां० (३८१–३८६)

८. शुक्र की राजनीति, पृ० २२५

९. भीष्म का राजधर्म, पृ० १३७

रामायणमञ्जरी में स्थल-स्थल पर धर्म युद्ध के कतिपय नियमों, वीरों की गति एवं कायरों की स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है।[१]

युद्ध के अनेक प्रकारों का भी विवरण ग्रंथ में मिलता है। युद्ध मुख्यतः तीन प्रकार का होता है—दैविक, असुर तथा मानवी।[२] दैविक युद्ध वह कहलाता है जिसमें मन्त्र प्रेरित बाणों द्वारा युद्ध किया जाता है। इसे मान्त्रिक युद्ध भी कहते हैं। राम द्वारा मन्त्र प्रेरित बाणों का संधान इसी युद्ध का प्रमाण है[3]—'**महास्त्रमभिमन्त्र्याशु घोरमाग्नेय माशुगम्।**' इसी प्रकार लक्ष्मण भी मन्त्र प्रेरित अस्त्र का प्रयोग करते हैं[४]—'**ऐषीकमभिमन्त्र्यास्त्रं जघानास्त्रेण लक्ष्मणः।**'

अग्निपूर्ण युक्त नालिक अस्त्रों का प्रयोग आसुर युद्ध कहलाता है। रामायणमञ्जरी में रावणी सेना की ओर से इसका प्रयोग किया गया है परन्तु राम की तरफ से केवल अग्नि बाणों का ही प्रयोग किया गया है नालिक अस्त्रों का नहीं।

मानव युद्ध के दोनों प्रकारों बाहु युद्ध[५] तथा शस्त्र युद्ध[६] का भी उल्लेख रामामञ्जरी में सुलभ है। इन विधियों के अतिरिक्त शत्रु विनाश हेतु 'कूट युद्ध' का भी विवरण मिलता है। 'माया युद्ध' का भी उल्लेख इसी प्रसङ्ग के अन्तर्गत आता है। युद्धकाण्ड के अन्तर्गत रात्रि युद्ध में इन्द्रजित का अदृश्य होकर युद्ध करना, सीता को राम का मायाशीर्ष दिखाना, माया सीता का वध करना आदि इसी माया युद्ध (कूट युद्ध) के अन्तर्गत ही आता है[७]।

युद्ध के समय अनेक उद्दीपन सम्बन्धी उपादानों का भी उल्लेख रामायणमञ्जरी में मिलता है। युद्ध के समय 'परस्पर ललकार'[८] तथा रण वाद्यादि[९] का प्रयोग उत्साहवर्धन में सहायक होता है। मदिरा भी उद्वेगकारिणी होने के कारण उद्दीपन का ही कार्य करती है किन्तु इसका प्रभाव तामसी होता है अतएव असुर पक्ष में ही युद्ध प्रयाण के समय इसका प्रयोग दर्शाया गया है।[१०] रामादल में तो युद्ध के समय राम प्रताप तथा उनकी जय-जयकार ही प्रमुख उद्दीपन का कार्य करती है।[११]

युद्धकाल में गुप्तचरों का अधिक महत्त्व होता है। चतुर राजा दूतों द्वारा वैरी के आचरण एवं शक्ति आदि को जानकर थोड़े ही यत्न से युद्ध में वैरी को परास्त कर देते हैं। रामायणमञ्जरी में राम तथा रावण दोनों ही पक्षों में गुप्तचर विभाग सुदृढ़ एवं सुव्य-

---

१. रामा० मं०, यु० कां० (४८४, ४८७, ५२३ आदि)

२. शुक्र की राजनीति, पृ० २१४

३. रामा० मं०, यु० कां० (६८४), ४. वही (८४५),

५. रामा० मं०, यु० कां० (४१३–४३३), ६. वही (४१३–१२८५), ७. वही (४५५–४७६, आदि), ८. वही (८५०–८५४ आदि), ९. वही (४०४–४०७ आदि), १०. वही (७४४, ७४५), ११. वही (४०८–४१०)

वस्थित था। यही नहीं साम्राज्ञी सीता के पास भी सरमा तथा त्रिजटा के रूप में राम का निजी गुप्तचर विभाग बन गया था[1] जो उन्हें राम एवं रावण दोनों पक्ष की गतिविधियों से अवगत कराता था। गुप्तचरों के समान दूतों की भी आवश्यकता युद्ध के समय हुआ करती थी जिनकी विशद चर्चा पहले की जा चुकी है। इन गुप्तचरों तथा दूतों के सम्बन्ध में राजनियमों का पालन भी रामायणमञ्जरी में दर्शाया गया है। दूत अवध्य होता है। अतः उसके लिए 'वध दण्ड' के अतिरिक्त अन्य दण्ड भी निर्धारित किए गए हैं जिसका क्रियात्मक रूप सुन्दरकाण्ड में दूत हनुमान के प्रति दर्शनीय है।[2] युद्ध काण्ड के अन्तर्गत रावण दूत शुक-सारण को भी राम मुक्त कर देते हैं।[3] अरण्यपर्व में गुप्तचरों के महत्व का प्रतिपादन करते हुए उन्हें राजाओं का नेत्र बताया गया है[4]।

राजनीति शास्त्रों में विहित 'षाड्गुण्य मन्त्र' का भी उल्लेख रामायणमञ्जरी में दर्शनीय है। युद्ध काण्ड में माल्यवान कहता है कि विद्वानों तथा सज्जनों के अनुसार राजा को देश, काल का विचार करके सन्धि-विग्रह करना चाहिए। राजा के लिए उचित है कि वह बढ़े हुए तथा समान शत्रुओं से सन्धि करे, छोटों से युद्ध करे पर शत्रु को तुच्छ न समझे। इसलिए हे रावण! बलशाली राम के साथ तुम्हारा युद्ध करना हमें अच्छा नहीं लगता। तुम्हारे द्वारा सीता को देकर उनसे सन्धि कर लेना ही उचित है।[5] इस प्रकार 'षाड्गुण्य मन्त्र' के प्रथम भेद 'सन्धि' का वर्णन प्राप्त होता है। स्वयं राम ने सुग्रीव से मैत्री की थी जो एक प्रकार की सन्धि ही है तथा जिसके द्वारा राम और सुग्रीव 'महद्' एवं अद्वैध्य मित्र हुए।[6] कौटिल्य ने महद् एवं अद्वैध्य मित्र के विषय में कहा है कि जो महान सेना युक्त मित्र राजा होता है वह महद् मित्र कहलाता है। जिनका परस्पर एक ही स्वार्थ सम्बन्ध हो, जो उपकारी और विकारहीन हो और आपत्ति में भी दूर न होने वाला हो, ऐसा मित्र 'अद्वैध्य मित्र' कहलाता है।[7]

सन्धि के पश्चात् द्वितीय प्रमुख तत्त्व 'विग्रह' है। विग्रह वह क्रिया है जिसके द्वारा शत्रु वश में किया जाता है। विग्रह करने का आश्रय तभी लिया जाता है जब

---

१. रामा० मं० यु० कां० (५०८–५११)
२. रामा० मं०, सु० कां० (५३२, ३३, ३४)
३. रामा० मं०, यु० कां० (३११)
४. रामा० मं०, अ० प० (६४०)
५. रामा० मं०, यु० कां० (३६७–३७०)
६. रामा० मं०, कि० कि० प० (२२–२५)
७. कौटिल्य की राज्य व्यवस्था, पृ० २२८

अपना पक्ष सबल होता है। राम का पक्ष सबल था ही, रावण की शक्ति सामर्थ्य भी कुछ कम न थी। अतः दोनों तरफ से विभिन्न युक्तियों द्वारा एक दूसरे को पराजित करने अथवा अधीन करने का अनेकशः प्रयत्न किया गया है।

तीसरे तत्त्व 'यान' का तात्पर्य है एक राजा का दूसरे पर आक्रमण करना। यान की मन्त्रणाएँ भी रामायणमञ्जरी में पर्याप्त हैं। ऐसा करते समय स्वराज्य की समुचित व्यवस्था एवं रक्षा का प्रबन्ध, आक्रमण की व्यवस्था एवं सैन्य संगठन आदि पर सम्यक् रूप से पहले ही विचार कर लेना पड़ता है। रामायणमञ्जरी में राम सुग्रीव से मैत्री करके एक अच्छी एवं सुदृढ़ सेना का सङ्गठन करते हैं। पुनः समुद्र पार करके सुवेल पर्वत पर पहुँचते हैं जहाँ उन्होंने वानरी सेना को लङ्का के चारों तरफ सभी दिशाओं में दुर्गाकार में सजाकर आक्रमण की तैयारी की।[1] राम की यह सम्पूर्ण आक्रमण व्यवस्था 'यान' के अन्तर्गत आती हैं। रावण ने भी अपनी सेना को विभिन्न भागों में विभाजित करके दुर्गाकार में सजाया था। आक्रमण के पूर्व उसने अपनी सभा में विभिन्न विषयों पर विचार भी किया था। किसी सुरक्षित स्थान पर अपनी रक्षा और शत्रु नाश की भावना से बैठने को 'आसन' कहते हैं। सुवेल पर्वत पर आसीन राम की उपर्युक्त स्थिति 'आसन' का ही द्योतक है।[2] अपने शत्रु या शक्तिशाली राजा को आत्मसमर्पण कराना 'संश्रय' कहलाता है। इस संश्रय का उल्लेख रामायणमञ्जरी में नहीं मिलता है। एक राजा के साथ सन्धि करके दूसरे के साथ विग्रह करना 'द्वैधीभाव' कहलाता है। सुग्रीव के साथ राम की मैत्री तथा उस मैत्री का रावण के विरुद्ध उपयोग द्वैधीभाव है।

षाड्गुण्य मन्त्रों के ही समान साम, दान, दण्ड एवं भेद प्रभृति चार प्रमुख राजनीति के साधनों का भी अत्यधिक महत्त्व है। रामायणमञ्जरी में इन साधनों का भी उल्लेख प्रहस्त की अधोलिखित उक्ति में वर्णित है[3]—

साम साधुषु योक्तव्यं दानं लुब्धजनोचितम्।
भेदो हि शङ्कितेषु श्रेयान्दण्डस्तब्धेषु भेषजम्॥

रामायणमञ्जरी में सामादि चारों उपायों का व्यवहृत रूप भी यथास्थान मिलता है। सुग्रीव के प्रति साम, विभीषण के प्रति दाम, बालि के प्रति भेद तथा रावण के प्रति राम का दण्ड इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

छठवाँ अध्याय समाप्त

---

१. रामा० मं०, यु० कां० (२७८, २७९), २. वही (३८४, ८५, ८६), ३. वही (५३)

उपसंहार

काव्य चिन्तन सार्वभौम, सनातन, अनादि और अनन्त साहित्य-तत्त्व है। अरुणोदय का पहला स्थान महर्षि वाल्मीकि का मानस लोक है। ब्रह्मज्ञानी महर्षि के कण्ठदेश से काव्य का दिव्य आलोकमय कल्पवृक्ष रामायण के रूप में अपने पूर्ण रूप में प्रकट हो गया। महर्षि के इसी कल्पवृक्ष की दिव्य सुखद छाया की अनुभूति करने तथा जनमानस को कराने हेतु कालान्तर में कालिदास, भास, भवभूति, मुरारि, दिङ्नाग, अभिनन्द आदि कवियों ने भी अपनी कृतियों में रामकथा का अंकन किया।

पुनश्च, जिस प्रकार दीपक का तैल समाप्त होते समय उसकी ज्योति धीरे-धीरे मन्द पड़ने लगती है, और फिर से तैल डालने पर दीपक तुरन्त ज्योतिर्मय हो जाता है, ठीक उसी प्रकार आदिकाव्य की रचना के बाद १०वीं श० आते-आते रामकथा रूपी दीपक का प्रकाश धीरे-धीरे मन्द पड़ने लगा था। इसके बाद ११वीं शताब्दी में क्षेमेन्द्र नामक एक सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न काश्मीरी कवि ने 'रामायणमञ्जरी' की रचना करके रामकथा रूपी दीपक में तैल डालकर उसे पुनर्ज्योतित एवं पुनर्जीवित किया।

महर्षि की कृति के बाद यद्यपि अनेक रामकथा ग्रन्थों की सर्जना हुई किन्तु उनमें वाल्मीकीय कथा का समग्र एवं साङ्गोपाङ्ग वर्णन नहीं मिलता। ये कृतियाँ तो वाल्मीकीय कथा की किसी घटना अथवा किसी काण्ड विशेष पर आधारित हैं या फिर किसी पात्र विशेष को लेकर लिखी गयी हैं। पुनः यदि किसी ने सम्पूर्ण घटनाक्रम को तथैव चित्रित करने का प्रयास भी किया है तो उसमें उसकी कल्पना, मौलिकता तथा विभिन्न परिवर्तनों के समावेश द्वारा वाल्मीकीय कथा के क्रम का अवश्य ही उल्लङ्घन हुआ है। किन्तु सम्पूर्ण संस्कृत रामकथा वाङ्मय में क्षेमेन्द्र विरचित रामायणमञ्जरी ही एक ऐसा महाकाव्य है, जिसमें कवि ने महर्षि की रामकथा का अक्षरशः अनुकरण करते हुए वाल्मीकि रामायण के २४००० श्लोकों को संक्षिप्त करके ६४०० श्लोकों में प्रस्तुत करने का श्लाघनीय प्रयास किया है।

इस प्रकार 'रामायणमञ्जरी' को वाल्मीकि रामायण के एक गुटका के रूप में जाना जा सकता है, जिसके द्वारा पाठक, भक्त एवं श्रोता वाल्मीकीय कथावस्तु को यथाक्रम संक्षिप्त रूप में शीघ्रातिशीघ्र हृदयङ्गम कर सकते हैं। पुनः यह कवि की कर्तृत्व गरिमा ही तो है जिसके द्वारा महर्षि के इतने विशाल महाकाव्य को एक छोटे से अनुष्टुप छन्द में प्रस्तुत करने का गुरुतर कार्य किया गया।

संस्कृत साहित्य क्षेमेन्द्र के बहुमुखी व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का तो सदा से ऋणी है। इनके द्वारा रचित महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं शास्त्रीय ग्रन्थों का संस्कृत जगत को

महत्वपूर्ण योगदान है। पुनः रामायणमञ्जरी 'संस्कृत रामकथा साहित्य की अमूल्य निधि है। जिसके द्वारा कवि ने रामकथा के प्रचार-प्रसार एवं विकास में अतुलनीय सहयोग प्रदान करके परवर्ती रामकथा साहित्य में बहुविध प्राणसञ्चार किया। कवि ने रामायण-मञ्जरी की भाषा सरस, सरल एवं बोधगम्य रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। सर्वत्र अनुष्टुप छन्द में कथावस्तु वर्णित होने के कारण इसकी बोधगम्यता, सरलता एवं चारुत्व में और भी विकास देखने को मिलता है। पुनः रामायणमञ्जरी नीतितत्त्वों एवं सूक्तियों का आकर ग्रन्थ है। इन सूक्तियों के द्वारा कवि ने मानव जीवन के विभिन्न पक्षों, उसके मानसिक, वाचिक तथा कायिक व्यापारों पर करारा आघात करके सत्पथ का दिग्दर्शन कराया है। यही कारण है कि जहाँ एक तरफ परवर्ती कवियों एवं साहित्यकारों ने रामायणमञ्जरी की कथावस्तु, भाषा शैली एवं सूक्तियों का यथोचित अनुकरण करते हुए अपनी कृतियों को प्रांजल एवं परिष्कृत बनाया है वहीं दूसरी तरफ पाठक, भक्त एवं श्रोतागण भी इसकी कथा एवं सूक्तियों के द्वारा अपने मनोमस्तिष्क को स्वच्छ एवं पवित्र बनाते रहे हैं और बनाते रहेंगे, ऐसी कामना है।

इस प्रकार निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि संस्कृत रामकथा साहित्य में रामायणमञ्जरी का एक गौरवपूर्ण स्थान है तथा कवि ने अपने इस रामचिन्तन द्वारा साहित्य जगत के कल्याण के साथ ही लोक कल्याण का भी सम्यक्रूपेण सम्पादन किया है। अन्ततः महाकवि क्षेमेन्द्र के ही शब्दों में उन लीलामय श्रीराम के गुण, कीर्ति एवं चरित का स्मरण करते हैं—

इति दुरितविरामः कीर्तिकान्ताभिरामः,
सुजनहृदयरामः कोऽप्यभूद्यः स रामः।
प्रकृतमनुसरामः पापपाशं तरामः,
सुकृतभुवि चरामस्तस्य नाम स्मरामः॥

—:□:—

सहायक ग्रंथ-सूची

(क) संस्कृत ग्रन्थ—

अद्भुतरामायणम्—प्रकाशक—क्षेमराज कृष्णदास, वेंकटेश प्रेस', बम्बई ।
अग्निपुराणम्—संपादक—क्षेमराज श्री कृष्णदास, वेंकटेश प्रेस, बम्बई ।
अध्यात्मरामायणम्—अनुवादक—मुनिलाल, गीता प्रेस, गोरखपुर, उ० प्र० ।
अनर्घराघवम् (मुरारि)—टीका.—आ. रामचन्द्र मिश्र, चौ. वि. भ., वाराणसी ।
अभिषेकनाटकम् (भास)—व्याख्या.—डा. जमुना पाठक, कृष्णदास अकादमी वाराणसी
अथर्ववेदसंहिता—संपा.—डा० सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल पारडी, बलसाड ।
आनन्दरामायणम्—टीकाकार—पं० रामतेज पाण्डेय, पण्डित पुस्तकालय, वाराणसी
आश्चर्यचूड़ामणि: (शक्तिभद्र)—व्याख्या.—आ. रमाकान्त झा, चौ. वि. भ. वाराणसी
उत्तररामचरितम् (भवभूति)—टीका.—डा० लालरमायदुपाल सिंह, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद ।
उदारराघवम्(मल्लाचार्य)—संपा.—सुधाकर मालवीय, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
ऐतरेयब्राह्मण—सायणभाष्य, तारा पब्लिकेशन, वाराणसी ।
औचित्यविचारचर्चा (क्षेमेन्द्र)—संपादक—डा० मनोहरलाल गौड़, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ ।
कथासरित्सागर (सोमदेव)—टीका.—पं० केदारनाथ शर्मा, राष्ट्र भाषा परिषद, पटना
कलाविलास:, कविकण्ठाभरण (क्षेमेन्द्र)—संपा.—पं०दुर्गाप्रसाद एवं काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई (का० मा० सी०, गु० १ एवं ५) ।
काव्यप्रकाश: (मम्मट)—व्याख्या.—आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी ।
काश्मीरेतिहास:—आ. हनुमत् प्रसाद शास्त्री, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली ।
कुन्दमाला (दिङ्नाग)—टीकाकार—प्रो० चुन्नीलाल शुक्ल, साहित्य भंडार, मेरठ ।
कूर्ममहापुराणम्—संपादक क्षेमराज श्रीकृष्णदास, वेङ्कटेश प्रेस, बम्बई ।
कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय ब्राह्मण—आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली ।
कौटिलीय-अर्थशास्त्रम्—श्री वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी ।
गरुणमहापुराणम्—संपादक—क्षेमराज श्रीकृष्णदास, वेङ्कटेश प्रेस, बम्बई ।
चतुर्वर्गसंग्रह: (क्षेमेन्द्र)—संपादक—पं० दुर्गाप्रसाद एवं काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई (का० मा० सी० गु० ५) ।
चम्पूरामायणम् (भोज)—व्याख्या.—डा. करुणा श्रीवा०, वि. वि. प्रकाशन, वाराणसी
चारुचर्या (क्षेमेन्द्र)—टीका.—पं० देवदत्त शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी ।
छान्दोग्य उपनिषद्—(शाङ्करभाष्य सहित) गीताप्रेस, गोरखपुर, उ० प्र० ।

जानकीहरणम् (कुमारदास)–टीका.–पं० व्रजमोहन व्यास, मित्र प्रकाशन, इला० ।

जानकीजीवनम् (डा० राजेन्द्र मिश्र)—वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद ।

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण—व्याख्याकार–डा० वी० आर० शर्मा ।

दशावतारचरितम्, दर्पदलन (क्षेमेन्द्र)–सं०–पं० दुर्गाप्रसाद एवं काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब, मुंशी मनोहरलाल प्रा०लि०, दिल्ली एवं चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी ।

दशरूपकम् (धनञ्जय)–व्याख्या.–डा. रमाशंकर त्रिपाठी, वि. वि. प्रका०, वाराणसी

नर्ममाला एवं देशोपदेश: (क्षेमेन्द्र)—मधुसूदन कौल ।

ध्वन्यालोक: (आनन्दवर्धन)–व्याख्या.–आ. विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल, लि०, वाराणसी।

नाट्यशास्त्रम् (भरत)—संपादक–पं० केदारनाथ, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली ।

नारदीयमहापुराणम्—संपादक–क्षेमराज श्रीकृष्णदास, वेङ्कटेश प्रेस, बम्बई ।

नृसिंहपुराणम्—संपादक–क्षेमराज श्रीकृष्ण दास, वेङ्कटेश प्रेस, बम्बई ।

प्रतिभानाटकम् (भास)–व्याख्या.–आ. जगदीश चन्द्र मिश्र, चौ. वि. भ., वाराणसी

प्रसन्नराघवम् (जयदेव)–व्याख्याकार–आ. शेषराज शर्मा, चौ. वि. भ., वाराणसी ।

ब्रह्मपुराणम्—संपादक–क्षेमराज श्रीकृष्ण दास, वेङ्कटेश प्रेस, बम्बई ।

बालरामायणम् (राजशेखर)–टीका.–डा० गंगासागर राय, चौ. वि. भ., वाराणसी

बौद्धावदानकल्पलता (क्षेमेन्द्र)–संपा.–पी०एल० वैद्य, मिथिला इन्स्टीट्यूट, दरभंगा

भट्टिमहाकाव्यम्(भट्टिस्वामी)–व्याख्या.–पं०राजगोपाल शास्त्री, चौ. वि. भ. वाराणसी

भुशुण्डिरामायणम्—संपा.–डा० भगवती प्रसाद सिंह, वि. वि. प्रकाशन, वाराणसी

भारतमञ्जरी (क्षेमेन्द्र)—संपादक–पं० शिवदत्त एवं काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब, मोती लाल बनारसी दास, वाराणसी ।

मनुस्मृति: (मनु)–टीकाकार–पं० रामेश्वर भट्ट, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली

महानाटक (हनुमन्नाटक)—मधुसूदन मिश्र एवं दामोदर मिश्र–रामकथा, बुल्के ।

महाभारत (१, २, ३, ४, ५, ६)—गीता प्रेस, गोरखपुर ।

महावीरचरितम् (भवभूति)–टीका.–आचार्य रामचन्द्र मिश्र, चौ. वि. भ. वाराणसी

यजुर्वेदसंहिता—संपा.–डा० सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, बलसाड़ ।

योगवाशिष्ठरामायणम्—संपादक–वासुदेव शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी

ऋग्वेदसंहिता—संपादक–डा० सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, बलसाड ।

रघुवंशमहाकाव्यम्(कालिदास)–व्याख्या.–कृष्णमणि त्रिपाठी, चौ. वि.भ., वाराणसी

रसगङ्गाधर: (पं. जगन्नाथ)–टीकाकार–आ. बदरीनाथ झा, चौ. वि. भ., वाराणसी

राजतरङ्गिणी (कल्हण)–संपा.–पं. रामतेजशास्त्री पाण्डेय, पण्डित पुस्त०, काशी ।

रामायणमञ्जरी (क्षेमेन्द्र)—संपादक–भवदत्त शास्त्री एवं काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई (का० मा० सी० गु० ८३) ।

लिङ्गपुराणम्—संस्कर्ता–आचार्य जगदीशशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी

बृहत्कथामञ्जरी (क्षेमेन्द्र)—संपादक-शिवदत्त एवं काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब, मेहरचन्द लक्ष्मनदास, दिल्ली ।

बृहदारण्यकोपनिषद्—गीताप्रेस, गोरखपुर (शाङ्करभाष्य सहित) ।

वाराहपुराणम्—संपादक-के० वी० शर्मा, मेहरचन्द लक्ष्मनदास, दिल्ली ।

विष्णुधर्मोत्तरपुराणम्—संपादक-क्षेमराज श्रीकृष्णदास, वेङ्कटेश प्रेस, बम्बई ।

वृत्तरत्नाकरम् (भट्टकेदार)—व्याख्या.-श्रीधरानन्द शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी ।

समयमातृका (क्षेमेन्द्र)—व्याख्या.-प्रो. रमाशंकर तिवारी, चौ. वि. भ. वाराणसी ।

सेव्यसेवकोपदेशः (क्षेमेन्द्र)—संपा.-पं. दुर्गाप्रसाद, काशीनाथ पण्डुरङ्ग परब, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई (का० मा० सी०, गु० २) ।

स्कन्दमहापुराणम् (१-७)—संपा.-क्षेमराज श्रीकृष्णदास, वेङ्कटेश प्रेस, बम्बई ।

साहित्यदर्पणः (आचार्य विश्वनाथ)—व्याख्याकार-श्री शालग्राम शास्त्री, मोतीलाल, बनारसीदास, वाराणसी ।

सेतुबन्ध (प्रवरसेन)—संपादक-पं० शिवदत्त एवं काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली ।

श्रीमद्भागवद्गीता—(शाङ्करभाष्यसहित) गीता प्रेस, गोरखपुर, उ० प्र० ।

सुवृततिलकम् (क्षेमेन्द्र)-टीका.-पं. ब्रजमोहन झा, हरिदास संस्कृत सीरीज,वाराणसी

श्रुतबोधः (कालिदास)-टीका.-श्री कनकलाल ठक्कुर एवं ब्रह्मशंकर मिश्र, चौ. वि. भवन, वाराणसी ।

शतपथब्राह्मणः—सायण भाष्य तथा टिप्पणी सहित, चौखम्भा साहित्य, वाराणसी ।

क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसंग्रहः—संपादक-डा० आर्येन्द्र शर्मा, संस्कृत परिषद, उस्मानिया युनिवर्सिटी, हैदराबाद ।

हरिवंशमहापुराणम्—गीता प्रेस, गोरखपुर ।

(ख) हिन्दी ग्रन्थ—

आचार्य क्षेमेन्द्र—डा० मनोहर लाल गौड़, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ ।

औचित्य सम्प्रदाय का हिन्दी काव्यशास्त्र पर प्रभाव—डा० चंद्रहंस पाठक, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी ।

कन्नड़ साहित्य सौरभ—डा० हिरण्यगण्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

कम्ब रामायण (अनूदित)-अनु.-न० वी० राजगोपालन, राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।

कौटिल्य की राज्य व्यवस्था—डा० श्यामलाल पाण्डेय, आर्यनगर, लखनऊ ।

गुजराती साहित्य का इतिहास-जयन्तकृष्ण दवे, हि. स. ग्रन्थमाला ६८, लखनऊ ।

चंपूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डा० छविनाथ त्रिपाठी, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी ।

चंपूरामायण का साहित्यिक परिशीलन-डा. करुणा श्रीवा., वि. वि. प्रका. वाराणसी

तुलसीदासोत्तर हिन्दी रामसाहित्य-डा. रामलखन पांडेय, अभिनव भारती, इलाहाबाद

तुलसीदासी रामचरितमानस और एकनाथीभावार्थरामायण –डा० विनयमोहन शर्मा।

बङ्गला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—डा० सत्येन्द्र, हिन्दी समिति ग्रन्थमाला–५०

भीष्म का राजधर्म—डा० श्यामलाल पाण्डेय, आर्यनगर, लखनऊ।

मलयालम साहित्य का इतिहास—डा० के भास्कर नायर, हिन्दी समिति ग्रन्थ-माला–३४, लखनऊ।

रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना—डा० भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद, पटना।

नीतिकल्पतरु—डा० वी० पी० महाजन।

रामकथा–उत्पत्ति और विकास—फादर कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

रामायणककविन (योगीश्वर)—अनुवादक–डा० राजेन्द्र मिश्र (पाण्डुलिपि)।

रामाङ्क—गीताप्रेस, गोरखपुर (४६वें वर्ष का विशेषाङ्क)।

रङ्गनाथ रामायण (अनूदित)—ए० सी० कामाक्षिराव, राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ—राष्ट्रकवि मै० श० गु० अभिनन्दन समिति, कलकत्ता (१९५९)।

शुक्र की राजनीति—डा० श्यामलाल पाण्डेय, आर्यनगर, लखनऊ।

सूरसागर—संपादक–नंद दुलारे बाजपेयी।

संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डा० सुशील कुमार डे, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अका-दमी, पटना।

संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी।

संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास—डा० कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य संस्थान इलाहाबाद।

हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

हिन्दी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

(ग) अंग्रेजी ग्रन्थ—

हिस्ट्री आफ पोयटिक्स—पी० वी० काणे, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

क्षेमेन्द्र स्टडीज—डा० सूर्यकान्त।

ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर—प्रो० ए० बी० कीथ, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन।

माइनर वर्क आफ क्षेमेन्द्र—डा० आर्येन्द्र शर्मा, हैदराबाद संस्कृत अकादमी।

———